

तन्त्र-सहाविज्ञान

[द्वितीय खंड]

(तन्त्र के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक निरूपण)



लेखक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद् पट् दशत, २० स्मृतियों

एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार

संस्कृति संस्थान

वरेली [उ०प्र]

प्रकाशक

डा० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान, खवाजा कुतुब,
वरेली ।



लेखक

प० श्रीराम शर्मा आचार्य

डा० चमन लाल गौतम



सर्वाधिकार सुरक्षित



प्रथम संस्करण,

१९७०



मुद्रक

शेखर प्रिण्टर्लैण्ड,

गुदावन दर्वाजा, मथुरा ।



मूल्य

सात रुपाए पचास पैसे (७ ५०)

प्राक्थन

'तन्त्र विज्ञान' के प्रथम दृष्ट में भारतीय तन्त्र-शास्त्र की प्राचीनता और उसकी उदात्तता का परिचय दिया जा चुका है। उहाँ बतलाया गया है कि वर्तमान समय में 'तन्त्र' के नाम पर सामान्य जनता में जिस जड़ टोना का प्रचार हो रहा है वह साम्प्रदायिक तन्त्र नहीं है। श्रीरत्न बाजार पुस्तकालय में तन्त्र के नाम पर जिन अनगन मित्रियों, धन वैभव की प्राप्ति, स्त्री वशीकरण, शत्रु नाश आदि उद्देश्यों के लिये क्रियाओं का वर्णन किया गया है वे ही तन्त्र विद्या के महत्त्वपूर्ण अंग माने जा सकते हैं। वस्तुतः तान्त्रिक साधना का उद्देश्य यह है कि सामाजिक जीवन व्यतीत करते हुए भी—सामान्य लोगों में पाई जाने वाली कुछ त्रुटियों के रहते हुए भी—मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर यथाशक्ति चलने की चेष्टा कर सके।

राजयोग, ज्ञान योग, भक्तियोग आदि साधनों में आरम्भ में ही यम, नियम, सत्य, अहिंसा, शीघ्र ब्रह्मचर्य आदि के इन उच्च नियम बतला दिये गये हैं कि सामान्य कोटि का सामाजिक मनुष्य अपने को उसके अयोग्य मान लेता है। वह सोचता है कि ये तो साधु महात्माओं के पालन करने योग्य बातें हैं। हमारे जैसे गृहस्थों के ज्ञान में फँसे, और चारों तरफ के दूषित वातावरण से प्रभावित व्यक्ति इन तरह के सयम-नियम, त्याग तपस्या के विभिन्न विधानों का कैसे पालन कर सकते हैं? इस प्रकार की परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के हितार्थ कुछ आचार्यों ने तन्त्र शास्त्र का उद्भव करके ऐसी विधियों और कार्यक्रमों की योजना की कि जिसका साधन वे वर्तमान त्रुटिपूर्ण अवस्था में भी कर सकें और उन्हीं के सहारे उन्नति करके अध्यात्म मार्ग के उच्च स्तरों तक पहुँच सकें।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार यह जगत त्रिगुणात्मक है । इसमें केवल सतोगुण—उच्च आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की ही आशा रखना ठीक नहीं । सतोगुण के साथ सभी में रजोगुण और तमोगुण भी रहता है । आध्यात्मिक प्रवृत्ति वालों में सतोगुण की प्रधानता रहती है और भौतिक प्रवृत्ति वालों में रजोगुण तथा तमोगुण की अधिकता पायी जाती है । हम ससार में से रजोगुण या तमोगुण की प्रधानता वाले व्यक्तियों को पृथक् तो कर नहीं सकते, इस लिये जहाँ तक संभव हो उनके लिये इस प्रकार मार्ग-दर्शन करना चाहिये जिससे उनके दोष सीमित रूप में ही रहें और वे क्रमशः उनको कम करते हुये उच्च स्तरकी ओर बढ़ाते रहें । तत्र में जो अनेक स्थानों पर मदिरा, मांस आदि की चर्चा आती है, उसमें यही योजना रखी गई है कि जिनमें उस प्रकार की अवांक्षणीय प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं वे अपनी भावनाओं में परिवर्तन करके अपने दोषों को कम करते जायें और तत्र शास्त्र के निर्देशानुसार अन्य हानि रहित वस्तुओं का व्यवहार करने लगें ।

इस दूसरे खण्ड में बतलाया गया है कि अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण तन्त्र-साधना किसी समय भारत ही नहीं भारत से दूर विदेशों में भी फैल गई थी । तिब्बत, चीन लका, बर्मा, कम्बोडिया, मिश्र, यूनान रोम आदि तक में कुछ परिवर्तित रूप में शक्ति (देवी) उपासना का प्रचार हो गया था और उसके साथ तान्त्रिक क्रियाएँ भी की जाती थी ।

शक्ति साधना केवल कल्पना या अपनी व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर नहीं है, वरन् वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार है, इसका विस्तृत विवेचन भी आगामी पृष्ठों में किया गया है । अभी तक विज्ञान शक्ति का प्रयोग स्थूल यन्त्रों द्वारा ही कर रहा है पर वह दिन दूर नहीं जब मानसिक शक्ति द्वारा भी अनेक प्रत्यक्ष कार्य होते दिखाई पड़ेंगे । कारण यही है कि शक्ति वास्तव में एक सूक्ष्म तत्त्व है और उसका संचालन

तथा प्रयोग जितनी अच्छी तरह सूक्ष्म प्रक्रियाओं से हो सकता है, वैसा स्थूल यंत्रों से नहीं हो सकता ।

अन्तिम भाग में तीनों महाशक्तियों और दशों दुर्गाओं की साधना तथा पूजन विधि दी गई है । यह वास्तव में बहुत जटिल और रहस्यपूर्ण है और इस पुस्तक से पाठकों को उसकी रूप रेखा की ही जानकारी हो सकेगी । सामान्य पूजा पाठ और उपासना तो इसके आधार पर भी की जा सकती है, पर यदि किसी विशेष प्रयोजन से कोई तांत्रिक-अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि करना हो तो उसके लिये उसी कृत्य से संबंधित विशेष ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये और उचित तो यही है कि किसी जानकार गुरु से मार्ग-दर्शन प्राप्त करके इस मार्ग में पैर रखा जाय । तन्त्र की कोई क्रिया जल्दीवाजी अथवा हल्केपन से करने नहीं होती, वैसा करने से लाभ के स्थान में हानि की सम्भावना अधिक रहती है । इसलिये तन्त्र साधन भाग में वैय और सावधानी से ही अग्रसर होना आवश्यक है । यदि साधक का प्रयत्न और भावना मत्त होगी तो महाशक्ति स्वयं उसे उचित मार्ग की ओर अग्रसर करती रहेगी ।

—सम्पादक

विषय-सूची

- १ भारत में शक्ति उपासना का इतिहास १
ऐतिहासिक साक्षी, वैदिककाल, पौराणिककाल, बौद्धकाल, नाथ व सिद्धि सम्प्रदाय पर शक्ति-उपासना का प्रभाव, जैन धर्म पर शक्ति-उपासना का प्रभाव ।
- २ विश्व में शक्ति उपासना का प्रसार २१
बैबीलोनिया - मिश्र - चीन - ग्रीस (यूनान) - रोम - नेपाल - अन्य देशों में
- ३ शक्ति - विज्ञान ३४
- ४ शक्ति और आधुनिक विज्ञान ४०
वैज्ञानिक समर्थन - भौतिक ऊर्जाओं से अभिन्नता - मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ - मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ - गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी - मूल ऊर्जा और आद्या शक्ति में अभिन्नता - विज्ञान और साधना में अन्तर ।
- ५ शक्ति का दार्शनिक रूप ४५
भारतीय दर्शन की आधार शिला - शिव और शक्ति की एक-रूपता - अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अभेद - शिव और शक्ति की एकता के सूत्र - शक्ति उपासना का दार्शनिक आधार ।
- ६ शक्ति का तात्त्विक विवेचन ६२
शास्त्रों में शक्ति की महिमा - शक्ति के विभिन्न प्रकार - अर्थ व्याख्या - वैज्ञानिक अर्थ - शक्ति का पर्याय प्रकृति - प्रकृति की सारथ सम्मत व्याख्या - प्रकृति के विभिन्न रूप - परा प्रकृति - अपरा प्रकृति - परा और अपरा के विभिन्न पर्याय प्रकृति और माया - शक्ति तत्त्व
- ७ शक्ति का स्वरूप ८४
- ८ शक्ति सत्य है ६२

ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या का सिद्धान्त - जगत की सत्यताके सिद्धान्त के समर्थक - तन्त्र का अभिमत ।

- ९ शक्ति - उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण १०१
 इच्छा - शक्ति का विकास - भयकर रूप का अभिप्राय - कुप्र-
 वृत्तियों के त्याग की भावना - उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य -
 नवनिर्माण की प्रेरणा - परिवर्तन की क्षमता - दिव्यशक्तियों का
 सगठन - अनासक्त भावना - पारमार्थिक भावना - प्राणीमात्र में
 प्रेम का प्रसार - प्रेरणाओं का स्रोत - शक्ति उपासना का रहस्य ।
१०. नारी रूप में शक्ति उपासना क्यों ? ११६
- ११ कुमारी पूजन का उद्देश्य १३०
 आधार और उद्देश्य - शक्ति रूपिणी - कुमारी लक्षण - महा-
 त्म्य - कुमारी पूजन विधि -
- १२ विभिन्न शक्तियों और उनके वाहन १४८
 ब्राह्मी - माहेश्वरी - कोमारी - वैष्णवी - वाराही - नारसिंही
 ऐन्द्री ।
- १३ आचार्य शंकर और शक्तिमत १६६
- १४ शक्ति और वेद १७३
- १५ शक्ति और उपनिषद् १८५
१६. शक्ति और पुराण १९७
 देवी भागवत पुराण - मार्कण्डेय पुराण अग्नि पुराण - कालि-
 कापुराण विष्णुधर्मोत्तर पुराण - ब्रह्मवैवर्त पुराण - कूर्मपुराण -
 शिवपुराण ।
- १७ शक्ति और योगवासिष्ठ २०७
- १८ शक्ति और वेदान्त दर्शन २१७
- १९ शक्ति और सांख्य दर्शन २२२
- २० शक्ति और आरण्यक २२८
- २१ गीता में शक्ति तत्त्व २३०
 शक्ति विकास के दो साधन यज्ञ और योग - योग - माया प्रकृति -
 शक्ति ।

२२ दुर्गासप्तशती और गीता में अनुकूलता २४८

२३ दुर्गा उपासना का बौद्धिक अध्ययन २६१

परिभाषा - प्राचीनता - अवतरण का उद्देश्य - विभिन्न नाम - महिमा - स्वरूप - सप्तशती - कथा - कथा का आधिभौतिक अर्थ - कथा का आधिदैविक अर्थ - कथा का आध्यात्मिक अर्थ - देवी-चरित्र की बौद्धिक व्याख्या - भ्रान्तियों का निराकरण - शक्ति की प्रतिमा - आठ भुजाएँ आठ शक्तियोंकी प्रतीक - स्वास्थ्य - विद्या - धन- व्यवस्था - सगठन - यश - शौर्य - सत्य - मविकार ।

२४ दुर्गा पूजन विधि २८६

मन्त्र - पद्धति - न्यास - बहिर्मातृका न्यास - सृष्टि न्यास - स्थिति न्यास - सहार न्यास शक्तिकला न्यास - करन्यास - हृदयादि न्यास - द्वितीय न्यास - तृतीय न्यास - चतुर्थ न्यास - अक्षर न्यास - देवी - कवच - देवी सूक्त ।

२५ त्रिशक्ति - रहस्य ३१६

स्पष्टीकरण - योगिक रूप - महासरस्वती - दश श्लोक - महा-सरस्वती पूजन विधि - महालक्ष्मी - महालक्ष्मी पूजन विधि - षोडशोपचार पूजन - पंच बीज न्यास - करान्यास - लक्ष्मी कवच - महाकाली - काली पूजन विधि - ऋष्यादि न्यास - करन्यास - षडङ्ग न्यास - अन्तर्मातृका न्यास - बहिर्मातृका न्यास - सृष्टि मातृकान्यास - स्थितिमातृका न्यास - सहारमातृका न्यास - कलामातृका न्यास - श्रीवण्ठादिमातृका न्यास - वर्ण न्यास - षोढा न्यास , तत्त्व न्यास बीज न्यास , विद्या न्यास लघुषोढा न्यास - पीठ न्यास पूजा मंत्र - जप, ध्यान, काली कवच ।

२६ दस महाविद्याएँ ६६४

(१) काली-४०५ (२) तारा-४१६ (६) षोडशी - ४४१ (४) भुवनेश्वरी ४६५ (५) छिनन्मस्ता-४८४ (३) भैरवी ४६७ (७) धूमावती ५०० (८) बगलामुखी ५०३ (९) मातंगी ५०८ (१०) कमला ५१५

भारत में

शक्ति-उपासना का इतिहास

ऐतिहासिक साक्षी—

इतिहासवेत्ताओं ने अपनी खोजों के परिणामस्वरूप यह घोषणा की है कि भारत में शक्ति-उपासना प्राचीनकाल से चली आ रही है। मोहनजोदड़ो में जो खुदाई हुई है, उसमें मकानों के मात-सात तह निकले हैं, जिसे यह ज्ञात होना है कि वहाँ पर क्रमशः एक एक करके सात नगर बसे और नष्ट हो गए। ऐतिहासिकों ने, जो इन नगरों के ध्वंस के समय का अनुमान लगाया है, उसमें सबसे नीचे के नगर को ईसा से पूर्व ४००० वर्ष बताया गया है। इस खुदाई में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं जिनमें से लिंग, शक्ति, स्वास्तिक, नन्दी के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी भारतवर्ष में शक्ति उपासना की मान्यता थी। वैदिक काल से लेकर आज तक इस उपासना का भारतवर्ष में एक विशिष्ट स्थान रहा है। इसका हम क्रमशः अध्ययन करेंगे।

वैदिक काल—

भारतवर्ष में सदा से स्त्रियों का समुचित मान रहा है। उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता रहा है स्त्रियों को बहुधा 'देवी' के पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। नाम के पीछे

उनकी जन्मजात उपाधि 'देवी' प्राय जुड़ी रहती है। इसलिए धार्मिक, आध्यात्मिक और ईश्वर-प्राप्ति सम्बन्धी कार्यों में नारी का सर्वत्र स्वागत किया गया है और उसे उनकी महानता के अनुकूल प्रतिष्ठा दी गई है। वेदों पर दृष्टिपात करने में स्पष्ट हो जाता है कि वेदों मन्त्रदृष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक ऋषिकाएँ भी हैं। ईश्वरीय ज्ञान वेद महान् आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है और उन्होंने उन मन्त्रों को प्रकट किया। इस प्रकार जिन पर वेद प्रकट हुए, उन मन्त्र-दृष्टाओं को 'ऋषि' कहते हैं। ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन् अनेक नारियाँ भी हुई हैं। ईश्वर ने नारियों के अन्तःकरण में भी उसी प्रकार वेद-ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्तःकरण में, क्योंकि प्रभु के लिए दोनों ही सन्तान समान हैं। महान् दयालु, न्यायकारी और निष्पक्ष प्रभु मला अपनी ही सन्तान में नर नारी का पक्षपात करके अनुचित भेद-भाव कैसे कर सकते हैं ?

ऋग्वेद १०।७५ के सम्पूर्ण मन्त्रों की ऋषिका 'सूर्या सावित्री' हैं। ऋषि का अर्थ निरुक्ति में इस प्रकार किया है—'ऋषिर्दशं नात् स्तोमान् ददर्शति। ऋषियो मन्त्रं दृष्ट्वा।' अर्थात् मन्त्रों का दृष्टा उनके रहस्यों को समझकर प्रचार करने करने वाला ऋषि होता है।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म देवता के २४ वें अध्याय में इस प्रकार है—

घोषा गावा विश्ववारा, अपालोपनिषन्ति ।

ब्रह्म जाया जुहुर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति ॥

इन्द्राणी चेन्द्र माता चा सरमा रोमशोर्वशी ।

लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती ॥

श्रीलक्ष्मी सार्पराज्ञी वाकश्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।

रात्रि सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरितः ॥

अर्थात् “घोषा, गोघा, विश्वसारा, अपाला, उपनिषद्, जुहू, अदिति, इन्द्राणी, मरमा, रोमशा, उवशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मगादिनी हैं ।”

ऋग्वेद के १०-१३८, १०-३६, १०-४०, ८-६१, १०-६५, १०-१०७, १०-१०६, १०-१५४, १०-१५६, १०-१८६, ५-२८, ८-६१ आदि सूक्तों की मंत्रदृष्टा यही ऋषिकाएँ हैं ।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और करानी थीं । वे यज्ञ-विद्या और ब्रह्म-विद्या में पारंगत थीं । कई नाग्यः तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति का मार्ग-दर्शन करती थीं ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा ‘सीता-सावित्री’ ऋषिका को तीन वेद देने का विस्तारपूर्वक वर्णन आता है—

‘त त्रयो वेदा अन्य सृष्ट्यन्त अयह सीता सावित्री सोम राजान चक्र मे तस्या उह्वीन वेदान प्रददौ ।’

—तैत्तिरीय २।३।१०

इस मन्त्र में बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता-सावित्री को तीन वेद दिये ।

मनु की पुत्री ‘इडा’ का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १।१।४ में उसे ‘यज्ञानकाशिनी’ बताया है । ‘यज्ञानकाशिनी’ का अर्थ सायणाचार्य ने ‘यज्ञ नत्व प्रकाशन ममर्था’ में किया है । इडा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—

साऽब्रवीदिडा मनुम् । तथावाऽएँ तवाग्नि माधास्यामि ।
यथा प्रमथा पशुभिमिथुनजनिष्यसे । प्रव्यस्मि लोकेऽस्थास्यासि ।
अमि सुवर्गं लोक जेष्यसीति ।

—तैत्तिरीय ब्रा० १।४

इडा ने मनु में कहा—“तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हें पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग प्राप्त हो ।”

इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में नारी को उच्च सम्मान प्राप्त था और उसके सम्मान की समुचित व्यवस्था थी, बल्कि नर से नारी को अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। आर्यों का समाज पुरुष-प्रधान था, फिर भी उनके यहाँ नारी को उच्च दृष्टि से देखा जाता था। यह सामाजिक सम्मान ही देवी-उपासना को आधारशिला बना। वैदिक देवताओं के साथ उनकी अर्द्धाङ्गनियों के नाम भी आते हैं। पत्नियों के नामों को पतियों से पहिले सम्बोधित करने की यहाँ प्रथा थी। अतः जहाँ देवताओं की उपासना होती थी, वहाँ देवियों को भी अर्द्धास्पद माना जाने लगा। वेद का देवी-सूक्त इसका प्रमाण है। जब इस सूक्त की रचना हुई होगी, तब देवताओं की अपेक्षा देवी की उपासना अधिक प्रचलित हो चुकी होगी, तभी वाक् अपने आपको ब्रह्मवादिनी और परब्रह्मात्मिका कहती है और ग्यारह रुद्र, आठ वसु, धाता आदि द्वादश आदित्य, विश्वदेवा, मित्रावरुण, इन्द्राग्नि, अश्विद्वय आदि को अपना रूप बताती है (ऋग्वेद १०।१२५।१)। वह विश्व की अधीश्वरी, आराधको को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली और यज्ञ-योग्य देवताओं में प्रमुख होने की घोषणा करती है (अथर्व० ४।३०।२)। वह सावको को ईश्वर, सृष्टा और ऋषि बनाने की क्षमता रखती है (३)।

वेद में अदिति को देवमाता और विश्वमाता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दिति का भी यदा-कदा वर्णन है। उपस्, सरस्वती, सोम, रात्रि, वाणी इला, इडा, राका, सिनोवानी, बृहद्दिवा, सररायू, सूर्या, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, रुद्राणी अश्विनी आदि देवियों के नाम आते हैं। इससे विदित होता है कि वैदिक काल में देवी-उपासना प्रचलित थी।

यहाँ इस विवाद में पडने की आवश्यकता नहीं है, कि आर्य हम देश के मूल निवासी थे अथवा वह बाहर से आए और द्रविणों आदि पर विजय प्राप्त करके यहाँ के शासक बन बैठे। हमें तो केवल यह

देखना है कि यहाँ निवास करने वाली जातियों में शक्ति-उपासना का क्या स्थान था ?

इतिहास का परिशीलन करने पर प्रतीत होता है कि आर्यों और द्रविड़ों के धर्म मस्कारो, भाव, विचारों और जीवन के विषय में उनके दृष्टिकोण में समानता दृष्टिगोचर होती है। द्रविड़ शिमला हिल्स से लेकर काठियावाड़ तक फैले हुए थे और उनमें शिव-शक्ति की पूजा एक प्रमुख उपासना के रूप में प्रचलित थी। द्रविड़ सम्प्रदाय के जो अवशेष मिले हैं, उनमें कहीं शिव यों मुद्रा में बैठे हैं, तो कहीं देवी की नाभि से कमल का फूल उग रहा है और कहीं लिंग और योनि दिखाई दे रहे हैं। शिव द्रविड़ों के उपास्य देव थे, इसका प्रमाण इस तथ्य से भी मिलता है कि शिव का तमिल नाम 'सिवन' है, जिसका अर्थ लाल होता है। यह आर्य नाम 'नील-लोहित' से मिलता है। संस्कृत का शम्भु तमिल में 'सेम्बु' बना, जिसका अर्थ ताम्बा या लाल धातु होता है। द्रविणों में ताम्र वर्ण के प्रनापी देवता शिव ही थे। आर्यों में इसको 'रुद्र' से समानता की जा सकती है।

जहाँ शिव हैं, वहाँ शक्ति का होना आवश्यक है, क्योंकि शक्ति के बिना तो शिव, शव बन जाते हैं। ऐतिहासिकों का मत है कि सम्भवतः सती के देह-त्याग की कथा इसी काल की है जब सती के शरीर के टुकड़े जगह-जगह गिरते हैं और वही शक्ति-पीठों की स्थापना हो जाती है।

पौराणिक काल —

पौराणिक युग शक्ति-उपासना का यौवन काल कहा जाता है क्योंकि पुराण-रचयिता और इनके व्यापक प्रचार से शक्ति-उपासना को इतना बल मिला कि वह घर-घर की उपास्य बन गई। शिव और शक्ति का युगल प्रसिद्ध है। दोनों में कोई भेद नहीं है। दोनों एक हैं। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति, पृथ्वी और उसकी गन्ध तथा

धीर व उसकी प्रबलता में कोई भेद नहीं होता, उसी तरह शक्ति और शक्तिमान में अभेद सिद्ध होता है। पुराणों में शिव, वायु, आदि शिव का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। शिव-चरित्र के साथ तो पावती का घनिष्ठ सम्बन्ध है। देवी भागवत माकण्डेय और कालिका पुराण में देवी का माहात्म्य वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त में भी राधा के रूप में अर्चना निरूपण किया गया है।

पौराणिक शक्ति-उपासना के बीज हम वेद में भी देखने हैं, जहाँ वागाम्भृणी सूक्त (ऋग्वेद १०।१२५) में शक्ति-तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। पुराण निश्चय रूप से वैदिक सिद्धांतों का विस्तार मात्र है। उनकी रचनाका उद्देश्य ही वेदार्थ का उपग्रहण करना था। वैदिक युग से पुराण-युग तक शक्ति-उपासना को पहुँचाने के लिए उपनिषदों का भी योग प्राप्त हुआ। केनोपनिषद् में उमा को वैदिक प्रधान देवता इन्द्र को ब्रह्म का उपदेश देने का श्रेय दिया गया और देवी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, सौभाग्यलक्ष्मी, त्रिपुरा, सीता, राधा, भावना, वह-वृचोपनिषदों में स्वतन्त्र रूप से मातृ उपासना का विवेचन करके हम भावना को बल दिया गया। इसे पौराणिक शक्ति-उपासना की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है, जहाँ देवी को सर्वस्व माना गया है। उदाहरण के लिए सीतोपनिषद् में सीता के सम्बन्ध में कहा गया है कि “सीता ही विश्व का कल्याण करने वाली हैं। वे ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वे सब देवतास्वरूपा, सब लोकमयी, सर्व आश्रयभूता, सर्व कीर्तिसम्पन्ना, सर्व धर्मसम्पन्ना, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सर्व देवगन्धर्व, मनुष्य आदि प्राणियों का स्वरूपभूता हैं। वे सभी प्राणियों की देहरूपा और विश्वरूपा हैं।”

जन-मानस में जब देवी ने हम भावना का रूप लिया, तब इसकी उपासना व्यापक रूप से की जाने लगी। देवी-उपासना का अवि-काशत इसके भय निवारणी व शत्रु-विनाशिनी गुणों से हुआ है।

वैदिक युग में जो स्थान इन्द्र को प्राप्त था, पौराणिक युग में वही स्थान दुर्गा को मिला है । इन्द्र ने वृत्रामुर आदि असुरों को मारकर जो ख्याति पाई थी, उसमें अधिक श्रेय दुर्गा को महिषासुर, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ, रक्तबीज आदि दैत्यों के वध से मिला था । यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि दुर्गा का उद्भव भी देवताओं की सगठन-शक्ति का परिणाम था । जिस शक्ति में समस्त देवताओं का तेज सम्मिलित हो, उसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है । इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि दुर्गा की उपासना में सभी देवताओं की उपासना आ जाती है । तभी माकण्डेय पुराण के षष्ठशती प्रकरण में देवताओं से बार-बार देवी की स्तुति कराई गई है और देवी के महयोग से ही देवताओं की विजय दिखाई गई है । यहाँ देवी को देवताओं की अपेक्षा अधिक सम्मानित पद दिया गया है । अतः उनकी उपासना का विकास स्वाभाविक ही था ।

यदि वैदिक काल को हम उपासना का आरम्भ माना जाए, तो पौराणिक युग में इसका यौवन माना जा सकता है ।

बौद्ध काल—

बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । इनके साहित्य में शाक्तों से प्रभावित देवियों का वर्णन आता है । सावन माला को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है । सेक्योद्देश टीका में वाराही, नारायणी, ब्राह्मी, रौद्री, लक्ष्मी, ईश्वरी, परमेश्वरी, का नाम आता है । वज्रयान-साहित्य से प्रतीत होता है कि इन देवियों की उपासना मन्त्रों और मूर्तियों सहित प्रचलित हो गई थी । ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालन्दा में तारा और हारीति की उपासना होती थी । वागीश्वरी, वसुधारा आदि देवियों के भी वहाँ चित्र उपलब्ध होते हैं । विक्रमशिला विश्वविद्यालय में भी देवी उपासना प्रचलित थी ।

बौद्ध धर्म में शाक्त-तत्वों के प्रवेश का श्रेय 'गुह्य समाज तन्त्र'

ग्रन्थ की है, जिसमें पाँच ध्यानी बुद्धों को उपासना का निर्देश दिया गया है। इन ध्यानी बुद्धों की अलग-अलग शक्तियों का वर्णन आता है।

बौद्ध मत में—

‘प्रज्ञापारमिता’ की देवी के रूप में उपासना होती है, जिसके सम्बन्ध में मान्यता है कि वह ज्ञान और बुद्धि को प्रदान करने वाली है। वह भी आद्याशक्ति ही है। बौद्धों में ‘तारा’ की उपासना भी शक्ति की उपासना ही है। हिन्दू और बौद्ध-तन्त्रों की शक्ति-उपासना में साम्य है, केवल शब्दों का अन्तर है। हिन्दू धर्म में जिसे शक्ति के नाम से सम्बोधित किया है, उसे बौद्ध धर्म में ‘शून्य’ की सज्ञा दी गई है। उनकी मान्यता है कि यह शून्य ही विज्ञान और सुख-साम्य का प्रदाता

। यही सृष्टि का कारण है और इसी में सब कुछ लय हो जाता है। ब्राह्मणों और बौद्धों के दर्शनशास्त्र व आचारशास्त्र में भी साम्य दृष्टि-गोचर होता है। ब्राह्मणों की ‘वाराही’ और ‘दण्डिनी’ के साथ ‘वज्र-वाराही’ मिलती-जुलती है। साधना-पद्धति भी एक जैसी ही है। ब्राह्मण और बौद्ध प्रणव भोकार-साधना को ‘तार’ कहते हैं। इस देवता की पत्नी का नाम ‘तारा’ है। बौद्धों की इस तारा देवी के सम्बन्ध में काफी संस्कृत साहित्य लिखा गया है। तारा के सम्बन्ध में ३३ संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध बताए जाते हैं, जिनमें तारा-उपासना-पद्धति के प्रत्येक अङ्ग पर विस्तृत विवेचन है। यह ‘तारादेवी’ महायान सम्प्रदाय की है। हीनयान सम्प्रदाय की ‘मणिमेखला’ देवी है। श्रीलंका और श्याम में इसकी उपासना होती है। वहाँ इसे समुद्र की देवी के रूप में मानते हैं, जो तूफानों से रक्षा करने वाली है। हिन्दू धर्म में जैसे शिव-शक्ति का जोड़ा है, वैसे ही बौद्ध धर्म में तार तारा का जोड़ा है, उनके गुण एक जैसे ही हैं।

यह साधना बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध थी परन्तु ऐसा लगता है कि बौद्ध साधक कठोर नियमों से तग आ चुके थे और वह किसी सरल

मार्ग की खोज में थे जिसमें भौतिक मुखों को तिलाजलि न दी जाती हो और ससार के सभी कार्य करते हुए साधना का विकास किया जाए। 'गुह्य समाज तंत्र' ने इसी सिद्धान्त का अश्वापन दिया कि भौतिक आलम्बन के साथ ही बुद्धत्व की प्राप्ति की जा सकती है। इससे सध में अन्य अनेक दोष भी उत्पन्न हो गए, जिससे साधना में विघ्न पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए उनका दिनो-दिन पतन होता गया।

नाथ व सिद्ध सम्प्रदाय पर शक्ति-उपासना का प्रभाव—

नाथों का प्रेरणा स्रोत वज्रयान सम्प्रदाय को माना जाता है। बौद्धों में ८४ सिद्धों के नाम आते हैं। उनमें आरम्भ के ६ नाम नाथों के हैं। कोई समय था जब नाथ-सम्प्रदाय मारे उत्तरी भारत पर छाया हुआ था। ऐसा लगता है कि हमके व्यापक प्रचार ने वज्रयान को प्रभावहीन कर दिया और यही इसके लोप का कारण बना।

बुद्ध पुराण के अनुसार शिव ने ही मत्स्येन्द्र का रूप धारण किया था। मत्स्येन्द्र का कौल मत में विशेष सम्बन्ध लगता है। हमें नाथ-सम्प्रदाय का सर्वप्रथम आचार्य माना जाता है। यह गोरखनाथ के गुरु थे। जन-श्रुति है कि शिव पुत्र स्वामी कार्तिकेय ने 'कुलागम शास्त्र' को समुद्र में बहा दिया था। इसके उद्धार के उद्देश्य से शिव ने मत्सरूप ग्रहण किया और जिस मत्स्य ने उस शास्त्र का भक्षण किया था, उसे मारकर 'कुलागम शास्त्र' का उद्धार किया। इसीलिए उस आगम का नाम पड़ा—'मत्स्यधन'।

ऐसी भी मान्यता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने 'कौल जान-निर्णय' ग्रन्थ की रचना की थी। वहाँ भैरव के मुख में यह शब्द कहलाए गए हैं कि "वे ही त्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रम में महाकौल, सिद्धकौल मत्स्योदर के रूप में अवतार धारण करते हैं।"

'सिद्ध सिद्धांत पद्धति' में पाँच शिव और उनकी पाँच शक्तियों का नाम आता है—अपर-शिव, परम-शिव, शून्य शिव, निरञ्जन-शिव

और परमात्म-शिव की क्रमशः शक्तियाँ हैं—विजा-शक्ति, परा-शक्ति, अपरा-शक्ति, सूक्ष्मा-शक्ति और कुण्डलिनी-शक्ति । शास्त्रकारों ने इसका सम्बन्ध सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा से स्थापित किया है ।

'योगक्ष सिद्धांत सग्रह पूरुणनाथ' के अनुसार सृष्टि-रचना से पहले प्रणयावस्था में शिव को शक्ति से परे की मान्यता दी गई है । जब शिव में सृष्टि-रचना की इच्छा जाग्रत होती है, तो वह अपने को शक्ति से युक्त करते हैं, तभी यह कार्य सम्पन्न हो पाता है । शिव सहिता की मान्यता है कि माया ने अपने आवरण से ब्रह्म को ढक रखा है और वही अपनी विक्षेप-शक्ति के माध्यम से ब्रह्म को विश्व-रूप में लाती है । यही माया जब तप से संयुक्त होती है, तो वह दुर्गा का रूप धारण करती है । सतीगुण से मिलने पर वही माया लक्ष्मी बन जाती है । रजोगुण से आलिंगन होने पर सरस्वती-रूप में अवतरित होती है ।

नाथ-पथ में देवी को कुण्डलिनी-शक्ति के रूप में मान्यता दी गई है और उसी की विशेष रूप से उपासना होती है ।

६वीं शती का मध्य ही नाथ सम्प्रदाय का आरम्भ माना जाता है । इनका अन्त १२वीं शती में हुआ । वैसे तो आज भी नाथ-सम्प्रदाय, कापालिक, श्रीघड, कानफाटे और योगाचारी उपासकों के रूप में तथा सुरत शब्द योगियों, दादू-पन्थी एवं कबीर-पन्थी के रूप में सारे भारत में मिलता है ।

जैनधर्म पर शक्ति-उपासना का प्रभाव—

बौद्ध-धर्म की तरह जैन-धर्म के साधकों ने भी इस सरल मार्ग को अपनाया और जैन-धर्म के मूल सिद्धांतों से न मिलने पर भी वह भक्ति-भावना, वरदान, चमत्कार, मारण, मोहन, उच्च टन आदि साधनाओं की ओर आकर्षित हुए, इनसे उन्हें भौतिक सुखों की कामनाओं की पूर्ति की आशा थी । अतः जैन धर्म ने देवी-उपासना को स्थान दिया ।

जैन धर्म में २४ तीर्थंकर माने जाते हैं। उनके बाये ओर एक यक्षिणी का निवास कहा है, जिसे शासन-देवी कहते हैं। इन शासन-देवियों की संख्या भी स्वभावतः २४ है। इनमें से चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका प्रसिद्ध हैं। पद्मावती २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की शासन-देवी है। इनके स्वतन्त्र मन्दिर और पूजा विधान बताए गए हैं। इन्हें त्रिपुर मरवी, त्रिपुरा, नित्या, तोतला, त्वरिता और कामसाधिनी नाम से भी पुकारा जाता है। इनकी विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमें दो, चार, आठ, बारह, बाईस और चौबीस भुजाएँ प्रदर्शित की जाती हैं।

अम्बिका, नेमिनाथ तीर्थंकर की शासन देवी है। जैन पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इनके भी अलग मन्दिर, पूजा-विधान और स्तोत्र आदि उपलब्ध हैं। गौरी से इसकी तुलना की जा सकती है। उसके दो पुत्र—गणेश और कार्तिकेय हैं। अम्बिका के भी दो पुत्र बताए जाते हैं। दोनों का वाहन सिंह है।

चक्रेश्वरी प्रादिनाथ—शृणुभनाथ की शासन देवी है। उसके वाहन, स्वरूप और आयुष्य में वह वैष्णवी और नारायणी देवी में मिलती-जुलती है।

सिद्धायिका चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की शासन-देवी है। अपराजिता और कामचण्डालिनी भी इसी के नाम हैं। उसका श्याम वर्ण, दिगम्बर शरीर है, चार भुजाएँ और खुले बाल हैं।

जैन पुराणों में इन चार शासन-देवियों को ही प्रमुखता दी गई है। शेष की भी यदा-कदा पूजा होती रहती है।

जैन-धर्म ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता परन्तु चौबीस तीर्थंकरों की उपासना हिन्दू-धर्म के देवी-देवताओं की तरह ही करता है। उनके तीर्थों में देवी की मूर्तियों की प्रतिष्ठापना होती है। गुजरात में अम्बाजी माता के स्थान के पास 'कुम्मारिया' ग्राम में काफी संख्या में जैन-मन्दिर हैं। जैन कवियों ने शक्ति-मन्त्रवाद के 'सारस्वत कल्प'

को माना है । सिद्ध मारस्वताचाय श्री बालचन्द्र सूरि ने अपने महाकाव्य 'वमन्त-विलाम' के प्रारम्भ में शक्ति-पद्धति को स्वीकार किया है । वह अपनी दिव्य कवित्व-शक्ति का श्रेय सरस्वती देवी की उपासना को ही देते हैं । जैन धर्म के दोनो सम्प्रदायो—श्वेताम्बर और दिगम्बर में शक्ति की उपासना का प्रचलन है परन्तु उनकी मान्यता है कि पृथ्वी के नीचे और ऊपर देवी-देवताओं का निवास है और उनकी अलग-अलग श्रेणियाँ हैं । उनकी यह भी मान्यता है कि इनकी पूजा-उपासना से वरदान की प्राप्ति सम्भव है, जिससे सभी सासारिक इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है । हिन्दू धर्म में तो ऐसा मानते ही हैं । जैन-धर्म में शक्ति-उपासना का प्रवेश इसके प्रभाव और महानता की ही साक्षी देता है ।

शक्ति-उपासना का आरम्भ वैदिक काल से हुआ । पौराणिक काल में यह फली-फूली । बौद्ध व जैन-धर्म जैसे इतर धर्मों ने इसे अपनाया । नाथ व सिद्ध सम्प्रदायो पर भी इसका प्रभाव पड़ा । आज भी उत्तर से लेकर दक्षिण तक व्यापक रूप से इसका प्रचार है ।

• • •

विश्व में

शक्ति-उपासना का प्रसार

भारतीय साहित्य के दो भाग हैं—निगम और आगम । निगम कहते हैं वेद को और आगम तन्त्र को । निगम के प्रति सारे विश्व ने उच्च सम्मान की भावना व्यक्त की है और मैक्समूलर जैसे उच्चकोटि के दाशनिकों ने भी अपने जीवन का अधिकांश समय इसी की खोज व प्रचार-प्रसार में ही व्यतीत किया । आगम विश्वरूपता तो ग्रहण न कर सका, परन्तु सब जान बुझकर जैसे विदेशी विद्वानों ने इसके उद्धार के लिए जी-तोड़ प्रयत्न किए । तन्त्र के शाक्त-सम्प्रदाय की प्रमुख उपासना मातृ-साधना है । वैसे वैदिक साहित्य में भी इसके मूल को खोजा जा सकता है । वेद में अदिति, दिति, सरस्वती, उषा, इला, मही, सरमा, दक्षिणा और आपोदेवी जैसी देवियों का वर्णन आता है । उपनिषदों ने भी मातृ-उपासना को स्वीकार करते हुए अनेकों उपनिषद् इसके लिए अभिहित की हैं । वैदिक साहित्य की गूँज सारे विश्व में सुनाई दी । सम्भव है इसी से शक्ति-उपासना का बीज वहाँ अकुरित हुआ हो । कुछ भी हो, विश्व के अधिकांश देशों में प्राचीनकाल से मातृ-उपासना चली आ रही है और वहाँ भारत की तरह देवियों की प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं ।

शक्ति-उपासना के दो विशेष कारण बनाए जाते हैं । सभी सम्प्रदाय इस मन से सहमत हैं कि प्रलय के समय केवल मातृ-सत्ता

विद्यमान थी और उसी के सहयोग से सृष्टि की रचना हुई। दूसरे यह कि सभी ने इसको कृपा और दया का प्रतीक माना है। उन्होंने यह आशा रखी है कि उनको भौतिक उलझनों का समाधान करने वाली वह एक विशेष शक्ति है। इस गुण के कारण जन-समूह का ध्यान इधर आकर्षित होना भी स्वाभाविक था। व्यवहारिक क्षेत्र में भी सच्चे प्रेम की प्रतिमा यदि किसी को कहा जा सकता है, तो वह म है—उसी से दुलार की आशा रखी जा सकती है। इसलिए जहाँ भी मातृ-उपासना प्रचलित हुई, वहाँ उसे उपरोक्त गुणों के कारण पर्याप्त बल मिला। सभी सारे विश्व ने इसे अपनाने में कोई सकोच नहीं किया। हम यहाँ प्राचीनकाल से प्रचलित विभिन्न देशों की मातृ-उपासना का संक्षिप्त वर्णन करेंगे—

वेवीलोनिया—

भारतीय देवी उमा से मिलता-जुलता नाम 'अमा' वेवीलोन में प्रसिद्ध था, जो समस्त सृष्टि की रचयिता मानी जाती थी। इस देवी को तारा और इस्तर' कहते थे। इस तारा का दूसरा नाम 'निनसन' था, जिसका अभिप्राय नाशकर्त्री है। परन्तु 'इस्तर' को अधिकांशतः दया और करुणा की देवी माना जाता है। वह धरती और स्वर्ग की स्वामिनी मानी जाती थी। उनके कृपापात्र इसे अपना रक्षक और सम्पत्तिदाता के रूप में सम्मान करते थे। वह शांति और प्रसन्नता की प्रतिमा स्वीकार की जाती थी। वह मानव-जाति से प्यार करने वाली थी। वेवीलोन में 'इस्तर' देवी का सर्वोच्च स्थान था। इसकी महत्ता अपने देश तक ही सीमित नहीं रही वरन् सीरिया, मोआव, दक्षिण अरब और अवीसीनिया में भी इसकी ख्याति फैली और यह वही के स्थानीय नामों से पूजी जाने लगी। सीरिया में 'अस्टोट' नाम से 'मोआव' में 'अस्तर' के रूप में, दक्षिण अरब में 'आस्तर' और अवीसीनिया में 'आस्तर' के नाम से विख्यात हुई।

इम देवी के सिर पर गाय के दो सींग देखे जा सकते हैं । 'अरविन्द' गाय का प्रतीक प्रकाश मानने हैं । यह देवी वहाँ के सभी देवताओं मे विवाहित है ।

बेबीलोन मे आदि-देव को अप्सु और उनकी पत्नी को 'तियायत' के नाम से पुकारा जाता है । वहाँ की मान्यता है कि सर्वप्रथम वह समुद्रो के रूप में विकसित हुए और तभी अन्य देवी-देवताओं की उत्पत्ति हुई । यह कल्पना ऋग्वेद के 'अप्रकेनम सलिलय' की ही प्रेरणा से बनी प्रतीत होती हैं । वहाँ के तीन प्रमुख देवता हैं—इनतिल, इया और अनु, जो भारत के त्रिदेवो—ब्रह्मा, विष्णु और महेश से मिलते हैं । इन तीन देवताओं की शक्तियाँ हैं—तिललिलु (घरती की देवी), दामकिना (जलदेवी) और अनातु (स्वर्ग की अधिष्ठात्री) । इस तरह से बेबीलोन ने मातृ शक्ति के महत्व को स्वीकार किया ।

मिस्र—

मिस्र मे आकाश की देवी 'नुट' मानी जाती थी, जिसके सम्बन्ध मे यह धारणा थी कि वही सभी प्राणियों की रचना करती है । यह भी कथा प्रचलित है कि यहाँ के वायुदेव 'शु' ने देवी 'नुट' को अपने पैरो का सहारा दिया, फिर उसके सहयोग से लाखों तारों को उत्पन्न किया । 'नुट' को देवमाता कहा जाता था । 'शु' को 'नुट' का पति माना जाता था, जो भारतीय 'इन्द्र' की तरह पृथ्वी और आकाश के अधिपति थे । 'नुट' भारतीय 'सुरभि' की तरह 'गौरुपिणी' थी ।

माता के सृजक और सहारक दोनों रूप भारत में प्रचलित हैं, वहाँ मिस्र की 'सोखित' और 'सेखित' देवियों का सिर सिंहनी का था । उनके हाथ मे खड्ग देखा जा सकता है । वहाँ की एक और देवी 'तेपनुतने' का रूप भी सिंहनी जैसा था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्री देवताओं का नामकरण भारतीय देवताओं में थोड़े परिवर्तन से ही हुआ है । उदाहरण के लिए भारतीय

नाम 'ओम' में 'आमन्' बन गया और 'विष्णु'—'वैस' में परिवर्तित हो गया । 'ईश' का 'इसिन्' बन गया, 'माना' का 'मत', 'शक्ति' का 'सक्ति', 'दिनेश' का 'दायनेशियस' हो गया और 'हर' का तो 'हर' ही रह गया । मिस्री देवता 'राय' की कथा महर्षि दत्तात्रेय से मिलती-जुलती है । वहाँ दत्तात्रेय के पद-चिह्न, मत्स्येन्द्रनाथ की मूर्ति व महाकाल का मन्दिर भी है । मिस्र की गोदेवी का नाम 'इरिस' था । भारत में कच्छप व वाराह आदि के भी अवतार माने गए हैं । मिस्र में 'हेक्टदेवी' का रूप मेढक का था ।

मिस्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा-प्राप्त देवी थी—'आइसिस' जी वहाँ की सहस्रनामा अक्षपूर्णा मानी जाती है । इसकी उत्पत्ति का इतिहास कुछ अच्छा नहीं है । देवी नुट का पति सूर्य-देवता 'रा' था परन्तु उसने उसकी उपेक्षा की और देवता 'जेव' से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करके पाँच सन्तानें उत्पन्न की, जिनमें 'आइसिस' भी एक थी । फिर आइसिस ने अपने युवा भाई 'ओसिरिसे' से विवाह कर लिया । 'रा' देवता से शक्ति प्राप्त करने के लिए उसे सप से हसवाने का षडयन्त्र रचा । यहाँ तक का इतिहास तो इसका काला है, परन्तु वहाँ की प्रजा के लिए वह देवी वरदान सिद्ध हुई । मानवीय नियमों की व्यवस्था और प्रथम सन्मता का पाठ 'आइसिस' द्वारा ही आरम्भ किया हुआ मानते हैं । वह खाद्य-धान्यो के भण्डार भरने वाली देवी के नाम से प्रसिद्ध है ।

'आइसिस' अपने देश में इतनी लोकप्रिय हुई कि वह अन्य देशों में भी पूजित होने लगी । रोम में 'सेरस' और ग्रीस में 'डिमीटर' के रूप में पूजी जाने लगी । मिस्र की देवियों में इसका प्रमुख स्थान था । मातृत्व और पत्नीत्व में वह आदर्श मानी जाती थी । इसे वहाँ 'कुमारी माँ' की तरह पूजा जाता था । जब ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ा, तो इसी के नाम को कुछ जातियों में 'मेरी' के नाम से सम्मान दिया जाने लगा । 'आइसिस' की पूजा 'मेरी' के रूप में रूपांतरित हो गई ।

सात्विक देवियो मे माइडर का प्रमुख स्थान है, जो मर्य, न्याय और बुद्धि की देवी मानी जाती है । मिस्र की आकाश-देवी का नाम था—'हाथर' । सहारक देवी के रूप मे 'हेकाट' का उच्च स्थान है । वह विभन्न प्रकार के शस्त्र धारण करती थी, वह छ भुजा वाली थी, मिहो और सर्पों से भी उसका सम्बन्ध था । कभी-कभी दिगम्बर वेष्ट भी धारण करती थी । इस देवी की समानता भारतीय देवी काली मे सुविधापूर्वक की जा सकती है ।

मिस्री पुराणो मे अनेको अन्य देवियो का भी वर्णन आता है । विश्व को यदि एक भवन माने, तो उसके चारो द्वारो की द्वा-पालिकाएँ भी देवी-रूप मे पूजी जाती थी । विभिन्न पशुओ को भी देवी का प्रतीक माना जाता था । सार यह है कि मिस्री मन्त्रिक पर मातृशक्ति की महत्ता की अमिट छाप अङ्कित थी और वह सभी प्रकार की समृद्धि और सौभाग्यो का अवतरण इसी महाशक्ति की सदारता मे ही मानते थे ।

चीन—

आज तो चीन में साम्यवाद का झोलवाला है, परन्तु प्राचीनकाल मे यह एक आस्तिक देश था और यहाँ आस्तिक धर्म पृष्पित-पल्लवित हुए थे, तब मातृ-उपासना का भी प्रचलन था ।

चीन मे नौ देवता माने जाते थे । उनकी ज मदात्री का नाम 'नुवी' था, जो आदिम जन-राशि 'अपम्' देवी के नाम मे विख्यात थी । इस 'अपम्' से ही निखिल विश्व की सृष्टि मानी जाती थी । वहाँ की पौराणिक गाथाओ से ज्ञात होता है कि 'पश्चिम आकाश-देवी' व्याघ्र-रूपिणी थी ।

भारतीय वेद की तरह प्राचीन और महत्वपूर्ण अन्य चीन मे 'ई-चिंग' (I-ching) था । इसके अनुसार 'यांग' (Yong) और 'यिंग' (Ying) दो सिद्धांत थे, जिनको सृष्टि-रचना का मूल माना जाता था । इनका भारतीय रूपांतर पुरुष और प्रकृति ही किया जा सकता है ।

ताम्रोवादी धर्म में याग के प्रतीक 'चिएन' (Chien) को अजगर या अश्व और 'यिंग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोड़ी या गाय के प्रतीक में देखते हैं। वैदिक परिभाषा में गाय को मातृ चेतना की शक्ति और प्रकाश के रूप में समझा जाता है।

चीनी 'कन्फ्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खिअन' और पृथ्वी को 'खवान' कहा जाता था। उनकी धर्म पुस्तक में इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—“खिअन आकाश है, वृत्ताकार है, मार्ग है, पिना है, मणि है, धातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व है वृक्षों का फल है। 'खवान' वस्त्र है, घन है, गो है, पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उज्जाऊ मिट्टी है।” यह वर्णन *Myths of China and Japan* पुस्तक में दिया हुआ है। पृथ्वी माता ही काली है।

जब चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ, तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप में रही। भारत में बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं। यह अवलोकितेश्वर चीन में पहुँचकर नारी रूप में परिणत हो गया—यह आश्चर्य है। वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किए गए थे। वहाँ की तीन नेत्रों और अष्टभुजाओं वाली देवी की समानता दुर्गा से की जा सकती है। चुन्टी (Chun-ti) चण्डी से मिलती-जुलती है। यह मातृशक्ति वहाँ सतानों की संरक्षिका दुःखहर्ता, सुखदाना और विपत्तियों को दूर करने वाली मानी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक 'प्रीत' ने अपनी पुस्तक 'दि पिलग्रिमेज आफ बुद्ध' में लिखा है कि “कैथोलिकों में जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन में इस देवी का है।”

ग्रीक—

यूनानी लोग भारतीयों की तरह मन्दिर बनाकर देवों की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थीं। इनमें सोने और हाथी दाँत की बनी 'अन्येनी देवी' की मूर्ति शिल्प-कला

की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी । इसे वहाँ प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत मे ।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है—यही एन्थेस नगर के नामकरण की कथा वहाँ प्रचलित है । बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पोसीडन' दोनों की इच्छा थी कि उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण मे दोनों में मतभेद था । दोनों अपना मुकुटमा लेकर 'जियस' देवता के पास ले गए । जियस ने पूछा कि वह अपने नगर को क्या उत्तम भेंट करना चाहेंगे । पोसीडन ने एक सुन्दर घोड़ा भेंट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने जैतून का पेड़ । जियस ने यह निर्णय किया कि घोड़ा युद्ध का प्रेरक है और जैतून का पेड़ जन-कल्याण का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेंस' हुआ । बुद्धि की देवी के उपामनों को ही एथेंस को बुद्धि और विद्या का केन्द्र बनाने का श्रेय है ।

काली चोरो और डाकुओं से रक्षा करती है । यूनान की 'लावर्न' का भी यही उद्देश्य है । 'जूनो' देवी 'मोलम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली बताई जाती है । पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री बताई जाती है । पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताओं के सेनापति का गौरवपूर्ण पद मिलने का श्रेय प्राप्त है । उसके छे मुख और बारह नेत्र हैं । वह पार्वती की रक्षा करता है । जूनो का पुत्र 'मार्गर्स' भी ऐसे ही गुणों वाला है ।

वहाँ पृथ्वी देवी को 'डीमीटर' के नाम से याद किया जाता है । हेरा, डानाप् और अर्तेमिस नामक देवियाँ भी वहाँ एक विजिष्ट स्थान रखती हैं । हेरा—मिलन की प्रतीक, विवाहों की अधिष्ठात्री और वहाँ के सर्वोच्च देवता 'जीयस' की सलाहकार मानी जाती है । यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिधित्व करती है ।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता, करुणा और

ताओवादी धर्म में याग के प्रतीक 'चिएन' (Chien) को अजगर या अश्व और 'यिंग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोड़ी या गाय के प्रतीक में देखते हैं। वैदिक परिभाषा में गाय को मातृ चेतना की शक्ति और प्रकाश के रूप में समझा जाता है।

चीनी 'कन्फ्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खिअन' और पृथ्वी को 'ख्वान' कहा जाता था। उनकी धर्म पुस्तक में इनका स्पष्टीकरण इन प्रकार किया गया है—“खिअन आकाश है, वृत्ताकार है, मार्ग है, पिना है, मणि है, धातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व है वृक्षों का फल है। 'ख्वान' वस्त्र है, घन है, गौ है, पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उमड़ाऊ मिट्टी है।’ यह वर्णन *Myths of China and Japan* पुस्तक में दिया हुआ है। पृथ्वी माता ही काली है।

जब चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ, तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप में रही। भारत में बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं। यह अवलोकितेश्वर चीन में पहुँचकर नारी रूप में परिणत हो गया—यह आश्चर्य है। वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किए गए थे। वहाँ की तीन नेत्रों और अष्टभुजाओं वाली देवी की समानता दुर्गा से की जा सकती है। चुन्टी (Chun-ti) चण्डी से मिलती - जुलती है। यह मातृशक्ति वहाँ सत्तानों की सरक्षिका दुःखहर्ता, सुखदाता और विपत्तियों को दूर करने वाली मानी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक 'प्रांत' ने अपनी पुस्तक 'दि पिलग्रिमेज आफ बुद्ध' में लिखा है कि “कैथोलिकों में जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन में इस देवी का है।’

ग्रीक—

यूनानी लोग भारतीयों की तरह मन्दिर बनाकर देवी की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थी। इनमें सोने और हाथी दाँत की बनी 'अन्येनी देवी' की मूर्ति शिल्प-कला

की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी । इसे वहाँ प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत मे ।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है—यही एथेस नगर के नामकरण की कथा वहाँ प्रचलित है । बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पोसीडन' दोनों की इच्छा थी कि उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण मे दोनों में मतभेद था । दोनों अपना मुकदमा लेकर 'जियस' देवता के पास ले गए । जियस ने पूछा कि वह अपने नगर को क्या उत्तम भेंट करना चाहेंगे । पोसीडन ने एक सुन्दर घोड़ा भेंट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने जैतून का पेड़ । जियस ने यह निर्णय किया कि घोड़ा युद्ध का प्रेरक है और जैतून का पेड़ जन-कल्याण का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेस' हुआ । बुद्धि की देवी के उपासकों को ही एथेस को बुद्धि और विद्या का केन्द्र बनाने का श्रेय है ।

काली चोरो और डाकुओं से रक्षा करती है । यूनान की 'लावन' का भी यही उद्देश्य है । 'जूनो' देवी 'ओलिम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली बताई जाती है । पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री बताई जाती है । पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताओं के सेनापति का गौरवपूर्ण पद मिलने का श्रेय प्राप्त है । उसके छ मुख और बारह नेत्र हैं । वह पार्वती की रक्षा करता है । जूनो का पुत्र 'आगर्स' भी ऐसे ही गुणों वाला है ।

वहाँ पृथ्वी देवी को 'डीमीटर' के नाम से याद किया जाता है । हेरा, डानाप् और अर्तेमिस नामक देवियाँ भी वहाँ एक विजिष्ट स्थान रखती हैं । हेरा—मिलन की प्रतीक, विवाह की अधिष्ठात्री और वहाँ के सर्वोच्च देवता 'जीयस' की सलाहकार मानी जाती है । यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिधित्व करती है ।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता, करुणा और

पवित्रता की प्रतीक है। जब आत्माएँ नवीन शरीर धारण करती हैं, तो यह उन ही रक्षा करती है।

‘अहेना’ वीरो की वीरता को प्रोत्साहित करती है। वह स्थापत्य और शिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग्य में आया है।

जैसे भारतीय प्रमुख देवता इन्द्र की माता अदिनि है, वैसे ही यूनान के प्रमुख देवता ‘जीयस’ की माता ‘रेआ’ (Rhea) मानी जाती है।

‘अनो-का’ मातृशक्ति वहाँ परात्परा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक परम्परा में मातृ उपासना का एक उच्च स्थान रहा है।

रोम—

रोम में भी देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। ‘एलियस’ को देवी ‘हेलेन’ और देवता जुपीटर का युग माना जाता है। रोम के मस्थापक ‘रोमस’ और ‘रोम्युलस’ का पालन-पोषण एक मादा भेड़िया ने किया। इसलिए उसे देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी ‘ओटस’ मानी जाती थी।

भारत में सम्पत्ति ‘श्री’ है। रोम में इसका नाम ‘सिरिस’ है। गया के पास जो ‘श्री’ की मूर्ति उपलब्ध हुई है, वह इससे मिलती-जुलती है।

रोमन दुर्गा का नाम ‘मिनर्वा’ है। वह शस्त्र धारण करके राक्षसों का महार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और बुद्धि की प्रतीक मानी जाती है, और जिसके हाथ में एक वीणा रहती है। यह भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

बाबुल—

भारतीय रति की तरह बाबुल में ‘मिलित्ता’ देवी की आराधना

होती थी, जो प्रेम, दाम्पत्य और प्रणय का प्रतीक मानी जाती थी । नवविवाहित युगल के लिए इसकी पूजा करना अनिवार्य होता था । पत्नी के लिए तो देवी को प्रसन्न करना अनिवार्य होता था । इस देवी इस देवी की आराधना कुछ ऐसे विकृत ढंग से की जाती थी, कि किसी भी स्वाभिमानी पति को इसे सहन नहीं करना चाहिए क्योंकि नव-विवाहिता जब तक किसी अपरिचिन युवक के आकर्षण का केन्द्र नहीं बन जाती, तब तक वह योग्य पत्नी कहलाने की अविकारिणी नहीं बन सकती थी । अनुमान है कि वेश्यावृत्ति की नींव इसी कुप्रथा ने रखी होगी ।

‘तियामन’ बाबुन की आमुगी देवी है । अथर्ववेद में इसे ‘तैयात’ के रूप में प्रस्तुत किया गया है । तिलक ने ‘तियामत’ को ‘तैमात’ सिद्ध किया था । बाबुल में यह ‘अप्सू’ देवता की पत्नी मानी जाती थी । ऋग्वेद में भी ‘अप्सव’ शब्द आया है, जिसका सम्बन्ध जल से है । तियामत अकाल की प्रतीक है । जल को सोखकर सुखा डालना ही उसका काम है । भारतीय इन्द्र की तरह बाबुन में ‘मर्दुंक’ है, जो आसुरी शक्तियों से सघर्षरत रहते हैं । ‘तियामत’ से भी वही युद्ध करते हैं । जैसे इन्द्र अपने वज्र से वृत्र आदि का सिर काट डालता है, वैसे ही ‘मर्दुंक’ तियामत का सिर काटता है । जैसे ऋग्वेद में ‘महोभर्गव’ जल धाराओं की निर्दोष गति से चलने की बात आती है, वैसे ही तियामत की मृत्यु पर होता है ।

नेपाल—

नेपाल को एकमात्र हिन्दू-राष्ट्र होने का श्रेय प्राप्त है । वहाँ पर हर क्षेत्र में हिन्दुत्व की सजीव मूर्ति होना स्वाभाविक ही है । वहाँ बौद्धों और हिन्दुओं का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है । सरस्वती के मन्दिर में इसका व्यवहारिक उदाहरण देखा जा सकता है, जिसे ‘ऋजूश्वरी’ भी कहा जाता है और जिनके चरण चिन्ह भी वहाँ स्थापित

पवित्रता की प्रतीक है। जब आत्माएँ नवीन शरीर धारण करती हैं, तो यह उनकी रक्षा करती है।

‘अहेना’ वीरो की वीरता को प्रोत्साहित करती है। वह स्थापत्य और शिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग्य में आया है।

जैसे भारतीय प्रमुख देवता इन्द्र की माता अदिति है, वैसे ही यूनान के प्रमुख देवता ‘जीयस’ की माता ‘रिया’ (Rhea) मानी जाती है।

‘अनो-का’ मातृशक्ति वहाँ परात्परा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक परम्परा में मातृ-उपासना का एक उच्च स्थान रहा है।

रोम—

रोम में भी देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। ‘एलियम’ को देवी ‘हेलेन’ और देवता जुपीटर का युग माना जाता है। रोम के संस्थापक ‘रीमस’ और ‘रोम्युलस’ का पालन-पोषण एक मादा भेड़िया ने किया। इसलिए उसे देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी ‘फ्रोडस’ मानी जाती थी।

भारत में सम्पत्ति ‘श्री’ है। रोम में इसका नाम ‘सिरिस’ है। गया के पास जो ‘श्री’ की मूर्ति उपलब्ध हुई है, वह इससे मिलती-जुलती है।

रोमन दुर्गा का नाम ‘मिनर्वा’ है। वह शस्त्र धारण करके राक्षसों का मंहार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और बुद्धि की प्रतीक मानी जाती है, और जिसके हाथ में एक वीणा रहती है। यह भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

बाबुल—

भारतीय रति की तरह बाबुल में ‘मिलित्ता’ देवी की आराधना

श्री जे० होम्स स्मिथ के शब्दों में "हम सभी विश्वमाता, धरती माता तथा मानव-माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। भगवती माता तथा स्वर्गीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा अर्थ समाप्त हो जाता है, तो हम पुनः धरती माँ, विश्व माँ की ममता भरी गोद में चने जाते हैं। आज समार में लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।"

क्रीट (Crete) में मातृ उपासना रेघा (Rhea) के रूप में होती थी, जिन्हें जीयम की मंता कहा जाता था। उनका वाहन सिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इपी का नाम फ्रायगिया (Phrygia) में साइबेन (Cybele) पड़ा। वह 'क्रोस' देवता की पत्नी थी। इस देवी के सम्बन्ध में महाकवि होमर और पिण्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास-वेत्ताओं का कहना है कि यही से देवी-पूजा रोम और ग्रीस में गई क्योंकि इन देशों के साथ फ्रायगिया के घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और बाइबिल में सृष्टि-रचना के कारणों पर प्रकाश डालते हुए परमात्मा, श्वास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इनका अभिप्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचार्य रघुवीर ने तिब्बत और मंगोलिया में से भारतीय देवी-देवताओं के रेखा-चित्रों का संग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओं के साथ काली देवी की उपासना, तिब्बत, मंगोलिया, सुदूर उत्तर में स्थित मचूरिया तक होती थी।

तिब्बत में भगवती का नाम—'सर्गिशास-स्वियनमा' है। तिब्बत पर बौद्धों का स्पष्ट प्रभाव था। बौद्ध देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उसका नाम 'डनमा' था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की प्रतीक के रूप में पूजिता का नाम वहाँ

हैं। महाकाली के भी वहाँ दर्शन होते हैं। बौद्धों का विश्वास है कि यह देवी लोकेश्वरी पद्मा पानी की मूर्ति है। अन्नपूर्णा देवी पर नेपाल-वासियों को अच्छी आस्था है, क्योंकि वह अधिक अन्न उपजाने में सहायक सिद्ध होती है। राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी को भी नेपाली अभी भूले नहीं हैं। अन्य देवियाँ तो भारत की तरह ही ज्यों की-त्यों स्थित हैं।

अन्य देशों में—

उत्तरी अफ्रीका में देवी-उपासना का प्रचलन था। तियामत, मिलित्ता, ईसिस, इस्तर, इनिन्ना नामक देवियों की आराधना वहाँ एक लम्बे समय तक होती रही।

मिस्र की 'ईसिस' की 'इस्तर' के नाम से 'असूरिया' में पूजा हुई, जहाँ इसके दूसरे नाम 'निना' तथा 'नना' और 'इनिन्ना' थे।

सुमेर में 'निन्नी' 'नन्ना' अथवा 'न्नर', 'इनन्ना' देवी की पूजा के चिन्ह मिलते हैं। इस पर एक महाकाव्य की रचना भी हुई थी।

इस्तर देवी का आरम्भ ही सीरिया से माना जाता है।

ईसाई धर्म में कुमारी मेरी की उपासना सर्वोपरि मानी जाती है। १४वीं शती तक वह देवमता के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ईसा से चार सौ वर्ष बाद तक इसका नाम तक भी कोई नहीं जानता था। परन्तु ऐसा लगता है कि 'एशिया माइनर', सीरिया और दक्षिण योरोप में पहले से विद्यमान मातृ-उपासना का प्रभाव अन्ध-विश्वासी ईसाई जगत पर पड़ा और 'मेरी' को विपत्ति-निवारिणी माता के रूप में माना जाने लगा। सभी से फ्रांस, जर्मनी आदि में विशाल गिरिजाघरों की नींव रखी गई।

ईसाई जगत् में 'मेरी' के प्रति श्रद्धा ईसा के समान ही है। मेरी के सम्मान के रूप में मई मास में उत्सव मनाए जाते हैं। वह उपासको के लिए आशाओं का केन्द्र है।

श्री जे० होम्स स्मिथ के शब्दों में "हम सभी विश्वमाता, धरती माता तथा मानव-माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। भगवती माता तथा स्वर्गीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा अर्थ समाप्त हो जाता है, तो हम पुनः धरती माँ, विश्व माँ की ममता भरी गोद में चले जाते हैं। आज सप्ताह मे लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।"

क्रीट (Crete) मे मातृ उपासना रेआ (Rhea) के रूप मे होती थी, जिन्हें जी०स को माता कहा जाता था। उनका वाहन सिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इपी का नाम फ्रायगिया (Phrygia) मे साइबेन (Cybele) पडा। वह 'क्रोस' देवता की पत्नी थी। इस देवी के सम्बन्ध मे महाकवि होमर और पिन्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास-वेत्ताओं का कहना है कि यही से देवी-पूजा रोम और ग्रीस मे गई क्योंकि इन देशों के साथ फ्रायगिया के घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और बाइबिल मे सृष्टि रचना के कारणों पर प्रकाश डालते हुए परमात्मा, श्वास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इनका अभिप्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचार्य रघुवीर ने तिब्बत और मंगोलिया मे से भारतीय देवी-देवताओं के रेखा चित्रों का संग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओं के साथ काली देवी की उपासना, तिब्बत, मंगोलिया, सुदूर उत्तर मे स्थित मञ्चूरिया तक होती थी।

तिब्बत में भगवती का नाम—'ससृग्निवास-स्वियनमा' है। तिब्बत पर बौद्धों का स्पष्ट प्रभाव था। बौद्ध देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उसका नाम 'डनमा' था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की प्रतीक के रूप में पूजित माता का नाम वहाँ

‘दाम’, ‘त्रिग’, ‘डलमा’ है। वैसे तारा की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी जो वहाँ के घमं-जीवन पर छाई हुई थी।

तिब्बत की तरङ्ग मंगोलिया में भी ‘तारा’ की उपासना होनी थी। ‘तारा’ की मूर्तियाँ भी वहाँ प्रतिष्ठित थी, जो सम्भवतः भारत से ही गईं प्रतीत होती हैं।

यदि कही हिन्दुत्व पूर्ण रूप से जीवित और जाग्रत स्थिति में है, तो वह बाली देश है, जहाँ की उपासनाएँ, उपासना-पद्धति, मान्यताएँ और साहित्य उसी तरह श्रद्धा का पात्र है जैसा कि भारत में बल्कि कुछ अंशों में भारत से अधिक। ‘Island of Bali’ नामक पुस्तक के अनुसार बाली द्वीप में देवी ‘दानु’ देवी ‘गंगा’, ‘गिरिपुत्री’, ‘दुर्गा’ तथा ‘उमा’ शिव की पत्नियाँ हैं।

कम्बुज में वैदिक देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित थी। रामायण-कथा की व्यापकता के कारण सीता की वहाँ अच्छी लोक-प्रियता थी। हर्ष वधन द्वितीय ने मेवन’ में शिव और पार्वती के मन्दिर बनवाये थे।

जिस तरह यहाँ की जलदेवी गंगा मैया है, इसी तरह थाई देश में जलदेवी को ‘मेखोखा’ कहते हैं। उसके प्रति उनकी अपार श्रद्धा है। आज भी बंकाक के उच्च-न्यायालय के सामने शिव की मूर्ति स्थापित है, जिसकी जटाओं से गंगा की धारा निकल रही है। वहाँ के ब्राह्मकास्टिंग स्टेशन के मुख्य द्वार पर सरस्वती देवी का सुन्दर चित्र देखा जा सकता है।

जावा के कुञ्जर भाग में शैव मन्दिर स्थापित है। श्री विजय साम्राज्य के शैलेन्द्र राजाओं द्वारा ‘तारा’ का मन्दिर बनवाया गया था (७०० शक)। वहाँ की भाषा में ‘चण्डी’—मन्दिर का नाम है। वहाँ पर ‘सरस्वती-चण्डी’, ‘विष्णु-चण्डी’, ‘शिव चण्डी’ आदि के मन्दिर मिलते हैं।

मलाया की उपासना-पद्धति भारतीय थी । अतः प्रत्येक देवता की मूर्ति का निर्माण किया गया था । वहाँ पर दुर्गा की मूर्तियाँ भी मिलती हैं ।

बर्मा के पगान नगर मे अन्य भारतीय देवताओं के साथ तारा की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं ।

इस तरह से विश्व के अधिकांश देशों मे शक्ति-उपासना के प्रति प्राप्ता रही है ।

• • •

शक्ति-विज्ञान

जगत दो प्रकार का है—जड़ और चेतन। जड़, चेतन पर आधारित रहता है। चेतन से ही जड़ में गति आती है। हम देखते हैं कि जड़ दिखाई देने वाली वस्तुओं में भी एक व्यवस्थित गति है, एक नियमित प्रक्रिया के अनुसार वह काय करती रहती हैं। सर जगदीश चन्द्र बसु ने तो वृक्षों और घातुओं तक में जीवन-तत्त्व की विद्यमानता को सिद्ध किया था। प्लाटिनम का उदाहरण ले सकते हैं। वह विष से मर जाती है। उद्भिजो में तो स्पष्ट रूप से चेतना शक्ति दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध जो प्रयोग किए गए हैं, उससे यह निष्पन्न करना सरल हो जाता है कि उद्भिज में सोचने की शक्ति है, उसमें गोचरता और इच्छा-शक्ति भी अवश्य हैं। ज्ञान और कर्म तन्तुओं के अभाव में इन गुणों का विकास कैसे सम्भव हो सकता है ?

मानव में तो इसके विविध रूप हैं। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, लज्जा भी और दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, नि स्वार्थता, श्रद्धा, विश्वास भी। मस्तिष्क और इन्द्रियों की चेतना शक्ति प्रत्यक्ष है। इनमें दोनों प्रकार की विपरीत धारणाएँ रहती हैं, भावों का आवागमन रहता है। मन तो एक अपूर्व चेतना-पिण्ड है, जिसकी क्रियाशीलता का अनुमान लगाना भी सम्भव नहीं है। मानव के हर अङ्ग में चेतना और स्फूर्ति है। इसी से सृजन और सहार की दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ सञ्चालित होती हैं। ऋतु आती है, दो प्राणियों में एक होने की इच्छा जाग्रत होती है। उनका मिलना सृष्टि-प्रक्रिया का मूल बन जाता है। दोनों के संयोग से

एक नया चेतन-पिंड स्थापित हो जाता है, जिसके अणु-अणु में चेतना भरी रहती है। विज्ञान ने भी इस क्रिया को समझने का प्रयत्न किया है। जीवन विज्ञान का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का यह मत स्थिर हो गया है कि जीवों में जो जीवन-तत्व होता है, उसका नाश नहीं होता। जीवन-अणु (Chromosome) जीव के साथ रहते हैं और भौतिक शरीर के नष्ट होने पर वह संस्कार और चेतना-रूप में रहते हैं। इसलिए जीवन को अनादि और अनन्त कहने में कोई सन्देह नहीं रह गया।

विश्व में चेतना की प्रक्रिया व्यवस्थित है। जब सृजन होता है, तो ऐसा लगता है कि हर वस्तु अन्दर से बाहर आ रही है, चाहे यह मानव में हो, पशु पक्षियों या पेड़-पौधों में हो। सृष्टि के समय वह बाहर में अन्दर की ओर जाती हैं, क्योंकि उन्हें विश्व-चेता में लीन होना है। यह दोनों खेल एक ही चेतना के हैं। अणुओं के आकाश की ओर उठने की प्रक्रिया में भी और उनकी पत्तियों के पृथ्वी पर गिरने पर मिट्टी में लीन होने की स्थिति में भी एक ही चेतना-शक्ति काम करती है। वह सबसे व्याप्त है—किसी में सुप्तावस्था में और किसी में जाग्रता-वस्था में। जाग्रतावस्था होने पर वह विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। परन्तु वह पञ्चपातरहित है, उसे किसी से लगाव नहीं है। वह सबमें एक ही प्रकार की अविरल गति से प्रवाहित होती है।

इसके प्रमाण चारों ओर देखे जा सकते हैं। अपने शरीर का का ही उदाहरण लें। उसमें हृदय की गति बराबर चलती रहती है। इस गति का चलते रहना ही जीवन कहना है और रुकना ही मृत्यु। मन निरन्तर गतिशील रहता है। जो विचारों को गतिशील रखता है, वही व्यक्ति अलग-अलग क्षेत्रों में महान् प्रतिभाशाली बनते हैं। शरीर एक कारखाना है। उसके सभी प्रज्ञा अंग आप कार्यरत रहते हैं। रक्त अविरल गति से प्रवाहित होता रहता है, भोजन करने पर पाचन-क्रिया

होती रहती है, मसो का विसर्जन होता रहता है और द्वासीच्छ्वास की क्रिया भी लम्बे समय तक सञ्चालित होती रहती है। शरीर को गतिशील रखने से वह स्वस्थ व शक्ति-सम्पन्न रहता है। मालिश व अन्य व्यायाम करने से शरीर में एक प्रकार की विद्युत् दौड़ती है, जो उसकी शक्तियों का विकास करती है। जो इस विद्युत्तधारा के प्रवाहित करने में असमर्थ रहते हैं, वही अस्वस्थ और रोगी बने रहते हैं।

सूक्ष्म शक्तियों के विकास का आधार भी यही है। साधक व्रत, उपवास, जप तप, हवन, पाठ, पूजा, योगिक क्रियाएँ, आसन, प्राणायाम, चित्तन, मनन आदि के द्वारा सूक्ष्म शरीर के सुप्त शक्ति-केन्द्रों को जाग्रत करता है। इसमें गति की ही अपेक्षा है।

ससार की हर वस्तु गतिशील है। वायु गति का परिणाम है। शब्द गति से ही सुनते हैं। स्पर्श, रस और गन्ध की अनुभूति भी विभिन्न प्रकार की तरंगों से होती है। शरीर को सर्दी-गर्मी का अनुभव होना भी सूक्ष्म तरंगों से सम्पन्न होता है। विद्युत् और चुम्बक का आकर्षण भी गति से ही होता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् और तारा-मण्डल के तेज में भी तरंगों का विज्ञान निहित है।

विश्व की हर वस्तु गतिशील है। जिस धरती पर हम निवास करते हैं, उसकी अनेकों गतियाँ हैं। वह अपनी धुरी पर घूमती है, मँडराती है, सूर्य की परिक्रमा करती है, सूर्य के साथ कृत्तिका मण्डल की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी पर वह २४ घण्टों में घूम जाती है। सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में करती है। मँडलाने की गति २६ हजार वर्षों में पूर्ण होती है।

पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले हर प्राणी में गति है। गति से ही वह प्राणी कहलाता है। मनुष्य के अतिरिक्त पशु, पक्षी, कीट, पतंग और कीड़े-मकोड़े सभी गतिशील हैं। पेड़-पौधों में भी गति होती है, तभी तो वह निरन्तर बढ़ते रहते हैं। मिट्टी और पत्थर में भी अभ्यक्त गति

रहती है। जब उन्हें ऊपर फेंका जाता है, तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति में वह नीचे आ जाते हैं।

वनस्पति जगत में भी इस असीम सक्रियता को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। यदि हम इस प्रक्रिया का निरीक्षण करें कि किस प्रकार पुष्प में रंग और गंध भरी जाती है और किस प्रकार भँवरों की आकर्षित किया जाता है—तो इसकी सत्यता सिद्ध हो जाएगी। केवल फूलों में ही नहीं, समस्त वनस्पतियों में यह सृजन-क्रिया दृष्टिगोचर होती है और यह बताती है कि अणु-अणु में, कण-कण में इसके दर्शन हो रहे हैं।

पदार्थ (Matter) में गतिहीनता नहीं है, गतिशीलता है। उसे सृजन क्रिया में व्यस्त देखा जा सकता है। आधुनिक विज्ञान ने भी इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। विज्ञान बताता है कि पदार्थ और जीवन अभिन्न है, एक है, उनको अलग नहीं किया जा सकता। कुछ वैज्ञानिक तो जीवन को पदार्थ का एक गुण घोषित करते हैं। विश्व-चेतना भी दोनों की एकता ही सिद्ध करती है, क्योंकि जब हम सृष्टि की हर जड़-चेतन वस्तु का निरीक्षण करते हैं, तो स्पष्ट विदित होता है कि हर वस्तु में सक्रियता है। यहाँ क्रियाहीन कोई पदार्थ है ही नहीं। अणु-विज्ञान इलेक्ट्रॉन को भौतिक इकाई नहीं मानते। वे इस विद्युत पुंज में गति-शीलता और इच्छा-शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। अणु में इच्छा का होना वास्तव में वैज्ञानिकों के लिये आश्चर्य का विषय है, परन्तु यह अद्वैत सत्य। कुछ भी हो पदार्थ और जीवन एक ही अभिभाज्य हैं।

वगैरह इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं—“पदार्थ (Matter) में ही जीवन की इच्छा निहित है। यह इच्छा शक्ति बाह्य नहीं, आंतरिक है, जो प्रगति की ओर ऊर्ध्वमुखी है। मनुष्य में यही इच्छा चेतना के स्तर पर पहुँच गयी है। पर सभा रूप-आकारों में यह इच्छा प्रगति-शील जीवन की जननी है। यही ब्रह्म का मातृरूप है।”

इस विश्व का हर परमाणु तीव्र गति से अपना कार्य कर रहा है। पृथ्वी तो सूर्य की परिक्रमा साठे अठारह मील प्रति सैकड़ की गति से करती है, परन्तु यहाँ हर एक परमाणु हजारों मील प्रति सैकड़ की गति से घूम रहे हैं। तभी तो परमाणु की शक्ति का मूल्यांकन करते हुए महान् वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने कहा था—“यदि एक परमाणु के अन्दर छिपी शक्ति निकल पड़े, तो एक क्षण के अल्पांश में ही लन्दन जैसे घनी आबादी वाले तीन नगर ध्वस्त हो जाएँ। यह उस परमाणु का विद्युत् और गति के कारण ही है।”

सार यह कि सारा विश्व गतिमय है—शक्तिमय है। किसी की शक्ति व्यक्त है और किसी की अव्यक्त। सारे ब्रह्मांड में शक्ति के खेल लहलहा रहे हैं। शक्ति के बीज बिखरे पड़े हैं। हमारे अङ्ग-अङ्गमें शक्ति के कोष भरे पड़े हैं, परन्तु हम उन्हें अनुभव नहीं कर पाते, जो अनुभव करते हैं वे शक्ति सम्राट बन जाते हैं। सारा विश्व उनके गीत गाता है, उनकी उपासना करता है और उनसे सहायता की अपेक्षारखता है। जब हम स्वयं में वह शक्ति और सामर्थ्य उपस्थित है, तो हम दूरक्यों भागते हैं, अपने मुक्त शक्ति-केन्द्रों को क्यों नहीं जगाते? यह निश्चित है कि हममें भी वह शक्ति है, जो ससार के किसी भी प्राणी में है और हमारा भी उतना ही विकास सम्भव है जितना कि किसी भी प्राणी का हो पाया है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम शक्ति की उपासना उचित रीति से करें और अपने जीवन में गतिशीलता बनाए रखें। गति ही जीवन है, यही विकास और सफलता की आधार-शिला है। इसी क्रियाशील इच्छा-शक्ति को जगदम्बा, जगज्जननी, जगन्माता कहा जाता है। जगदम्बा की उपासना ही क्रियाशील जीवन है।

यही चेतना-शक्ति साधनात्मक क्षेत्र में दुर्गा, भवानी, देवी, शक्ति के रूप में पूजित है। जब हम अष्टभुजी दुर्गा के चित्र या प्रतिमा की उपासना करते हैं, तो निश्चय रूप से हम इस चेतना-शक्ति का ही

आवाहन करते हैं, बयोकि वह सारे विश्व मे अनन्त रूपो मे व्याप्त है ।
शास्त्र मे भी कहा है —

“स्वर्वम्बरूपे सर्वेशे सवशक्तिसमन्विते ।

यच्च किञ्चत्क्वचिद्वस्तु सदमद्वाखिलात्मिके ।

अर्थात् “सबके स्वरूप वाले, सबके ईश और समस्त समन्वित मे
जो भी कुछ, कही पर भी वस्तु है, सद अथवा असत्, उन सबके स्वरूप
वाने मे जो उसकी सबकी शक्ति है वही आप हैं ।”

चेतना सर्वव्यापक है । इसीलिए कहते हैं कि शक्ति जब चेतन
मे है, वह जीव-अजीव सब मे है । मारा जगत् शक्तिमयी है—“सर्व शक्ति
मय जगत् ।” यहाँ शक्ति के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं । माकण्डेय
पुराण, देवी-माहात्म्य १।८२ मे कहा है—

यच्च किञ्चत्क्वचिद्वस्तु सदमद् वाखिलात्मिके ।

तस्य सवम्य या शक्ति सा त्व किं स्तूयसे मया ॥

अर्थात् “और जो भी कुछ कही पर भी वस्तु है, वह चाहे मत्
हो या असत्, उन सबके आत्म-स्वरूप मे उन सबकी शक्ति मे जो शक्ति
है, वही आप मेरे द्वारा स्तूयमान होती है ।”

देवी भागवत (५।३२, ७७-७८) के अनुसार —

या देवी सव भूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री मूताना चाखिलेषु या ।

भूतेषु सतत तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमो नमः ॥

चित्तिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्या स्थिता जगत् ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमो नमः ॥

व्यापक चेतना की अनुभूति और अपन जीवन को गतिशील बनाए
रखना ही सच्ची शक्ति-साधना है ।

शक्ति और आधुनिक विज्ञान

वैज्ञानिक समर्थन—

आधुनिक विज्ञान भी शक्ति-सिद्धांत का समर्थन करता है। सर जान वुडरफ ने हम सम्बन्ध में लिखा है—“जड़ प्रकृति की रचना के सम्बन्ध में जो शक्ति का सिद्धान्त (Dynamic view) प्रचलित है, जिसने प्रकृति को जड़ता से शून्य बना दिया है, जिस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति के परमाणुओं में शक्ति का एक महान् खजाना भरा हुआ है, जिस सिद्धान्त के अनुसार उसे अनिवर्चनीय तत्त्व का यन्त्रों के ढग से व्यवस्था विश्लेषण करते-करते उसका एक अंश ऐसा बच जाता है, जिसका इन तरह विश्लेषण नहीं हो सकता। जिस सिद्धान्त के अनुसार रेडियो के आविष्कार ने भौतिक शक्तियों के क्षेत्र में—जो अब तक स्थिर एवं सीमित मानी जाती थी—एक नवीन एवं एक प्रकार से अनन्त शक्ति का सञ्चार कर दिया है, उसने हम बात को भी प्रमाणित करी दिया है, कि भौतिक विज्ञान शक्ति - सिद्धान्त के बहुत निकट पहुँच गया है। जिस सिद्धान्त के अनुसार—(क) शक्ति ही सबका सार है, (ख) प्रत्येक वस्तु के अन्दर अथवा यूँ कहिए कि समस्त विश्व के अन्दर रहने वाली शक्ति की वास्तव में कोई धाढ़ नह लगा सकता और (ग) प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में शक्ति का पूर्ण भण्डार भरा पड़ा है।”

भौतिक ऊर्जाओं में अभिन्नता—

विज्ञान हमें बताता है कि प्रकाश, ताप, चुम्बक आदि भौतिक

शक्तियाँ मूलतः एक और अभिन्न हैं। समझने के लिए विद्युत को ही लीजिए—विद्युत के चमत्कारों ने सारे ससार को मोह लिया है। यह अदृश्य भौतिक शक्ति है। इसे 'वल्व' के माध्यम से प्रकाश में परिवर्तित करके अन्धेरे में उजाला किया जाना है। 'हीटर' और लोहे की इन्धनी की सहायता से यही विद्युत ताप में रूपांतरित की जाती है। विद्युत-धारा को लोहे पर प्रवाहित करके चुम्बक बनता है, जो दूसरी भौतिक शक्ति है। इसमें यह सिद्ध है कि भौतिक शक्तियों को एक-दूसरे में बदला जा सकता है। विज्ञान के इसी सर्वमान्य तथ्य पर जरा गम्भीरता के साथ विचार करें, तो हम निम्नकोच कह सकते हैं कि विद्युत प्रकाश, चुम्बक ऊष्मा आदि भौतिक शक्तियाँ विविध न होकर एक हैं। एक मूल ऊर्जा के ही रूप-प्रतिरूप हैं। भौतिक शक्तियों में मूलतः कोई भेद नहीं है।

मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ—

मूल ऊर्जा क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? भौतिक पदार्थों से उसका क्या सम्बन्ध है ? उसमें और भौतिक पदार्थों में क्या अन्तर है ? इन प्रश्नों का उत्तर भी प्राधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों में खोजना होगा।

विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने प्रयोगों द्वारा सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश को पदार्थ में बदला जा सकता है। जो बात प्रकाश के सम्बन्ध में है, वही अन्य भौतिक शक्तियों—चुम्बक, विद्युत, ताप, ध्वनि आदि के विषय में भी कही जा सकती है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ—जहाँ ऊष्मा विद्युत आदि शक्तियाँ मूल रूप में एक हैं, वहाँ जगती के यावत्मात्र चर-अचर पदार्थ शक्तिरूप होने के कारण मूलऊर्जा के ही प्रतिरूप हैं। मूल ऊर्जा ही भौतिक शक्तियों में अनेक विधि परिवर्तित होकर इन्हीं के माध्यम से गैस, तरल और ठोस पदार्थों में बनीभूत हो रही है।

मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ—

समस्त स्थावर जगम पदार्थ अणु-परमाणुओं के संयोग से बने हैं। ये अणु-परमाणु निरन्तर गतिशील हैं। तत्त्व या यौगिक के अणु-परमाणु जब दूर-दूर तेजी से घूमने हैं, तो वह पदार्थ की गैमावस्था कहलाती है। जब अणु परमाणुओं की गति गैम की अपेक्षा न्यून होती है, उसकी संज्ञा 'तरल' या 'द्रव' है। इसी प्रकार जब अणु-परमाणुओं की गति अत्यन्त सीमित हो, संकुचित हो, तो उसे ठोस पदार्थ कहा जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म बनी अणु-परमाणुओं की जो गति गैम, द्रव और ठोस को अनुस्यूत किए रहती है, वही भौतिक शक्ति है और भौतिक शक्तियों की शक्ति 'मूल ऊर्जा' है।

गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी—

आधुनिक विज्ञान जहाँ स्थावर जगम पदार्थों तथा भौतिक शक्तियों को गतिशील बताता है वहाँ 'पदार्थ नष्ट नहीं होता' ऐसा उद्घोष करके वह इनकी अविनाशिता को भी तुमुल ध्वनि से स्वीकारता है। इसका आशय यह हुआ कि मूल ऊर्जा वह 'सक्रिय तत्त्व' है, जो कभी नष्ट नहीं होता। यह 'सक्रिय गतिशीलता' ही उसकी प्रचर 'चैतन्यता' है।

मूल ऊर्जा की उत्पत्ति—

प्रश्न यह है कि वैज्ञानिकों की 'मूल ऊर्जा', जो अविनाशी, शाश्वत, निरन्तर स्पन्दनशील, चैतन्य एवं भिन्न-भिन्न पदार्थों और शक्तियों में प्रतिरूपित है, किमते उत्पन्न हुई? भिन्न-भिन्न शक्तियों को आकर्षण-विकर्षण में बँधने वाली, उनका नियमन करने वाली होने के कारण वह उनमें तो उद्भूत हो नहीं सकती, तब क्या वह 'शून्य' में पैदा हुई? नहीं, कदापि नहीं। सम्पूर्ण सृष्टि में 'शून्य' जैसा कुछ नहीं है। सभी और सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों के रूप में मूल ऊर्जा ही व्याप्त है। अतः

मूल ऊर्जा 'उत्पत्ति-रूप' नहीं है। यदि वह सभूत होती, उत्पत्ति का विषय होती, तो उस 'मूल' विशेषण क्यों दिया जाना। फिर शून्य तो शून्य ठहरा। शून्य से निःशून्य का पैदा होना—चैतन्य का पैदा होना—वैशेषिक भी युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। इसलिए कहना ही होगा कि वैज्ञानिकों की ऊर्जा 'स्वय-भू' है।

मूल ऊर्जा और आद्याशक्ति में अभिन्नता—

निश्चय ही 'विज्ञान' की 'मूलऊर्जा' वह चैतन्य धारा है, जिसे आस्तिक वर्ग 'आद्याशक्ति' के रूप में पूजता है। उपनिषद् ग्रन्थों में 'आद्याशक्ति' के जो-जो गुण बताए हैं, वे सब ही हममें विद्यमान हैं।

वैज्ञानिकों की 'मूल ऊर्जा' सवर्ण है। वह समस्त पदार्थों में, भौतिक शक्तियों में, अणु अणु में, परमाणु परमाणु में अनस्यूत है। आद्याशक्ति भी सवर्ण है, सर्वव्यापक है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो। वैज्ञानिकों की मूल ऊर्जा ही समस्त विश्व का मूल कारण है। विश्व के यावन्मात्र परिवर्तन उसी के हैं। अघ्यात्मवादियों की आद्याशक्ति भी जगज्जननी हैं। समस्त भौतिक शक्तियों का नियमन करने वाली हैं। वैज्ञानिकों की ऊर्जा गतिमय है, चैतन्य है। आद्याशक्ति को भी परम चैतन्य के रूप में स्मरण किया जाता है। मूल ऊर्जा अविनाशी और शाश्वत है, आद्याशक्ति भी आदि-अन्त रहित है। मूल ऊर्जा उत्पत्ति रहित है, स्वय-भू है। आद्याशक्ति भी आत्मरूप है, स्वय-भू और स्वय प्रकाश्य। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान भी आद्याशक्ति पर विश्वास करता है। सज्ञा शब्दों में ही भेद है। विज्ञान जिसे 'मूल ऊर्जा' कहता है, हम उसे आद्याशक्ति। इसीलिए तो मसार-प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य आइन्स्टीन ने कहा है—“विज्ञान और धर्म में कोई भेद नहीं है। दोनों साथ-साथ चलते हैं।”

विज्ञान और साधना में अन्तर—

वैज्ञानिक और शास्त्र दोनो शक्ति के सर्वव्यापक प्रभाव को स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है। विज्ञान तो शक्ति को एक अन्व-प्रवाह मानता है जिसका नियन्त्रण करके जैसा भी चाहे उपयोग कर सकता है। वह अपने को शक्ति का नियन्त्रक समझता है। वह उम असुर की तरह है, जो शक्ति के केश पकड़कर उस पर अपने प्रभुत्व की घोषणा करता है। इसमें मानव मूल्य का कोई भी स्थान नहीं है। उसका उद्देश्य केवल भौतिक स्थूल शक्तियों से काम लेना होता है। आध्यात्मिक शक्तियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं वह उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

शक्ति की माता के रूप में पूजने वाले का दृष्टिकोण अलग होता है। वह देवी को सर्वशक्तिमयी चेतना, 'स्ववश विहारिणि' और सर्वेश्वरी मानता है। वह उसकी सगुण उपासना अवश्य करता है, परन्तु वह उसे पत्थर की प्रतिमा मात्र नहीं मानता, वह उसे चेतना का पुञ्ज मानकर उपासना करता है। उनके स्थूल विग्रह में सजीवता की अनुभूति करके कण प्रार्थना करता है और भौतिक व आत्मिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त कर कराने आग्रह करता है और पाता भी है। विज्ञान की तरह यन्त्र और दासी की तरह नहीं, अपनी सर्वस्व मानकर वह उसका द्वार खटखटाता है। भक्त के लिए वह विश्व-जननी है। वह अपनी सन्तान के साथ लाड और दुनार करती है, उनकी सभी कामनाओं की पूर्ति करती है, उसे मद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है, उसके जीवन का काया-कल्प करके नव-निर्माण का उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। विज्ञान की शक्ति जड़ है, भक्त की चेतन। विज्ञान बाह्य जगत् तक सीमित रहता है। शक्ति अन्तर्जगत् के विकास का प्रत्यन करती है, दोनो के विवि विज्ञान में भी बड़ा अन्तर है। जो भी हो, विज्ञान शक्ति-मिद्वान् को मान्यता देता है।

शक्ति का दार्शनिक रूप

भारतीय दर्शन की आधार-शिला—

भगवान की स्तुति करते हुए भक्त कहता है—‘त्वमेव माता च पिता त्वमेव’। गीता में भी कहा है—‘माता धाता पितामह’। भगवान माता, पिता और पितामह हैं—यही भारतीय दर्शन की आधार-शिला है। उनकी उपामता हम किसी भी रुचिकर रूप में कर लें, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसका कोई रूप नहीं, उसका कोई नाम नहीं। समझने की सुविधा के लिए ऋषियों ने कहा—‘एकाकी न रमते, एकोऽह बहुस्याम्’। सृष्टि-रचना के समय ऐसी प्रक्रिया हुई, इसे मूल-माया या आदि स्फूर्ति के नाम से सम्बोधित किया गया। वही ज्ञान-क्रिया शक्ति-रूप से द्वैत में आई और विश्व की रचना हुई। ब्रह्म का ही व्यक्त रूप शक्ति है। जब अद्वैत, द्वैत में परिणत हुआ, तो इस स्थिति को शिव-शक्ति, पुरुष प्रकृति, राम-सीता, गणेश-सिद्धि, कृष्ण-रुक्मिणी आदि नामों से पुकारा जाने लगा। यह नाम अलग-अलग हैं और लोक में इनके शरीर भी भिन्न-भिन्न दिखाई दिए। इनकी लीलाएँ भी प्रथक् प्रथक् रहीं, परन्तु वास्तव में सब एक हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं—एक है। द्वैत तो केवल सृष्टि-रचना के लिए ही ग्रहण करना पड़ा है।

दार्शनिक भाषा में इन दोनों की परिभाषा करें तो हम कह सकते हैं कि सारे मयार के अन्दर निवास करने वाली निर्विकार सत्ता का

नाम शिव और उसकी क्रिया का नाम शक्ति है। शक्ति के अनेक रूप हैं, जिनमें प्रधान हैं—चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया-शक्ति। एक विद्वान् ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—“यह जो स्फुरण या क्रिया है, वह शिव का रूप है, और इस स्फुरण का जो आधारभूत अविष्टान है, वह शिव का रूप है। केवल सत्ता पुरुष है और समस्त क्रिया प्रकृति है।”

योग-वशिष्ट (६।२।८५।१५) में कहा है—

म पर प्रकृते प्रोक्त, पुरुष पवनाकृति ।

जिवरूपधर शान्त शरदाकाश शान्तिमान् ॥

“प्रकृति से परे दिखाई न देने वाला पुरुष है, जो कि सदैव ही शरद् ऋतु के आकाश की तरह स्वच्छ, शान्त और शिवरूप है।”

इससे स्पष्ट है कि अद्वैत कारण है और द्वैत उसका परिणाम है। दोनों में कोई भेद नहीं।

शिव और शक्ति को एकरूपता—

देवी-भागवत के अनुसार ब्रह्मा ने शक्ति से प्रश्न किया कि आप स्त्री हैं या पुरुष? शक्ति ने उत्तर दिया—“पुरुष, और मैं हमेशा एक ही हूँ। मुझमें और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। जो पुरुष है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही पुरुष है।” इसीलिए ‘नवरत्नेश्वर तत्र’ में निर्देश है कि “सच्चिदानन्दरूपिणी देवी की स्त्री, पुरुष और शुद्ध ब्रह्म-रूप में उपामना करनी चाहिए।”

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने ‘अमृतानुभव’ के प्रथम प्रकरण (शिवशक्ति समावेशन) में इस विषय का अच्छा स्पष्टीकरण किया है। वह कहते हैं कि “उनका सम्बन्ध ऐसा है, जेम् डण्डे दो पर ध्वनि एक, पुष्प दो पर सुगन्ध एक, दीपक दो पर दीप्ति एक, होठ दो पर शब्द एक, नेत्र दो पर दृष्टि एक।”

ब्रह्म तो क्रियाहीन है, शक्ति में क्रिया है, यह सारे जगत का

विष्णु उमी के बल पर दृष्टा है । ऋग्वेद के १०वें सूक्त में देवी ने स्पष्ट कहा है—“मैं राज्यों की अविष्टात्री और धन-प्रदात्री हूँ, जिसे मैं चाहूँ, वही मेरी कृपा में बनवान, मेरावी स्तना और कवि हो सकता है । मैंने आकाश को प्रकट किया है, इसलिए मैं उसके पिता के समान हूँ । मैं मूय चन्द्रादि नक्षत्रों की सञ्चालिका हूँ, लोको की रचना करती हूँ आकाश पृथ्वी में व्याप्त हूँ, समुद्र के जल में निवास करती हूँ ।”

देवी-भागवत के मानवे स्कन्ध के ३२वें अध्याय में देवी ने स्वयं अपने रूप का वर्णन किया है—“मैं ही चिदशक्ति, परब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ, मैं अग्नि की उष्णता, मूर्त्य की किरणों और कमल की शोभा के समान ब्रह्म में अभिन्न हूँ । मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, ब्रह्माणी, वैष्णवी, मूर्त्य, तारागण, चन्द्रमा, पशु, पक्षी, चण्डाल, व्याघ्र, क्रूरकर्मा, सत्य-कर्मा, महाजन, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, दृश्यादृश्य, श्रव्य, स्पर्शनीय सब कुछ हूँ ।”

अध्यात्म-रामायण में सीता ने राम के सम्बन्ध में कहा है कि “राम तो कुछ करने नहीं, उन्हें कोई इच्छा भी नहीं है, न आना-जाना है । सब कुछ मैं ही करती हूँ ।”

मार्कण्डेय पुराण में देवी महामाया ने कहा है “शिव की शक्ति उसके मुख पर अवस्थित थी, यम की शक्ति उसके केशों में प्रवाहित थी विष्णु का बल उसकी भुजाओं में था, उसके वक्ष मण्डल चन्द्रमा की तरह सुडौल थे, उसकी कटि में इन्द्र का तेज था, उसकी टांगों और जंघाओं में वरुण का वेग था, ब्रह्मा उसके चरणों में थे और उसके पैरों के अंगूठों में आग्नेय सूर्य चमक रहा था ।”

इस तथ्य को भगवान विष्णु ने देवी-भागवत के चौथे अध्याय में स्वयं स्वीकार किया है । जब ब्रह्मा ने विष्णु से पूछा कि आप किमकी साधना करते हैं ? उत्तर मिला—“बाह्य-दृष्टि में तो आप जगत् के बनाने वाले हैं, परन्तु वेदज्ञ पुरुष हमारी इन सृजक, पालक और महारक

शक्तियों को पराशक्ति के आश्रित मानते हैं । शक्ति को कृपा से ही मेरी माली गतिविधियाँ सञ्चालित होती हैं । इसीलिए मैं उसी आदिशक्ति की आराधना करता हूँ ।” तभी ममस्त भूनों में चेतना-रूप से विद्यमान शक्ति को नमस्कार किया गया है—

या देवी सव भूतेषु चैतन्येत्यभिधीयते ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

एकैव सा महाशक्तिः तथा सर्वमिदं ततम् ॥

एक ही शक्ति अलग-अलग नामों और रूपों में व्यक्त होकर अलग-अलग कार्यों का सञ्चालन करती है । जहाँ वह सृजनात्मक कार्य करती है, वहाँ वह सहारक कार्यों का भी उत्तरदायित्व निभाती है, ताकि विश्व की व्यवस्था और नियन्त्रण को संभाल सके । जब वह सृजन-क्रिया में व्यस्त रहती है, तो मातेश्वरी कहलाती है, परन्तु जब पालन, पोषण और रक्षा करती है, तो विश्व-पिता के सम्माननीय पद से सुशोभित होती है । लक्ष्मी और अलक्ष्मी दोनों उसी के रूप हैं । भौतिक सुखों का सौभाग्य उन्हीं को कृपा से प्राप्त होता है और धन-ऐश्वर्य का दुरुपयोग करने वाले लोगों की उचित दण्ड देकर उन्हें सुमार्ग पर भी वहीं लाती है । भगवान्, भगवती, महेश, महेश्वरी, ईश्वर, ईश्वरी और ब्रह्मशक्ति सब कुछ वही है ।

समझने के लिए ‘ब्रह्म’ शब्द पुल्लिङ्ग और ‘शक्ति’ शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है, परन्तु ब्रह्मशक्ति में इनका आरोपण नहीं किया जा सकता । उदाहरण के लिए स्त्री वाचक और पुरुष-वाचक शब्दों को लें—पगड़ी, घोनी, टोपी, साड़ी आदि स्त्री वाचक है, परन्तु उनके मूल में एक ही तरह का मूल है । यह मारी स्त्री वाचक व पुरुष-वाचक वस्तुएँ एक ही प्रकार के मूल से निर्मित हुई हैं, जिनमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व कुछ भी नहीं है । इससे यह परिणाम निकलता है कि एक ही चैतन्य अलग-अलग नाम रूप में हमें दृष्टिगोचर होना है, लौकिक दृष्टि से कुछ को

स्त्री-वाचक और कुछ को पुरुष-वाचक घोषित किया जाता है, परन्तु वास्तव में वह दोनों इन सजाग्रो से तीन होते हैं क्योंकि उम चैतन्य की कोई निश्चित सजा नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए शास्त्र-कारों ने यह घोषणायें की—‘त्व हि माता च पिता त्वमेव’ ‘माता रामो मत्पिता रामचन्द्र’। भगवान की माता और पिता दोनों रूपों में मान्यता है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और शक्ति के नाम-रूप तो मला-मलग दिखाई देते हैं, परन्तु मूलतः वह एक ही हैं। उनमें कुछ भी भेद नहीं है।

शास्त्र इस अभेद की पुष्टि करते हैं। योग-वशिष्ठ ६।२।८४।३ में कहा है—

यथैक पवनस्पन्दमेकमौष्ण्यानलौ यथा ।

चिन्मात्र स्पन्दशक्तिश्च तथैवेकात्म सव दा ॥

“जिस तरह वायु और उसकी क्रिया, अग्नि और उष्णता सदैव एक ही होते हैं, उसी तरह चित्ति और स्पन्द-शक्ति एक ही है।”

अन्यत्र भी कहा है—

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णाशोरिव दीधिति ।

‘जिस तरह पावक में गर्मी रहती है सूर्य में किरण रहती है और चन्द्रमा में चन्द्रिका रहती है, उसी तरह शिव में उसकी सहज शक्ति का निवास है।’

विष्णु पुराण के अनुसार—

स एव क्षोभको ब्रह्मान् । क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तम ।

स सङ्कोचविकाशाम्या प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥

केचित्ता तप इत्याहुस्तम केचिज्जड परे ।

ज्ञान मायाप्रधानञ्च प्रकृतिं शक्तिप्यजाम् ॥

सा वा एतस्य सद्रष्टु शक्ति सदसदात्मिका ।

माया नाम महाभाग । यथेद निर्मममे विभु ॥

“वही पुरुषोत्तम भगवान् क्षोभ्य और क्षोभक उभय रूप से प्रनिभात होते हैं एव सकोच और विक्राम के द्वारा ब्रह्म और तच्छक्ति-स्वरूपिणी प्रकृति व प्रधान रूप से विद्यमान रहते हैं । यह प्रकृति कही इच्छा-रूप से, कही माया-रूप से और कही शक्ति रूप से वर्णित की गई है । यह शक्ति सदा-सदात्मिका है एव चैतन्य-रूप भगवान् इसके द्वारा ही समस्त विश्व की रचना किया करते हैं ।”

अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अभेद —

शिव और शक्ति के एक्य को अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा के सुन्दर रूप में प्रदर्शित किया गया है—जिमके आधे भाग में शिव और आधे में पार्वती उत्कीर्ण की गई हैं । इसे विद्वानों द्वारा मानव-इतिहास की सुन्दरतम कल्पना की सजा दी गई है । अर्द्धनारीश्वर का शास्त्रीय अव्ययन व्यक्त भावों की पुष्टि करता है—

वागर्थातिव सवृक्तौ वागर्थं प्रतिपक्षये ।

जगत पितरो वन्दे पार्वती परमेश्वरी ॥

“पुरुष से प्रकृति अलग कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसमें सम्मिलित रहती है और मनातन शक्ति कहलाती है ।”

विद्यापति ने अर्द्धनारीश्वर की इस प्रकार आराधनात्मक स्तुति की है जिममें शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति के समन्वित रूप की अभिव्यक्ति की है—

जय जय शकर जय त्रिपुरारि ।

जय अध पुरुष जयति अवनारी ॥

आध धवल तनु आधा गोरा ।

साव सहज कुच आध कटोरा ॥

अध हडमाल आव गज मोतो ।

आध चन्दन सोहे आध अभभूती ॥

आघा चेतन मनि आघा भोरा ।
 आघ पटोर आघ मुज डोरा ॥
 आघ जोग अघ भोग विलासा ।
 आघ विधान आघ नगवासा ॥
 आघ चान अघ सिदूर शोभा ।
 आघ विरूप आघ जग लोभा ॥
 भने कवि रतन विघाता जाने ।
 दुई कय वाटल एक पिराने ॥

हम मन्वन्त्र में भृगी ऋषि की कथा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, जिसमें शिव और पार्वती, पुरुष और प्रकृति, नर और नारी की एकता का बोध होना है। उसमें एक तरह से एक गम्भीर समस्या का समाधान भी किया गया है। कथावस्तु हम प्रकार से है कि एक बार देवता और ऋषि शिव की स्तुति के लिए कैलाश पर गये। जैसे देव-मन्दिरों में देव-दर्शन के साथ स्तोत्रों का पाठ और मन्दिर की प्रदक्षिणा आवश्यक मानी जाती है, उसी तरह शिव को ईश्वर की साक्षात् प्रतिमा मानकर देवताओं और ऋषियों ने शिव और पार्वती दोनों की श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा की, परन्तु भृगी ऋषि के मन में शिव के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं, उनकी श्रद्धा के पात्र केवल शिव ही थे। अतः उन्होंने केवल शिव की ही प्रदक्षिणा की। पार्वती ने इसे अपनी उपेक्षा समझी और भृगी को ककाल होने का शाप दिया। शाप प्रत्यक्ष हो गया। एक और भक्त है और दूसरी ओर पार्वती—दोनों को ही उन्हें सन्तुष्ट करना था। भृगी को उन्होंने तीमरा चरण प्रदान किया, जिसमें वह प्रमत्तता से खिल उठा। यह शिव के महान् अनुग्रह का प्रतीक था। भृगी की प्रमत्तता से पार्वती की अप्रमत्तता स्वाभाविक थी। शिव को उन्हें भी रुष्ट नहीं करना था। उन्हें वरदान दिया कि तुम आगे अज्ञ व रूप में सदैव मेरे साथ रहोगी। शरीर-रूप में भी मुझमें अलग न होगी।

अब पार्वती शिव का आधा अंश बन गई और दोनों एक हो गए, तो भृगी की समझ में आया कि शिव-पार्वती दोनों एक ही हैं, अलग-अलग नहीं हैं। तब उसने उस समन्वित रूप की प्रदक्षिणा की। इससे नर-नारी की वस्तु स्थिति का पता चलता है। यह प्रस्तर-प्रतिमा बादामी की गुफा में उलब्ध है।

पुराण (शत रुद्र संहिता) में अद्विनारीश्वर के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार वर्णित है—

“जिम समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नहीं देखी, तो वे दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर परम चिन्तित हुए। उस समय एक आकाशवाणी हुई कि अब तुम मैथुनी-सृष्टि की रचना करो।” यह सुन ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का मन में निश्चय कर लिया। इसके पहले शिव से स्त्रियों के कुल का प्राकट्य नहीं हुआ था, इसी कारण से विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य में समर्थ न हो सके। शिवजी के प्रभाव के बिना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकेंगी—ऐसा विचार कर ब्रह्मा शिव को प्रसन्न करने के लिए तत्पर हुए। पार्वती-स्वरूपिणी परम शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय के ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने में ब्रह्माजी लीन हो गये। कठोरतम तपस्या में तत्पर ब्रह्माजी स शिवजी थोड़े ही समय में शीघ्र सन्तुष्ट हो गये। इसके अनन्तर पूण विद्रूप ईश्वर ने अपनी काम-प्रदायिनी मूर्ति में प्रवेश करते हुए आधा नारी और आधा पुंस्य का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप पदार्पण किया। तब ब्रह्मा ने भगवान शिव को अपनी परम शक्ति से समुक्त देखकर दण्डवत-प्रणाम करते हुए करवद्ध होकर उनकी स्तुति की। शिवजी ने अपने शरीर के अद्व भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया, तब उनका शिव से प्रयक् स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा।”

विष्णु-पुराण प्रथम अंश के चौथे अध्याय में लिखा है—

अर्द्धं नारी नरवपु प्रचण्डोऽस्ति शरीरवान् ।

विभजात्मानमित्युक्त्वा त ब्रह्मान्तर्देवेनत, ॥

अर्थात् “नृष्टि के आन्ध्र में रुद्र आवे शरीर से पुरुष और आवे से नारी हुए । यह जानकर ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए और इसका विभाजन करने की प्रेरणा दी, ताकि नृष्टि का मचालन किया जा सके ।”

शस्त्रो न पुरुष को तभी पूर्ण माना है, जब उसमें नारी मयुक्त हो जाती है । नारी के अभाव में वह अधूण, अधूरा, रहता है । भविष्य पुराण के सान्वे अव्याय में लिखा है—

पुमावद्ध पुमास्तावद्यावाद्भार्या ।

अर्थात् “पुरुष का कलेवर जब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं करना, जब तक कि उसके आवे अ ग को आकर नारी नहीं भर देती ।”

बृहदारण्यकोपनिषद् (१४।१।३) में भी ऐसे ही भाव प्रदर्शित किए गए हैं—‘मर्वत्रयम सव कुल्य ही आत्मा था । उसकी आकृति पुरुष जैसी थी । उसने चारों ओर नजर दीडाई, तो उसे अपने अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया । उसे अकेलापन अच्छा नहीं लगा, आनन्द नहीं प्राया । उसने अपने को दो भागों में विभक्त किया । उसी से पति और पत्नी बने । इसीलिए दोनों में से प्रत्येक अपने ही आधे अंश की तरह है ।”

मत्स्य ब्राह्मण ५-२-३-१० में भी कहा है—

अर्धो हवा एष आत्ममो यज्जायेति ।

“जाया अपना आधा अंश ही है ।”

ध्यास-सहिता २।१४ में भी कहा है—

यावन्त विन्दते जायो तावदर्थो भवेत् पुमान् ।

“जब तक स्त्री की प्राप्ति नहीं होती, तब तक पुरुष आधा ही रहता है ।”

विवाह के समय पति पत्नी से कहता है—

यदेतद्धृदये तब तदस्तु हृदये मयायदेतद्धृदये मम तदस्तु
हृदय तब ।

“यह जो तुम्हारा हृदय है, सो मेरा हो जाय और जो मेरा
हृदय है, सो तुम्हारा हो जाए ।”

ब्रह्मवैवर्त पुराणकार ने इस सुन्दर रूप का वर्णन इस प्रकार
से किया है कि ‘भगवान् प्रकृति देवी की सहायता से ही शक्तिमान्
रहते हैं । यह नर और नारी, पुरुष और प्रकृति—दोनों अलग-अलग
दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु वस्तुतः वह एक ही हैं ।’

अद्वैतारीश्वर की कल्पना में ब्रह्मवैवर्त-पुराण में पुरुष को कृष्ण
और नारी को राधा का रूप बताया गया है । यह स्वाभाविक है,
क्योंकि वह कृष्ण-प्रधान पुराण है । उसमें कृष्ण को ही सर्वस्व माना
गया है । सृष्टि-रचना का रूप बतलाते हुए कहा गया है कि वह आरम्भ
में केवल अकेले ही थे ।

एक से अनेक होने की इच्छा उनके मन में उत्पन्न हुई । उन्होंने
सकल्प किया और वह पुरुष और प्रकृति दो भागों में बँट गये । इस
विभाजन में दाया पक्ष पुरुष का और बाया नारीका हो गया । कृष्ण को
पुरुष और राधा को प्रकृति और सनातन माया की सज्ञा दी जाती है ।

शिव और पार्वती के इस सम्मिलित रूप को विश्व में सुन्दरतम
रूप की सज्ञा दी जा सकती है क्योंकि इस कल्पना ने दो पक्षों को एक
स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है । बाह्यदृष्टि से जो अलग-अलग
दिखाई देते हैं, जिनके शरीर की बनावट में अन्तर है, जिनके गुणों में
विभिन्नता है, जिनकी प्रकृति भिन्न दिशाओं में प्रस्फुटित होती है,
उनको आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में, एकना के बन्धनों में बाँध दिया है ।
इसमें दिनाया है कि दोनों मिलकर ही एक इकाई बनते हैं । अलग २
दोनों प्रदूरे हैं । शिव अवशक्तिमान हैं, परन्तु शक्ति के अभाव में वह

गतिहीन हैं। पार्वती ही उनकी गति है, शक्ति है। यही क्रियाशीलता उत्पन्न करती हैं। पुराण-कथाओं में भी समझाया गया है कि पुरुष स्वयं सृष्टि-रचना करने में असमर्थ थे। प्रकृति के सहयोग में ही वह अपने उद्देश्य में सफल हुए। प्रकृति से जब पुरुष का मिलन हुआ, तभी एक में अनेक होने की कल्पना पूर्ण हुई। उपनिषद्कार ने पुरुष और को दो धाराओं के रूप में स्वीकार किया है, जिनका मिलन ही शक्ति का सृजन करता है।

शिव और शक्ति की एकता के सूत्र—

एक विद्वान् के शब्दों में “सृजक और सृजनात्मक कारण के रूप में शिव और शक्ति का सम्बन्ध भारतीय कल्पना में अमिट है। उनका त्रिविध परिवार जीवन की सामूहिक जीवपारी रचना का प्रतिनिधित्व करता है।”

शिव का शक्ति से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह शिव-तत्त्व के आध्यात्मिक विश्लेषण से विदित होता है। शिव का त्रिनेत्र शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया गया है क्योंकि इससे वह सारे विश्व में काम-शक्ति को प्रवाहित करने वाले कामदेव को भस्म कर देते हैं। शिव के मस्तक पर शांति-स्तम्भ के रूप में अर्द्धचन्द्र की स्थापना की गई है, जो सह तथ्य का प्रतीक है कि उसकी शांति-गंगा में कभी ज्वार-भाटा नहीं आता, आवेश रूपी लहरें शिव रूपी समुद्र में कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकती।

शिव का त्रिशूल सहारक-शक्ति का प्रतीक है। वह त्रिगुणात्मक प्रकृति से मुक्त होने की स्वाभाविक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। वृषभ और इमरु भी शिव की शक्ति के रूप हैं। वृषभ का अर्थ है—वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा। जो शक्ति सारे ससार में अपने महाप्राणों को बिखेरें हुए है, वही शिव है, जो शक्ति अपने महाप्राणों

द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण बननी है, उसी को शिव कहते हैं, वही वृषभ वाहन है ।

शिव के गले में सर्प लटके रहते हैं । सर्प तमोगुण का प्रतीक है । शिव तम को नियन्त्रण में रखते हैं । सर्प संहारक शक्ति है, वह काल का प्रतीक है । काल किसी को नहीं छोड़ना पर शिव उसमें मुक्त है । सर्प क्रोध का साक्षात् रूप है, परन्तु जिसके मस्तिष्क में निरन्तर शान्ति-गंगा का प्रवाह बना रहना है, वहाँ क्रोध शक्ति का क्या प्रभाव पड़ सकता है ? सर्प अमंगल रूप है, शिव अपने मंगल रूप से उस पर विजय का जयघोष करते हैं ।

भस्म नाश का चिन्ह है । इसे वह अपने शरीर पर लगाते हैं । मुण्ड मृत्कावस्था का बोधक है । शिव इन्हें अपने आभूषण बनाते हैं । इस अवस्था पर उनका नियन्त्रण है, क्योंकि वह संहार के देवता हैं । वह कालरूप हैं—काल-मृत्यु को अपने गले से लगाते हैं ।

पिनाक शिव का घनुष है । यह उनका शक्तिशाली अस्त्र है, जिससे वह युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं । शिव व्याघ्र चर्म ओढ़ रहते हैं—व्याघ्र शक्तिशाली पशु है । शिव काल और संहार के प्रतीक है । काल शक्तिशाली सम्राटों को भी नहीं छोड़ना, फिर व्याघ्र की क्या विषात है ? यह भी शक्ति का प्रदर्शन है ।

इससे स्पष्ट है कि शिव-तत्त्व की सभी क्रियाएँ शक्ति पर आधारीत हैं । शक्ति के बिना तो शिव—शव के समान हैं ।

शिव का विराट्, व विश्व-व्यापी रूप प्रसिद्ध है । शिव योग-तत्त्व के प्रथम अविष्कारक व प्रचारक माने जाते हैं । आयुर्वेदिक औषधियों के जन्मदाता भी वही हैं, स्वरो के जनक भी वही हैं, पशु जगत के स्वामी हैं, सभी पशुपति नाम पड़ा । वे समस्त ब्रह्मांड की शक्ति हैं ।

माह्मक्योपनिषद् (७) में ऋषि ने शिव-तत्त्व का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—“जो भीतर-बाहर प्रज्ञा वाला नहीं है, जो दोनों ओर

प्रज्ञा वाला भी नहीं, जो न जानने वाला है और न अज्ञान है, जो अदृष्ट, अव्यवहाय और अग्राह्य है, जो लक्षणरहित एव प्रज्ञान धन है, जो न बतलाने में आ सकता है और न चित्तन में, जो प्रपंचरहित, कल्याणकारी, अद्वैत, सर्वथा शांत है, उसे ब्रह्म का चतुर्थ चरण कहा गया है, वही शिव है, उसे जानना चाहिए ।”

शक्ति का रूप भी शिव की तरह विश्वव्यापी है। वह सृजन और विनाश की शक्तियों की अधिष्ठात्री है। शिव महाकाल के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, तो विनाश-शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वह काली के रूप आती है। शिव सयम और तप की प्रतिमूर्ति हैं, जिमसे उत्थान की समस्त प्रक्रियाएँ सञ्चालित होती हैं, तो उमा शिव-प्राप्ति के लिए मृत्यु को गले लगाने को तत्पर होती है। वह श्रद्धा की सजीव मूर्ति है। पार्वती के रूप में वह प्रेम और दया का आगार है। जब आसुरी शक्तियाँ अपना विस्तार करने लगती हैं, तो हमें सहन नहीं होना और दिव्य-शक्तियों के सगठित रूप में वह दुर्गा बनकर उनका विनाश करने के लिए अवतरित होती है। कुमार जैसे पुत्र को वह हमीलिए जन्म देती है, ताकि बढ़ते हुए अनीश्वरवाद असुरवाद को रोके और उनके सठगन को ध्वस्त करे।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने भवानी को श्रद्धा और शिव को विश्वास का प्रतीक माना है। विश्वास वह शक्ति है जिसके आधार पर सभी साधनाएँ सफल होती हैं। इसके अभाव में साधनाएँ लड़खड़ाने लगती हैं। आत्म विश्वास एक ऐसी महान् शक्ति है जिसके बिना समार की सभी प्रगति रुकी रहती है। आगे बढ़ने और तैयारी करने वाले से इसका सम्बन्ध आवश्यक है। शिव इसी महाशक्ति के प्रतीक हैं। कथा है कि राम ने लङ्का पर चढ़ाई करने के पूर्व रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना और शिव-उपासना की। इसका अभिप्राय यह है कि उन्होंने अपने आत्म-विश्वास को जगाया, तभी वह इतना महान् कार्य सम्पादन करने के लिए आगे बढ़े।

राम ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है —

द्रष्टुमिच्छासि यद्रूप मदीय भावनास्पदम् ।

आह्लादिनी परा शक्तिं स्तूया सात्त्वतसम्मताम् ॥

तदाराध्यास्तदारामस्तदधीनस्तया विना ।

तिष्ठामि ना क्षणं शम्भो जीवन परम मम ॥

—अगस्त्य-सहिता

“श्रीराम जी ने कहा—हे शम्भो ! अगर मेरे भावनास्पद रूप को देखने को इच्छा करते हो, तो भक्तजन सम्मत मेरी आह्लादिनी परा-शक्ति की स्तुति करें । मैं उसी के महिन आराध्य हूँ, उसी से मुझे आराम है, मैं उसी के आधीन हूँ । उसके बिना मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता, क्योंकि वह मेरा परम जीवन है ।”

शक्ति-उपासना का दार्शनिक आधार--

शिव और शक्ति एकत्व हैं, अभेद है । वे दो दिखाई देते हैं, वास्तव में वे एक हैं । जब वे एक-दूसरे से अलग होते हैं, तो विश्व की शक्तियों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है । उदाहरण के लिए एक पुराण-घटना प्रसिद्ध है—जब सती दक्ष के यज्ञ में जलकर भस्म हो गई, तो शिव पागल-स हो गए । उनकी उन्मत्त अवस्था का कारण शक्ति का शिव से अलग होना ही है । तारकासुर के नेतृत्व में आसुरी शक्तियों ने सिर उठाया । एक वरदान के अनुसार वह केवल एक नवजात शिशु शक्ति से ही मारा जाना था । सती ने उमा (पार्वती) के रूप में हिमालय के यहाँ जन्म लिया । वह शिव प्राप्ति के लिए तप करने लगी । घोर तप के कारण उसका शरीर केवल मात्र ढींचा रह गया । देवताओं ने शिव की समाधि तोड़कर उनके मन में काम-वामना उत्पन्न करने की योजना बनाई और इस कार्य के लिए कामदेव को नियुक्त किया । शिव ने अपने त्रिशूल से कामदेव को भस्म कर दिया । अन्त में शिव पार्वती की तपस्या से सन्तुष्ट हुए और विश्व-नारी और विश्व-पुरुष का विवाह

एक्य हुआ। तभी स्कन्द को जन्म हुआ और तारकासुर का वध किया जा सका। इस तरह शिव सृष्टि के सर्वोपरि परित्राता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। समुद्र-मन्थन की घटना भी इसका प्रमाण है। समुद्र-मन्थन का अभिप्राय विक्रम की सनातन प्रक्रिया से है। एक विद्वान् के शब्दों में जैसे-जैसे समुद्र-मन्थन आगे बढ़ा, अधकार की माँ—अराजकता ने क्षुब्ध होकर पाप और मृत्यु का माग्भूत विष पृथ्वी पर फँका। इस विष को यदि मुक्त रहने दिया जाता, तो वह सृष्टि का विनाश कर देता। तब शिव सृष्टि के परित्राण के लिए आये और उन्होंने उस विष को पी लिया ताकि सृष्टि की विक्रम योजना में अन्ततः अच्छाई ही, इष्ट की विजय हो।”

एक विद्वान् ने शिव और शक्ति के रूप को इस प्रकार व्यक्त किया है—

‘शिव और शक्ति के सम्मिलित स्वरूप को ‘चणक’ नाम से अभिहित किया गया है। एक चणक में दो दाने हैं लेकिन वे एक-दूसरे के इतने करीब हैं कि एक मालूम पड़ते हैं और जो एक ही छिनके से घिरे हैं, यह दो दाने शिव और शक्ति हैं तथा छिनका माया है। इस संकेत को वैज्ञानिक शब्दों में यों कहा जा सकता है कि शिव धनात्मक आवेश है और शक्ति ऋणात्मक। इन आवेशों से उत्पन्न बल-क्षेत्र ही माया का स्वरूप है, जो आवेशों को घेरता है। ध्यान रहे कि उपर्युक्त संकेत जगत् प्रपञ्च के उद्भव की स्थिति का है।”

शक्ति शिव की सनातन साथी है। वह सृष्टि की आद्या रचना-शक्ति है। वह सृष्टि और सहार की दोनों प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने की क्षमता रखती है। शिव की तरह उसके भी अनेकों रूप हैं। वह तप की साक्षात् प्रतिमा है। आदर्श पत्नी के रूप में भी उसकी प्रसिद्धि है सभी मनोवाञ्छित वर प्राप्त करने के लिए गौरी की उपासना की जाती है। जहाँ पार्वती के रूप में वह नारी के भौतिक रूप का प्रदर्शन करती

है, वहाँ दुर्गा के रूप में योद्धा के रूप में शक्तिशाली आसुरी सगठनों को विनष्ट करती है। जिस तरह शिव मंगलकारी और रौद्र दोनों रूप धारण करते हैं, उसी तरह दुर्गा के भी दोनों रूप हैं। हरिवंश-पुराण के अनुसार वह अन्वकार और प्रकाश दोनों है। मधुर और भयकर दोनों रूप उसने धारण किए हैं। तभी तो शिव और शक्ति की एकता स्थापित हो सकी है, क्योंकि दोनों के गुण और क्रियाएँ एक जैसी हैं।

विश्व-नारी और विश्व-पुरुष का यह मिलन सदा से अमर रहा है। यह सृष्टि की स्वाभाविक प्रक्रिया है। युग-युगान्तर से भारतीय कल्पना और साहित्य इस तथ्य से प्रभावित है कि पुरुष और शक्ति का मिलन सृष्टि के लिए मंगलकारी है।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामाया में अभेद है। जिस तरह अग्नि में उसकी दाहिका-शक्ति का निवास रहना है, उसी तरह ब्रह्मशक्ति रहती है। जैसे शिव शक्ति के अभाव में शव हो जाते हैं, उसी तरह ज्ञान के बिना ब्रह्म अज्ञानी, क्रिया शक्ति के बिना अकर्मण्य, और आनन्द के बिना निगनन्द हो जाएगा। अतः शक्ति और ब्रह्म में एकरूपता और अनन्यता है। शक्ति के बिना ब्रह्म क्रियाहीन हो जाता है, तो पुरुष के बिना शक्ति का भी अस्तित्व नहीं है।

श्री माधव पुण्डरीक परिणत ने इस सिद्धांत को अपने शब्दों में यों व्यक्त किया है—

पुरुष और शक्ति दो अलग और भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं, बल्कि अभिव्यक्ति के समय में दिव्य सत्ता की दो स्थितियाँ हैं।

इनमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उच्च सत्य के स्तर पर सत्ता की एकता है। दिव्य सत्ता स्वामी है, जो उत्पादन का कारण और अधिपति है। उसकी चेतन-शक्ति, सर्वोच्च शक्ति वह कार्यवाहिका है, जो निज में सृष्टि के उद्देश्य के मूल सत्य को धारण किए अपनी इच्छा को सफा करती है वही अभिव्यक्ति कारिणी है। उसके बिना पुरुष अव्यक्त है। पुरुष के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं है।

एक मूल सत्ता ही अनेकानेक भिन्नताओं और रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करती है। शक्ति और पुरुष के इस सम्बन्ध के चारों ओर समस्त लीला चलती है। शक्ति के द्वारा पुरुष में जो कुछ भी अवस्थित है, वह बहिर्भूत होता और यथार्थ बनाया जाता है। अतः यह सप्तस्तरीय सृष्टि दिव्य पुरुष में से दिव्य शक्ति के द्वारा आविर्भूत हुई है। वह सृष्टि, उत्पत्ति के सत्य को अपनी लीला में धारण करती और पुरुष के सकल के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति को रूपायित करती है। वह सृष्टि के प्रत्येक स्तर पर तथा सृष्टि की प्रत्येक इकाई में कार्यशील है।'

शिव और शक्ति में एक्य, अद्वैत और अभेद है, इनको अलग करना सम्भव नहीं है। शक्ति-उपासना का दार्शनिक आधार यह अद्वैतवाद ही है।



शक्ति का तात्त्विक विवेचन

शास्त्रों में शक्ति की महिमा—

शास्त्रों में शक्ति की महत्ता पर काफी प्रकाश डाला गया है। एक तांत्रिक श्री उमानन्दनाथ ने पराशक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—“पराशक्ति वह शक्ति है, जिसके लिए लिए ससार का कोई भी भाग अदृष्ट नहीं है, कोई ऐसा नरेश नहीं, जो उसके नियन्त्रण में न हो, कोई ऐसा शास्त्र नहीं जो उसके ज्ञान में न हो।”

योगिनी-तन्त्र में कहा है—

कारणावस्थयापन्ना सदाह घातूरूपिणी ।

नाकायं मे हि यत् किञ्चित्सदाह ह्यक्षरा परा ॥

कायभाव समापन्ना सदा प्रकृतिरूपिणी ।

सदा ब्रह्मादयः सर्वे सर्वे सर्वेऽप्याविर्भन्ति हि ॥

अर्थात् “कारणावस्था को प्राप्त होकर मैं सदा ब्रह्मा-रूप में रहती हूँ। यह सब कुछ दृष्टिगोचर होने वाला मेरा ही कार्य है। मैं सदैव ही अक्षररूपिणी परा-शक्ति हूँ। कार्यावस्थापन्न होकर मैं प्रकृति-रूपिणी हो जाती हूँ, उसी समय से ब्रह्मादि देव तथा अन्य सभी उत्पन्न होते हैं।”

आराधना करने के लाभों की चर्चा करते हुए दुर्गा सप्तशती में कहा गया है—

आराधिता सैव नृणां योग स्वर्गापवर्गदा ।

अर्थात् “उपासना करने पर वह साधकों को योग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती है।”

शिव शक्ति के बिना शिव बन जाते हैं । इसे वह स्वयं स्वीकार करते हैं—

ईश्वरऽहं महादेवि । केवल शक्ति योगत ।

शक्ति बिना महेशानि । सदाऽहं शवरूपक ॥

शक्ति युक्तो यदा देवि । शिवोऽहं सर्वकामद ।

अर्थात् “हे महादेवि पार्वती । केवल शक्ति के योग से ही मैं ईश्वर हूँ । शक्ति के अभाव में मैं शिव-रूप हूँ । जब शक्ति से मिलता हूँ तभी सर्वकामप्रद कल्याणकारी शिव बनता हूँ ।”

महर्षि आत्रेय ने अपनी महिमा में शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषण स्त्रीष्वनृत्य प्रतिष्ठितम् ।

धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीञ्च स्त्रीषु लोका प्रतिष्ठिता ॥

—चरक संहिता, चिकित्सा स्थान अ० २

“प्रीति विशेष प्रकार से स्त्रियों में ही रहती है । सन्तान की जननी भी वही होता है । धर्म उनमें रहता है, इसलिए उन्हें धर्मपत्नी कहते हैं । अर्थ उनमें रहता है, इसलिए उनमें लक्ष्मी का निवास मानते हैं । वे शक्ति-रूप हैं, उनमें सारा विश्व प्रतिष्ठित है ।”

ब्रह्मसूत्र में कहा है—मर्वोपेना तद्दशनात् (द्वितीय अध्याय, प्रथम पाद) “वह पराशक्ति सर्वसामर्थ्य से युक्त है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है ।”

ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य (१।४।३) में कहा है—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृव्य सिध्यति ।

शक्ति रहितस्य यस्य प्रवृत्त्यनुपपत्ते ॥

‘उसके बिना ईश्वर सृष्टि का उत्पादन नहीं कर सकते क्योंकि यह शक्ति के बिना क्रियाशील नहीं हो सकते ।’

भगवान् शङ्कराचार्य ने भी कहा है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति साद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥

“ईश्वर की अव्यक्त नाम वाली शक्ति जिसने इस समस्त जगत् की सृष्टि की है, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका और जगत् रूपी कार्य के परे हैं। कार्यरूपी जगत् को देखकर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।”

शक्ति के विभिन्न प्रकार—

शक्ति एक व्यापक तत्त्व है। विश्व की हर वस्तु में चाहे वह जड़ हो या चेतन—देखा जा सकता है। जीवन के हर क्षेत्र में इसी के चमत्कार दिखाई देते हैं। शारीरिक शक्ति की कौन अपेक्षा कर सकता है? जगत् के सभी कार्य इसी के माध्यम से होते हैं। इसी की कमी का नाम रोग है। जहाँ यह सतेज रहती है, वहाँ रोग के कीटाणु आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते। मानसिक शक्ति का भी हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी निर्बलता से ही चिन्ताएँ, शोक, पाप, ताप, सर उठाते हैं। बौद्धिक शक्ति का विकास मानव-जीवन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। आज विज्ञान के क्षेत्र में जितने आश्चर्य-जनक चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह इसी महाशक्ति का परिणाम हैं। शाश्वत सुख-शांति के लिए आत्म-बल की अपेक्षा रहती है। सबसे ऊँचे शिखर पर स्थित परमात्म-बल है, जिसके स्पर्श मात्र से हर क्षेत्र में शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। इस शक्ति का लाभ सभी उठाया जा सकता है, जब हमारी श्रद्धा-शक्ति विकसित हो चुकी हो। यह परमात्म-शक्ति के आवाहन की कुञ्जी है।

समाज-कल्याण के लिए, सामाजिक कुरीतियों, दोषों और कुप्रवृत्तियों के शमन के लिए सध शक्ति की अपेक्षा रहती है। राष्ट्रीय उन्नति के लिए भी उसी शक्ति को विकसित करना होता है। विश्व-

शक्ति की नींव में भी यही काम करती है। भौतिक क्षेत्रों में तो इसको प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। विद्युत का उदाहरण लें—इस शक्ति से हजारों लाखों फल-कारखाने चल रहे हैं, जिनमें मानव-हित की अनेकों वस्तुओं का निर्माण होता है। यह सैकड़ों और हजारों व्यक्तियों के भ्रम को बचाती है। शक्ति के यह भिन्न भिन्न प्रकार हैं। तन्त्र के अनुसार शक्ति के विभिन्न प्रकार इस तरह वर्णित किए गए हैं—

शक्ति जब गौरी या लक्ष्मी का रूप धारण करती है, तो वह परमात्मा की सभी कामनाओं को पूर्ण करने की क्षमता वाली होती है। इसलिए इसे एक तरह की शक्ति कहते हैं। इच्छा और माया के भेद यह दो प्रकार की हो जाती है। दोनों प्रकार की शक्तियों में उत्पत्ति और विनाश, पराय अपरा का भी उदाहरण आता है।

तीन प्रकार की शक्तियों में यह नाम आते हैं—१ सात्विक, राजसिक, तामसिक २ ज्ञान, इच्छा, क्रिया ३ आदित्य, अग्नि, वायु ४ ब्रह्मा, विष्णु, महेश ५ महामरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली ६ लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री ७ सफेद, लाल, काला वर्ण।

१३ वर्ष से २५ वर्ष की युवतियों में जो प्रसूता न हुई हो, उनमें रूप, यौवन, शील, सौभाग्य चार प्रकार के भेद होते हैं।

पाँच प्रकार की शक्तियों में राधा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और सवित्री का नाम आता है।

भौतिक शक्तियों में यह छ प्रकार की है—ताप, तड़ित, चुम्बक, मध्यानर्षण (Energy of Gravitation), आलोक और रासायनिक। तन्त्र में षट्शक्ति के नाम इस प्रकार आते हैं—पराशक्ति, ज्ञान-शक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, कुण्डलिनी और मातृका शक्ति।

पृथ्वी, आकाश, भूचक्र-भ्रमण, दिशाएँ, जगदाधार, वायु और आकाश—ये सात प्रकार की शक्ति हुई।

अष्ट-सिद्धियाँ भी प्रसिद्ध ही हैं—ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणी कौमारी, नारसिंही, वाराही और वैष्णवी यह आठ प्रकार की शक्तियाँ हुईं । मातृकाएँ १६ प्रकार की होती हैं । पीठ ५१ माने जाते । ६४ योगनियाँ प्रसिद्ध हैं । १०० रूपों में भी शक्ति का वर्णन किया गया है । प्राणी व पदार्थ भेद से तो यह 'अगणिता' की सज्ञा को प्राप्त हो जाती है ।

अर्थ—

परब्रह्म तत्त्व को शक्ति की सज्ञा दी जाती है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म' आदि श्रुति-वाक्यों में जो एक ही चित्तत्त्व 'ब्रह्म' नाम से वर्णित किया गया है, उसी को चिदानन्दमयी शक्ति कहते हैं ।

शक्ति को दूसरे शब्दों में पावर (Power) एनर्जी (Energy), सामर्थ्य और योग्यता कहते हैं । समार की किसी भी वस्तु को उसके गुण धर्म और विशेषता के कारण सम्मानित किया जाय या उसकी आवश्यकता को अनुभव किया जाय, उसके मूल में शक्ति की विद्यमानता है ।

व्यवहारिक रूप में शक्ति का अर्थ बल ही है । परमार्थ में अर्थ 'उपाधि' किया जाता है । 'उप' का अर्थ है पास में, और आ + धि का अर्थ है रखना । इसका अभिप्राय यह है कि वस्तुओं के गुण, कर्म, स्वभाव में जिस गुण के कारण परिवर्तन होना है, वही शक्ति कहलाती है ।

देवी भागवत (६।२।१०) में शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है—

ऐश्वर्यं वचनं शब्दं त्ति पराक्रम एव च ।

तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥

“श नाम ऐश्वर्य का है और क्त नाम पुरुषार्थ का है । ऐश्वर्य और पुरुषार्थ स्वरूप व दोनों के देने वाली ‘शक्ति’ कहलाती है ।”

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार—

समृद्धिवुद्धिसम्पत्तियशसा वचनो भग ।

तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥

“समृद्धि, वृद्धि, सम्पत्ति और यश—इन चार अर्थों का प्रकट करने वाला ‘भग’ यह शब्द होता है । इससे युक्त शक्ति भगवती है और वह स्वयं सदा भग रूप वाली है ।”

अमरकोश में शक्ति के यह अर्थ बताए गये हैं—

कास्त्र सामर्थ्ययो शक्ति ।

शक्ति पराक्रम प्राण ।

षड्गुणाश्शक्त्यस्ति स्र ।

इससे उपरोक्त अर्थों की पुष्टि होती है ।

“शक्लृशक्ती” धातु से ‘क्तिन्’ प्रत्यय करने पर शक्ति शब्द बनता है । जिस पदार्थ में जो गुण होता है अथवा ये उसमें कार्य उत्पन्न करने की जो योग्यता और क्षमता होती है, उस उस पदार्थ से अलग नहीं किया जा सकता जैसे अग्नि से उसकी दाह-शक्ति को इसी को शक्ति कहते हैं ।

माकण्डेय पुराण में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

यच्च किञ्चिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वम् ॥

सद् और असद् दोनों तरह की वस्तुओं में जो सत्ता ‘उत्तद्-वस्तुता’ है, वही शक्ति है ।

सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया जाता है—ब्रह्म का प्रादि-सत्त्व ‘एकोऽहं बहु स्याम्’ अर्थात् एक हूँ, बहुत हो जाऊँ—यही प्रादा-शक्ति है ।

जो तत्त्व आदिभूत और प्रकाश-रूप है, वही शक्ति है । आदि-भूत से अभिप्राय यह है कि वह सबकी आदि है, उसका कोई आदि नहीं है । मार्कण्डेय-पुराण में कहा भी है—

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।

लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्न व्यवस्थिता ॥

“समस्त दृश्य प्रपञ्चों को व्याप्त करके स्थित, व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों वाली, त्रिगुणों से युक्त परमेश्वरी महालक्ष्मी सबकी आदि-भूता है ।”

प्रकाशरूपा का यह अर्थ है कि वह सबको प्रकाशित करती है, वह किसी से प्रकाशित नहीं होती । कहा भी है—

प्रकाशरूपा प्रथमे प्रयाणो अमृतरूपिणी इति, अतः ।

सा एव सर्वाराध्या स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुरिति ॥

अर्थात् “श्रुति में ‘सर्वाराध्या’ पद यह दिखलाया गया है कि सभी देवता और असुरों द्वारा वह प्राराधना करने योग्य है ।”

व्याख्या—

स्वामी शिवानन्द ने ‘शक्ति’ की व्याख्या इस प्रकार से की है—

“शक्ति का आशय उस सत्ता से है, जो समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल है, वास्तव में जैसा सामान्यतः माना जा रहा है, देवी-पूजा यह कोई सम्प्रदाय अथवा किसी तरह के ‘तांत्रिक-चक्र’ का गुप्त भेद नहीं है अथवा, जैसा जन-साधारण का विश्वास है । यह देवी विष्णु या शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में भी नहीं है । देवी अथवा शक्ति का उल्लेख हम सवज्ञ और सव शक्तिमान चराचर जगत् की उत्पत्ति के कारण रूप में ही करते हैं । दूसरे शब्दों में कहे तो जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण भस्वर-ब्रह्म का व्यवन स्वरूप यह ‘शक्ति’ ही है, परमात्मा इसी दिखाई पड़ने वाली शक्ति के द्वारा जगत् की उत्पत्ति,

मिति करता है, शक्ति के द्वारा ही सृष्टि, महार और इसके द्वारा ही लय करना है । शक्तिमान एक ही है । सत्ता और सत्ता के मूल को पृथक् नहीं किया जा सकता ।”

इसीलिए शक्ति-पूजा का अर्थ प्रभु भी महिमा और प्रभुत्व तथा सर्वोपरि होने की पूजा है, वह सर्वशक्तिमान की आनन्दमय सेवा है । यह बड़े खेद की बात है कि कितने ही लोग देवी को ‘खून की प्यासी हिन्दू देवी’ का नाम से याद करते हैं । देवी केवल हिन्दुओं की जायदाद नहीं है—‘देवी’ किसी एक विशेष धर्म से सम्बन्धित भी नहीं है । इतना ही नहीं, देवी और देव की भिन्न-भिन्न भेद पर भी आधारित नहीं है, हमको यह कभी नहीं भूना चाहिए कि देव की प्रत्यक्ष शक्ति ही देवी कही जाती है । ‘देवी’ ‘शक्ति’ और दूसरे कितने ही नाम और उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप तो मनुष्य के सकुचित ज्ञान के परिणामस्वरूप निर्दिष्ट किए गए हैं । उस शक्ति की कोई व्याख्या अन्तिम नहीं कही जा सकती, मूल शक्ति तो मनुष्य की बुद्धि से परे (अगम्य) है ।

सच्ची बात तो यह है कि समग्र जगत् किसी प्रकार शक्ति का ही उपासक है, क्योंकि सारा मे एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो किसी-न-किसी तरह की शक्ति की अभिलाषा न रखता हो । भौतिक शास्त्र और विज्ञान के उपासकों ने भी यही सिद्ध किया है कि जगत् में सब कुछ अनन्त क्रियात्मक है, इस क्रिया-शक्ति को प्रतिक्षण स्थिर रखने वाली देवी ‘शक्ति’ वाली एक स्वरूप है ।

वैज्ञानिक अर्थ—

शक्ति का वैज्ञानिक अर्थ भी है । विज्ञान, परमाणु की परिभाषा इस प्रकार करता है कि पदार्थ को, जिस सीमा के अंगे विभाजित न किया जा सके, उसे परमाणु कहते हैं । शक्तिवाद का सिद्धांत एक पग आगे जाकर कहता है कि परमाणु विभिन्न प्रकार की शक्तियों का केन्द्र है । जितने तरह सूर्य के चारों ओर उसके ग्रह-उपग्रह चक्कर काटते रहते

हैं और वह एक सौर-मण्डल कहलाता है, उसी तरह परमाणु भी शक्तियों का केन्द्र है। साधारणतः यह धारणा है कि परमाणु का धर्म शक्ति है—यह ठीक नहीं है, न ही प्रकृति, शक्ति से कोई अलग पदार्थ है। यह दोनों एक हैं। शक्ति से भिन्न विश्व में कोई पदार्थ है ही नहीं।

तान्त्रिक दृष्टि में शिव को प्रणव और विमर्श को ही शक्ति कहते हैं।

शक्ति का पर्याय—प्रकृति—

गीता में शक्ति को माया (४।६), योग (६।५) और प्रकृति आदि नामों से अभिहित किया गया है।

भगवान की स्वरूपभूता ब्रह्मादिनी शक्ति जीवभूता, परा-प्रकृति आदि शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

प्रकृति इसका पर्यायवाची शब्द है, उसका अर्थ करते हुए देवी-भागवत ६।१।५-८ में कहा गया है—‘प्र’ का अभिप्राय प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) और ‘कृति’ का अर्थ है सृष्टि। अतः जगत् की उत्पत्ति में उत्कृष्ट को प्रकृति कहा है।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण २।१।५ इसी प्रकार प्रकृति शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

प्रकृष्टवाचक प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचक ।

सृष्टौ प्रकृष्टा या प्रकृति सा प्रकीर्तिता ॥

“प्र’ का अर्थ प्रकृष्ट है और ‘कृति’ सृष्टिवाचक है। सृष्टि-कार्य में जिसकी प्रकृष्टता (उत्कृष्टता) है, उस देवी को प्रकृति कहा जाता है।”

यह प्रकृति का तटस्थ लक्षण है। ‘प्र’ शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुण में वर्तता है, ‘कृ’ शब्द मध्यम रजोगुण में और ‘ति’ शब्द तमोगुण में।

वर्तता है। यह प्रकृति का स्वरूप-नक्षण है, जैसा कि सादर-शास्त्र में कहा है—

सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृतिः ।

इन तीन गुणों से ही तीन देवताओं की—सत्त्वगुण से विष्णु की, रजोगुण से ब्रह्मा की और तमोगुण से रुद्र की उत्पत्ति करके भगवती जगत् का पालन, उत्पत्ति और लय करती हैं।

प्रधानिक रहस्य में भी लिखा है—

स्वरया सह सम्भूय विरञ्चोऽण्डमजोगन्त ।

पु पोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।

सज्जहार जगत् सव सह गौर्या महेश्वर ॥

“ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने अर्वाङ्गीभूत त्रिविध शक्ति—सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी के सहयोग से जगत् का जनन, पालन और लय करते हैं।”

अह प्रकृति रीशानी सर्वेशा सवरूपिणी ।

सवशक्ति स्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥

“प्रकृति ने कहा—मैं ईशानी प्रकृति हूँ जो कि सबकी स्वामिनी और सर्वरूपिणी हूँ। समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हूँ और मेरे द्वारा ही यह सारा जगत् शक्ति वाला है।”

इसी पुराण में एक और स्थान पर प्रकृति को जगज्जननी कहा गया है—

जगन्माता च प्रकृति ।

इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

प्रधानाशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा ।

आधार रूपा सर्वेषा सर्वशस्यप्रसूतिका ॥

रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकरालया ।

प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥

सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्मद्वियामिनी ।

यया विना जगत्सर्व निराधार चराचरम् ॥

अर्थात् “यह वसुधारा प्रकृति को प्रधान अथ स्वस्व वाली है । सबकी आधार रूप वाली है तथा सम्पूर्ण क्षत्ियों को सम्भन करती है । रत्नों की खान और अपने मध्य में बद्धत-मे रत्न रखने वाली । सभी प्रकार के रत्नों की खान का घर है । इसकी सब प्रजा और के स्वामियों द्वारा सदा वन्दना एवं अर्चना की गई है । यह सभी प्राणियों की उपजीव्य रूप वाली होती है । इसके विना यह सम्पूर्ण जगत् निराधार है, चाहे वह चर हो या अचर (स्थावर) हो ।”

गीता में भी कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम् ।

अर्थात् “भुक्त अध्यक्ष के द्वारा ही यह प्रकृति इस चराचर जगत् को प्रसूत किया करती है ।”

गीता (६।८) में कहा गया है—

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुन पुन ।

अर्थात् ‘मैं अपनी प्रकृति को अवष्टभ्य करके ही बार-बार विसृष्ट किया करता हूँ ।’

गीता (४।६) में इसे माया कहा गया है—

प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।

“अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ ।”

गीता (६।५) में इसे ‘योग’ कहा है—

पश्य मे योगमेश्वरम् ।

“देखो, यह कैसी मेरी ईश्वरीय करनी या योग-सामर्थ्य है ।”

प्रकृति शब्द के तीन अक्षर प्र, कृ, ति क्रमशः सत्, रज और त

के प्रतीक हैं। देवी-भागवत में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि 'प्र' सत्वगुण का, 'कृ' रजोगुण का और 'ति' तमोगुण का द्योतक है। यह मत्, रज और तम क्रमशः ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक हैं।

प्रकृति के यह तीन गुण 'परमा शक्ति' के तीन देवता माने गये हैं—

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापकाऽविकृता शिवा ।

योगस्याऽखिलाधारा तुगया य च सन्धिता ॥

तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा ।

महालक्ष्मी सरस्वती महाकालीति च स्त्रिय ॥

तासां तिमृणा शक्तीनां देहाङ्गीकारलक्षणात् ।

“वह परमा शक्ति निर्गुण, सदा नित्य, व्यापक, विकार रहित, योगस्य और सारे विश्व का आधार है। व्यक्त होने पर वह मत्, रज, तम—तीन तरह की हो जाती है, जिन्हें महालक्ष्मी, महामयस्वती और महाकाली तीन स्त्रीवाचक नाम दिए गए। इनके तीन पुरुष शरीरवागी देवता हैं—विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र जो सात्त्विक, राजमिक और ताममिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।”

इस परमा शक्ति को परमात्मा की मूल प्रकृति कहा जाता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान नियामक, नित्य, सनातन, निर्गकार, निर्विकार, निर्गुण, अचिन्त्य, अव्यक्त व अचल है। परमात्मा की मूल प्रकृति परमा शक्ति में भी इन गुणों का होना स्वाभाविक है। अन्तर केवल इतना है कि परमात्मा विकाररहित है, तो शक्ति विकारों की जननी है। शक्ति स्वयं सत्य नित्य है, परन्तु अनित्य पदार्थों की सृष्टि करती है।

प्रपञ्चसार-तन्त्र में प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

प्रकृति निरुचला परावाग्रूपिणी परप्राणवात्मिका
कुण्डलिनी शक्ति ।

अर्थात् “प्रकृति भटल, परा-वाणी के रूप वाली पर-प्राण के स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है।”

अत्र मच्छब्देन स्वसवेद्यस्वरूपा संयुक्ता परा प्रकृति गृह्यते ।

अर्थात् "यहाँ मच्छब्द से स्व सवेद्य स्वरूप वाली है अर्थात् स्वयं ही उसके स्वरूप का ज्ञान किया जा सकता है । वह परा-प्रकृति कही हुई ग्रहण की जाती है ।"

प्रकृतिरिहापरोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

अर्थात् "यहाँ पर प्रकृति पर उपलक्षित होने वाली पना कही गयी है ।"

प्रकृति की सांख्य सम्मत व्याख्या—

सांख्य शास्त्र के अनुसार जगत् के सब पदार्थों का जो मूल द्रव्य है, उसे प्रकृति कहते हैं । सत्, रज व तम—यह तीन गुण मूल द्रव्य में आरम्भ से ही रहा करते हैं, इसलिए इन तीन गुणों को ही प्रकृति कहा गया है ।

प्रकृति को ही 'परमाशक्ति' कहा गया है—

प्रकृतौ विद्यमानाया विकृतिर्न बलीयसी ।

प्रकृति परमाशक्तिर्विकृतिप्रतिविम्बता ॥

"जब तक प्रकृति विद्यमान रहती है, तब तक विकृति शक्तिशाली नहीं हो सकती । प्रकृति ही परमाशक्ति है और विकृति ही उसकी छाया ।"

स च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ।

यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाअग्नी दाहिका स्थिता ॥

"और वह ब्रह्म के स्वरूप वाली, निरर्थ और सनातनी (सदा से चली आने वाली) है । जिस प्रकार आत्मा है, वैसे ही शक्ति है, जो अग्नि में दाह करने वाली जिस प्रकार स्थित रहा करती है ।"

सांख्य के अनुसार सत् रज-तम—मूल प्रकृति के तीन गुण हैं, जो कभी साम्यावस्था में रहते हैं और कभी विषम अवस्था में । जब

यह गुण साम्बावस्था में होने हैं, उस समय को 'प्रलय' कहा जाता है । मूल प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त और कोई नहीं होता । फिर जब प्रकृति में संयोग होता है, तो तीनों गुणों में न्यूनाधिकता होने लगती है और सर्वप्रथम सत्त्वगुण की प्रधानता से महत्तत्त्व अथवा बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति होती है । जब अहङ्कार में तमोगुण की प्रधानता होने लगती है, तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन सूक्ष्म 'तन्मात्राओं' की उत्पत्ति होती है । जब तम की अधिकता बढ़ती है, तब इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूतों अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । इन्हीं पाँच महाभूतों के मिलने और तीनों गुणों की न्यूनाधिकता के फलस्वरूप बाद में भाँति-भाँति की स्थावर जगम सृष्टि प्रकट होती है ।

प्रकृति के विभिन्न रूप—

प्रकृति दो प्रकार की होती है—परा और अपरा । इन दोनों से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं—

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणोत्पुषवारय ।

—गीता ७।६

प्रकृति के आठ प्रकार बताए गए हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ।

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधर ॥

—गीता ७।४

इसे अपरा प्रकृति कहते हैं और यह गीता (७।५) के अनुसार निम्न श्रेणी की है । परा उच्च श्रेणी की मानी गई है ।

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृति विद्धि मे पराम् ।

जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत् ॥

परा प्रकृति—

परा प्रकृति के सम्बन्ध में गारदा-तिलक तत्र में कहा है—

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशदणं. कमाद् ।

व्याप्त येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूप जगत् ॥

शब्दब्रह्म यद्वचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतम् ।

तद्व्योमवादिनां शशाङ्कसदनवाचामधीश महः ॥

“नित्य ही आनन्द-स्वरूप से युक्त निरन्तर गलत् पचाम वर्ष वाला क्रम से है, जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण चर और अचर शब्दार्थ रूप वाला जगत् व्याप्त है । सुकृतीगण, जिसको शब्द-ब्रह्म कहते हैं, यह चैतन्य अन्तर्गत है, वह वाणियो का अमीश चन्द्र के सदन वाला मह अर्थात् तेज आपकी सर्वदा रक्षा करे ।”

परा का स्पष्टीकरण मुरहकोपनिषद् में किया गया है । महर्षि अङ्गिरा के पाम शौनक मुनि ने आकर प्रश्न किया—‘भगवन् । किसके जान लेने पर यह सब जाना हुआ होता है ? इतना ही मुझे बताइए’ (१।१।३) । महर्षि अङ्गिरा ने उनसे कहा कि ‘ब्रह्मज्ञानी दो विद्याओं को ही जानने योग्य बताते हैं, उनमें एक परा और दूसरी अपरा कही गई है’ (१।१।४) । अगले श्लोक में परा की व्याख्या की है—

परा यया तदक्षरमधिगम्यते । (१।१।५)

“जिसके द्वारा अविनाशी परमेश्वर तत्त्व पूर्वक जाना जाता है, उसे परा-विद्या कहते हैं ।”

इस पर श्री शंकराचार्य की व्याख्या इस प्रकार है—

पराविद्यागम्यम् असाध्यसाधनलक्षणम्, अप्राणमनोगोचरम् अतीन्द्रिया विषय शिव शान्तम् अविकृतमक्षर सत्य पुरुषाख्यम् ।

“परा विद्या के द्वारा जानने के योग्य असाध्य साधन के स्वरूप वाला, प्राण तथा मन गोचर (प्रत्यक्ष) न होने वाला, इन्द्रियों के द्वारा

न जाना जानने वाला तथा इन्द्रियो का अविषय, शिव-कल्याण तथा मङ्गल स्वरूप, परम ज्ञान, विकार मे रहित, अक्षर (अविनाशी), मत्स्य और पुरुष नाम वाला है ।”

श्री ज्ञानेश्वर ने अपनी ‘भावार्थ दीपिका’ मे कहा कि हम लोगो की दृष्टि में यह श्रेष्ठ भक्ति है, शैवो की दृष्टि में ‘शक्ति’ और ज्ञानियो की दृष्टि में ‘स्वसविती’ है ।

व्यास ने इसे ‘सनातन धर्म’ कहा है—

सत्य दान तप शौच सन्तोषो ही क्षमार्जवम् ।

ज्ञान शमो दया ध्यानमेषो धर्मं सनातन ॥

“सत्य, दान, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, ऋजुता (सरलता), ज्ञान, शम, दया और ध्यान—यही सनातन धर्म का स्वरूप है ।”

गीता ७।५ में परा को जगत् को धारण करने वाली उच्च श्रेणी की जीवन स्वरूपी प्रकृति कहा है । गीता १४।२७ में इसे ‘शाश्वत धर्म’ की सजा दी गई । गीता १५।३ में इसे ‘देवी सम्पत्ति’ घोषित किया गया है । गीता के अनुसार—

राजविद्या राजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगम धर्म्य सुसुख कर्तुमव्ययम् ॥

“यह ज्ञान सब गुह्यो में राजा अर्थात् श्रेष्ठ है । यह समस्त विद्याप्रो मे श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम और प्रत्यक्ष बोध देने वाला है । यह आचरण करने मे सुखदायक, अव्यय और धर्म्य है ।”

अपरा प्रकृति—

गीता ७।४ में अपरा प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

भूमिरापोऽनिलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

“पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—यह पाँच महाभूत मन, बुद्धि और अहङ्कार—इन आठ प्रकारो मे मेरी प्रकृति विभाजित है ।”

भगवान् ने इसे अपरा कहकर निम्न श्रेणी की कहा है। इससे भिन्न को उन्होंने परा कहा है—

अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति ।

“अपरा विद्या में चारो वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष सभी आते हैं।”

मुण्डकोपनिषद् (१।१।५) में अपरा की परिभाषा करते हुए कहा है—

अपराविद्यागोचर समार व्याकृतविषय साध्यसाधनलक्षण अनित्यम् ।

श्री शंकराचार्य ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है ।

अपराविद्यागोचर समार व्याकृतविषय साध्यसाधनलक्षण अनित्यम् ।

“यह समार अपरा विद्या के द्वारा जाना जाता है—व्याकृत विषयो वाला है और साध्य एवं साधन के स्वरूप वाला तथा अनित्य है।”

साध्यकार के अनुसार अपरा की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है—

प्रकृति के आठ विभाग माने गये हैं और उसमें से सोलह विकारो की (विकृति) उत्पत्ति कही गई है। आठ प्रकृतियाँ ये हैं—

१ मूल प्रकृति, २ महत्तत्त्व (बुद्धि), ३ अहङ्कार, ४ शब्द, ५ स्पर्श, ६ रूप, ७ रस, ८ गन्ध । शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती हैं। साध्य प्रकृति उसको कहते हैं, जिससे आगे चलकर कोई अन्य तत्त्व उत्पन्न हो। इसीलिए बुद्धि और अहङ्कार के साथ तन्मात्राओं की भी प्रकृति माना गया है, क्योंकि उनसे ही सोलह विकृतियों की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार हैं—

पाँच स्थूल भूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी । पाँच

ज्ञानेन्द्रियां—योज, त्वचा, नय, रमना और घ्राण । पांच कर्मेन्द्रियां—
वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा, ग्यारहवां मन कहा गया है ।

यह पांच स्थूल भूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियां प्रत्यक्ष हैं और इनमें आगे चलकर किसी अन्य तत्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए इन्हें विकृति कहा गया है । यह ग्यारह जिन सूक्ष्म तन्मात्राया से उत्पन्न होती हैं, वे अनुभवगम्य हैं । जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है, तो उसे सूक्ष्म और निमज्ज शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होता है । जब इन पाँचों के भी मूल उद्गम की खोज की जाती है, तो 'ग्रहवृत्ति' का साक्षात्कार होता है । 'ग्रहद्वार' से भी ऊपर उठ कर विचार करने में 'महत्तत्त्व' अथवा 'अस्मितावृत्ति' के दर्शन होते हैं । पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नहीं चलता, तो अनुमान द्वारा 'महत्तत्त्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है, जो कि अनादि है । इस प्रकार महर्षि कपिल ने जडतत्त्व के जो चौबीस विभाग बनवाए गए हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किए गये हैं । यह मूल प्रकृति ही तीन गुणों—सत्, रज, तम की न्यूनाधिकता के कारण जगत् के विभिन्न तत्वों तथा नाम-रूपों में प्रकट होकर विश्व-रचना करती रहती है ।

परा और अपरा के विभिन्न पर्याय—

इस परा और अपरा शक्ति को चिच्छक्ति और जडा भी कहा जाता है । 'चिच्छक्ति' का 'अजडा' नाम भी है । गीता १५।१६ में इनकी 'अक्षर' और 'क्षर' सज्ञा भी दी गई है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

क्षर सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

“इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं । नष्ट होने वाले भूतों को क्षर कहा जाता है और इनके मूल में निवास करने वाले अव्यय तत्त्व कूटस्थ को अक्षर ।”

साख्य दशन में अव्यक्त प्रकृति को अक्षर और प्रकृति से होने वाले पदार्थों को क्षर कहा है ।

परमाशक्ति के इन दो अङ्गों को 'क्षेत्र' और क्षेत्रज्ञ' कहा गया है । गीता १३।२६ में कहा है—

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजगमम् ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञसयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

“हे भरत श्रेष्ठ । याद रखो, कि स्थावर या जगम किसी भी वस्तु की रचना क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सहयोग से होती है ।”

क्षेत्र का अर्थ है—शरीर, और क्षेत्रज्ञ का अर्थ है—आत्मा । तिलक की भाषा में “मानसिक और शारीरिक सब द्रव्यो और गुणों का प्राणरूपी विशिष्ट चेतनायुक्त जो समुदाय है, उसी को क्षेत्र कहते हैं और उस शरीर का स्वामी क्षेत्रज्ञ है ।

इस तरह से 'जडा' और 'अजडा', 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ', 'क्षर' और 'अक्षर', 'अपरा' और 'परा' प्रकृति उस परमाशक्ति के व्यक्त रूप हैं, जिससे सृष्टि की रचना हुई है । इससे स्पष्ट है कि यह शक्ति-तत्त्व चेतन-अचेतन दोनों है ।

प्रकृति और माया—

साख्य-शास्त्र की त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही गीता में माया कहा है । इससे मोक्ष की आशा नहीं की जा सकती । भगवान ने इसे गुणात्मक और दिव्य माया को दुस्तर कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

—गीता ७।१४

अगले श्लोक में कहा है—

न मा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमा ।

मायायापहृतज्ञाना आसुर भावमाश्रिता ॥

—गीता ७।१५

“माया ने जिनका ज्ञान नष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि में पड़कर मेरी शरण में नहीं आते ।”

१५वें अध्याय में अश्वत्थ वृक्ष का उदाहरण देकर भगवान ने समझाया है कि उसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे हैं । इसे ब्रह्म-वृक्ष और ससार वृक्ष भी कहा जाता है । अनुगीता में इसे ‘ब्रह्माण्य-ब्रह्मवन’ कहा गया है । वेदान्त दर्शन इसे ‘भगवान की माया का पसारा’ और सांख्य-दर्शन ‘प्रकृति का विस्तार’ कहता है । विष्णु सहस्रनाम में इसे ‘वारुणी वृक्ष’ कहा है । इसकी व्याख्या करते हुए भगवान कहते हैं—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला ।

अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कमानुबन्धानि मनुष्यलोके ॥

—गीता १५।२

“नीचे और ऊपर भी उसकी शाखाओं का विस्तार है कि जिनका सन, रज, तम तीन गुणों से पालन होता है और जिनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध रूपी विषयों के अकुर फूटे हुए हैं । अन्त में कर्म का रूप पाने वाली उसकी जड़ नीचे मनुष्य लोक में बढनी गहरी चली गई है ।”

इस गहरी जड़ों वाले अश्वत्थ वृक्ष को काटने का उपाय भी भगवान ने बताया है और वह है—अनासक्ति योग । इसकी सुदृढ तलवार से ही उस गहरी जड़ों वाले ससार-वृक्ष को काटने का परामर्श दिया है (१५।३) ।

शक्ति-तत्त्व—

देवी-भागवत में सावित्री के पूछने पर यमराज ने शक्ति-तत्त्व को समझाते हुए कहा—

‘वे भगवती सर्वात्मा है, उन्हीं को सबका ईश्वर और कारणों का भी कारण समझो, वही सबकी आदि और सबका परिपालन करने

वाली हैं। वे नित्यरूपी, नित्यानन्द, प्राकृतिरहित, निरकुश, निर्गुण, निरागम तथा प्राशङ्कारहित हैं। वे ही निलिप्त, सबकी सबसाक्षी सबकी साधार, परात्पर, मायाविशिष्ट, मूलप्रकृति तथा सभी विकारों की उत्पत्ति करने वाली हैं। परमात्मा ही प्रकृति से मिलकर प्रकृति कहलाने लगते हैं। प्रकृति ही 'शक्ति' महामाया और सच्चिदानन्द नाम धारण करती है, वे रूपरहित होकर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के हेतु विभिन्न रूपों को धारण करती हैं।"

'उ होने ही पूव समय में गोगल मुन्दरी (श्रीकृष्ण) का अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया था। भक्ति में तन्मय भक्तजन भावान के इसी रूप का ध्यान करते हैं। सबके स्वामी श्रीकृष्ण के शामन की मानकर ग्रह सृष्टि करते हैं। उन्ही के शामन में स्थित कालाग्नि उद्गम सहारकारी होते हैं। उन्ही के ज्ञान से युक्त होकर मृत्युञ्जय शिव योगेश्वर, प्रभु, परमानन्दयुक्त एवं भक्ति-वैराग्य से युक्त होते हैं, उन्ही के भय से पवन चलता है और सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते, मृत्यु प्राणियों को मारती, अग्निदेव दग्ध करते और वरुण सबको शीतल करते हैं। प्राकृतिक प्रचयकाल में देवनादि युक्त सम्पूर्ण चराचर विश्व, घाता और विघाता भी इन्हीं श्रीकृष्ण के नाभिकमल में लीन हो जाते हैं। क्षीरसायी एवं वैकुण्ठ में निवास करने वाले विष्णु इनके वाम-पार्श्व में विलीन होते हैं। जानाधीश शिवजी उनके ज्ञान में लीन होते हैं तथा सभी शक्तियाँ विष्णु माया दुर्गा में समा जाती हैं। वे विष्णुमाया-दुर्गा भी बुद्धि की अधिष्ठात्री होने के कारण श्रीकृष्ण की बुद्धि में लीन हो जाती हैं। इस प्रकार परमात्मा के पलक भँजने पर प्रलय और जाग्रत होने पर सृष्टि का पुनराविर्भाव होता है, वे भावान श्रीकृष्ण प्रलय-काल में अपनी प्रकृति से मिलकर एकाकार हो जाते हैं। तब एक परा-शक्ति ही शेष रहती है। ऐसे विशिष्ट गुणों वाली उन देवी का गुण-कीर्तन करने में कौन समर्थ हो सकता है।"

जिन पाठकों ने सृष्टि-तत्त्व और देव-तत्त्व पर अच्छी तरह विचार

नहीं किया है, उनको यह वर्णन शायद कुछ घटपटा-सा जान पड़े, पर इसका आशय यही है कि भगवान के स्वरूप को निराकार अथवा साकार मानकर कैसा भी वर्णन क्यों न किया जाय, चाहे उसका राधा-कृष्ण के रूप में श्रुद्धागम्य वर्णन किया जाय, पर ससार और सत्य-धर्म का मूल सदा एक ही है और एक ही रहेगा । जब-जब सृष्टि होती है, वह अनेक नाम और रूपों में प्रकट हो जाता है, पर अन्त में फिर सब एक ही तत्त्व में समा जाता है । यदि उसे 'परा-शक्ति' या 'महाशक्ति' कहा है, तो ठीक ही है । उसके विष्णु, शिव या कृष्ण आदि नाम साम्प्रदायिक दृष्टि से रख लिए गये हैं, पर सबका मूल तात्पर्य एक ही है ।

• • •

शक्ति का स्वरूप

देवी के स्वरूप का जो वर्णन 'देवी-भागवत' या अन्य पौराणिक ग्रंथवा तन्त्रशास्त्र के ग्रंथों में पाया जाता है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें कहीं तो उसका स्वरूप ऐसा वीमर्श जान पड़ता है कि उसे पढ़कर एक सामान्य व्यक्ति भयभीत हो सकता है। एक जगह काली देवी का ध्यान करने के लिए उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

मेघाग्री शशिशेखरा त्रिनयना रक्तावर विभ्रती ।

पाणिभ्यामभय वरं च विक्रमदरक्नारविन्दस्थिताम् ॥

नृत्यन्त पुरतो निपीय मधुर मध्वोक्तमद्य महा—

काल वीक्ष्य प्रकाशितानन परामाद्या भजे कालिकाम ॥

“जिसका वर्ण मेघ के समान श्यामल है, ललाट में चन्दलेखा प्रकाशमान है, जिसके तीन नेत्र हैं, शरीर पर रक्त-वस्त्र धारण किये हैं, जिसके दोनों हाथों में वर और अभय है, जो खिले हुए लाल कमल के ऊपर खड़ी है, जिसके सम्मुख पुष्पो का मधुर रस (मद्य) पीकर महा-काल नृत्य कर रहा है और उसकी ऐसी अवस्था देखकर देवी हँस रही हैं। उसी आदिशक्ति कालिका का मैं भजन करता हूँ।”

उनके इस स्वरूप की विशेष व्याख्या करते हुए 'कालीध्यान' में कहा गया है—

“कालिका देवी का मुख भयकर और दर्शनीय है, चार भुजाये हैं, सिर के बाल छूटे और बिखरे हुए हैं, मुण्ड माला धारण करने से

अतान्न गोभा पा रही है, उनके दोनों बाये हाथों में तुर्गत के काटे दो मस्तक हैं, वे ही उनके खडग रूप हैं। दायीं तरफ के दो हाथों में अमय और वरदान हैं। यह देवी प्रचण्ड मेघ के समान श्याम रंग की और दिगम्बर है। कण्ठ में पड़ती हुई मुण्ड-माला में गिरने हुए रक्त में उसका समस्त शरीर मना हुआ है। उसका मुख और दाढ़ अतान्न भयकर जान पड़ते हैं और बड़े स्तन हैं। दोनों कानों में नगर-रूपालो के आभूषण धारण करने में उसकी गोभा बढ गई है। उसका मुख हास्ययुक्त है और मुख में गिरती हुई रक्त-धारा के कारण मुख-कमल कम्पाप्रमान होता जान पड़ता है। उसकी ध्वनि वोर में व गजना के समान महा-भयकर है। वह श्मशान में निवास करने वाली है। उसके तीनों नेत्र सूर्य के समान तेजस्वी, दाँन बड़े बड़े और केश लम्बे हैं। वह शिव रूपी महादेव के हृदय पर पैर रखकर खड़ी है। महाकाल के साथ विलक्षण क्रीडा करने में वह निमग्न है। कामदेव के समान प्रफुल्लित और प्रमत्त मुख है। वह मनोरथ के विद्ध करने वाली है। इस प्रकार देवी कालिका का ध्यान करना चाहिए।”

केवल शब्दार्थ पर ध्यान देने से तो यह वर्णन बड़ा बीमत्त जान पड़ना है, पर जब इसके गूढ़ अर्थ पर विचार किया जाता है, तो इसमें अनेक ज्ञान के तथ्य समाविष्ट प्रतीत होते हैं। एक ‘देवी-भक्त’ ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

‘जिम तरह ध्वेन, पीत आदि सब रंग काले रंग में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार समस्त भूतों (पञ्च तत्त्वों) का विलीनीकरण प्रकृति में हो जाता है। इसीलिए योगीजनों की उपास्य, निर्गुण, निराकार, परम-शक्ति कृष्ण वर्ण की वर्णन की गई है। अविनाशी काल स्वरूप, अव्यय महाकाली के ललाट में जो चन्द्रकला का चिह्न बतलाया गया है, उसका आशय यही है कि वह चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपी नेत्रों से समस्त जगत का निरीक्षण कर रही है।’ इसीलिए उसके तीन नेत्र कहे

गये हैं। वह समस्त प्राणियों का ग्राम करती है और अपने कालरूपी दाँतो द्वारा चबा डालती है, इसी से उसके वस्त्र रक्त वर्ण के कहे गये हैं। विपत्ति काल में वह सज्जनों की रक्षा भी करती है, इसमें उसके हाथ में वर और अभय बतलाये गये हैं, वह देवी रजोगुण जनित विश्व में व्याप्त है, इसलिए लाल कमल पर विराजमान बनलाया है। वह काल-स्वरूप और समस्त जीवमात्रों की साक्षी स्वरूप देवी मोहरूपी मदिरा पीकर नृत्य करने वाले काल को देखकर हँस रही है।”

यह देवीके प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन है। उसका वास्तविक, सूक्ष्म और दार्शनिक रूप तो कुछ और ही है।

शक्तिवाद के दार्शनिक साहित्य का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि इस उपासना का मूल स्वरूप अद्वैतवाद है। ब्रह्म का व्यक्त रूप शक्ति को माना जाता है, जिसकी क्रियाशीलता जड-चेतन हर पदार्थ में परिलक्षित होती है, वह सर्वव्यापक है। वह सृष्टि की रचना, पालन-पोषण और लय सभी काम करती है। यह अथवा जगत उसकी इच्छा-शक्ति का परिणाम है। अणु-अणु में वह व्याप्त दृष्टिगोचर होती है। सच्चे शाक्त साधक को उसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई हो नहीं देना, हर वस्तु में वह उसे ही निहारता है। बाह्य रूप तो सबके अलग-अलग हैं, परन्तु मूल एक ही है। यही शक्तिवाद की भित्ति है।

अपने रूप को देवी ने स्वयं व्यक्त किया है। ‘देवी-भागवत’ का सक्षिप्त में उपदेश देते हुए भगवान् विष्णु से कहा—

सर्वं खल्विदमेवाह नान्यदस्ति सनातनम् ।

अर्थात् “यह सब कुछ सनातन में ही है। मुझसे अलग कोई तत्त्व नहीं है।”

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप ।

‘हे नगाधिप ! मैं ही सब कुछ हूँ, मेरा अग्रगण्य अनन्त ब्राह्मरूप अप्रतर्क्य एवं अनिर्देश्य है, अनौपक और अनामय है।’

दुर्गा सप्तशती में वर्णन है कि जब शुम्भ-निशुम्भ ये देवी का घोर युद्ध हुआ और निशुम्भ मारा गया, तो शुम्भ ने देवी से कहा—‘तुम्हारा ग्रहकार व्यर्थ का है तू दूमगे की शक्ति के सहारे पर युद्ध करनी है ।’ इस पर देवी ने जो उत्तर दिया, उससे उसके मूल रूप पर प्रकाश पड़ता है । देवी ने कहा—‘ इस विश्व में दूमरा कोई नहीं है, मैं एक ही हूँ । यह जो अन्य देवियाँ दिखाई दे रही हैं यह समस्त मेरी अनुभूतियाँ हैं, मुझमें इनका प्रवेश हो रहा है । यह कहना ही था कि ब्रह्माणी प्रमुखा देवी का उनमें लग हो गया और वह अकेली ही रह गई ।’

एकैवाह जगत्पत्र द्वितीया का ममापरा ।

पश्यतां दुष्ट मध्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥

तत समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी प्रमुख लयम् ।

तस्या देव्यास्तनो जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥

देवी ने कहा—‘ मेरी विभूति के कारण यह मेरे विभिन्न रूप थे । अब मैंने इन सबका उसहार कर लिया । अब मैं अकेले ही युद्ध करूँगी । तू सावधान हो जा ।’

देवी-भागवत में ब्रह्मा ने जब यह समाधान करना चाहा कि तुम स्त्री हो या पुरुष ? तो देवी ने उत्तर दिया कि “मुझमें और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है हम दोनों एक ही हैं । जो पुरुष है वही मैं हूँ । जो मैं हूँ, वही पुरुष है । यह भेद केवल सृष्टि के समय ही होता है । महाप्रलय के समय मेरी सज्ञा न पुरुष रहती है, न स्त्री न तपु मक । जो भेद बाह्य रूप से दिखाई देता है, वह माया के कारण होता है । ब्रह्म तो ‘एकमेवाद्वितीयम्’ है । सृष्टि के समय उसके दो रूप हो जाते हैं । फिर दीपक दपण और छाया के उदाहरण देते हुए समझाया कि किम नरह यह एक होते हुए भी दो प्रतीत होते हैं । इसी तरह हमारी मूर्तियाँ भी माया के कारण अनेक प्रतीत होती हैं, परन्तु वास्तव में वह एक ही है ।”

नवर्त्तेश्वर मे तो इस भेद को पिटा ही दिया और उपामको को आदेश दिया कि “देवी की स्त्री, पुरुष और ब्रह्म के रूप मे भावना करनी चाहिए ।”

पुराणो मे सृष्टि, पालन और सहार की विभिन्न शक्तियो का वर्णन आता है तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उनका अविष्टाता माना गया है, परन्तु तन्त्र ग्रन्थो मे लिखा है कि इन तीनों देवताओ का जन्म भी शक्ति से हुआ है । ‘शक्ति सगम तन्त्र’ मे शिवोत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

त विलोक्य महेशानि सृष्ट्युत्पादनकारणात् ।

आदिनाथ मानसिक स्वभर्तार प्रकल्पयेत् ॥

“हे महेशानि ! यह (अपना रूप) देखकर उस शक्ति ने अपने पति आदिनाथ को विश्व के सृजन-कार्य के लिए अपने मन से उत्पन्न किया ।”

ऋग्वेद ने देवी सूक्त (१०।१२५।७) मे भी कहा गया है—

अहं सुवे पितरमस्य मूधन्,

मम योनिरप्स्वन्त समुद्र ।

ततो वि तिष्ठे भुवनाधु विश्वो—

तामू द्या वष्मणोप स्पृशामि ॥

‘मैं जगत पिता (हिरण्य गभ) को प्रसव करती हूँ । इसके ऊपर आनन्दमय कोष मध्यस्थ विज्ञानमय कोष मे मेरा कारण-शरीर स्थित है । मैं सारे भुवन ने अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूँ । मैं अपने ऊँचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती हूँ ।”

इसी सूक्त के चौथे मन्त्र मे कहा है कि जगत की सभी क्रियाएँ जगदीश्वरी की शक्ति से मन्त्रालित होती है—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति य प्रापिति मई शृणा-
त्युक्तम् ।

“प्राण, धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि सब कर्म मेरी सहायता द्वारा ही किए जाते हैं।’

सीतोपनिषद् के अनुसार सीता विश्व का कल्याण करने वाली समस्त प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति और विनाश करने वाली, सर्वलोक-मयी, सबकी आश्रयभूता, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सभी प्राणियों की देहरूपा और विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं।

‘देव्ययर्वशीर्ष मे देवी ने कहा कि प्रकृति पुरुषात्मक जगत् का आविर्भाव मुझमें ही हुआ है और मैं ब्रह्मरूपिणी हूँ—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्त प्रकृति पुरुषात्मक जगत्
सूक्ष्मञ्चासूक्ष्मञ्च ।

और यह भी बोधना की है कि मैं ही जगत् हूँ—

अहमखिल जगत् ।

भगवती ने माया से भी अपने अभेद का वर्णन किया है और कहा है कि माया शक्ति ही विश्व का निर्माण करती है। व्यवहारिक रूप से जो माया और अविद्या है, वह भी मुझमें अलग नहीं है—

व्यवहारदृशायेय विद्यामायेति विश्रुता ।

तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥

देवी के विराट् रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

“उष विराट् रूप का स्वर्ग—मस्तक, सूर्य और चन्द्र—नेत्र, दिशाएँ—कान, वायु—प्राण, हृदय—जगत्, टांगें—पृथ्वी, व्योम—नाभि नक्षत्र—छाती, महर्लोक—कण्ठ, जनलोक—मुख, देवता—बाहु, अश्विनो कुमार—नायिका, मुख—अग्नि, पलकें—दिन-रात, समुद्र—पेट, पर्वत—हड्डी नदी—नाडी, वृक्ष—केश, दोनों सष्यायें—वस्त्र, चन्द्रमा—मन, विज्ञान-शक्ति—विष्णु, अन्त करण—महेश, शब्द—श्रवण, गन्ध—घ्राणेन्द्रिय, रस—रसना, मुख—अग्नि हैं।

देवी भागवत के अनुसार जब देवी ने हिमालय को अपना विराट् रूप दिखाया, तो उसे देवता भी देख रहे थे, उस समय देवी के हजारों मस्तक, नेत्र और पैर थे । करोड़ों सूर्यों की तरह उसकी चमक थी ।

बौद्धों में तन्त्र और शक्ति उपासना का प्रवेश हिन्दू धर्म से ही हुआ है । इन दोनों शक्ति के इस सिद्धान्त का मिलना स्वामयिक ही है । पारिभाषिक शब्दों में कुछ भिन्नता आ गई है । शक्ति शब्द वहाँ 'शून्य' हो गया है । इस ही वह समस्त सुखों का आधार मानते हैं । उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी में होता है । जीवात्मा को वह बोधित्व कहते हैं । इसका अर्थ है—जिसका मन नि श्रेयस की उपलब्धि के लिए उत्कृष्ट है । बौद्ध-तन्त्रों में 'निरात्मा' को परम शून्य का प्रतीक माना जाता है । 'बोधित्व' और 'निरात्मा' जब आपस में मिलने हैं, तो एक-दूसरे में इस प्रकार एकाकार हो जाते हैं, जिस प्रकार तमक अल में घुल कर अपना अस्तित्व खो देता है और जल ही हो जाता है । 'तन्त्रयान' नामक बौद्ध सम्प्रदाय में इस परम शून्य का प्रतीक 'निरात्मा देवी' है । उपासक जब अपने अहं को मिटाकर अपनी इष्ट देवी के विग्रह में लीन हो जाता है, तो वह अपने को ही 'देवी' मानने लगता है । देवी और उसमें कुछ अन्तर नहीं होता । इस प्रकार से बौद्ध-तन्त्रों ने भी शक्ति के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है, जिस तरह वह हिन्दू-तन्त्रों में वर्णित है, भले ही उसके बाह्य रूप में कुछ परिवर्तन हो गया हो ।

उच्चकोटि का शाक्त-साधक वही है, जो द्वैत से अद्वैत की ओर उन्मुक्त होता है और समस्त जड-चेतन में अपने इष्ट के दर्शन करता है । वेद के अनुसार देवी स्वयं इस रूप का समर्थन करती है—“मैं ही सब में व्याप्त रहती हुई भोजनादि का कारण व हेतु रूप हूँ । मेरे ही द्वारा सब चेष्टाएँ होती हैं । अन्तर्यामी रूप में सबमें विद्यमान मुझ चित्-शक्ति को जो नहीं जानते, वे अज्ञानी लोग जगत् में बहुत दुःख उठते हैं (ऋग्वेद १०।१२५।४) ।

"ससार में सभी प्रकार की शक्तियाँ मेरी ही हैं अथवा सब शक्तियाँ मेरा ही रूपान्तर हैं । अतः इसी भाव से शक्ति की उपासना श्रेयस्कর है । इस मन्त्र पर पहुँचा हुआ साधक यह समझता है कि उसकी बुद्धि, मन और इन्द्रियो पर भगवती का नियन्त्रण है, उसी के इशारे पर यह सब काम होते हैं, हमारा शरीर तो केवल यंत्र मात्र है । उसके सभी कार्य भगवती की अर्पित होते हैं, सभी गतिविधियाँ उसी के लिए होती हैं—अपने शरीर के लिए नहीं । महाभारत (अश्व० ३२। १७-२३) के ब्राह्मण सवाद में जनक ने इमे और ढग से स्पष्ट किया है—

"जिस (वैराग्य) बुद्धि को मन में धारण करके मैं सब विषयो का सेवन करता हूँ, उसका हाल सुनो—नाक से मैं अपने लिए वास नहीं लेता (आँखों से मैं अपने लिए नहीं देखता आदि) और मन का भी उपयोग मैं अपने लाभ के लिये नहीं करता । अतएव मेरी नाक, आँख आदि और मन मेरे वश में हैं अर्थात् मैंने उन्हें जीत लिया है ।"

भगवती का उपासक अपने शरीर, उसके समस्त अवयवों, मन, बुद्धि, इन्द्रियो, विषयो और इच्छाओं को भगवती का रूप मानता है । स्त्री को भी वह भोग की सामग्रियों न मानकर भगवती का ही रूप मानता है । इस मान्यता से उसकी भावना में परिवर्तन होता है और वह इन्द्रियो और विषयो का उपयोग उसी तरह करता है, जिस तरह जनक करते थे ।

जब मन, वचन और शरीर से यह भावना परिपक्व हो जाती है कि यह शरीर उस आद्या-शक्ति की ही अभिव्यक्ति है, उसी का रूप है, तो वह अपने और भगवती में कुछ अन्तर नहीं समझता । अन्त में वह भगवती को ही अपना रूप समझने लगता है । दोनों में एकता और अभिन्नता स्थापित हो जाती है ।

शक्ति सत्य है

ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या का सिद्धान्त—

'योग बसिष्ठ' त्रेयोत-गिज्ञात का प्रतिष्ठित ग्रन्थ है। यह भी अद्वैत वेदान्त के इस विग्रहान्त को मान्यता देता है कि 'ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। योग बसिष्ठकार का मत है कि—

एव तावदिदं विद्धि दृश्यं जगदिति स्थितिम्।

अहं चेत्याद्यनाकारं भ्रान्तिमात्रमसन्मयम् ॥

—४।१-२

“जो दिलाई देने वाला जगत् और अहं आदि पदार्थ स्थित दृष्टि-गोचर होते हैं, यह भ्रान्तिमान और असत्य है।”

मृगतृष्णाम्बिववास्तव्यं सत्यवत्प्रत्ययप्रदम्।

—४।१।७

“मृगतृष्णा की तरह, अनुभव मिथ्या जगत् की तरह, यह जगत् सत्य प्रतीत होता है परन्तु है अवास्तव्य और असत्य।”

मायेयं स्वप्नवद् भ्रान्तिमिथ्या रचितं चकिका।

मनोराज्यमिवालीलसलिलावर्तसु दरी ॥

—४।४७।४१

“यह सृष्टि माया है, स्वप्न की तरह भ्रम है, मिथ्या बनाए हुए चक्र की तरह है, मनोराज्य की तरह तटस्थ और जल के भँवर की तरह सुन्दर दृष्टिगोचर होती है।”

समस्त कल्पनामात्रमिदम् ।

—६।२१०।११

“यह समस्त जगत् कल्पना मात्र है ।

द्यौ क्षमा वायुराकाश पर्वता सरित्तो दिशः ।

सकल्पकचित्त सर्वमेव स्वप्नवदात्मन ॥

—३०।१०१।३५

“द्यौ लोक, पृथ्वी लोक, वायु, आकाश, पर्वत, सरिताएँ, दिशाएँ, सब आत्मा के मन्त्र ने इस तरह निमित्त हुए हैं, जिस तरह स्वप्न की मृष्टि होती है ।”

योग वशिष्ठ के अनुसार यह जगत् न तो सत्य है और न असत्य—

नातः सत्यतिद दृश्य न चामत्य सदाचन ।

—३।४४।३३

“यह दिखाई देने वाला जगत् न सत्य है और न असत्य ।”

न तत्सत्य न चामत्य रज्जुमर्पभ्रमो यथा ।

—३।४४।४१

“जैसे रस्सी से सर्प का भ्रम होता है, वैसे ही यह जगत् न सत्य है और न सर्वथा असत्य ही ।”

सत्य इसलिए नहीं कहा क्योंकि यह आदि और अन में नित्य नहीं है—

आदावन्ते न यन्नित्य तत्सत्य नाम नेतरत् ।

—५।५।२

और असत्य इसलिए नहीं कहा कि असत्य उसे कहना युक्तियुक्त है, जो कभी भी दिखाई न दे ।

जगत् को मिथ्या और असत्य प्रमाणित करने वालों में प्रमुख थे—स्वामी शंकराचार्य । यह अद्वितीय विद्वान् और मेधावी थे तथा इन्होंने ३२ वर्ष की छोटी आयु में अपने सिद्धांतों का डका समस्त भारतवर्ष में बजा दिया । ब्रह्मपूत्र पर इनका ‘शारीरिक भाष्य’ जगत्

प्रसिद्ध है। इनके अद्वैत सिद्धांत का सारांश यह है कि इस जगत् में हमको नेत्रों से जो कुछ दीखता है वह सत्य नहीं है। इस समस्त विश्व-प्रपञ्च में यदि कोई वस्तु सत्य है तो वह ब्रह्म की चैतन्य सत्ता है। जो अपनी माया या अविद्या नाम वाली शक्ति में इस दृश्य जगत् की उत्पत्ति और सहार करती है। वह माया न सत् है न असत् है वरन् उसे हम 'अनिर्वचनीय' ही कह सकते हैं। इस माया द्वारा जगत् की उत्पत्ति में किसी प्रकार की वास्तविकता नहीं है, वरन् उसके द्वारा निर्मित यह जगत् एक प्रकार का भ्रम या स्वप्न के सदृश्य है, जो सत्य ज्ञान पड़ता है, पर जिसकी सत्ता रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाने से अधिक नहीं है।

इस सिद्धांत को 'विवेकवाद' कहा जाता है। माया के सम्पर्क में ब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है और इस प्रकार अविद्या में पड़ कर वह जीवात्मा कहलाने लगता है। इस प्रकार इस जगत् के मूल में ब्रह्म को छोड़कर और कोई तत्त्व सत्य नहीं है। इसी माया के वशीभूत होकर जीव अपने को अल्पज्ञ, अल्प शक्ति वाला, सीमित, कर्म-बन्धनों में बँधा हुआ समझने लगता है। इसके फल से वह कर्मों का कर्ता और भोक्ता बन जाता है और आवागमन के चक्र में पड़कर पुण्य पाप के फलों को भोगने लग जाता है। जब जीव अविद्या (माया) के रूप को समझ जाता है, तो अपने को इन्द्रियो और मन से प्रथक् पूर्ण चैतन्य सत्ता अनुभव करने लगता है, तब उसके कर्म बन्धन टूट जाते हैं, अल्पज्ञता और सीमित होने का भाव भी मिट जाता है और वह अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है। यही अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार मुक्ति की अवस्था है।

जगत् की सत्यता-सिद्धान्त के समर्थक—

वेदान्त समर्थक सभी विद्वान् इस सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हैं। इस पर अनेको देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा आलोचनाएँ हुई हैं। उनका मत है कि शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्रों का जो अर्थ अपने भाष्य में

प्रतिपादित किया है, वह अनेक ग्रंथों में सूत्रों के वास्तविक आशय के प्रतिकूल है और उसे शङ्कराचार्य ने अपने सिद्धांतों का प्रचार करने की दृष्टि से शब्दों की खींचतान करके निकाला है। अमरी के एक विद्वान 'वीवो' ने वेदान्त दर्शन के अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि "बादरायण का सिद्धांत शङ्कराचार्य के सिद्धांत में प्रवृत्त भिन्न था। इसलिये शङ्कर भाष्य को पढ़ने से बादरायण के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं हो सकता।"

इसी प्रकार एक अन्य विद्वान ने कहा है कि "वेदान्त सूत्रों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उनका आशय शङ्कराचार्य के 'विवर्तवाद' के अनुकूल न होकर भास्कराचार्य के 'परिणामवाद' से अधिक मिलता है।" तीसरे विद्वान के मतानुसार 'सूत्रों को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि शङ्कर की अपक्षा रामानुज 'बादरायण' के अधिक निकट है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि शङ्कराचार्य के समय में दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म का जोर बहुत बढ़ रहा था, जिससे वैदिक धर्म का सूर्य सूर्य प्रायः मस्त हो रहा था। उस परिस्थिति में शङ्कराचार्य ने ब्रह्म सूत्र का जो भाष्य लिखा है उसके सूत्रों के मूल आशय की ओर इतना ध्यान नहीं दिया है जितना कि इस बात पर कि उनके द्वारा बौद्ध और जैन आदि वेद-विरोधी मतों का खण्डन करके उनको परास्त किया जाय।

वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय भी शङ्कर के मत से सहमत नहीं हैं। रामानुज के मतानुसार 'माया-निवृत्तवाद' और अद्वैत सिद्धान्त दोनों गलत हैं। ब्रह्म के प्रतिरिक्त जीव और जड़ लगभग अर्थात् चित् और अचित् भी नित्य और स्वतन्त्र नस्व हैं, यद्यपि वे ब्रह्म के ही अंश हैं और ब्रह्म उनके भीतर अन्तर्निहित रूप में रहता है। ये दोनों तत्त्व ही प्रत्यक्ष की विशेषता हैं, जो पदार्थज्ञान में तो ब्रह्म के भीतर सूक्ष्म रूप में रहते हैं और विश्वोत्पत्ति के अक्षर पर स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं। इसी से इसका नामकरण 'विशिष्टाद्वैत' किया गया है।

माधवाचार्य को कहना है कि जब भगवान् सत्य हैं, तो उनका बनाया हुआ जगत् कैसे मिथ्या हो सकता है ?—

श्रीमग्मध्वमेत हरि परतम सत्य जगत्, तत्त्वतो ।

“श्री माधवाचार्य के मत से हरि (विष्णु) ही परम तत्व हैं और जगत् सदैव सत्य है ।”

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त शब्दार्थ की दृष्टि से अद्वैत सिद्धान्त का सबसे बड़ा प्रतिपादक है । शंकराचार्य ने जहाँ ब्रह्म के साथ माया को स्वीकार किया है और उसी के कारण जगत् का आविर्भाव स्वीकार किया है, वहाँ वल्लभाचार्य ने माया को सर्वथा अस्वीकार करके ब्रह्म को केवल एक शुद्ध तत्व माना है । इसी ब्रह्म से जीव और जगत् प्रादुर्भूत होने हैं और उसी में लीन हो जाते हैं । भगवान् सच्चिदानन्द रूप हैं । जब उनकी इच्छा होती है, तो वे अपने हीनो गुणों सहित ईश्वर के रूप में प्रकट होते हैं और अपने इन्ही गुणों से जीव तथा जगत् की रचना करते हैं ।

इस तरह से वेदान्त के अन्य सम्प्रदायाचार्य भी शंकर के जगत् को मिथ्या सिद्ध करने वाले सिद्धान्त के पक्षपाती नहीं हैं ।

उपनिषद् भी ब्रह्म और जगत् के सत्य होने की घोषणा करते हैं । तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक में ब्रह्म को सत्य ज्ञान वाला कहा है—

सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म ।

पष्ठ अनुवाद में ब्रह्म को सत्य न समझने वाले को ही अपत्य कहा गया है—

असात्त्वेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चित् ।

ब्रह्म ही जगत् है, यह उपनिषद् वाक्यों से सिद्ध है । इसी अनुवाक में कहा है कि “परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और तप से तपस्वी होकर इस दृश्य जगत् की रचा और उसी में प्रविष्ट हो गया ।”

स तपोऽनप्यत । स तपस्नप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदि किं च तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत् ।

ब्रह्मानन्द बत्नी के प्रथम अनुवाक में सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है कि "परमात्मा ने आकाश प्रकट किया । आकाश से वायु, वायु में अग्नि, अग्नि में जन, जन से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ और ओषधियों में अन्न की उत्पत्ति हुई । अन्न से मनुष्य हुआ, क्योंकि मनुष्य का देह अन्न-रस वाला है ।"

तस्माद्भा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत । आकाशद् वायु वायोरग्निः । आग्नेराप । अद्म्य पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।

इससे स्पष्ट है कि जगत ही ब्रह्म का साकार रूप है । जगत की हर वस्तु ब्रह्म ही है । तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में जब भृगु ऋषि अपने पिता वरुण के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए जाते हैं तो वरुण अन्न, प्राण चक्षु योग, मन, बाणी सबको ब्रह्म की सज्ञा देते हैं । इन सबको ब्रह्म ही कहते हैं ।

योगवशिष्ठ में भी यही कहा है—

सत्यं ब्रह्म जगच्चेकं स्थितमेकमनेकवत् ।

सर्वं वा सर्ववद्भदाति शुद्धं चाशुद्धवत्ततम् ॥

—६-२।३५।६

"एक सत्य ब्रह्म विभिन्न प्रकार के जगत के रूप में प्रकट हो रहा है, एक सबके आकार में शुद्ध-अशुद्ध के रूप में ।"

यह भी कहा है कि—

ब्रह्मवृहैव हि जगज्जगच्च ब्रह्मवृहणम् ।

ब्रह्मैव तदनाद्यन्तब्धिवत्प्रविजृम्भते । —६-१।२।२७

आत्मैव स्पन्दते विश्वं वस्तुजातैरिवोदितम् ।

तरङ्गकणकल्लोलैरनन्ताम्बुध्राविव ॥ —५।७।२।३

जगत तो ब्रह्म की बद्धन शक्ति है और ब्रह्म का वृहण है ।

ब्रह्म जो अनादि और अनन्त है, वही समुद्र की लहरो, कणों और तरंगों रूप में दिखाई देना है । उसी तरह आत्मा ही जगत् की सारी आत्माओं में दृष्टिगोचर होता है—

करण कम कर्ता च जनन मरण स्थितिः ।

सर्वं ब्रह्मैव न ह्यस्ति तद्बिना कल्पनेनरा ॥

—३।१००।३०

“ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । करण, कम, कर्ता, जन्म, मरण, स्थिति—सब कुछ ब्रह्म ही है ।”

ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रकट होना है, जगत् को मिथ्या कहना भ्रम के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

तन्त्र का अभिमत—

तन्त्र-दार्शनिक भी जगत् को सत्य मानते हैं । उनकी मान्यता है कि इस जगत् में जितने जीव निवास करते हैं, वे शिव का ही रूप हैं । इसलिए यह असत्य नहीं हो सकता । वे जीव को शरीर और मन से युक्त शिव ही मानते हैं । तन्त्र की दृष्टि में शिव चेतना का अव्यक्त रूप है और शक्ति उसका क्रियाशील रूप है । जब शिव सत्य है, तो शक्ति असत्य कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसी का व्यक्त रूप है ।

एक तान्त्रिक विद्वान का मत है कि “इस आद्याशक्ति को माया-रूपा अर्थात् मिथ्या नहीं माना गया है । यदि अग्नि के दाह-प्रकाश धर्म को मिथ्या माना जाय तो अग्नि का स्वरूप ही स्थिर नहीं हो सकता । इसी प्रकार सत् वस्तु के स्वयस्फुग्ण-सामर्थ्य (चिन्ति) को और स्वयं तृप्ति दिखाने वाले वेग (आनन्द) को मिथ्या मान लिया जाय तो ब्रह्म का स्वरूप ही नहीं बनता । ब्रह्म वस्तु के स्वभाव धर्म और ओपाधिक धर्म पृथक्-पृथक् हैं । जो स्वभाव-धर्म हैं, वे ब्रह्म की शक्तिरूप हैं और जो ओपाधिक धर्म हैं, वे ब्रह्म के गुण हैं । जिस प्रकार महासमुद्र में अन्तःस्फुट होने पर उसकी तरङ्गमयी स्थिति हो जाती है और पुनः निस्तरंग स्थिति हो जाती है । दोनों ही अवस्थाओं में जिस प्रकार समुद्र का

समुद्रत्व एकरस रहता है उसी प्रकार ब्रह्म चैतन्य की स्पन्द वाली अर्थात् स्वयं स्वरूप को जानने वाली स्थिति (जिसे त्रिमश कहते हैं) और पुनः अन्तर्मुख होने की स्थिति ब्रह्म के ब्रह्मत्व को बाध करने वाली नहीं है। एक ही वस्तु अनेक प्रकार भासती है। उसमें जो वस्तु भासती है, वह मिथ्या नहीं, परन्तु सत्य है। हाँ, उसके आकारों में सत्यत्व बुद्धि का होना भ्रम है। अतएव शक्तिवाद में ब्रह्म का विश्वमय भासना मिथ्या नहीं है परन्तु उसमें जो भेद भागमान होते हैं उन्हें स्वतन्त्र मानने वाली बुद्धि भ्रमरूपा है। विश्वरूप में भासने की ब्रह्म-मामर्थ्यरूप शक्ति ब्रह्म पक्षपातिनी है और उन आभासों में होने वाली सत्यत्व बुद्धि मिथ्या माया है। सारांश यह है कि जो वस्तु अनेकाकार भासती है, वह स्वयं सत्य है, परन्तु उन आकारों में सत्यत्व बुद्धि मिथ्या है। इसलिए शाक्त-अद्वैत में यह विश्व ब्रह्मरूप होने से ब्रह्ममयी का विलास है अर्थात् अविकरण की चमत्कृति है। इसलिए विश्व का अनुभव ब्रह्मरूप होने से सत्य है यानी ब्रह्म सत्य है।”

तन्त्र दार्शनिक श्री माधव पुराणलीक परियटत ने अपनी पुस्तक 'तांत्रिक साधना' में लिखा है—‘तत्र के ऋषिषो ने अपनी सम्पूर्ण शिक्षा को इस के केन्द्रीय साक्षात्कार के आधार पर प्रचारित तथा निर्मित किया कि सृष्टि ब्रह्म या सद्बस्तु की अनन्त सत्ता बहिर्भूत एक अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति सत्ता में छिपी हुई चेतन शक्ति के द्वारा बाहर निकाली गई प्रक्षेपित की गई है। शक्ति जो कि ब्रह्म की, आत्म-चेतना की क्रिया-शक्ति है, माया कहो जाती है अथवा उस चेतना का शक्तिरूप ही माया कहलाता है। वह भासती है—‘म्रियते अनेन इति माया।’ इस प्रकार ब्रह्म सत्य है, शक्ति सत्य की सत्य शक्ति है और सत्य की विशालता से बना हुआ यह ब्रह्मांड भी उसी की तरह से सत्य है। तन्त्र कहता है कि विश्व दिव्य रूप से सत्य है और इसमें रहने वाला व्यक्ति भगवान की सत्य सत्ता का अंश है।”

अतः ब्रह्म सत्य है। इस अभ्यक्त चेतना का व्यक्त रूप शक्ति भी

सत्य है, जगत भी सत्य है। मूल कारण जब सत्य है, तो उसकी परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चित है।

तन्त्र का यह सिद्धान्त हमें एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर कार्य में रुचि लेना सिखाता है। तांत्रिक जगत के कार्यों को अपनी साधना के रूप में करता है, वह जगत को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु में उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देता है। वह जब चेतन में इसी भावना का आरोपण करता है। तभी तो वह 'सोऽह' और 'शिवोऽह' की उच्चतम साधना के लिए अपने को तैयार पाता है। जगत को मिथ्या कहने वाला उससे उपेक्षा और घृणा करता है। प्रभु के साकार रूप की उपेक्षा करने वाला साधना के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता क्योंकि जगत को वह अपने से भिन्न मानता है। इसलिए चारों ओर बिखरे प्रेम-सरोवर की लहरों से वंचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति की रसिद्ध का स्रोत सूखने लगता है। एकता की भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत को सत्य मानने से ही यह भावना सफल हो सकती है। अतः तन्त्र-साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है।

• • •

शक्ति-उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

नैतिक पक्ष--

देवी-उपासना की स्थापना का उद्देश्य प्रही है कि समाज में न्त्रियों के प्रति आदर और सम्मान के भाव जाग्रत हो । जिस तरह सावक अपनी दृष्टि देवी को जगत्माना के रूप में देखता है, उसी तरह ने विश्व की हर स्त्र में वह अपने इन्द्रेव का ध्यान करे और उसे पवित्र भाव से देखे ।

ऋषियों ने अनुभव किया था कि मनुष्य की इन्द्रियाँ बनवान बोडो की तरह सशक्त होती हैं, वह अपनी तृप्ति के लिये उसे अपने इच्छित मार्ग पर घसीट कर ले जाती हैं । इन्द्रियों के वश में होकर मनुष्य अन्धा हो जाता है, उसकी सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो जाती है । विवेक उसका साथ छोड़ देता है । इन्द्रियाँ रूपी घोड़े जहाँ भी उसे ले जाते हैं, वह मदमस्त हाथी को भाँति उनका पीछा करता है और गड्ढे में गिर जाता है ।

इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कभी-कभी इन्द्रियों को अपने वश में न रख सके, उनके पैर ढगमगा गये और वह गलत रास्ते पर चल पड़े जिससे आज तक उनके ऋषित्व पर कलक का टीका लगा हुआ है । विश्वामित्र जैसे महान् तपस्वी ऋषि जिन्होंने नवीन सृष्टि की रचना का माहस किया है, वह भी एक अप्सरा के काम-जाल में फँस गये और योग-क्रियाओं में लम्बे समय तक लित रहे, जिससे

सत्य है, जगत भी सत्य है। मूल कारण जब सत्य है, तो उसको परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चिन्ता है।

तन्त्र का यह सिद्धान्त हमें एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर काय में रुचि लेना सिखाता है। तांत्रिक जगत के कार्यों को अपनी साधना के रूप में करता है, वह जगत को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु में उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देता है। वह जब चेतन में इसी भावना का आरोपण करता है। तभी तो वह 'सोऽह' और 'शिवोऽह' की उच्चतम साधना के लिए अपने को तैयार पाता है। जगत को मिथ्या कहने वाला उससे अपेक्षा और घृणा करता है। प्रभु के साकार रूप की अपेक्षा करने वाला साधना के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता क्योंकि जगत को वह अपने से भिन्न मानता है। इसीलिए चारों ओर बिखरे प्रेम-सरोवर की लहरों से वंचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति और सिद्ध का स्रोत सूखने लगता है। एकता की भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत को सत्य मानने में ही यह साधना सफल हो सकती है। अतः तन्त्र साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है।

• • •

न रही । मुहम्मद गौरी जब आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता हुआ फिर पर आ पहुँचा, तो उनके प्रधानमन्त्री ने काम-निन्द्रा से उसे जगाया । परन्तु अब क्या हो सकता था ? इसका अभिप्राय है काम ने राष्ट्रों के भविष्य ही बदल डाले ।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के कामजाल में फँस गये थे । प्रधानमन्त्री चाणक्य ने उसे सावधान किया था । दिग्विजयी सिकन्दर दिग्विजय करते हुए अपने देश लौटे तो एक रूप-लावण्य की साक्षात् मूर्ति फिनिस को अपने साथ लाए । उनके गुरु अरस्तू ने उसे सावधान किया कि यह विष-रुन्या है । इसके शरीर का स्पर्श ही तुम्हारे सारे शरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाएगा । सिकन्दर उनसे दूर रहने लगा । इससे फिनिस चिढ़ गई और काम-बाण फेंकने आरम्भ कर दिए । वह यकन हुई और अरस्तू उसके प्रमत्तजाल में फँस गये । एक दिन उसने अरस्तू को खेत में घोड़ा बनाया और उसकी नाक में नक़ल डालकर मारे कमरे में उसे घुनाया । सिकन्दर ने यह सारा दृश्य देखा । वह आश्चर्यचकित रह गया । जब गुरु से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रवीण अनुभवी वयोवृद्ध पंडित को भी वशीभूत करके हीन-से-हीन काम करवा सकती है, वह मुझसे कम आयु के कम अनुभवी युवक के लिए और भी अधिक खतरनाक नहीं हो सकती क्या ?

पुराणाचार्यों ने काम के सभी उत्पातों का सर्वेक्षण किया था और वह इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज में उच्च भावनाओं को उत्पन्न करने से ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है । वह समाज तो आमुरी समाज कहलाया जायगा, जिसमें किसी युवक ने किसी युवती को देखा, उसके सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गया, उसमें विवाह करने की सोचने लगा । राजाधिकारी हुआ तो अपने प्रभाव से उसे अपने घर में लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह-

उनका तेज क्षीण हो गया । पराशर मुनि नदी पार करते हुए नाव में नाविक की कन्या पर आसक्त हो गये । उनके मन में कामवासना आती और तूफान की तरह आई और नाव में ही उन्होंने अपनी ज्वार-भाटा की तरह उछलती लहरों को शान किया । शान्तनु भी एक नाविक की लड़की पर आसक्त हो गए और उससे विवाह की सोचने लगे । यह उदाहरण बताते हैं कि हमें अपने कामतत्त्व के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए । उसकी प्रवृत्ति को नियन्त्रण में रखने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए । किसी सुन्दर लड़की को देखकर उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखना अपनी मानसिक कमजोरी का चिह्न है । हम असन्तुलन से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हाती है । यह दृष्टिकोण अपनाने से तो किसी की माँ-बहिन-लड़की का सम्मान सुरक्षित नहीं रह सकता ।

इतिहास ने जहाँ-जहाँ ऐसे उदाहरणों को दोहराया है वहाँ तबाही, बर्बादी और खून-खराबी के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया । अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के रूप-लावण्य के समाचार सुने थे । उसे प्राप्त करने करने के लिए वह कामरूपी राक्षस हजारों प्राणियों का खून करने के लिए उद्यत हो गया । इतिहास ने रावण जैसे महापण्डित का भी इन्द्रियों के वशीभूत होकर एक नीच कर्म करने पर बाध्य किया । धर्माचार्यों ने ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति से सवधान रखने के लिए रावण के क्षुद्र-कर्म का प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया, ताकि समाज उससे शिक्षा ले ।

हिन्दू धर्म कहता है कि स्त्री को भोग की सामग्री मात्र मत समझो, जीवन की पूर्णता प्राप्त करने के लिए अपना जीवन-साथी मानो, सृष्टि-रचना की प्रभु-लला का माध्यम समझो । यदि उसे सावधानी से न बरतोगे, तो वह नरक की खान बन जायगी । पृथ्वीराज सयोगिता को स्वयंवर से भगाकर ले गया और उसमें इतना अधिक आसक्त हुआ कि उसे अपने राज्य के काम-काज की कुछ भी खबर न

न रही । मुहम्मद गौरी जब आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता हुआ फिर पर आ पहुँचा, तो उनके प्रधानमन्त्री ने काम-निन्दा से उसे जगाया । परन्तु अब क्या हो सकता था ? इसका अभिप्राय है काम ने राष्ट्रों के भविष्य ही बदल डाले ।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के कामजाल में फँस गये थे । प्रधानमन्त्री चाणक्य ने उसे मावधान किया था । दिग्विजयी सिकन्दर दिग्विजय करते हुए अपने देश लौटे तो एक रूप-लावण्य की साक्षात् मूर्ति फिनिश को अपने साथ लाए । उनके गुरु अरस्तू ने उसे सावधान किया कि यह विष-रूपा है । इसके शरीर का स्पर्श ही तुम्हारे मारे शरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाएगा । सिकन्दर उसमें दूर रहने लगा । इससे फिनिश चिड़ गई और काम बाण फेंकने आरम्भ कर दिए । वह पकन हुई और अरस्तू उसके प्रेमजाल में फँस गये । एक दिन उसने अरस्तू को खेन में घोड़ा बनाया और उसकी नाक में नकेल डालकर मारे कमरे में उसे घुसाया । सिकन्दर ने यह सारा दृश्य देखा । वह आश्चर्यचकित रह गया । जब गुरु से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रवीण अनुभवी वयोवृद्ध पंडित को भी वशीभूत करके हीन-स-हीन काम करवा सकती है, वह मुझसे कम आयु के कम अनुभवी युवक के लिए और भी अधिक खतरनाक नहीं हो सकती क्या ?

पुराणाचार्यों ने काम के सभी उत्पातों का सर्वेक्षण किया था और वह इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज में उच्च भावनाओं को उत्पन्न करने में ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है । वह समाज तो आमुगी समाज कहलाया जायगा, जिसमें किसी युवक ने किसी युवती को देखा, उसके सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गया, उसमें विवाह करने की सोचने लगा । राजाधिकारी हुआ तो अपने प्रभाव से उसे अपने घर में लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह-

के षडयन्त्र करने लगा । वह तो पशुओं का-सा समाज हो गया, जिनमें कोई विधिवत् पति-पत्नी नहीं होते । भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि और विवेक इसीलिए दिया है कि वह इनका सदुपयोग करे ।

समाज की इस निर्बल वृत्ति को अनुभव करते हुए ही देवी-उपासना का प्रारम्भ किया गया ताकि देवियों के प्रति साधक के अन्त-करण में पवित्र भावनाओं का संचार हो, सपस्त नारी जाति में वह इष्टदेवी के दर्शन करे और उन्हें माता, बहिन और पुत्री के पवित्र भाव से देखे । धर्म के साथ जुड़ी हुई यह भावना साधक के मन में जम जाती है और वह एक सम्य मनुष्य की तरह समाज में विचरण करता है । यही देवी-उपासना का रहस्य व लक्ष्य है । देवी-उपासना के इस नैतिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जो साधक गायत्री, दुर्गा, लक्ष्मी, काली आदि देवियों की साधना करते हैं वही अपने चारित्रिक, मानसिक व आत्मिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल हो पाते हैं, शेष तो अन्धकार में ही भटकते रहते हैं ।

काम तत्त्व जैसी विनाशकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित रखने का यह अनोखा मनोवैज्ञानिक साधन है, जिससे साधक के मानसिक स्तर में परिवर्तन आता है, उसकी विचार-भूमि में सात्त्विक अंकुर उगने लगते हैं । वह भोगों के दुष्परिणामों के प्रति जागृत हो जाता है । नारी को भोग की सामग्री समझने वाला मस्तिष्क काम का दास बनता है और नीच-से नीच और जवन्य-से-जवन्य अपराध भी उसकी लिप्सा की शांति के लिए करने पर तत्पर हो जाता है । इस विनाश को रोकने का वैज्ञानिक साधन देवी-उपासना है, जब हर स्त्री को साधक विश्व माता के रूप में देखता है ।

देवी उपासना का उद्देश्य काम पर रोक लगाना नहीं है । यह तो कामेन्द्रिय का स्वामाधिक धर्म है । आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग करना ही चाहिए, परन्तु वह काम भोग की सजा में न आए ।

भोग के प्रति आसक्ति से शास्त्रकारों ने वचने के लिए प्रेरित किया है, और सुझाव दिया है कि भोग में त्याग की प्रवृत्ति श्रेयस्कर है। इससे इन्द्रियो के स्वाभाविक धम का भी पालन हो जाता है और कोई हानि नहीं हो पाती।

इच्छा-शक्ति का विकास —

यह सभी कार्य इच्छा-शक्ति के सहयोग से ही सुविधापूर्वक हो पाते हैं। मनीषी ऋषियों ने इच्छा शक्ति को देवी का रूप दिया। वह भली प्रकार जानते थे कि जीवन की सफलता-असफलता उत्थाप-अपकर्ष, उन्नति-अवनति और उदयान-पवन सब मनुष्य की इच्छा शक्ति की सन्नता तथा निर्बलता के परिणाम हैं। सब और दृढ़ इच्छा शक्ति सम्पन्न लोगों को अभद्र विचार, कुकल्पनाएँ भयानक, परिस्थितियाँ, डलभने भी विचलित नहीं कर सकती। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। वे उन्हें बार बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छा शक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर परिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल कर आगे बढ़ते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नहीं होते।

दृढ़ इच्छा-शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है, जिसमें किसी भी बाह्य परिस्थिति, कलना, कुत्रिचारों का प्रभाव नहीं हो सकता। दृढ़ इच्छा-शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति जीवन की भयङ्कर भ्रमावातों में भी अजेय चट्टान की तरह घटल और स्थिर रहना है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शांत रहना है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रसन्नता, शांति उसके साथ रहते हैं।

जिस व्यक्ति में इच्छा-शक्ति की जितनी प्रबलता है, वह उतना ही अधिक कार्यक्षम होता है। मानव-देह पर इच्छा-शक्ति का ही शासन है, क्योंकि इच्छा द्वारा ही सब इन्द्रियाँ अपने कार्यों में लगती हैं। अत्यन्त निर्बल मनुष्य भी इसके बल से बलवान बन जाते हैं।

बड़े-बड़े तपस्वियों की साधनाओं में इच्छा-शक्ति का ही हाथ

था। बड़े-बड़े मगामो में विजय-श्री प्राप्त कराने का श्रेय भी इच्छा-शक्ति को ही रहा है। बड़े-बड़े हत्याकांडों में जो वीर्यमत्ता उत्पन्न हुई वह सब इच्छा-शक्ति के कारण ही हुई। आप इसे जिम कार्य में लगायेंगे, वह उसी में लग जायगी। उसी को पूर्ण करने का प्रयत्न करेगी।

देवी-उपासना से इच्छा-शक्ति को विकसित करके हम जीवन के हर क्षेत्र में द्रुतगति से बढ़ सकते हैं।

भयङ्कर रूप का अभिप्राय—

चित्रो, मूर्तियों और कथाओं में देवी के दो रूपों का चित्रण किया गया है। एक भयंकर और दूसरा उन्नयनकारी। भयङ्कर रूप के दर्शन हम तब करते हैं, जब देवी को देव कार्य के लिए युद्ध-क्षेत्र में उतरना पड़ता है। सामने शक्तिशाली योद्धा हैं, जिन्होंने देवराज इन्द्र जैसे वीरों को परास्त करके आसुरी साम्राज्य स्थापित कर रखा है। उन्हें धराशायी करने के लिए देवी को भयङ्कर रूप धारण करना पड़ा, जो विजय को कामना करने वाले हर पक्ष में होना स्वभाव-सिद्ध है। आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए यही रूप अपेक्षित है। जिन परिस्थितियों में देवी को असुरों में जूझना पड़ा, वे हर मानव के जीवन में आती हैं। किसी-न किसी रूप में यह होना ही है। भगवान् बुद्ध के सामने भी यही स्थिति थी। हमारे और आपके सामने भी आयेगी। समका डटकर सामना करने के लिए अपनी देवी-शक्तियों को एकत्रित करके पूरी शक्ति के साथ उन पर आक्रमण करना चाहिए। देवी का सौम्य रूप ही प्रशस्त माना गया है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इस रूप को धारण करने में भी कोई हानि नहीं है। इस भयङ्कर रूप की अनुकृति बनकर हमें भी अपने मानसिक शत्रुओं का तिरकाटना होगा, यही देवी के क्रूर रूप का अभिप्राय है।

कुप्रवृत्तियों के त्याग की भावना—

पशु-बलि देवी-उपासना का आवश्यक अङ्ग माना जाता है । यह प्रतीकात्मक रहस्य है, जिसे न ममत्त कर देवी के पवित्र नाम की कवचकृत किया जाता है । वास्तव में बलि का तात्पर्य आन्तरिक कुप्रवृत्तियों का त्याग ही है ।

उपनिषद् का वचन है—

काम क्रोध लोभादय पशवः ।

अर्थात् “काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु हैं, इन्हीं को मार कर यज्ञ में हवन करना चाहिए ।”

इसी प्रकार—

काम क्रोध मुलोभ मोह पशु काञ्छित्वा विवेकासिना ।
मास निविषय परात्म सुखद भुञ्जति तेषां बुधा ॥

—भैरवयामल

अर्थात् ‘विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओं को विवेक रूपी तलवार से काट कर दूसरे प्राणिमों को सुख देने वाले निविषय-रूप मांस का भक्षण करते हैं ।’

महानिर्वाण तन्त्र में भी इसी आशय का श्लोक आया है—

कामक्रोधी द्वौ पशु मनसा बलिमर्पयेन ।

कामक्रोधी विघ्नकृत्तौ बलि दत्तवा जप चरेत् ॥

‘काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओं का बलिदान करके उपासना करनी चाहिए । यही शास्त्रोक्त बलिदान-रहस्य है ।’

अलङ्कारिक रूप से यह आत्म-शुद्धि की, कुविचारों, पाप, तापो, कषाय कल्मषों से बचने की शिक्षा है ।

रहस्य-तन्त्र का कथन है—

कामक्रोधी विघ्नकृत्तौ बलि दद्याज्जप चरेत् ।

एक दूसरे तन्त्र का वचन है—

इन्द्रयाणि पशून हत्वा ।

अथ देवी कुप्रवृत्तियों के त्याग की प्रेरणा देती है ।

उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य—

मातृ उपासना का दूसरा रूप उन्नयनकारी है । वह उत्थान की प्रतिमा है । अशुद्धियों पर कुठाराघात करना उसका सर्वप्रथम कर्तव्य है । दोष उसके सामने मकुचिन हो जाते हैं । दोषों के विनाश के साथ ही आत्मिक प्रगति होनी चलती है । देवी तो सद्गुणों की खान है । पवित्रता, उदारता, शील, लज्जा, चेतना, बुद्धि, शिष्टता, समके चारित्रिक अङ्ग हैं । देवताओं के सम्मिलित प्रयत्न से उसका जन्म हुआ । वह दिव्य गुणों की समन्वित मूर्ति है । जो देवी-भक्त सद्गुणों के विकास की ओर ध्यान नहीं देता, वह माता के आध्यात्मिक पयःपान से वंचित रह जाना है । जिस पर माना का वरद्विस्त रहना है, वही उसे प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर पाता है । शेष तो भौतिक कामनाओं की पूर्ति में ही उलझे रहने हैं । देवी प्रेरित करती है कि जीवन के आधार-स्तम्भ सद्गुण हैं । अपने गुण, कर्म, स्वभाव को श्रेष्ठ बना लेना, अपनी आदतों को श्रेष्ठ सज्जनों की तरह ढाल लेना वस्तुतः एक ऐसी बड़ी सफलता है, जिसकी तुलना किसी भी अन्य सामाजिक लाभ से नहीं की जा सकती । विदेशी मनीषी भी इस रूप की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके हैं । 'दि ग्रेट मंदर' नामक पुस्तक के प्रणेता श्री एरिश न्यूमन ने लिखा है—

“कालांतर में भारतीय मातृशक्ति ने प्रकाशपूर्ण उन्नयनकारी रूप के चरम स्वरूप की प्राप्ति कर लिया । केवल तन्त्रों की शक्ति का रूप में नहीं, काली—जो स्वयं भयकारी मूर्ति थी, उन्नयनकारी आध्यात्मिक स्तर पर स्वतन्त्रता और सुरक्षा की महान् देवी बन गई, जिसकी तुलना में पश्चिम की कोई देवी ठहर नहीं सकती और सर्वोत्तम रूप में 'तारा'

का उदय हुआ, जिसके देवी-प्रकाश की कोई सीमा नहीं । प्रज्ञापारमिता के रूप में वह बोधिसत्वों की भी जननी है ।”

देवी प्रकाशरूपा है, वह दिव्यता का पुञ्ज है । क्या भी है कि आदि में सब ग्रन्थकार था, देवी की कृपा से प्रकाश हुआ । देवों ने उनका भक्षण कर लेना चाह, परन्तु देवी ने उनको ही नष्ट कर दिया । देवी प्रकाश, ज्योति और ज्ञान की द्योतक है । ग्रन्थकार उसके समक्ष रह नहीं सकता । दिव्यता के आगार में कुविचारों को कहीं स्थान मिल सकता है ? वह जो प्रवण्ड ज्ञानाग्नि में जनकर भस्म हो जाएंगे । देवी का रोम-रोम करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से दमकता है । उनकी चपक देव-राज्य की स्थापना का उद्घोष करनी है । हमारा मनोराज्य भी ऐसे ही प्रकाश पुञ्जों से अलकृत होना चाहिए । यही देवी की उपासना, समीपता का रहस्य है ।

नव-निर्माण की प्रेरणा--

सृजन-शक्ति माता का एक विशेष गुण है, जिसके कारण उसे हम पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता है । शरीरधारी माँ प्राण-पिंड का निमण करती है, जबकि विश्व-माता सारे विश्व को जन्म देती है । यह उसकी स्वभावगत विशेषता है । यह विश्व के हर अणु, परमाणु में विद्यमान है—एक-दूसरे में न्यूनता भन ही हो जाए । मानव में यह अविक्रि विकसित होती है । महर्षि विश्वामित्र तो इसके प्रतीक ही बन गए थे । उन्होंने नई सृष्टि की रचना का महान् प्रयत्न किया था । राष्ट्र में नई चेतना, समाज में नया प्रकाश, व्यक्ति में नया जोश ही इससे अभिप्रेत है । जीवन को नए संचे में ढालना, विचारों को उच्च, पवित्र और परिपक्व करना, अपनी शक्ति-माचनों को गति देना ही अभीष्ट है । निर्माण की शक्ति और क्षमता तो ईश्वर-प्रदत्त है, जो इसका उपयोग नहीं करता, वह अविकसित, पिछड़ा हुआ और दीन-हीन रह जाता है । यह मातृशक्ति की उपासना से वर्धित रहना है । सृजन-शक्ति से जीवन का नव-निर्माण लक्षित है ।

परिवर्तन की क्षमता—

परिवर्तन की क्षमता नारी का जन्मजात सौभाग्य है। इसके प्रमाण नित्य देखने में आते हैं। वह शुक्र को शिशु में बदलती है, रक्त से दुग्ध-धारा को प्रस्फुटन करती है। वह शिशु के विचार-चक्र को अपना इच्छानुसार चलाती है—उसे जैसा बनाना चाहे बना सकती है। शिशु-जन्म के बाद भी वह उसमें परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। मदालसा जैसी विदुषी नारियों के उदाहरण जगत् प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने लोगों से आत्मोत्थान की भूमिका तैयार की थी। नारी गृहस्थ को नरक और स्वर्ग दोनों बना सकती है। जहाँ उसके शरीर से प्रेम, स्नेह, से हुआ। इसमें सगठन शक्ति और भौतिक साधनों के अभाव में भी स्वर्गीय वातावरण निर्माण कर डालती है परन्तु जहाँ रोद्र रूप के दशन होते हैं, वहाँ साधन-सम्पन्न घरानों में भी कलह, क्लेश और असन्तोष व्याप्त रहना है। मातृशक्ति परिवर्तन चाहती है। वर्तमान परिस्थितियों और क्षमताओं में जो अपूर्णता है उसे पूर्णता में परिवर्तित करना ही उसे प्रभीष्ट है।

दिव्य शक्तियों का सङ्गठन—

देवी का जन्म देवताओं की सम्मिलित शक्ति सौहार्द की फुहार निकलती है, धन की महत्ता परिलक्षित होती है। कहा भी है—“सद्यः शक्तिः कलौ युगे”। प्रगति के लिए सगठन शक्ति आवश्यक है। देवी इसके द्वारा सामाजिक जीवन में विकास चाहती है।

देवी के जन्म का उद्देश्य आसुरी शक्तियों का विनाश था। उसने समाज को अव्यवस्थित करने वाले शक्ति-स्रोतों पर प्रहार किया, घोर सघर्ष हुआ, विजयश्री देवी के पक्ष में रही। वह तो रहनी ही थी क्योंकि अन्तिम विजय दिव्यता की ही होती है। हमारे मन क्षेत्र में जो आसुरी तत्व विद्यमान हैं, उनसे लोहा लेने के लिए देव-तत्वों को संगठित करना होगा और उनके विरुद्ध जिहाद बोलकर ललकारना होगा। उन्हें परास्त किए बिना आत्म-वल्याण सम्भव नहीं है। यह

समग्र आवश्यक है। जो व्यक्ति इसके लिए अपने को तैयार नहीं करता, वह असुरों से प्रभावित होकर असुर ही बन जाता है, जिसे जीवन-नाश की सजा दी जाती है।

अनासक्त भावना—

कमल का पुष्प देवी को प्रिय है। तारा का आसन कमल का बना है। देवी मेडोना और डेमेनेज के हाथों में इमे देवा जा सकती है। आइसिस के रथ का पहिया इमने बना हुआ है।

कमल भारतीय सभ्यता का महाप्रतीक माना जाता है। इसका जन्म पक में होता है, परन्तु फिर भी यह निर्मल और पवित्र रहता है। यह जन में रहते हुए भी उसमें अलग रहना है, जल से अलिप्त रहना है। कमल के प्रतीक से यह प्रेरणा मिलती है कि हमें सत्पथ पर रहने हुए भी उसमें अनासक्त नहीं होना चाहिए, उदम अलिप्त रहना चाहिए। ससार के भोग बुरे नहीं हैं, परन्तु उन्हें त्यागपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। परिवार के पालन-पोषण को एक परम पवित्र कर्तव्य मानना चाहिए। हर सदस्य के बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु उनमें मोह और ममता नहीं होनी चाहिए।

कमल को प्रकाश प्रिय है, वह मदैव प्रकाश के सम्मुख रहता है। जब सूर्य निकलता है — कमल अपनी पखुडियाँ खोल देता है, मानो अपनी अपार प्रसन्नता का प्रदर्शन कर रहा हो। जब तक सूर्य रहता है, उसका मुख प्रकाश की ओर ही रहता है। उसे अन्धकार प्रिय नहीं है, वह प्रकाश पर मरता है। वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का पुजारी है, मानो वह यही प्रार्थना करता रहता है — मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। भगवान् उसकी पवित्र भावना से ओत-प्रोत प्रार्थना स्वीकार भी कर लेते हैं। कमल की प्रेरणा है कि हमें भी अज्ञानान्धकार और अविवेक से मदैव दूर रहना चाहिए तथा ज्ञान, प्रकाश, ज्योति और विवेक को आदर्श बनाना चाहिए।

पर्वतीय उच्चता का बोध—

देवी का पर्वत से सम्बन्ध स्थापित किया गया है । पावती तो तो पर्वतराज की पुत्री ही घोषित की गई । देवी को पवत प्रिय भी है । देवी के अधिकांश प्रसिद्ध उपासना ग्रह पर्वतो पर स्थित है । पर्वत से उच्चता का बोध होता है । देवी का आसन पर्वत पर रहता है । हमारे जीवन का आधार उच्च विचार होने चाहिए । उच्च वचारों के पर्वतीय आसन पर बैठकर ही आध्यात्मिक उन्नयन को क्षमता प्राप्त की जा सकती है ।

परमार्थिक भावना—

देवी अन्नपूर्णा है, विश्वघात्री है, शाकाहारी है । वह अपने पुत्रों को भूखा नहीं देख सकती । वह उनके दुःख-दर्द को अपना समझती है, उसे अपना समझती है, उसे दूर करने का प्रयत्न करती है, निरन्तर विश्व-कल्याण में रत रहती है । हमारा समाज कुरीतियों, कुप्रवृत्तियों और बुराईयों से भरा पड़ा है, इसे स्वच्छ और पवित्र बनाने के लिए देवी की सम्मिलित और संगठित प्रयत्न करने चाहिए ।

प्राणी-मात्र में प्रेम का प्रसार—

देवी केवल मनुष्यों की ही माता नहीं है । वह पशु, पक्षियों, पर्वतों, चट्टानों और लताओं की भी जननी है । सिंह तो उसका प्रसिद्ध वाहन है ही । बैल, हम, मोर, गजराज, ऐरावत भी देवी के वाहन हैं । वह सभी प्राणियों की माँ है । उसका रूप सबमें बिखरा पड़ा है । वह यही चाहती है कि उसके हर रूप का सम्मान किया जाए अपने स्वार्थ के लिए उसकी हिंसा न की जाए, किसी प्रकार की पीड़ा न दी जाए, पशुओं में भी देवी के दर्शन करके उनसे प्रेम-व्यवहार किया जाए और यथासम्भव उनका पालन-पोषण किया जाए ।

सद्गुणों का प्रवास—

देवी को ज्ञान, प्रकाश, पवित्रता, श्रेष्ठता, उच्चता, दिव्यता प्रिय हैं। इसी में उसकी शोभा और सौन्दर्य निहित है। अ-याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, वामुकता असयम, स्वार्थ, झूठ, फरेब सब मन की गन्दगी है। इनमें दुर्गन्ध फैलती है, जो देवी को अप्रिय है। सभी वह इस दिव्य सौंदर्य का पुञ्जीभूत मिश्र मानी जाती है।

प्रेरणाओं को स्रोत—

स्पष्ट है कि देवी-मात्रना मानव में अनेकों जन्मों से व्याप्त जड़ता को नष्ट करके आन्तरिक प्रकाश और स्फुरणा को सद्भावित करती है। वह भवगुणों की गन्दगी से हटाकर सद्गुणों के सच्च पवनीय आसन पर प्रतिष्ठित करती है। यह काम सहज में ही नहीं हो जाता, इसके लिए दीर्घकालीन प्रयत्न और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है। इस सधर्प के लिए वह हमें तैयार करती है। वह केवल व्यक्तिगत उत्थानके लिए ही प्रेरित नहीं करती, उत्थानको व्यक्तिगत सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित मानती है। इसके लिए उपाय भी सुझाते हैं। तप, त्याग की बलि—आहुति माँगती है। अपनी सृजक शक्तियों को सतेज रखने का आह्वान करती है। कमल की तरह भोग में त्याग की परम्परा को निभाते हुए, सभी स्त्रियों में मातृ-भावना की ज्योति जलाकर काम-तत्व पर विजय प्राप्त करके आन्तरिक सत्ता को जाग्रत करने की प्रेरणा देती है। इसका उद्देश्य मानवीय मूल्यों की परिधि को हटाकर दिव्यता के दर्शन कराना है। मातृ-शक्ति की दिव्य किरणें हमें शक्ति से प्राप्तावित करती हैं और झकझोर कर कहती हैं—तुम हाड-मांस के पुनले मात्र नहीं हो, तुम सज्जेव शक्ति-सम्पन्न चेतन आत्मा हो, शक्तियों का स्रोत है। नुममें वह शक्तियाँ निहित हैं कि विश्व के किसी भी असम्भव कार्य को सम्भव बना सकते हो। गति, सक्रियता, सजीवता

तुम्हारे विशेषण हैं, अस्त्र शस्त्र हैं, इन्हें उठाओ और जीवन का सघर्ष आरम्भ करो, जो रुकावटें आये उन्हें दूर करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते चलो। यही जीवव है। तुम शक्ति, आशा और माहस के रूप हो, अतः जीवन का निखार करो।

शक्ति-उपासना का रहस्य—

शक्ति उपासना विभिन्न उद्देश्यों से की जाती है। वास्तविकता की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाना है। शक्ति अणु-अणु में व्याप्त है। विश्व की सभी वस्तुओं में क्रियाशीलता का कारण यही है। यही उनका पालन-पोषण करती है। इसलिए इसे जगज्जननी कहा जाता है। इसकी सच्ची उपासना इसे व्यापक रूप से अनुभव करना है। सृष्टि की रचना कर्तव्य बुद्धि से करना तो आवश्यक है। परन्तु अपनी पत्नी के अतिरिक्त विश्व की किसी भी अन्य स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखना दुर्गा का अग्रमान और अवहेलना है। दुर्गा अन्धभवनों से प्रसन्न नहीं होती, जो उनके लिए पशुओं का बलिदान करें, बच्चे की बलि करे अथवा अपनी जिह्वा काट डालें। उनका वरद हस्त तो उस भक्त के लिए उठता है, जो नारी जाति के प्रति मातृ भाव की पवित्र भावना रखता है। वही शक्ति सम्राट है। ब्रह्मचर्य से शक्ति की सुरक्षा होती है। भोग और उमकी भावना से उसका अपव्यय होता है। शक्ति विकास के साधन अपनाए जाये और अनावश्यक व्यय को रोका जाए, यही शक्ति के सञ्चय का उपाय है। दुर्गा विद्या की देवी है, वह बुद्धिमानोंकी ही वरदान देती है। बुद्धिमान वहा है जो अपने शक्ति-कोशों को सुरक्षित रखना जानता है।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि सभी शक्ति के विरोधी तत्व हैं, शत्रु है। दुर्गा इनको नष्ट करके इनकी मुण्डमाला गने में धारण करती है, तभी तो वह विह की सवारी करती है और राक्षसों का दलन

करती है । जो इन्द्रियो के गुलाम हैं, काम के वश में होकर तरह-तरह का नाच नाचते हैं, जिह्वा के वश में होकर शरीर को जर्जर करते रहते हैं, तामसिक व राजसिक आहार से मनोवृत्तियों को तमोगुणी व रजोगुणी बनाते रहते हैं, उनका मन निरन्तर अशांत रहता है । दुर्गा की अपार स्तुति करने वाले ऐसे भक्त उनसे निराश ही होते हैं और कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकने । इन्द्रियो को वश में करके उनका सदुपयोग करने वाले ही सच्चे शक्ति-उपासक मान जाते हैं । इन्हे ही दुर्गा की सिद्धि प्राप्त होती है ।

यह है शक्ति-माधना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, जिसे अपना-कर हम विकास-पथ की ओर उन्मुख हो सकते हैं ।

• • •

नारी रूप में शक्ति-उपासना क्यों ?

कई व्यक्ति पूछने हैं—महाशक्ति को नारी के रूप में क्यों पूजा जाता है, जबकि अन्य सभी देवता नर-रूप हैं ?

इस शक्ति के मूल आधार में मनुष्य की वह मान्यता काम करनी है, जिसके अनुसार नर को श्रेष्ठ और नारी को निकृष्ट माना गया है। घरों में नारियाँ नर की सेवा-पूजा करती हैं, उसके अधिकार-आधिपत्य में रहनी हैं, उन्हें छोटा या हेय माना जाता है। स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अमान मानने हैं। किसी स्त्री अफसर के नीचे पुरुष कर्मचारियों को काम करना पड़े, तो बाहर से कुछ न कहते हुए भी कुडकुड़ाते हैं। किसी घर में स्त्री की बात चलती न, पुरुष अनुगामी हो तो उसका मखौल उड़ाया जाता है। नर को नारी के प्रति जो यह सामन्तकालीन निरस्कार बुद्धि है, उसी से प्रभावित होकर उसे यह सोचना पड़ता है कि वह नारी-शक्ति की पूजा क्यों करे ? जब नर देवता मौजूद है, तो नारी के अग्रे मस्तक झुकाकर अपने नरत्व को हेय क्यों बनाया जाय ?

भगवान को नारी-रूप में पूजने से किसी की कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही है। माना के हृदय में अपार वात्मन्य है। जितनी करुणा एवं ममता माना में होती है, उतनी और किसी सम्बन्धी में नहीं। उपासना के लिए भगवान के किसी घनिष्ठ सम्बन्धी रूप में ही मान्यता प्रदान

करनी पड़ती है। निराकार ब्रह्म का ध्यान सम्भव नहीं, ध्यान के बिना उपासना नहीं हो सकती। निराकारवादी भी ध्यान-उपासना प्रयोजन के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं। प्रकाश भी आखिर पचभूतों के अन्तर्गत आता है। ध्यान भूमिका में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रकाश-बिन्दु एवं मूर्ध्न्य मण्डल का एक आकार बन ही जाता है, इसलिए उपासना में कोई न कोई आकार तो निर्धारित करना ही पड़ता है। इस आकार के साथ जितनी ही आत्मीयता, ममता, घनिष्टता होगी, उतना ही मन लगेगा और चित्त एकाग्र होगा और भावनात्मक तन्मयता की ओर दृष्टि के साथ भगवत् प्राप्ति की ओर प्रगति होनी चली जायगी।

जिनके साथ घनिष्टता स्थापित की जाती है, उनके साथ कोई रिश्ता बन जाता है। रिश्ते का अर्थ है—अथाधारण घनिष्टता। परिवार के सदस्य, कुटुम्बी और कन्याओं के आदान-प्रदान में सम्बन्धित रिश्तेदार कहलाते हैं। उसमें अतिरिक्त लोगों को मित्र कहते हैं, गुरुजन भी। इन्हीं वर्गों में स्वाभाविक प्रेम बढ़ता है। इनके सान्निध्य से सुख और त्रियोग में दुःख मिलता है। भगवान् को प्राप्त करने के लिए उससे प्रेम-सम्बन्ध टूट करना होता है और उसके लिए उसे कोई प्रेम-पात्र कुटुम्बी रिश्तेदार अथवा मित्र जैसा सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। इस सम्बन्ध—मान्यता—में जितनी अविक आत्मीयता होगी, उतनी ही प्रतिक्रिया भी मिलेगी। गुम्बज अथवा कुँ की प्रतिव्वनि की तरह हमारा प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम एवं अनुग्रह बनकर हमारे पास वापिस लौटता है। जिस स्तर का भाव या प्यार हम भगवान् के प्रति व्यक्त करते हैं उसी के अनुष्य दीवार पर मारी हुई खड की गेद की तरह लौटकर भगवान् की अनुकम्पा हमारे पास वापिस आ जाती है। इसलिए भगवान् को कोई न-कोई सम्बन्धी मानकर चलना होता है। उस मान्यता के आधार पर ही हमारी उपासना में प्रगति होती है।

भगवान् से कोई भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। उस

एक को ही किसी भी आत्मीय भावना के साथ देखा जा सकता है । उसके लिए हर मान्यता उपयुक्त है । कहा भी है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव भ्राता च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव, ॥

प्रार्थना में जिन सम्बन्धों को गिनाया गया है, उनमें माता का सम्बन्ध सर्वप्रथम है । वह सर्वोपरि है, क्योंकि माता से बढ़कर परम नि स्वार्थ, अतिशय कोमल करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई रिश्ता हो ही नहीं सकता । जब हम भगवान को माता मानकर चलते हैं, तो उसकी प्रतिक्रिया किसी सहृदय माता के वात्सल्य के रूप में ही उपलब्ध होती है । इस उपलब्धि को पाकर साधक धन्य हो जाता है ।

पिता से माता का दर्जा सौ गुना अधिक बताया गया है । यो पिता भी बच्चों को प्यार करते हैं, पर उस प्यार का स्तर माता की तुलना नहीं कर सकता । इसलिए सबसे भगवान को माता मानकर चलना अपने ही हित में है । इसमें अपने को ही अधिक लाभ होता है ।

नारी के प्रति मनुष्य में एक वासनात्मक दुष्टता भी जड़ जमाए बैठी रहती है । यदि इसे हटाया जा सके—नर और नारी के बीच काम-कौतुक की कल्पना हटाई जा सके, तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावनात्मक रसायन बन सकती है । नर और नारी के बीच 'रयि' और 'प्राण' विद्युत-धारा-सी बहती है, उनका सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है, जैसा कि बिजली के 'नेगेटिव' और 'पोजेटिव' धाराओं के मिलन से विद्युत संचार का माध्यम बन जाता है । माता और पुत्र का मिलन एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की आध्यात्मिक विद्युत-धाराओं का सृजन करता है । मातृ-स्नेह से विहीन बालकों में एक बड़ा मानसिक अभाव रह जाता है, भले ही उन्हें अन्य साधारण सुविधाएँ कितनी ही अधिक क्यों न हों । पत्नी, बहिन, पुत्री आदि के रूप में भी नारी नर को महत्वपूर्ण भावनात्मक पोषण प्रदान करती है और उसकी मानसिक

अपूर्णता को पूर्ण करने मे सहायक होती है । यह सासारिक स्तर की बात उपासना के भावना-क्षेत्र में भी लागू होनी है । माता का नारी-रूप ध्यान भूमिका मे जब प्रवेश करता है, तो उसमे प्राण की एक बड़ी अपूर्णता पूरी होती है ।

युवती नारी के रूप मे माता का ध्यान करके हम नारी के प्रति वासना-दृष्टि हटाकर पवित्रता का दृष्टिकोण जमाने का अभ्यास करते हैं । इसमें जितनी ही सफलता मिलनी है, उतना ही बाह्य जगत में भी हमारा नारी के प्रति वासना-दृष्टि रखने मे मन हटता जाता है । इस प्रकार नर-नारी के बीच जिम पवित्रता की स्थापना हो जाने पर अनेक आत्मिक बाधाएँ, कुंठाएँ एवं विकृतिर्या दूर हो सकती हैं, उसका लाभ सहज ही मिलने लगता है । माता का ध्यान एक वृद्ध नारी का नहीं वरन् एक युवती का होता है । युवती मे यदि उत्कृष्टता की तथा पवित्र दृष्टि रखी जा सके, तो समझना चाहिए कि आत्मिक स्तर मिद्ध योगियो जैसा तेजस्वी बन गया । उपासना में हम महाशक्ति को नारी रूप देकर इस एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है ।

भावा-विज्ञान की दृष्टि मे शक्ति स्त्रीलिंग है । इसलिए यदि ध्यान-कल्पना मे उसे नारी रूप में निश्चित किया जाय, तो उसमे अनुचित कुछ भी नहीं है । सब तो यह है कि शक्ति-नत्व को स्त्री-गुण के वर्गों मे विभक्त ही नहीं किया जा सकता । यह विभाजन तो शरीरधारी प्राणियों में मन्तानोत्पत्ति प्रयोजन के लिए होता है । दिव्य शक्तियाँ न तो शरीरधारी हैं और न उन्हें प्रजनन ही करना है, ऐसी दशा मे उनमें वास्तविक लिंग-भेद नहीं । उन्हें नर-नारी के रूप मे तो ध्यान सुविधा के लिए ही चित्रित किया जात है अथवा भावा मे जिस प्रकार का लिंग प्रयुक्त होता है, उनी आश्रय पर उनका शरीर बना दिया जाता है । यह वस्तु वास्तविक नहीं वरन् मानवी कल्पना का खेल है ।

अग्नि स्त्री लिंग है, तेजस् पुल्लिंग है । शब्दों में लिंग-भेद है, पर वस्तु एक ही है । वायु स्त्री-लिंग और मरुत पुल्लिंग । बात एक ही है, पर शब्दों के आधार पर लिंग बदल गया । उपवन पुल्लिंग है, वाटिका स्त्री-लिंग—एक ही चीज के दो स्वरूप । शैत्या और पलग एक होते हुए भी लिंग पृथक् है । चन्द्रमा को हिन्दी में नर और अंग्रेजी में नारी मानते हैं । वस्तुतः चन्द्रमा एक ग्रह मिथुमात्र है, वह नर है न नारी । भाषा और कल्पना में उसे नर-नारी के रूप में स्वीचा जाता है । परब्रह्म की सर्वोपरि शक्ति को स्त्री कहा जाय या पुरुष, यह हमारी भाषा और कल्पना पर निर्भर है । वस्तुतः वह लिंगभेद से परे है । उपासना में शक्ति की तुलना नारी रूप में करके हम अपना ही साधनात्मक एवं भावनात्मक प्रयोजन पूर्ण करते हैं । अतएव इसमें सन्देह तथा विवाद की कोई गुञ्जाइश नहीं है ।

नर की जननी होने के कारण वस्तुतः नारी उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं पवित्र है । उसका स्थान सम्भवतः बहुत ऊँचा है । माता का पूज्य स्थान उससे भी ऊँचा है । पुरुष की अपूर्णतायें नारी के स्नेहक सिचन से ही दूर होती हैं । इसलिए यदि नारी के रूप में हमारा उपास्य-इष्ट हो, तो वह एक अचिन्त्य ही है । अनादि काल से भारतीय धर्म में ऐसी मान्यता चली आ रही है, माना कि हो नहीं पत्नी को भी पति से अधिक एवं प्रथम स्थान मिला है । पति-पत्नि के सम्मिलित नामों में पत्नी की प्राथमिकता है । लक्ष्मी नारायण, सीता राम, राधा-श्याम, उमा-महेश, शची-पुरन्दर, माता-पिता, गंगा-सागर आदि नामों में पत्नी को ही प्राथमिकता मिली है । कारण उनकी वरिष्ठता ही है । इस तरह से भी यदि देवता का पुल्लिंग स्वरूप अधिक उत्तम है या स्त्री लिंग स्वरूप, तो उसका सहज उत्तर नारी के ही रूप में आयेगा । ऐसी दशा में यह शका करना उचित नहीं ।

शक्ति की नारी का रूप देकर उसे जो पूज्य स्थान पर बैठाया गया है, उसमें कुछ अनुचित नहीं हुआ है ।

उपरोक्त तथ्यो की पृष्टि में अगणित शास्त्रीय प्रमाण मिलते हैं, उनमे मे कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

अचिन्त्यस्याप्रमेस्य निर्गुणस्य गुणात्मन ।

उपासकाना मिद्वयर्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥

“परब्रह्म की सभी शक्तियाँ अचिन्त्य और निर्गुण हैं । उन स्वरूपो को उपासको को समझाने के उद्देश्य मे ऋषियो ने उनके रूपो की कल्पना करके मूर्तियो को बनाया है ।”

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गा प्रभवत्यज ।

दृश्यादृश्य विभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा ॥

नाऽह नारी पुमाश्चाह न क्लीव सर्गसक्षये ।

सर्गे सति विभेद स्यात् कल्पितोऽयं धिया पुन ॥

अह बुद्धिरह श्रोत्रं च घृति कीर्ति स्मृतिस्तथा ।

श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥

—देवी भागवत

“उत्पत्ति के समय सृष्टि के अर्थ से ही भेद प्रतीत होता है ।

यह दृश्य अदृश्य का विभेद—द्वैतवाद सदैव रहता है अर्थात् सृष्टि-दशा मे ब्रह्म और शक्ति दोनो स्वतन्त्र रूप से प्रकट होते हैं । प्रलय हो जाने पर न मैं स्त्री हूँ, न पुरुष और न क्लीव हूँ । केवल सृष्टिकाल मे ही बुद्धि द्वारा कल्पित भेद-दृष्टि में आता है । सृष्टि की विकास-अवस्था में ही बुद्धि, श्री, घृति कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, पिपासा और क्षमा में हो हूँ ।”

अरूप भावनागम्य पर ब्रह्म कुलेश्वरि ।

अरूपा रूपिणी कृत्वा कर्मकाडरता नर* ॥

—कुलाण्व तन्त्र

“वह ईश्वरी शक्ति अरुण और केवल भावनागम्य है । पर कर्मकाण्ड में मलगत मनुष्य उस अरुण में से ही रूप की कल्पना कर लेते हैं ।”

जगन्माता च प्रकृति पुरुषश्च जगत्पिता ।

गरीयसीति जगता माता शतगुणं पितु ॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

“जगज्जननी प्रकृति है और जगत का पिता पुरुष है । जगत में पिता से सौ गुना अधिक महत्त्व माता का है ।”

न बाला न च त्व वयस्था न वृद्धा,

न च स्त्री न षण्ढ पुमानैव च त्वम् ।

सुरो नासुरो नरो वा नारी,

त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

—महाकाली स्तवन

“हे महामाया ! न तुम बालिका हो, न वयस्क हो, न वृद्ध हो, स्त्री, बलीव और पुरुष भी तुम नहीं हो, न देवता हो, न दानव हो, न नर हो, न नारी हो, तुम केवल परब्रह्मस्वरूपिणी हो ।”

अचिन्त्यापि साकार शक्तिस्वरूपा,

प्रतिव्यक्त्यधिष्ठान सत्त्वेक मूर्ति ।

गुणातीतानिर्द्वन्द्व बोधकगम्या,

त्वमेका परब्रह्म रूपेण सिद्धा ॥

—महाकाली स्तवन

“तुम अचित्तनीय होते हुए भी साकार मूर्तिरूपा हो । प्रत्येक प्राणी में मत्स्वगुण रूप में विराजमान रहती हो तथा गुणातीत हो । केवल तत्त्वज्ञान से ही तुम जानी जाती हो । तुम परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हो ।”

त्व स्त्री त्व पुमानसि त्वं,

कुमार उन वा कुमारी ।

त्व जीर्णो दण्डेन वचसि त्व,
जातो भवति विस्नतो मुख ॥

—श्वेत० ४.३

“तू स्त्री है, तू पुरुष भी है, तू ही कुमार और कुमारी है तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है ।”

सा च ब्रह्म स्वरूपा च नित्या स च सनातनी ।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नी दाहिका स्थिता ॥
अतएव हि योगोन्द्रे स्त्री पुम्भेदो न मन्यते ।
सर्वं ब्रह्ममय ब्रह्मन् शब्दत् सदपि नारद ॥

—देवी भाग० ६।१।१०।११

“वही ब्रह्म प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी है । हर-ब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण सम प्रकृति में निहित हैं जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति सदैव रहती है । इसी में परम योगगण स्त्री-पुरुष में भेद नहीं मानते । हे नारद ! वे कहते हैं कि सत्-असत् जो कुछ भी है, सब ब्रह्ममय है ।”

‘कामधेनु तन्त्र’ में कहा है कि—

युवती सा समाख्याता सा महाकुण्डली परा ।

अर्थात् “वह परा जैसी महाकुण्डली युवती के रूप में कहो गई है ।”

स तस्मिन्नेवाकशे स्त्रियामाजगाम बहुशोभ मानामुमा
हैमवतीम् ।

“इन्द्रादि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने को ब्रह्मस्थान में जो प्रतिमा प्रकट हुई, उसी स्त्री-मूर्ति का दर्शन इन्द्र को हुआ ।”

जगद्धात्री महामाया ब्रह्म रूपा सनातनीम् ।

दृष्ट्वा प्रमुदिता सर्वे देवताप्सर किन्नरा ॥

—हृद् विष्णु-पुराण

“जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी, महाशक्ति को देखकर देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर सब परम हर्षित हुए ।”

जयखिला सुराराध्ये जय कामेशि कामदे ।

जय ब्रह्ममयि देवि ब्रह्मानन्द रसात्मिके ॥

—ललितोपाख्यान ८।२

“हे महादेवि ! तुम ही समस्त देवताओं की आराध्या हो, तुम्हीं सर्व कामनाओं की ईश्वरी और उनको पूर्ण करने वाली हो ।”

त्वमेव सवजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।

त्वमेवाद्या सृष्टिविधो स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥

कार्यार्थे सगुणा त्व परमानुग्रहाविग्रहा ।

परब्रह्म स्यरूपा त्व सत्या नित्या सनातनी ॥

तेज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।

सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वधारा परात्परा ॥

सर्वबीज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।

सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्व मङ्गल मङ्गला ॥

—ब्रह्मवैवत पु० प्रकृति० २।६।७।१०

‘तुम्ही विश्व-जननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्ही, सृष्टि-उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो । यद्यपि वस्तुतः तुम निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो । तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो । परम तेजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रय-रहित हो । तुम सर्वज्ञ, सब प्रकार से मंगल करने वाली और सर्वमंगलों की मंगल हो ।’

कथं जगत् किमर्थं तत् करोषि के न हेतुना ।

नाहं जानामि तद्देव यतोह हि त्वदुद्भवः ॥

—शक्ति-दर्शन

“हे देवी ! तुम किसके लिए, किस हेतु जगत् की सृष्टि करती हो—मैं इस बात को नहीं जानता, क्योंकि मैं तुमसे उत्पन्न हूँ ।”

माया खपाया कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वराबुभौ ।

—शक्तितत्त्व विमर्शिनी

“जीव और ईश्वर दोनों माया रूपी कामधेनु के दो बछड़े हैं ।”

उपरोक्त प्रमाणों में पद्मभू को नारी-रूप में चित्रण करने का रहस्य प्रकट किया गया है। नर और नारी में स किसे प्राथमिकता मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में नृत्व-विज्ञान का, जीवविज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता है। शोधकर्ता इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राथमिकता नारी को ही है। पहले भूमि बनी, बीजों का आविर्भाव इसके उपरान्त हुआ।

नृत्ववेत्ता ‘हेबलाक ऐग्लिस’ इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव जाति का आरम्भ नारी से ही होना है। पुरुष का अस्तित्व पीछे प्रकाश में आया। उन्होंने लिखा है—

“प्राथमिकता और प्रकृति के नियमानुसार पहले नारी की ही उत्पत्ति हुई। सावागुणनया प्राणीनाथ की उत्पत्ति नारी जाति पर ही अवलम्बित है। प्राणी जगत् की सृष्टि के लिए पुरुष की आवश्यकता ही नहीं बरखा गीली थी। राज और वीर्य के संयोग से विभिन्न गुणों द्वारा जावन-शक्ति को परिपुष्ट एवं प्रस्फुटित करने के हेतु लाभ की दृष्टि से पुरुष जाति का पीछे से विकास हुआ।”

नारी में देवत्व की मात्रा पुरुष की तुलना में कहीं अधिक है। इसलिए जहाँ पुरुष को अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता होने पर ही पूज्य पद एवं सम्मान मिलता है, वहाँ नारी को उसकी जननी, भगिनी, कन्या आदि विशेषनाओं के कारण जन्मजात सम्मान मिल जाता है। उनके हृदय में वह विशालता विद्यमान है जिसके आधार पर शिशु को अपने शरीर का रस निचोड़कर प्रदान कर सकती है।

इन्ही विशेषताओं के कारण मानवी होते हुए भी उसे देवी कहा जाता है। अघिकाश स्त्रियों के नाम के अन्त में देवी पद जोड़ा जाता है जैसे कि शकुन्तला देवी, उर्मिला देवी, भगवन्तो देवी आदि।

शास्त्र कहते हैं—

स्त्रीषु प्रीतिविशेषेण स्त्रीष्वपत्य प्रतिष्ठितम् ।

धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोका प्रतिष्ठिता ।

—चरक संहिता—चि० स्था० अ० २

“प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियों में ही होता है। सन्तान की जननी भी वे ही होती हैं। धर्म स्त्रियों में रहता है, लक्ष्मी भी स्त्रियों में रहती है। इसलिए सनार स्त्रियों में ही स्थिर है।”

नारी-रूप में परमात्मा का दिव्य दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं। इस प्रकार की दिव्य दृष्टि जिसे प्राप्त है, उसे सच्ची आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त हुई समझनी चाहिए। शक्ति-उपासना में नारी-प्रतिमा को वन्दनीय मानकर मनुष्य को पवित्रतम बनाने का प्रयत्न किया गया है। नारी वस्तुतः भूनिर्माण महामाया ही है। देखिए—

जननी जन्म काले च स्नेह काले च कन्यका ।

भार्या भोगाय सम्पृक्ता अन्तकाले च कालिका ।

एकैव कालिका देवा विहरन्ती जगत्त्रये ॥

“यही महामाया जननी रूप में हमकी जन्म देती है, कन्या-रूप में हमारी स्नेह की पात्र बनती है, भार्या के रूप में भोगदात्री बन जाती है और अन्त समय में कालिका के रूप में हमारी इहलीला सवरण कर देती है। इस प्रकार एक ही महादेवी तीनों लोको में विचरण करती रहती है।”

तन्त्र-ग्रन्थों में नारी को भगवान की भूनिर्माण प्रतिमा मानकर उसकी विधिवत् पूजा करने का विधान है। विभिन्न आयु तथा म्यति की नारियों को विभिन्न देवियों के रूप में पूजनीय मानकर उनका

वन्दन अर्चन किया जाता है । ब्राह्मण भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य माना जाता है । नव-रात्रियों मे, गुरुवरणों के अन्त मे तो विशेष रूप से कन्या-भोजन कराने की ही परम्परा है । ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्या एवं सेवा के आचार पर ही ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं, पर कन्याओं मे वह तत्त्व जन्मजान रूप से स्वभावतः अनायास ही विद्यमान रहता है ।

कुमारी कन्याओं तक ही यह दिव्य भाव सीमित नहीं माना गया है । वरन् उनका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । प्रत्येक नारी मे देवत्व की मान्यता रखना और उनका प्रति प्रतिबन्धन श्रद्धा रखना एवं वैसा ही व्यवहार करना उचित है, जैसा कि देवी देवताओं के साथ किया जाता है । नारीमात्र को भगवती की प्रतिमायें मानकर जब साधक के हृदय को पवित्रता का अभ्यास हो जाय, तो समझना चाहिए कि उसके लिए परम सिद्धि की अवस्था अब समीप है । शास्त्र उसी प्रकार की मनोभूमि बनाने का हमें निर्देश करते हैं और बताते हैं—

सर्वस्त्रीनिलया, जगदम्बामय पश्य—स्त्रीमात्रमाविशेषत ।

“स्त्री-मात्र को जगत्माता और जगत्गुरु मानकर पूजो ।”

विद्यासमस्तास्तव देवि भेदा,

स्त्रिय. समस्तासकला जगस्तु ।

स्तर्पकया पूरितमम्ब वैतत्,

वास्ते स्तुति स्तव्य परा परोक्ति ॥

“इस सम्पूर्ण ससार मे जो परा-अपरा विद्याएँ हैं, सो आपका ही भेद हैं । इस ससार मे समस्त नारियाँ आपका ही भेद हैं । ससार मे समस्त नारियाँ आपका ही रूप हैं ।”

या काचिदङ्गना लोके सा मातृ कुलसम्भवा ।

कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनिताना व्यतिक्रमात् ॥

स्त्रिय शतावरावाञ्छेत पुष्पेणापि न ताडयेत् ।

दोषान्त गणयेत् स्त्रोणा गुणानत्र प्रकाशयेत् ॥

“दम सरार मे ओ गी कोई नारी है, व मत्र माता क समान होती है अर्थात् मानव्य क्षति सम्भव न होने क कारण मानवम आदर की पात्र होती है । यदि स्त्रियों का सम्मान नहीं होता है और कोई भी व्यक्तिक्रम किया जाता है, तो कुन्यामिनी कुविन हो जाती है । यदि स्त्री क गो अपमान हो, तो भी उस पुत्र में भी ताड़ित नहीं करना चाहिए । स्त्रियों क योगों को भी ध्यान में रखी जाना चाहिए और उनक विशेष गुणों का ही प्रकाशन करते रहना चाहिए ।”

यत्र नार्यरतु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र दधता ।

यत्र नार्यो न पूज्यन्ते दमशानं तत्र वीरुहम् ॥

—मनु

“जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ शान्ति निवास करता है, जहाँ नारी का तिरस्कार होता है, वहाँ घर निक्षय हो क्षयान हो ।”

रथीणा निन्दा प्रहारं च कोटितय चा प्रिय वच ।

आत्मनो हितमान्विच्छन्देवो भक्ते विवर्जयेत् ॥

“अपना कल्याण चाहते राजा, माता का उपासक स्त्री की निन्दा न करे, न उन्हें मार, न उनसे छल करे, न उनका भी दुलाय ।”

नारी मात्र के प्रति उच्च भावना रखने और उनक साथ सहृदय सदृश्यवहार करने से व्यक्ति एवं समाज का सर्वांगीण उत्कर्ष हो सकता है । भावनात्मक परित्रना से बढ़कर मनुष्य के पास और कोई श्रेष्ठता हो नहीं सकती ।

जब हम भगवान का माता के रूप में पूजते हैं तो वे भी हमारे लिए माता जैसा वास्तव्य लेकर प्रस्तुत होते हैं । कहना न होगा कि पिता की तुलना में माता का दृश्य आत्यन्तिक कोमल होता है । वह अपने पुत्र एवं भक्त के प्रति सहृदय ही करुणाग्रं हो उठती है । माता की करुण लेने वाला अपेक्षाकृत मंदैव ही अधिक लाभ में रहता है । ऐसे उदाहरण भी हैं—

पिते वत्वत्प्रेयाजननि परिपूर्णागसि जने ।
हित स्त्रीनी वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधी ॥
किं येतन्निदोष व इह जगतीति त्वमुचितं ।
रूपायै विस्वार्यै स्वजनयसि माता तद सिन ॥

—पराशर भट्ट

“परम पिता परमात्मा जब अपराधी जीव पर पिता के समान क्रुपित हो जाते हैं, तब आप ही उन्हें नमस्कारों से कहें कि—यह क्या करते हो ? इस ममार में पूर्ण निर्दोष कौन है ? उनका क्रोध शान्त कर आप ही उनमें दया उपजाती हैं । इसलिए आप ही हमारी दयामयी माता हैं ।”

पुस्त पतित देवी धारण्या वायस तदा ।
तच्छिर, पादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥

—रामायण

“जब काकरूपी जयन्त तीनों लाकों में आश्रय न पाकर रामचन्द्र जी की शरण आकर दूर पड़ गया, तो जानकी जी ने उसका सिर रामचन्द्र जी के पैरों में रखकर उसकी रक्षा की प्रार्थना की ।”

अस्तु, नारी को हेय या छोटा मानकर उसे पूजा के अयोग्य होने की कुशका मन में नहीं उठने देनी चाहिए और न यह सोचना चाहिये कि पुल्लिंग देवता का पूजन मातृ पूजन से अधिक उत्तम है । माता ही प्रथम देवता है । माता की शरण लेकर हम अपने ऊपर चढ़े हुए चिन्ताओं, कुण्ठाओं, दैत्य दुर्भावों एवं शोक-सतापों से छुटकारा पा सकते हैं ।

कुमारी-पूजन का उद्देश्य

आधार और उद्देश्य—

कुमारी-पूजन का महत्व भारतवर्ष में प्राचीन काल से प्रतिष्ठित रहा है। भारत अध्यात्मवादी देश है। प्रत्येक क्रिया जिसका आध्यात्म से सम्बन्ध है, यहाँ उच्च सम्मान की पात्र रही है। जहाँ पेड़, पौधे और जलाशयों तक की पूजा-अर्चा होनी हो, वहाँ सात्विकता की प्रत्यक्ष मूर्ति—कुमारी की कैसे उपेक्षा की जा सकती है। उपे उच्च आपन पर बिठाना हमारे उच्च मिथ्यात्व का ही प्रतीक है। देवी-देवताओं की आराधना में हमारा उद्देश्य ईश्वर के किन्हीं विशिष्ट गुणों को अपने से ओत-प्रोत करना होता है। जब मूर्ति-पूजा से इन गुणों के आकर्षण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं, तो क्रियाशील आराध्यता शीघ्र फलदायी सिद्ध हो सकता है।

शान्त्रो में ईश्वर को सनातन-कुमारी माना गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।३) में ईश्वर को स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी सभी की सज्ञा दी गई है—

त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी ।

क्योंकि—

तदेवाग्निस्तदादिव्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।

तदेव शक्र तद् ब्रह्म तदायस्तत् प्रजापति ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।२

“वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही नक्षत्र है, वही जन और प्रजापति है तथा ब्रह्म भी वही है ।”

मदमें विभु को देखने वाला कुमारी में भी अपने इष्टदेव के वर्णन करता है । एक विद्वान् ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में अपने भावों को अभिव्यक्त किया है—

“ईश्वर ही सनानन कुमारी है, जो खिले हुए कमलों के गुच्छे के समान नवीन और कोमल है और जिसके नेत्र-रूपी कमल विश्व-रूपी जल में तैरते रहते हैं । वह मनुष्यों की ओर प्रेमपूर्ण और करुणा भरी दृष्टि से देखती है और उसकी वाणी में सन्ध्याकालीन मन्द-मन्द वायु का सुकोमल मीठा भरा हृषा है । जब मनुष्य की आँखें उसकी आँखों के स्पर्श में आती हैं और उसके अग्रो पर धिरकने लगते हैं, तब वह उसकी अत्मा को अपने में और अपनी आत्मा का उसके अन्दर देखने लगता है । यहाँ तक कि उसका पुरुष-भाव भी मिट जाता है और समार के सभी पदार्थ मधुर और कोमल हो जाते हैं ।”

ईश्वर की कुमारी के पवित्र रूप में उपासना करना एक विशिष्ट जीवन पद्धति है, जो नैतिक व आध्यात्मिक गुणों का विकास करने के साथ-साथ मनोविकारों और दुःप्रवृत्तियों के शमन में भी महायक सिद्ध होती है । ऐसा मात्रक नारी को भोग की सामग्री नहीं, पवित्रता की मूर्ति मानता है । जहाँ भी इसके दर्शन होते हैं, उसका मस्तक स्वतः झुक जाता है । इससे विपरीत जिम मन में नारी के प्रति बुरे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, वह आत्मघाती तो है ही, सामाजिक न्याय से भी वह पापी ठहरता है । वह अपने शरीर, मन, आत्मा, समाज और राष्ट्र सभी के साथ विश्वामघात करता है । त्रिषय-वासनाओं का गीता में इस प्रकार दुष्परिणाम घोषित किया है—

“विषयो का चिन्तन करने वाले पुरुष का इन विषयों में सग बढ जाता है । फिर इस ढंग से यह वासना उत्पन्न होती है कि हमको

काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और इस (काम की तृप्ति होने में विघ्न होने से) काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होनी है ; क्रोध से सम्मोह अर्थात् अविवेक होता है, सम्मोह से स्मृति-भ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से (पुरुष का) सर्वस्वनाश हो जाता है ।” (२।६२-६३)

ऋषि मानव मन का विश्लेषण और प्रथम चरण करके इस परिणाम पर पहुँचे थे कि पाचारण व्यक्तियों में पुराने सम्झौते वत पशु-भाव का आविष्ट रहना है थोड़ा-ना भी उत्तेजक कारण मिलने पर वह उस ओर पवृत्त होने लगते हैं, अतः उन्हें एक मनोवैज्ञानिक मोड़ देना ही उचित है । व्यवहार में देखा गया है कि काम जीवन के किसी भी मोड़ पर व्यक्ति को पथभ्रष्ट कर सकता है । बड़े-बड़े ऋषि भी इसका शिकार हो चुके हैं । इससे तो तभी बचा जा सकता है, जब व्यक्ति का मन पूर्ण रूप से सस्वारित हो चुका होता है और वह अपने चारों ओर सत्य-शिव-सुन्दर के ही दर्शन करता है । नारी को पवित्र रूप में देखना एक उच्च साधना है, जो उसे आत्मिक उत्थान की ओर तीव्र गति से ले जाने में सहायक होता है । देवी का उपामक पनन में सुरक्षित रहना है यह साधना की आवश्यक प्रक्रिया है । यदि इसका पालन न हो सके, तो मार्ग में अनेकों प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न होती रहती हैं ।

शक्ति-रूपिणी—

कुमारी शक्ति, सिद्धि, तेजस्विता, सात्विकता, पवित्रता, शालीनता व कोमलता की प्रतिमूर्ति है । आसुगी तत्त्व उसमें पनप नहीं सकते । यदि वह ऐसा साहम करते हैं, तो वह उनका भक्षण कर जाती है, उन्हें नष्ट कर देती है, उसका तेज इतना प्रचण्ड है । योगिनी-तन्त्र में इस सम्बन्ध में एक प्रेरक कथा आती है—

ततः काली करास्या द्विजकन्यास्वरूपतः ।

गत्वा कोलापुर देवी कोलामुर समीपत ।

तमयाचत् तद्भक्ष्यं कुमारी दत्तं पुङ्गवम् ॥

‘एक समय की बात है कि करानवदना महाकाली ने ब्राह्मण कन्या का रूप धारण कर कोनापुर के कोलापुर में पहुँचकर उस दैत्य ने भोजन माँगा ।’

मातृनार्ताविहीनाह सहायपरिविता ।

धुषिताह महाराज भोज्यं मह्यं प्रदीयताम् ॥

वह बोली—मैं माता-पिता विहीना एवं अमहोय कन्या हूँ । हे राजा! मुझे भोज्य पदार्थ दीजिए ।’

तत कोलासुरो देवि मायया परिमोहितः ।

दयया तां करे धृत्वा विवेशान्तःपुरे स्वयम् ॥

“उस कुमारी पर कोलासुर मोहित हो गया और हाथ पकड़कर उस अपने अन्तःपुर में ले गया ।’

उवाच भाज्यं दाम्यामि तुभ्यं तत्ते समीप्सितम् ।

अत्रोपविश वारं त्वमासनं मणिरञ्जितम् ॥

“और कहने लगा—हे बाले! तुम्हारी जो इच्छा हो, वही भोजन मैं तुम्हें दूँगा । तुम इस मणि-जटिन श्रेष्ठ आसन पर आकर बैठो ।’

इत्युक्त्वा सो ददौ भोज्यं नानाविधमनेकशः ।

भुक्त्वा सा सकलं देवि पुरर्देहीति वादिनी ॥

पुनर्ददौ बहुतरं तच्चापि बभुजे स्वयम् ।

नाह तृप्ता वदन्ती तां तदोवाच महासुरः ॥

यथा तृप्तिर्भवेद्वाले तावद्धि कुरुतस्तथा ।

इत्युदोरितमाकर्ण्य कालो वानस्वरूपिणी ॥

कोपं हयं हयं हस्तिनच रथं सैन्यं मवान्धवम् ।

क्षणेन बभुजे काली कोलं चापि महाबलम् ॥

“यह कहकर दैत्य ने अनेक पत्तार के भोजन उसे दिये, बालिका ने उन्हें खाकर कहा—इनसे मैं तृप्त नहीं हुई, अभी और भोजन दो। दैत्य ने फिर बहुत-सा भोजन दिया और उसे भी खाकर बाली कि— मैं इससे भी तृप्त नहीं हुई। यह सुनकर दैत्य कहने लगा कि जिससे तुम्हारी तृप्ति हो सके, वही भक्षण कर लो। यह सुनकर बालरूपिणी काली ने उमका घोष, अश्व, हाथी, रथ, सेना, बान्धव आदि का भक्षण कर कोलासुर का भी भक्षण कर लिया।”

अथासुरास्तथा नाष्टान् दृष्ट्वा विष्णुमुखा सुरा ।

निरन्तरे पुष्पवृष्टि चक्रस्ते ननृतु परम् ॥

जगु सुलालित गीत देवगन्धवाकिन्नरा ।

विद्याधरी देवपत्नी किन्नरीभि समन्तत ॥

“फिर विष्णु आदि देवताओं ने सब शत्रुओं का सहार हुआ देतकर पुष्प-वृष्टि भी। देव, गन्धर्व, किन्नर एवं विद्याधरी किन्नरियाँ और देव पत्नियाँ हर्षातिरेक में नृत्य करने लगी।”

पूजिता तै कमारी सा कुसुमनन्दनोद्भवै ।

सर्वलोकै पूजिता च कुमारी सा दिने दिने ॥

“फिर सबने नन्दन वन में उत्पन्न पुष्प और चन्दनादि से उस कुमारी का पूजन किया। फिर सभी के यहाँ कुमारी की पूजा होने लगी।”

इस कथा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि कुमारी में स्वाभाविक रूप में इतनी शक्ति होती है कि वह भवगुणों व दुष्प्रवृत्तियों को नष्ट कर डालती है। कुमारी-पूजन से साधक में भी यह शक्ति अवतरित होती है। इस शक्ति के विकसित होने पर ही प्रगति का मार्ग प्रशस्त होना सम्भव है। हिन्दू धर्म में कुमारी-पूजन का यही कारण है। तन्त्रों में भी इसे साधना के रूप में अपनाया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साधु-बेला तीर्थ में देखा जा सकता है, जहाँ दोनों नवरात्रों में अष्टमी के दिन

नियमपूर्वक कुमारी-पूजन होता है । ब्राह्मण-भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य मना गया है । नवरात्रियों में, पुरुश्चरणों के अन्त में तो विशेष रूप से कन्या-भोजन करने की ही परम्परा है । ब्राह्मण तो विद्या, तत्पश्चर्या एवं सेवा के आचार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं पर कयाधो में वह नस्त्र जन्मजान रूप में स्वभावतः अनायाम ही विद्यमान रहना है ।

कुमारी-लक्षण—

कुमारी किसे माना जाए ? इस पर शास्त्रों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है । बृहज्ज्योतिषाण्यं, चमस्कन्ध ८, उरामना स्तम्भ ३, अध्याय १२८ में कुमारी का निरूपण किया गया है और पूजा योग्य कुमारी के लक्षण बनाए गये हैं—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं ता विवर्जयेत् ।

गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥

द्विवर्षोत्तरमारभ्य दशवर्षावधि क्रमात् ।

पूजयेत्तत्तत्कार्येषु यथाविध्युक्तमार्गम् ॥

कूमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा च त्रिमूर्तिना ।

चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु राहिणी ॥

षड्वर्षा तु भवेत्काली सप्तवर्षा सु चण्डिका ।

आभवी चाष्टवर्षा तु दुर्गा तु नवमा स्मृता ॥

दशवर्षा सुभद्रा इति नामाभिः परिकीर्तिता ।

तत्तत्कामनया वयोऽवस्था विशेषेण पूजनम् ।

दुःखदारिद्र्यारिद्र्यनानाशाय शत्रूणां नाशहेतवे ॥

“ दो वर्ष की आयु वाली कन्या से लेकर १० वर्ष की अवस्था तक ही कुमारी ही पूजा के योग्य मानी गई है । एक वर्ष की कन्या को गन्ध-पुष्पादि में कोई प्रीति नहीं होती है । अतः वह पूजा के योग्य नहीं होती है । दो वर्ष की कन्या कुमारिका होती है । तीन वर्ष की आयु

वाली त्रिमूर्तिनी कही जाती है। चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी छै वर्ष की कालिका, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नौ वर्ष की प्रवस्था वाली कन्या दुर्गा का अवतार कही जाती है और दस वर्ष की सुभद्रा के नाम के नाटिकों के यहाँ प्रसिद्ध है। तन्त्र सातना में उभी अवस्था वाली कन्या का पूजन करना चाहिए। दुःख और दरिद्रता का नाश करने के लिए तथा शत्रुओं के विनाशार्थ और आयुष्य एवं बल की वृद्धि के लिए कुमारिकाओं का पूजन होता है। उक्त कामनाओं के लिए दो वर्ष की कन्या का अर्चन करना चाहिए।”

ग्रन्थ तन्त्रों में इस प्रकार वर्णन है—

“एक वर्ष वाली बालिका ‘कुमारी’ कहलाती है, दो वर्ष वाली ‘सरस्वती’, तीन वर्ष वाली ‘त्रिधामूर्ति’, चार वर्ष वाली ‘कालिका’, पाँच वर्ष की होने पर ‘सुभगा’, छ वर्ष की ‘उमा’, सात वर्ष की ‘मालिनी’ आठ वर्ष की ‘कुब्जा’, नौ वर्ष की ‘काल सन्दर्भा’, दसवें में ‘अपराजिता’, ग्यारहवें में ‘रुद्राणा’, बारहवें में ‘भैरवी’, तेरहवें में ‘महालक्ष्मी’, चौदह पूर्ण होने पर ‘दीठनाविका’, पन्द्रहवें में ‘क्षेत्रज्ञा’ और सोलहवें में ‘सम्बिका’ मानी जाती है। इस प्रकार जब तक ऋतु का उद्गम न हो, तभी तक क्रमशः संग्रह करके प्रतिपदा प्रादि से लेकर पूर्णिमा तक वृद्धि-भेद से कुमारी पूजन करना चाहिए।”

—रुद्रयामल, उत्तराखण्ड ६ पटल

“आठ वर्ष की बालिका गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या कही गई है। इसके बाद वही महामाया और रजस्वला भी कही गई है। बारहवें वर्ष से तेरह वीसवें वर्ष तक वह सुकुमारी कही गई है।”

—विश्वसार तन्त्र

‘यजमान को चाहिए कि दस कन्याओं का पूजन करे। उनमें से

भी दो वर्ष से लेकर दस वर्ष तक की अवस्था की कुमारियों का ही पूजन करना चाहिए । जो दो वर्ष की आयु वाली है वह कुमारी, तीस वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, छ वर्ष की कालिका, सात वर्ष की वरिडका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नौ वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष मुमूक्षु कह्य गई है । इनका मन्त्रों द्वारा पूजन करना चाहिए । एक वर्ष वाली कन्या को पूजा से प्रसन्नता नहीं होगी । अतः उसका ग्रहण नहीं है और ग्यारह वर्ष से ऊपर कन्याओं का पूजा में ग्रहण वर्जित है ।”

— मन्त्र महोदधि १८ तरङ्ग

‘जो कुमारी को घन्न, वस्त्र, जल अर्पण करता है, उसका वह अन्न मेरु के समान और जल समुद्र के समान अक्षुण्ण और अनन्त होता है । काली-तन्त्र में कहा गया है—सभी बड़े बड़े पर्वों पर अधिकतर पुराण मुहूर्त में और महानवमी की तिथि को कुमारी-पूजन करना चाहिए । सम्पूर्ण कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए कुमारी-पूजन अवश्य करे ।’ वह्नील तन्त्र के अनुसार—“पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, मय और अत्यन्त उत्कट शत्रु को भी नष्ट कर डालती हैं ।” रुद्रयामल में लिखा है—‘कुमारी साक्षात् योगिनी और श्रेष्ठ देवता है । विविद्युक्त कुमारी को अवश्य भोजन करना चाहिए । उस पाद, अर्घ्य कुकुम और शुभ चन्दन आदि अर्पण करके उसकी पूजा करे ।”

तस्माच्च पूजयेद्वाला सर्वजातिसमुद्भवाम् ।

जातिभेदो न कर्तव्यः कुमारी पूजने शिवे ॥

“सभी जाति की कुमारियों का पूजन करना चाहिए, क्योंकि कुमारी को पूजा में जाति-भेद निषेध है ।”

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्तते ।

विचिकित्सापरो मन्त्रा ध्रुवञ्च पातकी भवेत् ॥

“इस कार्य में जो मनुष्य जाति-भेद का विचार करता है, वह

नरक में गिरकर उठ नहीं सकता । यदि म प्रसात् मनुष्य कर्म करने में न वह करे, तो वह पारी होता है इस में न संशय । '

माहात्म्य—

तन्त्रों में कुमारी पूजा के माहात्म्य का उल्लेख किया गया है । योगिनी तन्त्र में साधना का फल इस प्रकार बताया गया है—

देवोबुद्ध्या महामक्त्या तन्मात्ता परिपूजयेत् ।

सर्वविद्यास्वस्वा हि कुमारी नात्र संशय ॥

“इसलिए महाभक्ति भाव में श्रीरक्षी में मुक्ति करके साधिका की पूजा करे । साधिका में विद्या रूपेणो है, इसी वजह से है ।

एका हि पूजिता वाला सर्व हि पूजित भवेत् ।

यदि भाग्यवशाद्देवि वेश्या कुल समुद्भवाम् ॥

कुमारी लभते कान्ते सर्वस्वेनापि साधक ।

यत्नत पूजयेन्ता तु स्वर्णरोप्यादिभिर्मुदा ॥

“एक बालिका की पूजा करने में ही सब रक्षी-देवताओं की पूजा हो जाती है । यदि भाग्य से वेश्या के वश में उत्पन्न बालिका मिल जाय, तो प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वर्ण, चाँदी आदि सर्वस्व प्रदान करके श्रीर पूजा करे ।”

तदा तस्य महासिद्धिर्जायते नात्र संशय ।

महासिद्धिर्भवेदस्य स एव सदाशिव ॥

“ऐसा करने से साधक महासिद्धि को प्राप्त करता है, और वह सदाशिव के समान हो जाता है ।”

लक्षण तस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियवदे ।

वपुस्तस्य महेशानि काञ्चन परिजायते ॥

सर्वसिद्धियुतो भूत्वा क्रीडते भैरवोयथा ॥

“जो कुमारी की साधना करता है, उसका देह कञ्चन के समान

कानिवान होता है और सब सिद्धियो से सम्पन्न होकर भैरव के समान क्रीडा करने वाला होना है ।”

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिस्तस्य सुनिश्चितम् ।

हठात्तु जायते सर्वं यद्यन्मनसि वतते ॥

“वह स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तथा सबत्र ही गमन कर सकता है ।
जब जैसा चाहे वैसा रूप धारण कर सकता है ।”

देवदानव गन्धर्व नाग किन्नर पोषित ।

विद्याधरी राजनारी सेवन्ते त दिवानिशम् ॥

“देव, दानव, गन्धर्व, नाग, किन्नरी, विद्याधरी, राजनारी यह सभी कन्या-साधक की सेवा करती है ।”

अन्ते च प्राप्यते तेन पर निर्वाणमुत्तमम् ।

कुमारीपूजने काले साधक शिवता ब्रजेत् ॥

साधक अन्त में परम निर्वाण-पद प्राप्त करता है और कन्या-पूजा के समय में उसे शिवत्व की प्राप्ति होती है ।”

कुमारी पूज्यते यत्र स देश क्षितिपावनः ।

महापुण्य तमो भूयात्समन्तात्क्रोश पचकम् ॥

“जहाँ कन्या की पूजा होती है, वह स्थान पृथ्वी में पवित्र है ।
पाँच कोश तक उसमें अपवित्रता नहीं रहती ।”

महाराज प्रयत्नेन सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।

सवयज्ञोत्तम भूप कुमारीपूजन शृणु ॥

कृते यस्मिन्महालक्ष्मोरचिरेण प्रसोदति ।

श्रामन्त्रयेद्दिने पूर्वे कुमारी भक्तिपूर्वकम् ॥

पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम् ।

कुमारीपूजन कृत्वा महालक्ष्मी प्रसोदति ॥

मण्डले चरणौ तस्या क्षालयेच्छुभवारिणा ।

अर्चयेद्धेमपात्रेण वारि पुष्पाक्षतैः समम् ॥

सुविताने शुभे स्थाने पद्मजोपरि पीठके ।

उपवेद्य कुमारी ता स्वाने न्यामान्ममाचरेत् ॥

—तृज्ज्योतिषाख्य, धर्मस्काण्ड ८, उदानता स्वम्भ ३, प्रायश्च १२८

‘हे राजन् । इस नएडी पूजा के विज्ञान में कुमारिका के पूजन का बहुत बड़ा महत्त्व है और यह मयनिद्रि क फल को प्रदान करने वाला होता है । समस्त यज्ञों में इसे उत्तम वनचाया जाता है । इसके करने पर महानश्वी बहुत ही शीघ्र प्रपन्न हो जाती है । मण्डन में कुमारिका के चरणा का पहिने शुभ एवं शुद्ध जन से प्राप्त करना चाहिए । किसी हेम पात्र द्वारा पुष्पाभन में रत्नका अर्चन कर । सुवितान में शुभ स्थान पर पीठ पद्मज के ऊपर उन कुमारिका को बैठाकर अपने ब्रह्मों में न्यास करे ।’

विसर्जयेत्कुमारी ता स्वगृहे सत्त्वनिभर ।

अनेन विधिना भक्त्या कुमारी योऽभिपूजयेत् ॥

पृथिव्या राज्यमासद्द शिवसायुज्यता व्रजेत् ।

य य प्राथयते काम देवनामपि दुर्लभम् ॥

कुमारोपूजन कृत्वा त त प्राप्नोत्यसशयम् ।

ब्रह्माविष्णुमहेशाना कुमारो परमा कला ॥

“इस विधि से जो कुमारी का पूजन करता है, वह पृथ्वी पर राज्य जैसा वैभव पाकर अन्त में शिव की सायुज्यता को प्राप्त होता है । जिस जिस कामना की प्रार्थना साधक करता है, चाहे वे दुर्लभ भी क्यों न हो, कुमारी के पूजन करने से उन सबकी निश्चय ही प्राप्ति हो जाती है ।”

आयुष्यबलवृद्धयथ कुमारी पूजयेन्नर ।

आयुष्कामस्त्रिमूर्ति तु त्रिवगस्य फलाप्तये ॥

अपमृत्युव्याधि पीडादु खानामपनुत्तये ।

सौख्यधान्य धनारोग्य पुत्रपौत्रादिवृद्धये ॥

कल्याणी पूजयेद्विमान् नित्य कल्याणवृद्धये ।
 आरोग्य सुखकामी च जयकामी तथैव च ॥
 यशस्कामी नरो नित्य रोहिणी परिपूजयेत् ।
 विद्यार्थी च जगार्थी च राज्यार्थी च विशेषतः ॥
 शत्रूणां च विनाशार्थं कालिका पूजयेन्नर ।
 ऐश्वर्य शुभकामी च स्वर्गकामी च यो नर ॥
 सग्रामे जयकामी च चण्डिका परिपूजयेत् ।
 दुःख दारिद्र्यनाशाय नृप समोहनाय च ॥
 महापाप विनाशाय शाम्भवी च प्रपूजयेत् ।
 मवलोककट शत्रूणां सुप्रमाधन कर्मणि ॥
 दुर्गा दुर्ग विनाशाय पूजयेद्यत्नतो बुधः ।
 सौभाग्यघन धान्यादिवाञ्छितार्थ फलप्राप्ते ॥

“जो अपनी आयु की कामना रखना है, वह उसकी पूर्ति के लिए तथा त्रिवर्ग के फलों की प्राप्ति के लिए त्रिमूर्तिनी कुमारी का यजन करे । अप-मृत्यु व्याधि, पीडा के दुःखों के नाश के लिये घन, धान्य, सोहय, आरोग्य, पुत्र, पौत्रादि के लिए कल्याणी नाम वाली कन्या का पूजन करे । इससे नित्य उक्त वस्तुओं की वृद्धि और कल्याण होता है । आरोग्य के मुख तथा जय की कामना वाला और यशोवृद्धि के के इच्छुक पुरुष को ‘रोहिणी’ नाम वाली कन्या का यजन करना चाहिए । विद्या, जप और राज्य की इच्छा वाले को यह पूजन अभीष्टप्रद होता है । शत्रुओं के विनाश करने की कामना वाले को छ वर्ष की आयु वाली ‘कालिका’ नाम की कन्या का पूजन करना चाहिए । अपने ऐश्वर्य, शुभ, स्वर्ग और सग्राम में जय प्राप्त करने का मनोरथ रखने वाले पुरुष को ‘चण्डिका’ नाम धारिणी सात वर्ष की आयु वाली कन्या का पूजन करना चाहिए । दारिद्र्य, दुःख के नाश, नृपों का सम्मोहन और महापापों के नाश के लिए ‘शाम्भवी’ नाम की कन्या का पूजन

करे । सप्तल और उत्कट गुरुओं के उग्र दुर्ग के विनाश के लिये दूर्गा का यत्नपूर्ण पूजन करना चाहिए । गोभाग्य और धन-धाय की वृद्ध के लिए तथा वाञ्छित श्रय की फल-प्राप्ति के लिए और दान दामो की बढोत्तरी के लिए सुभद्रा का यजन करना चाहिए ।”

उपरोक्त कन्या-पूजन के माहात्म्य को प्रतिशयोक्ति गैनी में भनने हो वर्णन किया गया हो, परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रक्रिया में नैतिकता का बच बूल्याकन निहित है । यदि पुरुषों में आरम्भ में ही हम कुमारियों के प्रति पवित्र और उच्च सम्माननीय भाव रखने की शिक्षा व प्रेरणा देने की पद्धति को अपनाएँ, तो कोई कारण नहीं कि पुरुषों में नारी जाति के प्रति कुत्सित भाव उत्पन्न हो सके । आज के युग में जब चारों ओर चलचित्रों, कहानी, उपन्यासों और पत्र-पत्रिकाओं ने स्वार्थवश कामुक बनावरण बना रखा है तो इसकी अतीव आवश्यकता अनुभव हो रही है । इस पूजन की व्यापक रूप में प्रचलित किया जाना चाहिए और इसमें निहित चरित्रगत उच्च भावों का विश्लेषण करना चाहिए । मनु जैसे महर्षियों के मन में भी नारी ने अपनी पवित्रता की धाक जमा ली थी, तभी उन्हें कहना पड़ा था कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं ।

अतः कुमारी पूजन को नैतिक उत्थान की एक उत्तम साधना मानना चाहिए ।

कुमारी पूजन-विधि—

देवी-पुराण में विधि का निर्देश इस प्रकार है—

ब्रह्मोवाच

न तथा तुष्यते शक्र होमदान जपेन तु ।

कुमारी भोजने नात्र यथा देवी प्रसीदति ॥

अत्र नवरात्रे प्रक्षाल्य पादौ सर्वासा कुमारीणा ।

च वासव सुलिप्ते भूतले रम्ये तत्रता आसन स्थिता ॥

पूजयेद् गन्ध पुष्पैश्च स्रग्भिश्चापि मनोरमै ।
 पूजयित्वा विधानेन भोजनं तामु दापयेत् ॥
 खण्ड लङ्कु गुड सर्पि दधिक्षीर ममाक्षिकम् ।
 ताम देय कुमारीणां जनै स्स भोजयेत्तुता ॥
 पानीयं याचितं देयमन्नं वा याचितं शुभम् ।
 तास्तृप्तास्तु यदा सर्वास्तदा त्वाचमनं ददेत् ॥
 आचम्य चाक्षतान्दत्त्वा त्वया धन्तव्यं मित्युत् ।
 दानुं गिरसि दातव्याः कन्यकाभिरयाक्षनाः ॥
 तेनापि प्रणिपातस्तु कतव्यो भक्तिपूर्वकः ।
 अनेन विधिना शक्र ! देवी क्षिप्रं प्रसीदति ॥
 ददाति विविधान्कामान्मनोभोगान्सुराविषं ।
 राज्यं कृत्वा ततः पश्चाद्देवीलोकञ्च गच्छति ॥
 स्कान्देऽपि ! एकैका पूजयेत्कन्यामेकवृद्धया तथैव च ।
 द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं वरम् ॥
 नवभिर्लभते भूमिर्भूस्वर्गं द्विगुणेन तु ।
 एकं वृद्धया लभेत्क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥
 एकं वर्षां तु या कन्या पूजार्थं तां तु वर्जयेत् ।
 गन्ध पुष्प फला दीना प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥
 यथोक्ता लाभेतु विवाहितापि या पुष्पिणी तावत्—
 पूज्याविवाहानन्तरं मपि कन्या त्वमुपजायते ॥
 तावत्सपूज्यते कन्या यावत्पुष्पं न दृश्यते ।
 इति भगवन्तं भास्करं धृतं देवी पुराणवचनात् ॥
 कामना परत्वेन आसा क्रमेण पूजाया विशेष उक्तः ।
 तत्रैव ! दुःख दारिद्र्य नाशाय शत्रूणां शनाय च ॥

सुमद्रा पूजयेन्मर्त्यो दासी दासविवृद्धये ।

पूजा प्रकारश्च तत्रैव । प्रातःकाले विशेषेण कृताभ्यङ्गो विशेषतः ॥

अथ वर्ज्य कन्या आह

हीनाधिकाङ्गी कुष्ठादि विकारां कुकुलातया ।

ग्रन्थि स्फुटित सर्वाङ्गी रक्त पूय व्रणाद्धिता ॥

जात्यन्धा केकरा कारणा कुरुपा तनु रोमशाम् ।

सत्यजेद्रोगिणी कन्या दामी गर्भ समुद्भवाम् ॥

अथ ज्ञाति भेदेन कामना भेदेषु तत्पूज्य तामाह ।

ब्रह्माणी सर्व कार्येषु जयार्थे नृप वशजाम् ॥

लाभार्थे वैश्य वशोत्था सुतार्थे शूद्र वशजाम् ।

दारुणे चान्य जातीयां पूजयेद्विघ्निना नर ॥

अथ वरां भेदेन पूजाभेदः ॥

गौरी मर्वष्ट ससिद्धयै पोताङ्गी जय कीर्तये ।

लाभार्थऽरुणवर्गांगीमसितामारणादिष्वति ववचित् ॥

एक वश समुद्भूता कन्या सम्यक् प्रपूजयेदिति कौलावलि

तन्त्रे ॥

तन्त्र विधि

यजमान पूजयेच्च कन्यानां नवक शुभम् ।

द्वि वर्षाद्यादशाब्दान्ता कुमारी परिपूजयेत् ॥

अथदिक हायनाल्प वयस्का वर्ज्याः ।

त आसने उपवेश्यावाहयेत् मन्त्रेण ॥

अथावाहन मन्त्र

ॐ मन्त्राक्षर मयी लक्ष्मी मातृणां रूप धारिणीम् ।

नवदुर्गात्मिका साक्षात्कन्यामावाह्याम्यहम् ॥

अनेनैव मन्त्रेण नवापि आवाहयेत् ।

अशक्तौ यथाशक्ति एकामपि पूजयेत् ॥

॥ पाद्यादि पूजनं विधाय ॥

द्विहायना कुमारी सज्ञा

सर्वस्वरूपे । सर्वेशे । सर्वशक्ति स्वरूपिणि ।

पूजा ग्रहाण कौमारि । जगन्मातर्नमोस्तु ते ॥१॥

त्रिहायना त्रिमूर्ति सज्ञा

त्रिपुरा त्रिपुराधारा त्रिवर्षा ज्ञानरूपिणीम् ।

त्रैलोक्य वन्दिता देवी त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥२॥

चतुर्वर्षा कल्याणी

कलात्मिका कलातात कारुण्य हृदया शिवाम् ।

कल्याण जननी देवी कल्याणी पूजयाम्यहम् ॥३॥

पञ्चवर्षा रोहिणी

अणिमादि गुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।

अनन्त शक्तिका लक्ष्मी रोहिणी पूजयाम्यहम् ॥४॥

षड्वर्षा कालिका

कामचारा शुभा कान्ता कालचक्र स्वरूपिणीम् ।

कामदा करुणोदारा कालिका पूजयाम्यहम् ॥५॥

सप्तवर्षा चण्डिका

चण्डवीरा चण्डमाया चण्ड मुण्ड प्रभञ्जनोम् ।

पूजयामि सदा देवी चण्डिका चण्ड विक्रमाम् ॥६॥

अष्टवर्षा शाम्भवी

सदानन्दकरी शान्ता सर्व देव नमस्कृताम् ।

सर्वभूतात्मिका लक्ष्मी शाम्भवा पूजयाम्यहम् ॥७॥

नवहायना दुर्गा

दुर्गे दुस्तरे कार्ये भवदुःख विनाशिनीम् ।

मूजयामि सदा भक्तया दुर्गा दुर्गंति नाशिनीम् ॥८॥

दशवर्षा सुभद्रा
सुन्दरी स्वर्ण वर्णाभा सुख सौभाग्य दायिनीम् ।
सुभद्रजननी देवी सुभद्रा पूजयाम्यहम् ॥६

नित्य आरती यहाँ करना

कुमारी पूजनान्ते तद्धस्तादक्षतादिक स्वशिरसी विधाय
भक्त्या अनुव्रजेत् सुवासिनी ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् इष्टमित्र-
वान्धवादिना सह स्वयमपिभुञ्जीत शेष काल गीत वाद्यादि-
भिर्नयेत् ।

॥ इति कुमारी पूजनम् ॥

अष्ट रात्रे न दोषोऽय नवरात्रे तिथिक्षये ।
सूतके पूजन प्रोक्त जपदान विशेषत ॥
देवो मुद्दिश्य कर्त्तव्य तत्र दोषो न विद्यते ।
रजस्वला तथा शौच ब्राह्मणैश्च सुपूजयेत् ॥
सभर्तृकाणां स्त्रीणां नवरात्रे गन्धादि सेवन न दोषाय ।
तदुक्त हेमाद्रौ । गन्धालकर ताम्बूल पुष्पमालानुलेपनै ॥
कुमारी पूजने विशेष कौलावली तन्त्रे ।
एव प्रणवयोगेन चतन्य तत्तुमचयेत् ॥
वाणी माया तथा लक्ष्मीर्माया कूचद्वय तत ।
एते च प्रणवा ज्ञेया कुमार्यां परि पूजने ॥
चतुदश स्वरेणाढ्यो भृगुविन्दिन्दु सयुत ।
चैतन्य बीज कथित साधकानां समृद्धिदम् ॥
एव द्वाभ्यां त्रिभिश्चैत्र सप्तधानवधा पुन ।
नित्यक्रमेण नियत पूजयेद्विधि पूर्वकम् ॥
वाग्भवेन जल देय मायया पादशौचकम् ।
लक्ष्म्याचार्य्यं प्रदद्यात् कूचबीजेन चन्दन ॥
शक्ति बीजेन पुष्पाणि धूप षष्ठेन दापयेत् ।
वाग्भवेन पुरक्षोभ मायया च गुणाष्टकम् ॥

श्री बीजेन श्रियोलाभ मायया शत्रु सक्षय ।
 भैरवेण तु बीजेन खड्गत्वमनुगच्छति ॥
 न्यासादिक प्रकुर्वीत आदौस्वीय क्रमेण तु ।
 कुमार्याणि तत पश्चाद्विशेषन्यासमुत्तमम् ॥
 ॥ तपोऽखण्ड दीपदानम् ॥

दीपादि विचारो डामर तन्त्रे ।
 सौवर्णं राजतताम्र कास्य लोह च मार्तिकम् ।
 गोधूम माष मुद्गानां चूर्णैर्न घटितं तथा ॥
 सौवर्णं कार्यसिद्धिं स्याद्रौप्ये वश्यजगद्भवेत् ।
 ताम्रं तयोरभावेऽपि कास्ये विद्वेषणं भवेत् ।
 माग्णं लौहपात्रे स्यादुच्चारो मृण्मये तथा ॥
 गोधूमं चूर्णं घटिते विवादे विजयो भवेत् ।
 माषजे शत्रु सस्तम्भो मोद्गोऽग्राच्छान्निसत्तमा ॥
 सन्धिकार्ये नदीकूलद्वयमृत्सना समुद्भवम् ।
 अलाभे सर्व पात्राणां कूर्यात्ताम्रं च मार्तिकम् ॥

विभिन्न शक्तियाँ

और उनके वाहन

शक्ति एक है। वह विभिन्न नामों से विख्यात है। जब रक्त-बीज के मारे जाने पर शुम्भ और निशुम्भ के साथ देवी का युद्ध हो रहा था और निशुम्भ भी मारा गया, तो शुम्भ ने देवी की सहायक सप्त मातृका-शक्तियों—ब्रह्माणी, माहेश्वरा, कोमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही तथा ऐन्द्री की ओर सकेत करते हुए कहा—‘तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूठमूठ अभिमान करती हो।’ इस पर देवी ने इन सानों शक्तियों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि ‘यह सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ हैं, जो मेरी इच्छा से प्रकट रहती हैं, अब देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।’

तन्त्रों में देवी की आठ शक्तियों का वर्णन आता है। इसलिए वह अष्टभुजी कहलाती हैं। इन शक्तियों के अलग-अलग वाहन हैं। इन शक्तियों और उनके वाहनों का वर्णन इस प्रकार है—

१-ब्राह्मी—

सृष्टि-शक्ति को ब्राह्मी कहते हैं। ब्रह्मा सृष्टि के अधिष्ठाता है। तन्त्र की परिभाषा में एक विद्वान् ने इसे ऐसे व्यक्त किया है—

‘पश्यन्ती वाणी में अवस्थित प्रकाशाश को वामाशक्ति और विमर्शाश को इच्छाशक्ति कहते हैं। महापुत्रात्म पद्मशक्ति अपने गभ में स्थित बीजभावापन्न विश्व का कार्यरूप में वाह्य प्रसार करने को जब

उद्यन होती है तो उपर्युक्त विश्वव्यमनकर्तृत्व रहने के कारण उसे वामा-
गन्धि कहा जाता है। इसका पर्याय ही ब्रह्मा है। महात्रिकोण की वाम
रेखा का उपलक्षण होने के कारण इसे अकृशाकार कहा गया है। पिता-
मह ब्रह्मा की शक्ति—भारती के पर्यायरूप इच्छाशक्त्यात्मक जनन-
मामर्थ्य इसमें विश्रामान रहता है।”

ममर की उत्पत्ति करने वाली गन्धि ब्रह्मा निराकार व सूक्ष्म
है। उसे स्थूल नेत्रों से देखा जाना सम्भव नहीं है। इसलिए
कलाकार ने उसके गुणों को सुन्दर ढंग से विवर्तित किया है। ब्रह्मा के
चार मुख और चार हाथ बनाए गए हैं। एक साधारण मकान बनाने
वाले मिस्त्री को भी वही मावधानी और सूक्ष्म-वृक्ष में काम लेना पड़ता
है। फिर ८४ लाख योनियों का निर्माण करने वाले ब्रह्मा को तो अपने
कार्यकर्ताओं से काम लेने के लिए चारों ओर दृष्टि रखनी पड़ती है।
यदि उसके निरीक्षण में शिथिलता आ जाए, तो निर्माण कार्य में
अव्यवस्था होना स्वाभाविक है।

निर्माण का कार्य कोई साधारण कार्य नहीं है। उसमें चारों
ओर अर्थात् हर दृष्टि से विचार करना पड़ता है। वह चारों दिशाओं
में काम करने की क्षमता रखते हैं। चारों हाथों में चार वेद हैं अर्थात्
वह ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। पुराणों में वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा से
ही बताई जाती है। समार को सम्य और सुसंस्कृत बनाने वाली शिक्षाओं
व सिद्धान्तों के मूल स्रोत वही है। विचार-शक्ति का उद्भव उन्हीं से
हुआ है।

ब्रह्मा तप-शक्ति का भण्डार माने जाते हैं। ब्रह्म-वैवर्त पुराण में
कथा आती है कि जब ब्रह्मा की सृष्टि की उत्पत्ति का आदेश मिला, तो
वह विन्मय में पड़ गए कि इस महान् कार्य को कैसे किया जाय ?
आकाशवाणी हुई कि सौ वर्ष तक गायत्री की उपासना करो, तो सृष्टि
की उत्पत्ति करने की क्षमता प्राप्त हो सकेगी। ब्रह्मा ने सौ वर्ष तक तप
किया, परिणामस्वरूप वह इस योग्य हुए।

ब्रह्मा को कमल के पुष्प पर बिठाया दिखाया जाता है । कमल जल में रहकर भी उसमें घनग रहता है, जल का प्रभाव उस पर नहीं हो पाता । ब्रह्मा ८४ लाख योनियों के अश्वो-खरबो जीवों की उत्पत्ति हर क्षण कात रहते हैं, परन्तु किसी के साथ उसका लगाव, मोह व आसक्ति नहीं है । यदि ऐसा न होता, तो वह आनी सत्तान का शोक मनाते ही न थकते और शोक मनाने के लिए घनग विभाग खोलना पड़ता । अतः इस कष्ट से दूर रहने के लिए वह अनिस्रता व अनामक्ति के सिद्धांत को अनाते है । इसी ब्रह्मा की शक्ति को ब्रह्माणी कहा गया है ।

ब्रह्माणी का वाहन हृष है । हृष विवेक बुद्धि का प्रतीक है । उसके सामने दूध और पानी रख दिया जाय तो वह उन्हें अलग-अलग कर देगा और पानी को छोड़कर दूध-ही-दूध पी लेगा । ब्रह्मा प्रत्येक जीव रूपी हम में यही अपेक्षा रखते हैं कि हमारा विवेक सदैव जाग्रत रहे । वस्तु में तत्त्व और अन्तर्त्त का, सत्य और असत्य का, श्रेय और अश्रेय का जो निर्णय बुद्धि देती है — हमें क्या करना, क्या न करना, इसका निर्णय दिव्य प्रकाश के आधार पर करने वाली अन्तर्त्त बुद्धि एक ऐसी अद्भुत शक्ति है, जिसी तुलना में विश्व की और कोई शक्ति मनुष्य के लिए हितकारी नहीं है ।

तमसाच्छ दिन बुद्धि से, चाहे वह कितनी ही उपजाऊ क्यों न हो, उससे मनुष्य का मत्ता हित नहीं हो सकता और न उसे आत्मिक सुख जाति के दर्शन हो सकते हैं । भोग मिलाप के बोडे में उत्पादान वह जरूर जमा कर सकती है, पर इन उत्पादानों के कारण चिन्ता, भय, आशङ्का, तृष्णा, मोह, मद आदि की माया इनकी बढ जाती है कि उनका भार आत्मा के लिए अमात्राण रूप में कष्टदायक सिद्ध होता है । जो सम्पत्ति नीति-अनीति का ध्यान न रखकर इसलिए कमाई जाय कि इसमें सुख की वृद्धि होगी, वह विपरीत परिणाम उत्पन्न करती

है। थोड़ी-सी बाहरी तडक-भडक दिखाकर भीतर का सारा आनन्द नष्ट कर देती है। उस आन्तरिक शान्ति के कारण छोटे-मोटे अनेकों शारीरिक, मनसिक एवं आत्मिक रोग उत्पन्न होते हैं और वे हर घड़ी उस आदमी को बेचैन बनाये रहते हैं, जो अपने को बुद्धिमान समझने का दम भरता है। तममाच्छन्न बुद्धि जितनी अधिक तीक्ष्ण होगी, उतनी ही अधिक विपत्ति का कारण बनेगी। ऐसी बुद्धि तो जितनी मन्द हो उतना ही उत्तम है।

तममाच्छन्न बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुए विचार और कार्य हमारी प्राण शक्ति को दिनो-दिन घटाते हैं। भोग प्रधान कार्यों से शरीर दिनो-दिन क्षीण होता है स्वाथ प्रधान विचारों से मन दिन-दिन अथाह पाप-पक में फँसता है। इस प्रकार जीवन की पेंदी में अमरुत छिद्र हो जाते हैं जिनमें होकर सारी उत्पन्न शक्ति नीचे गिरकर नष्ट हो जाती है। चलनी में चहे कितना ही दूध दुड़ा जाय सब नीचे गिर जायगा और चलनी खाली भी-खाली रह जायगी। यही बात तममाच्छन्न बुद्धि के लोगों के बारे में है। कुछ भी कीमती भोजन खायें, सब विषय-भोग की, चटोरपन की उष्णता में जल जायगा वे चाहे जितनी बुद्धि दौड़ाकर नई कमाई करें पर तृष्णा स्वार्थपरता, भय, अहङ्कार, लोभ आदि कारणों से चित्त सदा दुखी ही रहेगा और उससे मानसिक शक्तियाँ नष्ट होती रहेंगी। इन दोनों कारणों से प्राण निर्बल ही रहेगा और वह न्यून प्राण व्यक्ति मसार में नाना प्रकार के उद्वेगों के साथ किसी प्रकार हीन जीवन ही व्यतीत करता रहेगा।

सतोगुणी, ऋतम्भग विवेक बुद्धि हमारे शारीरिक आहार-विहारों को सात्विक रखती है, समय, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, श्रमशीलता, सादगी, प्राकृतिक दिनचर्या होने से बलवीर्य बढ़ता और शरीर सक्रिय रहता है और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। मन में अपरिग्रह, परमार्थ, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, तितिक्षा, दया, सहानुभूति, मैत्री, करुणा,

नम्रता, निरहङ्कारता, धर्म, श्रद्धा, ईश्वरपरायणता आदि की भावना काम करती है। यह भावना जहाँ रहती है, वहाँ के परमाणु सदैव प्रफुल्ल और चैनमय रहते हैं तथा उनका विकास होता है। इस प्रकार शरीर और मन दोनों की मुग्धा और बुद्धि की मात्त्विक उन्नति होने के प्राप्त शक्ति सुरक्षित रहती है और उसकी वृद्धि होती रहती है। ब्राह्मणी शक्ति का वाहन हम हमें इसी शिव की बुद्धि के विकास की प्रेरणा देता है।

२-माहेश्वरी—

यह लय शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। प्रलय भाव का प्रतीक माहेश्वर है। यह महान् प्रेरणाओं का स्रोत है।

सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि का चक्र चलता ही रहता है। यह प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है। गीता (१८।१८) में कहा है—“ब्रह्मा का जब दिन आरम्भ होता है, तब अव्यक्त से व्यक्त में प्रकट जाता है और जब त्रि होती है, तो पहले की तरह अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।” अगले श्लोक में और अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान् ने कहा है—“इच्छा हो या न हो दिन होने पर जन्म लेना और रात्रि होने पर लीन होना—यह चलता ही रहता है” (१८।१९)। उत्पत्ति, स्थिति और लय को हम प्रत्यक्ष रूप से खुद नेत्रों से देखते हैं। जो, उत्पन्न हुआ है, उसे नष्ट होना ही है। जिसने शरीर धारण किया है, उसे एक दिन मरना है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है और मरने के बाद फिर जन्म लेना है।

इस स्वाभाविक क्रम में कुछ भी निराश होने की बात नहीं है। अज्ञानवश हम विनाश होने वाले तत्वों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जब वह सृष्टि के स्वाभाविक प्रवाह में बहने लगता है, तो व्यर्थ की प्रशान्ति और दुःख को अपने सिर में लेते हैं। जब हम नित्य देखते हैं कि सृष्टि के आदिकाल से यह क्रम बराबर चला आ रहा है और अन्त तक,

चलता रहेगा, तो इसमें दुःख की कौन-सी बात है ? चूँकि हम शरीर को सर्वस्व मानकर चलते हैं इसलिये उसके विनाश होने पर दुःखी होते हैं । सांसारिक दुःखों में बचने के लिए आवश्यक है कि हम वस्तु-स्थिति को समझें और नाशवान तत्वों के नष्ट होने पर दुःखी न हों । हम अपना आत्म-निरीक्षण करें कि हम शरीर नहीं, बल्कि आत्मा हैं । नाश शरीर का होता है, आत्मा का नहीं । यदि शरीर नष्ट हो रहा है, तो उसका अभिप्राय केवल पुराने जीर्ण शीर्ण वस्त्र बदलकर नए पहनना है । उसके मूल तत्व का विनाश नहीं हो रहा । चाहे कैंसी भी भयङ्कर आघियाँ और तूफान आँवें, भूचाल और घोर वर्षा हो, नगर-के नगर ध्वस्त हो जये और सारे विश्व का भी विनाश होकर प्रलयकारी स्थिति उत्पन्न हो जाय । आधुनिक काल के विनाशकारी अस्त्र शस्त्रों, एटम बम हाइड्रोजन बमों का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वह तो स्थूल वस्तुओं को ही नष्ट करने की क्षमता रखते हैं । हानि और नाश के क्रम इस जगत में पग-पग पर चलते रहते हैं उनसे सुरक्षित रहने का एक-मात्र उपाय है—अनन्य-भाव में स्थित रहना ।

यदि शास्त्रों में वर्णित प्रलय की-सी स्थिति कभी उत्पन्न हो जाए, जिसमें सारे विश्व का विनाश हो जाए और चारों ओर जल-ही-जल दिखाई दे, तो यह समझना चाहिए कि उस स्थिति में हमारा कुछ नष्ट नहीं हुआ । उस समय भी केवल पंचभौतिक शरीर ही नष्ट होगा । वस्तु स्थिति यह है कि शरीर अनेकों बार नष्ट हो चुका है और अनेकों बार जन्म ले चुका है । यदि एक बार और नष्ट हो जायगा, तो इसमें दुःख और चिन्ता की कौन-सी बात है ? वेदान्त (२।३।१७) में कहा गया है कि “जीवात्मा उत्पन्न होता या मरता नहीं है ।” श्रुति में भी ऐसा ही कथन मिलता है । उन श्रुतियों के द्वारा ही इसको अविनाशी होना कहा गया है । छादोग्योपनिषद् (६।१।३) में भी स्पष्ट कहा है—“जीव के मरने पर शरीर भी मरता है जीवात्मा स्वयं नहीं

मरता ।” अतः यदि हम अपने वास्तविक रूप को समझ लें, तो प्रलय में भयभीत होने की कोई बात नहीं है । प्रलय तो हमारी पथ-प्रदर्शिका है और हमें शिक्षा देती है कि इस जगत् की हर वस्तु नष्ट होने वाली है, अतः, उनकी प्राप्ति में ही अपने जीवन का अमूल्य समय नष्ट न करके अविनाशी तत्त्व को प्राप्त करो, जिसका कभी नाश नहीं होता । माहेश्वरी की भी यही प्रेरणा है ।

माहेश्वरी का वाहन वृष (बैल) है । इसकी आध्यात्मिक व्याख्या निम्न प्रकार है । वृषभ को मनुष्मृति (८।१६) में धर्म की सज्ञा दी गई है—

वृषो हि भगवान् धमस्तस्य य कुरुते अलम् ।

वृषल त विदुर्येवास्नस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥

“भगवान् धर्मं साक्षात् वृष है । जो इसको नष्ट करेगा वह वृषल—पापी कहा जायगा । इसलिए धर्म को लुप्त न करना चाहिए ।”

शिव-पुराण (रुद्र सहिना पार्वती खण्ड) में शिव पार्वती के विवाह के समय का वर्णन करते हुए कहा गया है—“विशुद्ध स्फोटिक के तुल्य दीप्तिमान परम सुन्दर वृषभ पर भगवान् महेश्वर विराजमान हुए । इस वृषभ को बड़े-बड़े महर्षियों ने शाल्म में घम बतलाया है ।”

कामनाओं और इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होने के कारण ‘वृषभ’ नाम पड़ा । कामनाओं की पूर्ति करना रुद्र के अधिकार में है । वे ऋद्धि-सिद्धि दाता हैं । वे भोले शक्त प्रसिद्ध हैं । शीघ्र ही प्रसन्न होकर साधक को वरदान दे देते हैं शक्ति के सम्राट हैं, शरीरधारियों को समस्त कष्टों से दूर रखने की क्षमता रखते हैं । यजुर्वेद में उन्हें देवता कहा गया है (१८।२०), अतः वह प्राणियों का कल्याण ही करते रहते हैं । इसीलिए उनका नाम शिव है—वह तो कल्याण के साक्षात् रूप हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत्—यह

उनकी अष्टमूर्ति कही गई है, वह तो प्राणीमात्र के लिए निरन्तर महयोग की भावना रखता है। इनके अमात्र में शरीरधारियों का जीवन यहाँ अमम्भव हो जाए। यह मन्त्र माक्षात् देव स्वरूप है।

वेद में वृष का चार पैर वाला अवर कहा गया है। वे चार पैर हैं—धर्म अथ, काम और मोक्ष। वृष का एक अर्थ है—वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा।

काम की मञ्जा वृष है। सृष्टि की उत्पत्ति के लिए वह उपयोगी तत्व है। इनका गगना जीवन की आवश्यकताओं में आती है। यदि इसके अक्षुर मानव मन में उत्पन्न न होते, तो सृष्टि रचना भी न हुई होती। जहाँ तक आवश्यकता का प्रश्न है, वहाँ तक तो यह पवित्रता का प्रतीक है, परन्तु जब हममें मर्यादा-उल्लंघन किया जाता है, तब वह भोग की भीमा में आ जाता है और यह मानव का शत्रु बन जाता है तथा इसकी गणना आसुरी शक्तियों में होने लगती है।

अथर्ववेद ४।११।१०८ में “वृषभ को पृथ्वी का पोषक, धारक, उत्पादक, रक्षाक, प्रेरक, विजेता और फलदाता की उपाधियों से विभूषित करते हुए अन्न में ब्रह्म और विराट् के समान बनाया गया है।”

माहेश्वरी का वाहन-आधार वृषभ के धर्म आदि गुण हैं। माहेश्वरी की सच्ची पूजा इन्हें अपनाता ही है।

३-कौमारी—

जो शक्ति देव-शक्तियों का नेतृत्व करती हुई आसुरी शक्तियों पर विजय का उद्घोष करती है उसे कौमारी कहते हैं। कुमार उसकी प्रतिष्ठात् शक्ति को कहते हैं। कुमार को पुत्राणों में स्वामी कार्तिकेय, स्कन्द, मन्तकुमार, पारामातुर के विभिन्न नामों में भी याद किया जाता है। उनके ६ मुख और १२ नेत्र हैं। उनमें तप और शक्ति का समन्वय है। उनके हाथों की सट्या और अन्य अङ्ग शक्ति के प्रत्यक्ष रूप हैं।

‘स्कन्दिर-धातु’ से स्कन्द शब्द बनता है । स्कन्दिर का अर्थ स्पष्ट है—गतिशीलता और सीखना । क्रियाशीलता सेनापति की मुख्य विशेषता होनी चाहिये । सूर्य में वस्तुओं को सोखने की शक्ति है । इससे वह अत्यन्त जन-उपयोगी मिद्ध होती है । जहाँ नहीं अत्रिक होती है, वहाँ रोग उत्पन्न होते हैं । जहाँ सूर्य पहुँचना है, वहाँ रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं । सोखना एक अत्यन्त उपयोगी तत्त्व है और यह अग्नि का विशेष गुण है ।

कुमार रुद्र को भी कहते हैं और रुद्र अग्नि को । इसलिए कुमार अग्नि का नवीन रूप बनाया गया है । महाभारत वन-पर्व २२५।१५-१६, ऋग्वेद ५।२।१, १०।१३५, कठोपनिषद् १।२, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।११, ८।१५ के अनुसार कुमार से अग्नि का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है ।

स्कन्द देवताओं का सेनापति है । इसलिए उनकी पत्नी का नाम अलङ्कारिक रूप से ‘देवसेना’ ठीक ही रखा गया है । काठक संहिता ३६। ८, मैत्रायणी संहिता १।१०।१४, ४।३।८ के अनुसार अग्नि को ही देवताओं का सेनापति माना गया है । इसलिये स्कन्द अग्नि का अलङ्कारिक रूप है ।

स्कन्दकुमार का लाल रङ्ग से विशेष सम्बन्ध बताया गया है । अग्नि भी इसी वर्ण की होती है । वाचस्पत्य कोप इसकी पुष्टि करता है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि का घोड़ा भी अलङ्कारिक रूप से ‘रोहित’ लाल कहा जाता है । कोमारी शक्ति के यही गुण बतलाये जाते हैं ।

कोमारी का वाहन मयूर है । मयूर का प्राकृतिक मोर्च प्रसिद्ध है । शारीरिक सौन्दर्य तो अस्थायी रहना है—जीवन का वास्तविक सौन्दर्य तो सद्गुणों का विकास करना है, जिसकी ओर सुन्दरता के प्रतीक मोर इंगित करते हैं ।

मोर मे वर्षा की भविष्यवाणी करने की सूक्ष्म शक्ति विश्रमान है । वह अपने सूक्ष्म नेत्रों से वर्षा के आगमन को अनुभव करता है और 'मेहो मेहो' करके उसकी चेतावनी देता है । मेत्रों को देखकर वह इतना प्रसन्न होता है माना कुवेर का खजाना उसे ही मिल गया हो । जिस तरह एक साधक को अपनी कठोर साधना के फलस्वरूप अपने इष्टदेव के दर्शन कर अगार आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी तरह मोर भी मेघों के माय आत्ममान होना चाहता है । वह आनन्द-विभोर हो नाचता है । किसी ननकी का नाच तो कुछ क्षणों के लिए मानस-पटल पर स्थिर रहता है परन्तु मोर का यह अद्भुत नाच कवियों व साहित्यकारों के कल प्रिय हृदयों में युगों से विद्यमान है और जब भी उनका मन अपनी मस्ती में नाचना है, तो वह मोर के वर्णन कभी नहीं भूलते ।

मोर और सर्प की शत्रुता प्रसिद्ध है । मोर जहाँ भी सर्प को देखता है, उसे नोचने लगता है । सर्प क्रोध, स्वार्थ, अहंकार व दम्भ का प्रतीक है । इसका विपरीत मोर को ज्ञान, विवेक व परोपकार का प्रतिनिधि माना जाता है । इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अहंकार व दूसरों से बड़ा समझने वाली भावना उ पन्न करने वाले रत्न-मणियों की सहायता से शोभा-वृद्धि नहीं की । वह ज्ञान के प्रतीक मोर-पख से ही सन्तुष्ट रहे । इसका अर्थ है कि वह राजा होने हुए भी भौतिकता की सीमाओं से बहुत दूर थे ।

कीमारी का वाहन मोर हमें सद्गुणों के विकास करने की प्रेरणा देता है ।

४-वैष्णवी —

विश्व के पालनकर्ता को विष्णु कहते हैं, उसकी शक्ति वैष्णवी कहलाती है ।

विष्णु का आधार शेष है, शेष का नाम अनन्त है । अनन्त सूर्य

और आकाश दोनों को कृते हैं। आकाश का हम अन्त नहीं पा सकते इसलिए उसे अनन्त कहने हैं। विष्णु का शयन-स्थान यही अनन्त अर्थात् आकाश है। हमें भी आकाश जैसी विशाल उदारता का परिचय देना चाहिए।

सनपथ ब्राह्मण (१।२।१।५) ने घोषणा की है 'वामेनाह विष्णु-राम' अर्थात् जो विष्णु है, वही वामन है। वामन को बीना दिखाया गया है। वह पहले छोटा था, मल्प था, फिर वह बड़ा और विराट् हो गया। अणिमा ही भूमा बनता है। अणु ही विस्तार पाकर महत् बनता है। छोटे-से वामन ने अपने छोटे छोटे पैरों से सारी सृष्टि को नाप लिया।

ऋग्वेद १०।६०।१६ में कहा है—'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' वह प्रथम धर्म थे, उही का धारण संरक्षण व्रण करने हैं। वह धर्मों को सभालते हैं—धारण कर्ते हैं।

विष्णु वह सत्त्व है, वह व्यक्ति विशेष है, जो सबत्र व्यापक है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में फैला हुआ है, जो तीन पगों में सारी सृष्टि को घेर लेता है। त्रिविक्रम तो वह प्रसिद्ध ही है। उसकी जगमगाहट तीनों लोकों के अणु अणु में दृष्टिगोचर होती है, प्राणीमात्र में वह समाया हुआ है।

विष्णु तीन पैरों से सारी सृष्टि को नाप लेते हैं। यह 'चलना' उनकी गति, क्रियाशीलता और सक्रियता की ओर इंगित करता है। वह सदैव जागरूक रहते हैं। जो नियम विश्व की उत्पत्ति के समय बने थे उनकी धारण किये रहना, उनकी देखरेख और सँभाल रखा विष्णु का धर्म है।

सनपथ ब्राह्मण १।२ में यज्ञ का ही विष्णु कहा गया है और कहा है कि यज्ञ के प्रथम पद से पृथ्वी, द्वितीय के अन्तरिक्ष और तृतीय से आकाश में प्रवेश करता है।

विष्णु सवव्यापक शक्ति और बलि आमुरी शक्तियों का प्रतीक है । ब्रह्मन् द्वारा बलि का बांधा जाना ईश्वर द्वारा विश्व की नियम-बद्धता का सूचक है ।

विष्णु सवव्यापक है और चारों दिशाओं में व्याप्त है, कण कण में समाए हुए हैं, प्राणीमात्र में उनका निवास है । जल में, थल में, पुष्प, लताओं, पहाड़ों, इन्द्रगणों, वनों, पशु पक्षी, पुरुष और स्त्री में वही दिव्यार्पित देने हैं ।

ऐसी दृष्टि रखने वाला ही उच्च वैष्णवी साधक है ।

वैष्णवी शक्ति का वाहन गरुड है । भागवत १२।११।१६ में तीनो वेदों को गरुड कहा है । उसे ही यज्ञ रूप विष्णु वाहन करते हैं । देवत्रयी रूप गरुड ही यज्ञ स्वरूप भगवान् के वाहन है । ऋग्वेद साम-वेद और यजुर्वेद में ही यज्ञ की स्मृति मानी जाती है । अतः वेदात्मा ही गरुड है और भगवान् विष्णु उन पर विराजते हैं ।

स्यूल रूप में गरुड और सप की शत्रुता है । गरुड सप भक्षक है । सर्प ओषधी दुष्टता का प्रतीक है वह विष में भरा हुआ है । बिना कारण इस विष का दुष्टयोग करके किसी की भी जीवन-लीला का समाप्त कर देता है — यह उनका स्वभाव है । गरुड ज्ञान के प्रतीक है । उन्हें यह दुष्टतापूर्ण व्यवहार पसन्द नहीं, इसलिए इसे वह पनपने नहीं देता चाहते । भगवान् ऐसी शक्ति को नियन्त्रण में रखते हैं, जो दुष्ट, अनुशुभ और राक्षसों का महार करने में दक्ष हो । सर्प तम का प्रतीक है । भगवान् सत् में आनन्द प्राप्त रहते हैं । भगवान् की सत्-शक्ति तम को खा जाती है । जो भगवान् की पूजा, उपासन, पाठ और ध्यान आदि करते हैं, उनमें भी सत् तत्त्व विकसित होता है जो तम को निगल जाता है । यह गरुड का सर्पों का खाना है ।

वैष्णवी साधक ज्ञान को लक्ष्य बनाकर अपनी साधना का क्रम

बनाता है और जब कभी भी आसुरी शक्तियाँ उसके मार्ग में बाधक बनती हैं, वह उन्हें शक्तिपूर्वक नष्ट करने में सावधान रहता है ।

५-वाराही—

कालशक्ति का नाम वराह है । वर का अर्थ श्रेष्ठ अथवा आत्मा है । उसे आह्वन अथवा आवृत्त करने वाली शक्ति का नाम वराह है । यही पृथ्वी को दानों द्वारा पाताल से निकालती है । इसका अधिष्ठान वाराही करती है ।

काल से सभी भयभीत होते हैं । इसका विरुधात नाम मृत्यु है । साधारणतया शरीर के नष्ट होने को मृत्यु कहते हैं । भारत के तत्त्व-ज्ञानियों ने इस पर गहन अनुमन्वान और खोज की है । वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर मनुष्य का नाश नहीं समझना चाहिए । उन्होंने सिद्ध किया है कि मनुष्य एक ऐसा अदृश्य गुप्त-तत्व है, जो इस पायिव शरीर के नष्ट होने पर भी ज्यों-का-त्यों बना रहता है । यह शरीर तो आत्मा का खोल है । इसका हट जाने से आत्मा के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना । वह तो जैसा पहले था वैसा ही बना रहता है ।

गीतकार ने इसे यूँ समझाया है कि मृत्यु पुराने वस्त्रों को बदल कर नये ग्रहण करने की क्रियामात्र है और नष्ट कहा है कि "यह शरीर का स्वामी अत्मा नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है" (गीता २।१८) । "यह किसी से मारे जाने वाला नहीं है" (२।१९) । "इसको शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता है, इसे अग्नि में जलाया नहीं जा सकता, इसे पानी से भिगोया या गलाया नहीं जा सकता और वायु से सुखाया नहीं जा सकता" (२।२३) । "इसकी रक्षा ऐसे यन्त्र करते हैं, जिन पर इस जगत की किसी भी वस्तु का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता । यह ऐसा अदृश्य तत्व है जो सदैव एक सा बना रहता है जिसकी वृद्धावस्था और नाश कभी नहीं होता, जिसमें किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं

होता । हममे सम्बन्धित शरीर का बन्ध भी हो जाय, तो यह मारा नहीं जाता' (२।२०) । यह अन्न, नित्य, शाश्वत और पुरातन है ।

अन हमे काल मे डरना नहीं है, वरन् उसे गले लगाने के लिए सदैव तत्पर रहना है । वह ईश्वरीय शक्ति है, उसका स्वागत करना ही हमारा धर्म है ।

बाराही का कोई वाहन नहीं है ।

६-नारसिंही—

नरसिंह शब्द का विश्लेषण करते हुए नरसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् मे कहा है कि 'सर्व प्राणियों मे मानव का पराक्रम प्रसिद्ध है और सिंह भी सबसे अधिक पराक्रमी होता है । अन नर और सिंह दोनों के संयुक्त रूप से पराक्रम मे अधिक प्रबलता होती है, इसीलिए भगवान ने यह रूप धारण किया है । वे अनेक इस रूप से विश्व का कल्याण करते हैं । उनका यह स्वरूप अविनाशी एवं सनातन है ।'

नृसिंह, हिरण्यकश्यप का बन्ध करते हैं । हिरण्यकश्यप आत्मा की उस स्थिति को कहते हैं, जब वह विषयो मे लिप्त हो जाती है और उसका पतन आरम्भ होता है । आत्म ज्ञान का विकास ही उसके उत्थान का एकमात्र उपाय है । यही ब्रह्मविद्या नारसिंही शक्ति है क्योंकि यही जीव को नृसिंह बनानी है ।

ब्रह्मविद्या के आधार पर उपलब्ध ज्ञान से मनुष्य अपनी निज की वस्तु-स्थिति को समझ सकता है, आत्मज्ञान उपलब्ध कर सकता है । ब्रह्म की महानता और उसके सान्निध्य की उपयोगिता भी उसकी समझ में आती है । प्रिय-अप्रिय परिस्थितियों मे जो राग, द्वेष, हृष, शोक भरे आवेश उठते रहते हैं, उनकी उत्तेजनात्मक अशुभ प्रतिक्रियाओं से भी बचे रहना ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर ही सम्भव है । ब्राह्म जीवन मे सुख और अन्तःकरण मे शान्ति को समुचित मात्रा में प्राप्त कर सकना भी ब्रह्म-सम्बन्ध की प्रगाढ़ता पर ही निर्भर है । सुख और शान्ति की

इन्द्र की प्रशमा के वेद में सूक्त-के-सूक्त भरे पड़े हैं। ऐसा लगता है कि उस युग में इन्द्र ने अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य किए थे और अनार्यों से आर्यों की रक्षा की थी। महान् रक्षक और योद्धा के रूप में इन्द्र ने आर्यों का हृदय जीत लिया था, तभी उन्हें सर्वोच्च आसन पर अवस्थित किया गया था। इसीलिए उनकी कीर्ति देश की सीमाओं का तोड़कर विदेशों में भी फैली। श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह के अनुसार "वृत्रहन् बहुराम" अथवा राम के रूप में ईरान तथा 'वाहाजन' में एव पगक्रमी 'हरकुलेश' के रूप में मध्यपूर्व तथा यादव में भी इन्द्र की पूजा हुई, तथा वरुण, मित्र एव नामत्य के साथ इन्द्र नाम से भी यह मिश्र के राजाओं के देवता रहे।"

इन्द्र का जीवन हमें बताना है कि सम्सार में शांति-द्रोहियों का नाश करना चाहिए, अन्यायो और अत्याचारों के विरुद्ध सघर्ष जारी रखना चाहिए, जब तक कि उनकी समाप्ति न किया जाए। हर व्यक्ति को असुरता निरन्तर परेशान किए रहती है। अतः उसे निरन्तर सघर्ष-रत रहना है, जीवन भर उसे अपने घातरिक्त शत्रुओं से लड़ते रहना है, उसे तब तक दम नहीं लेना है, जब तक कि उन पर विजय प्राप्त करके इन्द्रामन पर विराजमान न हो जाये। ऐन्द्री-शक्ति की यही प्रेरणा है।

इन्द्र का वाहन ऐरावन है। 'ईद्' घातु का अर्थ गति है। 'रावान्' का अर्थ गतिविशिष्ट है। ऐरावन से क्रियाशीलता का ही भास होता है। इन्द्र में यदि क्रियाशीलता का गुण न होता तो वह कैसे आसुरी शक्तियों के महादुर्गों का विध्वंस कर सकने में समर्थ होते। व्यावहारिक क्षेत्र में भी हम इसका समर्थन पाते हैं।

क्रिया से बल की प्राप्ति होती है। क्रियाहीन व्यक्ति की शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं। मरिचा का जल क्रियाशील रहता है, तो उसमें जीवन तत्व की मात्रा घटिक पाई जाती है। खड़ा पानी उस पक्षी को तरह है, जिसके पख बाँट लिए जायें ताकि वह वह उड़ने में मजबूर हो

जाए। प्रवहनी जल सड़ने लगता है और चलते पानीमें शक्ति का इतना विकास हो जाता है कि उसके महयोग से विद्युत् उत्पन्न की जाती है, मशीनें चलाई जाती हैं, अन्य अनेको कार्य किए जा सकते हैं। शक्ति का प्रयोग जहाँ भी किया जायगा, वहीं उफनता उनका हार्दिक रूप से स्वागत करेगी।

जो व्यक्ति परिश्रम नहीं करते, उनका स्वास्थ्य गिरने लगता है, खाना हजम नहीं होता, दस्त माफ नहीं होता—जीवन रसहीन हो जाता है। क्रियाशील जीवन व्यतीत करने वालों के स्वास्थ्य की सुरक्षा रहती है। उनके मुख-मण्डल पर एक अप्रुव तेज चमकता है, जो क्रियाशीलता का ही द्योतक है। निरन्तर गद्दी पर बैठने वाले व्यापारी का पेट बड़ जाता है, शरीर ढीला पड़ जाता है। रोग पनपने हैं, बढ़ने हैं और उन्हें प्रोत्साहन मिलता है। मजदूर सूखी रोटी खाकर भी अत्यन्त परिश्रम का कार्य करने की क्षमता रखता है। दण्ड, बँठक, दौड़, कुश्ती, मुन्दर आदि के व्यायाम से स्वास्थ्य के निखरने का भी यही अभिप्राय है।

केवल चैतन्य जीवों में ही नहीं, जड़ पदार्थों में भी यही नियम लागू होता है। लोहा एक स्थान पर पड़ा रहे, तो उसे जग लग जाता है। परन्तु जो सान पर रखा जाता है, उसकी धार तेज होती है। हीरा जब खराद पर चढ़ाया जाता है, तभी उसका रूप-रंग निखरता है अन्यथा वह मिट्टी से बना हुआ एक पत्थर ही लगता है। पत्थर से हीरा बनाने का श्रेय क्रियाशीलता को ही है। स्पष्ट है कि हम भी यदि अपने पत्थर रूपी जीवन को हीरा बनाना चाहते हैं तो हमें इसी अटल सिद्धान्त का अनुकरण करना होगा, तभी हमारे जीवन में जीवन आ पायेगा।

इन्द्र साक्षी हैं कि जीवन में सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए हमें निरन्तर गतिशील रहना होगा।

८-चामुण्डा—

काली ने चण्ड और मुण्ड नामक दो महावीर असुरों का युद्ध में वध किया था, इसलिए उनका नाम चामुण्डा पड़ा ।

चण्ड प्रकृति और मुण्ड निवृत्ति के बोधक हैं । इन्हें नष्ट करने वाली प्रलय शक्ति ही चामुण्डा कहलाती है । इस जगत में अपार सख्या में चण्ड और मुण्ड भरे पड़े हैं और वह निरन्तर आसुगी प्रहार करते हैं । यदि उनके प्रति सावधानी न बरती जाय, तो निश्चय ही हमें दुःख-कलह-क्लेश का ही सामना करना पड़ेगा । हमें अपनी शक्तियों का विकास करना होगा और इनमें युद्धरत रहने के लिए सदैव तैयार रहना होगा अन्यथा जीवन में निराशा-ही-निराशा देखेंगे । आशा और विश्वास के दशन के लिए चामुण्डा का आह्वान आवश्यक है ।

चामुण्डा का कोई वाहन नहीं है ।

यह शक्ति के विभिन्न वाहनो का रहस्य है । यदि इन भाव्यात्मिक रहस्यों को जीवन में उतारा जाय, तो जीवन अबाध गति से प्रगति-पथ पर आरुढ़ हो सकना है, इस कुछ भी सन्देह नहीं है ।

आचार्य शंकर और शक्ति मत

स्वामी शङ्कराचार्य वैदिक धर्म के संस्थापक माने जाते हैं, साथ ही उन्हें शाक्त-सिद्धान्तों के विवेचन में प्रमाण स्वीकार किया जाता है। कुछ शाक्त उन्हें मायावादी और अपने कुछ सिद्धांतों का विरोधी भी समझते हैं। सम्भव है कभी उन्होंने शाक्त-मत का खण्डन भी किया हो। कथा है कि वह एक बार शाक्तमत का खण्डन करने के लिए कश्मीर गये थे। वहाँ दस्तों में वह बिल्कुल अशक्त हो गए, तो एक बारह वर्ष की कन्या उनके पास आई और कान में कहा कि आप तो शाक्त-मत का खण्डन करने आये हैं ? शङ्कर ने धीरे में कहा—‘मैं आया तो इसी उद्देश्य में था परन्तु अभी मुझमें बचने की शक्ति नहीं है। रोग से मुक्त होकर जब स्वस्थ हो जाऊँगा और शक्ति आ जायगी तो कुछ करूँगा। शक्ति के बिना तो कुछ भी करना सम्भव नहीं है।’

उस कन्या ने कहा—“जब आप शक्ति के अभाव में कुछ भी करने में असमर्थ हैं तो शाक्तमत का खण्डन और भद्वंत मत का मण्डन किस प्रकार कर सकेंगे ? मैं ही शिव की शक्ति शिवा हूँ। शिव तो एक, अद्वितीय, कूटस्थ, अचल, ध्रुव और एकरस है। उनमें क्रिया का अभाव है। शिव ने मेरी—शक्ति की रचना की है—इससे आप भी सहमत हैं। फिर आप उसका खण्डन कैसे कर सकते हैं ? खण्डन-मण्डन तो मैं ही करूँगी, शिव कुछ नहीं करेंगे। जिसके अभाव में आप कुछ भी करने में असमर्थ हैं, उसका आप खण्डन कैसे करेंगे ? मैं शिव से

अभिन्न हैं फिर भी जगत् जीव शिव और अपने अस्तित्व की सत्ता को मैं मिट्ट कर्ता हूँ । अतः मेरा खण्डन कैसे करोगे ?

सुनते हैं, शङ्कर अवाक रह गए और कश्मीर से लौट आए । तब से उन्होंने शाक्त मत का खण्डन नहीं किया । एक किवदन्ती और है कि एक बार वह महादेव के दशानों के लिए कैलाश गये और उनमें सौंदर्य लहरी माँगी, जो शिव न दे दी । नन्दी को यह अच्छा नहीं लगा जब वह चलने लगे तो नन्दी ने झपट्टा मारा और पुस्तक को छीनने का प्रयत्न किया । वह आधी पुस्तक प्राप्त करने में सफल हो गया । शङ्कर के पाम आधी ही रह पाई । यहाँ आकर उन्होंने इसका पुनरुद्धार किया । शाक्तों के लिए सौंदर्य-लहरी का प्रत्येक श्लोक मन्त्र-रूप होता है । अतः इससे वह एक महान् शाक्त दृष्टिगोचर होते हैं ।

ऐसा लगता है कि शङ्कर को शाक्त दृष्टि गुरु परम्परा से ही प्राप्त हुई है । उनके परमगुरु गोडपाद महान् वेदान्तिक होने के नाते ब्राह्मण-कारिका के रचयिता थे । दूसरी ओर वह योगाचार्य के अद्वैतवाद के भी पक्षपाती थे । आगम-मत के वह विशिष्ट विद्वान् थे—यह उनकी 'सुभगोदय स्तुति' से परिलक्षित होता है । इस पर अनेको टीकाएँ हैं । आचार्य शङ्कर ने भी इस पर टीका लिखी थी । उन्होंने 'श्री विद्यारत्न सूत्र' की भी रचना की थी । इसकी अनेको टीकाएँ हुई हैं ।

कुछ प्राचीन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि शङ्कर गुरु-परम्परा से मे शाक्त मत के उपदेश व उपासक रहे हैं । 'श्री क्रमोत्तम' श्रीविद्या का अष्ट ग्रन्थ है उसमें शिव में प्रारम्भ करके वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुकदेव, गोडपाद, गोविन्दपाद और शङ्कर का नाम आता है । मातंगी-पूजा के एक ग्रन्थ 'तुमुलि पूजा पद्धति' में भी इस क्रम में कुछ समानता है । अन्तर इतना ही है कि शङ्कर के बाद 'दोधघन' और 'जातघन' है । 'भुवनेश्वरी रहस्य' में भी इसका वर्णन आता है । इससे स्पष्ट है कि वह भुवनेश्वरी, मातंगी और श्रीविद्या के उपासक व प्रचारक थे ।

शङ्कर ने तन्त्रमत के प्रसिद्ध छ' सम्प्रदायो—शैव, वैष्णव, सौर, शाक्न, गाणपत्य और कापालिक के सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया था और उनकी हड़ना से प्रतिष्ठापना की थी। इन सम्प्रदायों के उपास्य देवों की स्तुतियों की भी उन्होंने रचना की थी। इस तरह से तांत्रिक सम्प्रदायों की एकता में उनका व्यक्तित्व प्रादर्श रहा।

शङ्करकृत भवानी-स्तुति प्रसिद्ध है। उनका पहना श्लोक इस प्रकार है—

भवानि स्तोतु त्वा प्रभवति चतुर्भिर्न वदनै ।

प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथन पञ्चभिरपि ॥

न षड्भि सेनानीदशशतमुखैरप्यहिपति—

स्तदान्पेषा केषा कथा कथमस्मिन्नवसर ॥

“हे भवानी ! सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा अपने चार मुखों से, त्रिपुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने वाले शङ्कर अपने पाँच मुखों से, छ मुखों वाले कार्तिकेयजी और हजार मुख वाले शेषजी भी तुम्हारी स्तुति करने में अपमर्श रहते हैं। फिर मेरे जैसे जीवों के लिए तो यह कैसे सम्भव है ?”

ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में भी उन्होंने शाक्त-मत का प्रतिपादन किया है। यथा—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्व सिध्यति ।

शक्तिरहितस्य तस्य प्रवृत्यनुपपत्तते ॥

—ब्र०सू० शा०भा० १।४।३

“शक्ति के अभाव में ईश्वर सृष्टि की रचना नहीं कर सकते, क्योंकि इसके बिना उनका क्रियाशील होना सम्भव नहीं है।”

इसी प्रकार—

एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीरादिवद्विचित्र-परिणाम उपपद्यते ।

—ब्र०सू० शा०भा० २।२।२४

इस परा शक्ति की सामर्थ्य से ही ब्रह्मा को शरीर अथवा इन्द्रियो के धारण की अपेक्षा नहीं रहनी । इनके बिना भी वह सर्वज्ञ और सब शक्तिमान रहते है ।

‘सौदय-लहरी’ शङ्कर की एक अनुगम रचना है, जिसे यदि कवित्व और तात्त्विक ज्ञान की त्रिवेणी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी । इसमें ३५ टीकाएँ प्राप्य हैं, जिनमें वामेश्वरसूक्ति, नरसिंह, अण्णुनानन्द और कैवल्यश्रम की टीकाएँ अभी तक भी प्रकाशित नहीं हो पाई हैं । लक्ष्मीधर की टीका उत्तम है । शङ्कर ने इसमें श्रीविद्या का समुद्धार किया है ।

सौदर्य-लहरी का प्रथम श्लोक ही शिव-शक्ति के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है—

शिवशक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितु,
न चेदेव देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्या हरिहरविरिञ्चादिभिरपि,
प्रणान्तु स्तोतु वा कथमकृतपुण्य प्रभवति ।

“शिव यदि शक्ति से सचिन होना है, तो वह प्रभावशाली एवं शक्ति-सम्पन्न हो सकता है और यदि ऐसा नहीं होता, तो वह देव स्पन्दन न करने के लिये भी कुशल नहीं होता है । अतएव आराधना करने के योग्य आप ही हैं, जिनको हरि, हर और ब्रह्मा आदि भी प्रणाम करते हैं तथा स्तवन किया करते हैं अन्यथा अकृत पुण्य वह कैसे समर्थ हो सकता है ।”

और भी कहा है—

शरीर त्व शम्भो शशिमिहिरवक्षोरुहयुग,
तवात्मान मन्ये भगवति नवात्मानमनघम् ।
अत शेष शेषीन्ययमुभय साधारणतया,
स्थित सम्बन्धो वा समरसपरानन्दपरयो ॥

“शम्भु का शरीर आप ही हैं, आपके दोनों स्तन शशि और सूर्य हैं । हे भगवती ! मैं आपको ही अनघ नवीन आत्मा मानता हूँ । अतएव शेष और शेषी यह उभय मे साधारणता से स्थित सम्बन्ध है, जो सम रस परानन्द पर आप दोनों का है ।”

इसी प्रकार—

मनस्त्व व्योम त्व मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्व भूमिस्त्वयि परिणताया न हि परम् ।
त्वमेव स्वात्मान परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकार शिवयुवतिभावेन विभृषे ॥

—सौदर्य लहरी ३५

“आप ही मन हैं, व्योम तथा वायु भी आप ही हैं और मरुत के सारथि भी आप हैं । आप ही जल हैं । परिणत आप मे भूमि है, अन्य नहीं है । आप ही स्वकीय आत्मा को विश्ववपु के द्वारा परिणामित करने के लिए ज्ञान तथा आनन्द के आकार वाला स्वरूप शिव और युवती के भाव से धारण किया करती हैं ।”

उनके शाक्त मत का पक्षपाती होने का प्रमाण नीचे के दो स्तोत्रों से भी भली प्रकार सिद्ध होता है—

शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी,
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्त्वमयी चिन्मयी ।
तत्त्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी,
सर्वेश्वरमयी सदाशिवमयी मा पाहि मीनाक्षिके ॥

—मीनाक्षी-स्तोत्र

“मीनाक्षी माँ ! तुम शब्द-ब्रह्म से युक्त हो, चराचर में व्याप्त हो, प्रकाश स्वरूपा हो, वाणी में व्याप्त हो, नित्य आनन्दमयी हो, निर्लेप हो, तत् और त्वम् पदों से युक्त एक चैतन्यस्वरूपा हो । तत्त्वों से पृथक् हो, परात्पर हो, माया और लक्ष्मी से परिपूर्ण हो, सारे ऐश्वर्यों की स्वामिनी हो, सदाशिव से युक्त हो, मुझ भक्त की रक्षा करो ।”

चकार निर्गुणब्रह्मोऽपि सगुणब्रह्मविशेषण सद्भाव-
समुच्चयपर सर्वत्रापि द्रष्टव्य । 'सच्चिन्मय शिव साक्षात्तस्या-
नन्दमयी शिवा' इति वचनेन स्त्रीरूपा चिन्तयेद्देवी पुं रूपामथवे-
श्वरीम् । अथवा निष्कल व्यायेत् 'सच्चिदानन्दविग्रहम्' इति
स्मृत्या च 'त्व स्त्री त्व पुमान्' इति श्वेनाश्वतरोपनिषद् उपाधि-
कृतनानारूपसम्भवोक्तेश्च । अतएव 'सेय देवतैश्च' इत्यादौ 'तत्सत्य
स आत्मा' इत्यन्ते च, श्रुतौ स्त्रीगिान्तदेवतादिपदानि तत्सत्यमिति
नपु मकान्तस्य, स आत्मेति पुंल्लिगात्मशब्दस्य एकार्थत्वम् ।
अविवक्षितोपाधिमत्तया तत्त्व परलक्ष्यायस्यैकात्वात् । तस्मात्
तत्त्व लक्ष्यार्थे सर्वेऽपि गुणा वर्णानु सम्भवन्तीति हयग्रीवेण
अस्या विगत्या बहव, चकारा उपात्ता । —ललितात्रिशती भाष्य

"चकार निर्गुण ब्रह्म का श्रीर मण्ण ब्रह्म का बोध कराने वाला
ममभूता चाहिए । 'शिव साक्षात् मत्, चित् श्रीर आनन्द से युक्त है'
श्रीर 'देवी का स्त्री-रूप मे अथवा पुरुष-रूप में चिन्तन करे' अथवा
'सच्चिदानन्द ब्रह्म के निर्गुण रूप का ध्यान करे'—इम स्मृति-वचन मे
'तुम स्त्री हो श्रीर तुम पुरुष भी' इम श्वेनाश्वतरो निषद् के वचन का
प्रमाण उपस्थित है । इसनिए 'इम देवी ने देखा', 'वह सत्य है, वही
आत्मा है' आदि मे, वेद मे स्त्रीलिंग शब्दो एव पुंल्लिङ्ग शब्दो का एक
ही अर्थ है । उपाधि न कहे ज्ञाने के कारण पर लक्ष्य-प्रथ भी एक ही
है । इसलिए तत् श्रीर त्वम् पदो द्वारा सारे गुणो का वर्णन भी सम्भव
है, इसलिए हयग्रीव ने इसमे बहुत से चकार बनाए हैं ।"

शङ्कर वेदान्त तथा अद्वैतवाद क, आचार्य माने जाते हैं । तन्त्रो
का गम्भीर अवलोकन करने वालो को भी उनमे यही ध्वनि सुनाई देनी
है । जैव तथा शिवन आगमो मे विभिन्न स्थानो पर इस मत की महिमा
का गान किया गया है । चतुषष्टि भैरवागमो में भी अद्वैतत्व का
प्रतिपादन है । यह तन्त्र जीवात्मा को परमात्मा के साथ अभेद सिद्धि
मानने हैं । तांत्रिक सधना का पहला सिद्धान्त भी यही है—

देवो भूत्वा यजेद् देवम् ।

सागर को अपने उपरम देव के साथ एक ही स्थापित करनी चाहिये । ज्ञानतन्त्र को प्रत्येक सागर में भर देना ही प्रणामता रहनी है । उदासी को विचार-धारा रहनी है --

यद्देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मावाह न लोकभाक् ।

सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥

'मैं देवी हूँ, अन्य नहीं । मैं ब्रह्म ही हूँ । लोक का विषय नहीं । सत्, चित् और आनन्द गुणों से युक्त मैं निरामय हूँ ।'

इससे स्पष्ट है कि शङ्कर वेदोक्त मत के परम साधार्म्य होने के कारण भी शान्त-मत का समर्थन करते थे और इससे उपदेष्टा थे ।

शङ्कर ने 'पञ्चतन्त्र' नाम के तन्त्र की रचना भी की है । इसकी टीका उनके शिष्य पद्मसादाचार्य ने लिखी है । 'सौम्य सङ्गीत' के अतिरिक्त 'सत्सिद्धांतशतीभाष्य' उनकी एक उत्तम कृति मानी जाती है ।

इससे शङ्कर को तन्त्र-प्रसार का एक स्वतन्त्र माना जा सकता है ।

शक्ति और वेद

वेद में शक्ति तत्व का अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । वेद के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आर्य ऋषि ईश्वर के मातृस्वरूप की आराधना से परिचित थे । प्रमाणस्वरूप अनेकों मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जो इस भावना के बोधक हैं । वेद में कहा है कि एक 'अजा' से ही प्रजाओं की सृष्टि हुई है । उस 'अजा' से यह आद्याशक्ति ही अभिप्रेत मानी गई है ।

ऋग्वेद में तो एक पूरा सूक्त इसी के लिए सुरक्षित है । अम्भृण ऋषि की विदुषी कन्या वाक् को परमात्म-साक्षात्कार हुआ था और ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त करने में वह सफल हुई थी । उनकी अनुभूतियों के साररूप मन्त्र वेद में दिए हुए हैं, जिन्हें देवी-सूक्त के नाम से सम्बोधित किया जाता है । ऋग्वेद के १० वे मण्डल का १२५ वाँ सूक्त है —

अह रुद्रे भिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैस्त विश्वेदेवै ।
 अह मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमाश्वनोभा ॥
 अह राष्ट्रो सगमनी वसूतां विक्रिनुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
 तां मा देवाव्यदधु पुरुत्रा भूरिस्थात्रा भूर्यादेशयन्त ॥
 अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवानामुत मानुषाणाम् ।
 य कामये ततमुग्र कृणोमि त ब्रह्माण तमृषि त सुमेधाम् ॥
 मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति य प्राणति य ई
 शणोत्युक्तम् ।

अमन्नवो मा त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेय
ते वदामि ॥

अह रूद्राय घनुरा तनोमि ब्रह्माद्विपे शरवे हन्तवा ।
अह जनाय ममद कृणाम्यह द्यावापृथिवी आ विवेश ॥
अह सोममाहनस विभम्यह त्वष्टाह त्वष्टारमुत पूषण भगमे ।
अह दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राख्या यजमानाय
सुन्वते ॥

अह सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरस्वन्त समुद्रे ।
तनो विनिष्ठे भुवनानि विश्वोतामू द्या वर्ष्मणोप
रपृशामि ॥

अहमेव वाताइव प्र वाभ्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावतो महिम्ना म बभूव ॥

अर्थ — 'मैं ग्यारह रुद्र और आठ वसुओं के रूप से विचरती हूँ ।
वाता आदि द्वादश प्रादित्य और विश्वेदेवा रूप में भी विचरती हूँ । मैं
मिश्रावरुण का भरण करती, इन्द्राग्नि और अश्विद्वय को धारण
करती हूँ ।

मैं ब्रह्मात्मिका दिखाई पड़ने वाले सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी
हूँ इसलिये आराधकों को ऐश्वर्य प्राप्त कराती हूँ । मैंने परब्रह्म में
साक्षात्कार किया है, इसलिये यज्ञयोग्य देवताओं में मैं प्रमुख हूँ । ऐसी
मुझे, फलदाता देवता अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित करते हैं । इस प्रकार
देवगण जो कुत्र करते हैं, वह सब मेरे निमित्त ही होता है ।

मैं स्वयं आत्मरूपा हूँ । मैं इन्द्रादि देव और मनुष्यों को भी प्रिय
ब्रह्मात्मक वस्तु का उद्देश करती हूँ । मैं जिमकी रक्षा करना चाहती
हूँ उसे प्रबल बनाती हूँ । मैं उसे ईश्वर, मृग और ऋषि बनाकर सुन्दर
बुद्धि में सम्पन्न करती हूँ ।

अन्न भक्षण करने वाला भोजना मेरे द्वारा ही खाता है । देयना,

सुनना, स्वांस लेना आदि सभी काय मेरे द्वारा ही किये जाते हैं । मैं इस प्रकार अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हूँ । जो मुझे नहीं जानते, वह उपक्षीण हो जाते हैं । हे मित्र ! यह भक्ति करने के योग्य जो कुछ, मैंने कहा है, उसे ध्यान में सुन ।

त्रिपुरासुर को मारने के लिये मैं ही अनुप उठाती और स्तुति करने वालों के लिये युद्ध करती हूँ । मैं स्वर्ग और आकाश को अदृश्य रूप से व्याप्त करती हूँ ।

शत्रुओं का जहाँ नाश हो जाना है, ऐसे स्वर्ग में निवाम करने वाले देवताओं से मन्त्रन्वित सोम का मैं पोषण करती, त्वष्टा, पूषा और भग देवता का भी मैं ही पोषण करती हूँ और मैं ही हविदाना यजमान को भी यज्ञ का फलरूप ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ ।

इस दीखते हुए लोक के शिररूप सत्यलोक में निवास करने वाले विधाता को मैं ही उत्पन्न करती हूँ । इस मसार की मैं ही कारणरूप हूँ, ब्रह्म-चैतन्य की निमित्त भी मैं ही हूँ । समुद्र में बड़बानल और विद्युत्-रूप तेज भी मेरा है । मैं सब प्राणियों को प्रकट करती, स्वर्ग और ब्रह्म में अव्यक्त विकारों को मायात्मक देह से स्पर्श करती, पृथ्वी के ऊपर पितारूप द्युलोक को प्रेरित करती और अन्तरिक्ष के जन्म के विकार रूप देवताओं में जो ब्रह्म व्याप्त है, उसके द्वारा मैं सबको छूती हूँ ।

मैं किसी अन्ध की सहायता लिए बिना सब प्राणियों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ । द्युलोक, पृथ्वी और सम्पूर्ण विकारों से रहित ब्रह्म-चैतन्य रूप वाली मैं अपनी ही महत्ता से ऐसी शक्तिशालिनी हो गई हूँ ।”

इयम ददोद्र भसमृणाच्युत दिवोदास वध्रचश्वाय द्राशुपे ।

या शाश्वन्तमाचरवादावम पर्णि ता ते दात्राणि तविषा

सरस्वति ॥

इय शुष्मेभिविसखा इवारुजत्सानु गिरीणा

तविपेभिरुमिभि ।

पागावतधनीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वतीमा

विवासेम धीतिभि ॥

सरस्वति देवनिदो निवर्ह्य प्रजा विश्वम्य वृसयस्य

भायिन ।

उत क्षितिभ्योऽवनीविन्दो विपमेभ्यो अस्रवो

वाजिनीवति ॥

प्रणो देवी सरस्वती वाजे भिर्वाजिनीवती

धीनामवित्र्यवतु ।

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपव्रू ते धने हिते

इन्द्र न वृत्रतूर्ये ॥

‘सरस्वती ने हविदाता वध्रयस्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया । उन्होंने अदानशील पणि का शोधन किया । हे सरस्वती तुम्हारे दान विस्तृत हैं । यह सरस्वती पर्वत के तटों को अपनी लहरो से तोड़ती है । हम उन्हीं की सेवा करते हैं । हे सरस्वती ! तुमने देव निन्दको और त्वष्टा के पुत्रों को मारा तथा मनुष्यों को भूमि देकर जल-वृष्टि की । अस्रवनी सरस्वती रक्षा करने वाली हैं, वे हमे भली प्रकार तृप्त करे । इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है, वही पुरुष धन प्राप्ति वाले सग्राम में जाता है । तुम उसकी रक्षक होओ ।’

त्व देवि सरस्वत्यवा वाजेपु वाजिनी

रदापूपेव न सनिम् ।

उत स्या न सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि

वृत्रघ्नी वृष्टि सुष्टुतिम् ॥

यस्या अनन्तो अह्नुतस्त्वेपश्चष्णुर्गर्वाव

अमश्चरति रोहवत् ।

सा नो विश्वा अतिद्विप. स्वसृरन्या अन्तावरी

अतन्नहेव सूर्य ॥

उत न प्रिया प्रियासु सप्तम्बसा सुजुष्टा

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥

“हे सरस्वती ! तुम युद्ध में रक्षा करो । पूषा के समान हमें उपभोग्य धन दो । शत्रु का नाश करने वाली रथाहटा सरस्वती हमारे श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करे । इन सरस्वती का वेगवान जल शब्द करता हुआ जाता है । सूर्य जैसे दिन को लाते हैं, वैसे ही सरस्वती विजय लेकर अपनी अन्य भगिनियों सहित आती हैं । सरस्वती की प्राचीन ऋषियों ने सेवा की थी, वह हमारी स्तुति के योग्य हो ।”

आपपर्षा प्राथिवान्यरु रूजो अन्तरिक्षम्

सरस्वती निदस्पातु ॥

त्रिषधस्ता सप्तधातु. पञ्चजाता वर्धयन्ती ।

वाजेताजे हव्याभूत ॥

प्रचा महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या

आपसामपस्तमा ।

रथइव बृहती विभवने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा

मा न आ धक् ।

जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥

“जिन सरस्वती ने स्वर्ग और पृथ्वी को तेज से पूर्ण किया है, वे हमें निन्दकों से बचावें । सप्त नदियों वाली सरस्वती सग्राम में आह्वान करने योग्य होती है । यशवती, नदियों में श्रेष्ठ, गुणवती सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं । हम हीन या पीडित मत करो । हमारा वन्धुत्व स्वीकार करो । हमें निकृष्ट स्थान को प्राप्त न हो ।”

एक विद्वान् ने इन शब्दों में सरस्वती का विवेचन किया है—

“वेद का प्रतीकवाद सरस्वती के अलङ्कार में अत्यधिक स्पष्टता

के साथ अपने आप को प्रकट कर देता है, छुटाकर नहीं रख सकता । वह तो सीधे तौर पर और स्पष्ट रूप से वाणी की देवी है, एक दिव्य अन्न प्रेरणा की देवी है । "सरस्वती का सम्बन्ध न केवल अन्य नदियों के साथ है, किन्तु अन्य देवियों के साथ भी है, जो देवियों की स्पष्ट तौर से आध्यात्मिक प्रतीक है । "इना, मही या भारती और सरस्वती—ये तीनों उन प्रार्थना मन्त्रों में, जिनमें कि अग्नि के साथ देवताओं को यज्ञ में पुकारा गया है, एक स्थिर सूत्र के रूप में इकट्ठी आती हैं ।"

ऋग्वेद के श्रीसूक्त में भगवती के जड और चेतन रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

का सोऽस्मिता हिरण्यप्रकारामार्द्रा,
ज्वलन्ती तृप्ता तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थिता पद्मवर्णा
तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

"किसी आनन्द-पद्ममय तथा सुस्थ, स्निग्ध, प्रेमास्पद, प्रकाश शील जडस्वरूप और अपने लोक में सोने के महल वाली, अपने आप तृप्त और दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने वाली, पद्माकर सिंहासन में विराजमान और मन्त्रों में पूज्य रूप अर्चावतार से स्थिति पद्म वर्ण वाली उस भगवती का मैं ध्यान करता हूँ ।"

अथर्ववेद के चौथे कांड के ३०वें सूक्त की देवता भी वाक् है । इसमें भी ८ मन्त्र हैं और यह वही ऋग्वेद वाले ही मन्त्र उद्धृत हैं, परन्तु प्रस्तुत करने में कुछ अन्तर है । अथर्ववेद के ऋषि को वाक् देवी की वाणी ने प्रभावित किया, तभी पूरे-का पूरा सूक्त उसी प्रकार दे दिया जैसा ऋग्वेद में है । इससे वेद की शक्ति विषयक मान्यता और दृढ़ होती है । दुर्गा की स्तुति करते हुए अथर्ववेद का ऋषि कहता है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञान रूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य साक्षिणी ॥

यस्या परतर नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ।
ता दुर्गा दुर्गमा देवी दुराचार विघातिनीम् ।
नमामि भवभोतोऽहं ससारार्णवं ताङ्गीम् ॥

“मन्त्रों में मातृका, शब्दों में ज्ञान, ज्ञानों में चिन्मयीता, शून्यो में घून्घ साक्षिणी रूप से और जिनमें परे और कुछ नहीं है, वही है माँ दुर्गा । उन्हीं दुर्विजेय, दुर्गम, दुराचारनाशिनी, समार से पार करने वाली भगवती दुर्गा को मैं भवभीत जन नमस्कार करता हूँ ।”

ईश्वर के मातृरूप को ऋग्वेदमें अदिति कहा गया है । वही वेदमें मातृत्व-रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं । इस अक्षरद्वय आनन्द और चैतन्य को स्फुरित करने वाली शक्ति का रहस्यमय नाम ‘अदिति’ रखा गया है । उसे देवनामयी भी कहा गया है । ‘अदिति’ के रूप का वर्णन करते हुए ऋग्वेद (१।८६।१०)में कहा गया है—

अदितिर्द्यौरदितरन्तर्गिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र ।
विध्वे देवा अदिति पञ्चजना अदितिर्जातिमदितिर्ज-
नित्वम् ॥

“आकाश, अन्तरिक्ष, माना, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, सभी जातियाँ अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा, वह सभी अदिति के रूप हैं ।”

ऋग्वेद ८।२५।३ में इसे सत्यनिष्ठा और महिमामयी कहा गया है और तेजस्वी तथा ऐश्वर्यशाली मित्रावरुण को राक्षसों का बल मिटाने के लिए प्रकट करने का गौरव प्राप्त हुआ है । ८।८७।२ में मित्र, वरुण और अर्यमा की माता कहकर उसे सुखदाता, धनदाता और मंगलकारक कहा गया है । २।२७।७ में ऋशुओं से सुरक्षा के लिए अदिति से प्रार्थना की गई है । १।१३६।३ में अदिति को पृथ्वी की धारक और आकाश से युक्त कहा गया है, जिनकी मित्र, वरुण नित्य सेवा करते हैं । ८।६७। १२ में पुत्रों को जीवित रखने के लिये रक्षा की प्रार्थना की गई है ।

५।४६।६ में अदिति को सर्वव्यापक स्वीकार किया गया है । ७।४०।४ में अदिति को प्रकाशमयी का विशेषण दिया गया है । २।४०।६ में अदिति को तेजस्विनी कहा गया है और शत्रुओं से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है । ७।६३।६ में अदिति से दोषमुक्त करने की प्रार्थना की गई है अर्थात् वह इस शक्ति से सम्पन्न है ।

यजुर्वेद (२१।५) में अदिति के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

महीमूषु मातर७ सुव्रनानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।

तविश्वनाम जरन्तीमुखो ७ सुरार्माणमदिति

सुप्रणीतिम ॥

“महान् यश वाली, श्रेष्ठ कर्मों की माता और सत्यरूप यज्ञ की पालिका, बहुशक्त से रक्षा करने वाली, दीर्घ मार्ग में गमनशील और अजर तथा कल्याणरूप अदिति को रक्षा के लिए ग्राह्य करते हैं ।”

अथर्ववेद ६।४।१-२ में अदिति को अजेय बल की रक्षक कहा गया है ।

श्री भरविन्द ने अदिति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि “अदिति वह अनन्त सत्ता है, जिससे देवता उत्पन्न हुए हैं और जो अपने सात नामों और स्थानों (धामानि) के साथ माता के रूप में वर्णित की गई है । यह भी माना गया है कि वह अनन्त चेतना है, गो है, या वह आद्या ज्योति है, जो ‘सप्तगाव’ में व्यक्त होती है ।

वेदों की अदिति—अनन्त अखण्ड शक्ति—देवताओं की माँ है । मूलरूप से अदिति एकमेव और स्वयं प्रकाशित अनन्त सत्ता की शुद्ध चेतना है । अदिति वह ज्योति है जो समस्त वस्तुओं की माँ है । यह वह गाय है, जिसका धन समस्त विश्व का पोषण करता है । यहाँ निम्न-सत्ता में वह भू-सिद्धात के रूप में व्यक्त हुई है । अदिति—अनन्त माँ—अपने बालकों—देवताओं—के जन्म तथा काय के द्वारा मानव-सत्ता में अपने को उपलब्ध है ।”

दिति दैत्यो की माता है—इसका भी वेद में वर्णन आता है । अदिति और दिति की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए एक अधिकारी विद्वान् ने एक बार लिखा था—

“जिस प्रकार व्यक्ति को जन्म देने वाली माता होती है, उसी प्रकार जगत् और ब्रह्मांड को उत्पन्न करने वाली माता भी है । नि सीम विश्वातीतता (Transcendence) में से विश्व को जन्म देना विश्व-माता का काम है । परन्तु विश्व की उत्पत्ति के बारे में बिल्कुल ही अलग, फिर भी अविरोधी और एक दूसरे के पूरक दो दृष्टिबिन्दु हैं । एक के अनुसार विश्व की उत्पत्ति विश्वातीत परचेतना (Super-consciousness) में से हुई है, जबकि दूसरे के अनुसार अचेतना (Inconsciousness) में से । पहला दृष्टिबिन्दु आत्मवादी का है और दूसरा भौतिकवादी का । दोनों सच्चे हैं । एक ही घटना को ये अस्तित्व के दो छोरों से देखते हैं ।

जब ऊपर के छोर से विश्व की उत्पत्ति को देखते हैं तो विश्व की माता नि सीम अविभक्त चित्-शक्ति है । ऋग्वेद की भाषा में ‘चित्ति’ तथा देवों की माता ‘अदिति’ है । जब नीचे के छोर से देखते हैं, तब विश्व की माता विभक्त एव विभाजक अचेतना है । वेद की भाषा में ‘अचित्ति’ तथा दैत्यो की माता ‘दिति’ है । चित्त एव अचित्त, अदिति एव दिति दोनों एक साथ ही जगत् की माताएँ हैं । पहली है नि सीम चेतना और दूसरी है उसी का दर्पण में पड़ना उल्टा प्रतिबिम्ब (Mirror Image) । पुराणों के अनुसार अदिति और दिति दोनों कश्यप की पत्नियाँ हैं । कश्यप सूर्य है और सूर्य अतिमानस चेतना का प्रतीक है । अतिमानस चेतना विश्व को उत्पन्न करने वाली है—उसके भीतर अदिति और दिति अर्थात् नि सीमता और ससीमता, एकत्व और अनेकत्व, अखण्डता और खण्डितता—दोनों का सम्पूर्ण समन्वय है, स वादिता है ।

अदित अथवा नि सीम चेतना देवी की — आदित्यो की माता है । दिति अथवा विभक्त हुई— टुकड़े हुई (दो—अवखण्डने घातु पर से) चेतना दैत्यो की माता है । देव तथा आदित्य दिव्य-तत्त्व है, वे सभी को अविभक्तता, सदादिता की ओर ले जाते हैं । दैत्य अदिभ्य तत्त्व हैं, वे सभी में विभक्तता एवं विसर्वादितता का निर्माण करते हैं ।

अदिति की विरोधिनी मलिन सत्ता को दिति कहा जाता है । इसीलिए उसके पुत्रों का नाम दैत्य पड़ा । दिति के विरुद्ध अदिति है । दैत्य के विरुद्ध आदित्य है, असुरों के विरुद्ध देव हैं । ऋग्वेद ७।१५।१२ में 'दितिश्च दाति वार्यम' दिनि को इच्छित फल देने वाली कहा गया है । ४।२।११ में भी दिति को प्रदान करने वाला कहा गया है । अथर्ववेद १५।१८।४, १६।६।७ में देवी के रूप में दिति का वर्णन किया गया है । ७।७।१ में दिति के पुत्रों का उल्लेख है ।

कुछ अन्य अन्य देवियों का वर्णन वेद में आता है । सूर्यदेवी के सूक्तों में शक्ति के पत्नी-भाव का उल्लेख है । ऋग्वेद के परिशिष्ट में लक्ष्मीसूक्त आता है । ऊषादेवी के सूक्तों में शक्ति के कुमारी-भाव का वर्णन है । श्री अरविन्द ने इन सुन्दर और सुगठि शब्दों में ऊषादेवी की व्याख्या की है—

“ऊषा स्वर्ग की पुत्री, अदिति की शक्ति और मुख है । वह सर्वदा मानवों पर दिव्य ज्योति की उन्मुक्तता बिखेरती है । वह आध्यात्मिक समृद्धि की आगमनी है । भू सत्ता पर स्वर्ग के स्वर्णिम कोष की वर्षा है । ऊषा मानव अज्ञान की राशि में सर्वोच्च आलोक की दिशा का प्रतीक है । ऊषा का मूत्र चिन्तन और अग्निरस की कथा वैदिक विचार का हृदय है । ऊषा देवमाता भी है । वह उन्हें मानव की धृदता से बिना दबाये और हमारी प्रज्ञा में बिना प्रावृत्त किये ही मानवता में जन्म देती है ।”

ऋग्वेद में अनेकों सूक्त ऊषा के लिए समर्पित हैं । ऋग्वेदके प्रथम

मण्डल के ६२वें सूक्त में इसकी महिमा वर्णित है । यहाँ इसे आकाश की पुत्री और अद्भुत प्रकाश से युक्त कहा गया है । (५) प्रिय सत्य वाणी की ओर प्रेरित करने वाली गीतमो द्वारा स्तुत्य है, उससे पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है । (७) वह सीमान्धवती है (८), वह सब लोकों को देखती है और चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है । (९) वह आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है । प्रथम मण्डल का ११३वाँ सूक्त भी पूरा ऊषा के लिए विहित है । वहाँ इसे कर्मक्षेत्र का द्वार खोलने वाली कहा गया है (४), सिकुड़कर मोटे हुए को यह धनेश्वरी चैतन्य करती है, वह भोग, पूजा, धन, दृष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई सब भुवनो को प्रकाश से भर देती है (५), सब भुवनो पर इसका अधिकार है (६), यह उज्ज्वल-वसना युवती सभी पार्थिव धनो की स्वामिनी है (७), यह जीवित को प्रेरणा देने वाली मृत को चैतन्यता प्रदान करती है (८), अजर-प्रमर यह ऊषा अपनी इच्छा से गतिमान है ।

ऋग्वेद (पाँचवें मण्डल) के ७६ ८० सूक्तों की देवता भी ऊषा है । ७६ वें सूक्त में इसे श्रेष्ठ बुद्धिदाता (१) धनदाता (२) अन्नकार मिटाने वाली (३) ऐश्वर्यशालिनी (४) अन्नदाता (५) कहा गया है । ८०वें सूक्त में सर्वव्यापिनी, यज्ञो को उत्तम प्रकार से पूजनीय है (१) ।

वेद में देवताओं की पत्नियों के नाम भी देवियों के रूप में आते हैं । जैसे इन्द्र की इन्द्राणी, वरुण की वरुणानी, अग्नि की अग्नायी, रुद्र की रुद्राणी, अश्विनो की अश्विनी आदि ।

मरुतो की माता को 'पृथ्वि' कहा गया है । सोम को भी एक अलग सूक्त दिया गया है । 'रात्रि' का भी १०।१२७ में आह्वान किया गया है । 'पुरात्रि' समृद्धि की देवी है । इसका वेद में ६ बार नाम आया है । प्रचुम्भा की देवी 'विश्वगु' है । दूध और घी की मादृष्टियों का म्यूनीकरण इना' में किया गया है । 'इडा गाय से सम्बन्धित है ।

‘राका’ उदारता और समृद्धि की देवी है । ‘सिनीवाली’ बहुप्रसूता, परिवार की स्वामिनी, सन्तानप्रदाता है । अथर्ववेद (८।४६।३) में इसे विष्णु पत्नी घोषित किया गया है । ‘नव-चन्द्रमा’ का प्रतीक ‘कुहू’ का भी उल्लेख आता है ।

ऋग्वेद १।१३।६ में इला, सरस्वती और मही को सुख देने वाली कहा गया है ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेदों में भी ईश्वर के मातृरूप को स्वीकार किया गया है, देवियों की महिमा का यशोगान किया गया है, उनकी उपासना की प्रेरणा दी गई और उन्हें सुख एवं सौभाग्य प्रदान करने वाली बताया गया है । अतः इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वेद मातृ-उपासना—शक्ति-उपासना—को मानते हैं ।



शक्ति और उपनिषद्

आत्म-विद्या, ब्रह्म विद्या के रहस्य का उपनिषदों में विवेचन हुआ है। उपनिषद् शब्द का अर्थ ही है—‘परमात्मा की प्राप्ति का रहस्य-मय ज्ञान’। भारतीय तत्त्वज्ञान का जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदों में मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं है। ससार के समस्त तत्त्वज्ञानियों के लिए यह ज्ञान अमृतोपम रहा है। जिसने इसका जितना ही अवगाहन किया है, उसे उतना ही आनन्द मिला है। आत्म-कल्याण का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए उपनिषदों से बढ़कर प्रकाश-स्तम्भ और कोई हो नहीं सकता। विदेशी दार्शनिकों का भी यही अभिमत है कि उपनिषदों के समान अत्मा को ऊँचा ठाने वाला ज्ञान ससार में और कहीं नहीं है।

भारतीय अध्यात्मवाद के प्रतीक उपनिषदों ने शक्ति और उसके तत्त्वज्ञान को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अनेकों उपनिषदों इसी के लिए अभिहित की गई हैं। वहवृच, देवी, त्रिपुरा, त्रिपुरातापिनी, सीता, सोमाग्यलक्ष्मी, तारा, काली, कौल, सरस्वती हृदय, अरुण, अद्वैतभाव और श्री विद्यातारक—शक्ति के दोषक उपनिषद् माने जाते हैं। इनमें से कौल, त्रिपुरा और भावना उपनिषद् का भाष्य प्रसिद्ध तान्त्रिक दार्शनिक भास्कर राय ने लिखा है और त्रिपुरा व भावना पर अप्पय दीक्षित ने। इनका प्रकाशन तान्त्रिक टेस्ट ग्रन्थमाला, कलकत्ता द्वारा हुआ है।

भावोपनिषद् देवी के परस्वरूप का प्रतिपादक है। इसमें श्रीविद्या

की अद्यात्म प्रतिष्ठा है। शावन अद्वैतवाद की आधारशिखा इसी उप-निषद् पर रखी गई प्रतीत होती है।

त्रिपुगतापिनी में मूल श्रीविद्या की पञ्चदशाक्षरी का उद्धार मिलता है। इसमें देवी की स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार की पूजन-पद्धति का विवेचन है। यह नृसिंह-तापिनी से मिलता जुलता है।

‘सरस्वती हृदय’ में ऋग्वेद के सरस्वती से सम्बन्धित मन्त्र हैं। उनका तांत्रिक विनियोग भी दिया हुआ है। अरुणोपनिषद् तैत्तिरीय आरण्यक से सम्बन्धित है।

देवी उपनिषद् तो सम्पूर्ण इसी विषय का विवेचन करता है। देवताओं की विज्ञासा पर देवी ने उत्तर दिया—

‘मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। यह कार्य, कारण, रूप, प्रकृति और पुरुषत्मक विश्व मुझमें ही उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दरूपिणी तथा आनन्दरहित रूप वाली हूँ। मैं विज्ञानमयी और अविज्ञानरूप हूँ। मैं ज्ञानव्य ब्रह्म तथा ब्रह्म से परे भी हूँ। मैं पञ्चीकृत महाभूत हूँ। दिखाई पड़ने वाला यह सम्पूर्ण विश्व मैं ही हूँ। विद्या-अविद्या वेद-अवेद अज्ञा और अज्ञा मैं ही हूँ। मैं नीचे भी हूँ और ऊपर भी हूँ, अगम-वगम में भी मैं ही हूँ। मैं रुद्रो और वसुषो के रूप में संचार करने वाली हूँ। आदित्यो और विश्वेदेवो के रूप में संचार भ्रमण करती रहती हूँ। मैं ही मित्रवरुण इन्द्राग्नि और अश्विद्वय की पालिका हूँ। सोम, पूषा, भग और स्वष्टा को मैं ही धारण करती हूँ। तीनों लोकों को आक्रान्त करने के उद्देश्य से पदक्षेप करने वाले विष्णु ब्रह्मा व प्रजापति के धारण करने वाली हूँ। देवताओं के लिए हवि-वाहक और सोमाभिषेक वाले यजमान के निमित्त अवियुक्त धनो को धारण करती हूँ। मैं उपासको के लिए घनदायिनी, ज्ञानवती, यज्ञो में नायिका तथा सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ। विश्व के पितारूप आकाश को परमात्मा के ऊपर मैं ही प्रकट करती हूँ। मेरा स्थान आत्मरूप की धारिणी वृद्धि वृत्ति में है। इस प्रकार जोनने वाला शान्ति पुरुष दिव्य सम्पत्ति प्राप्त करता है।’

फिर देवताओं ने देवी की स्तुति करते हुए तथा दक्ष को सम्बोधित करते हुए कहा —

“हे दक्ष ! आम्हारी कन्या अदिनि के प्रभूता होने पर अमृतत्व गुण वाले देवताओं की उत्पत्ति हुई । काम, यानि, कमल, वज्री, गुहा, सकलरूप । वर्ण एवं माया यह सब उस जगन्माता की ब्रह्मविणी सूत्र विद्या है । यह विश्व को मोहित करने वाली, पाश, अ कुश, धनुष-बाण धारिणी परब्रह्म की शक्ति है, यह श्री-महाविद्या है — इस प्रकार जानने वाला पुत्र शोक मन्त्राप से मुक्त हो जाता है । हे जगन्माता तुम्हें नमस्कार है । तुम सभी प्रकार स हमारी रक्षा करने वाली बना ।

वही यह एकादश रुद्र, द्वादश आदिश और अष्टवसु हैं । वही यह सामयायी विश्वदेवा हैं । वही यह यातुगन्त, दैत्य, राजान, पिश च, यक्ष और मिद्ध हैं । वही यह त्रिण्यु और रुद्र रूप वाली तथा मत्स्य सब-कन्या काष्ठादि सहित कान्ति स्वरूपा हैं । माय और मातृदायिनी, पापनाशिनी, विजय की अधिष्ठात्री, धन से धनी, क पाण-मङ्गल रूप वाली, दीप रहित एवं माधुर्यवादी भी यही हैं । हम इन देवी को सदा नमस्कार करते हैं ।

हृदय-रुपन में निवास करने वाली, अरुणोदय के समान प्रभा वाली, पाश-अ कुश धारिणी मनोहर रूप वाली वरद, हृदय और मनय मुद्रा वाली त्रिनेत्र, लोहितवपना, कामना पूर्ण करने वाली देवी का मैं सदा भक्त करता हूँ । हे महादेवि ! तुम महान् भय और महान् पकड़ को दूर करने वाली तथा कष्टनाशक मूर्ति हो । मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । ब्रह्मादि भी जिनके यथार्थ रूप को नहीं जानते, इसलिए जो अज्ञ और तथा भ्रम न होने से अनन्त कही जाती हैं जो दिव्याई न पढ़ने से भलरूपा, जन्मरहित होने से अज्ञा, एक ही सर्वत्र व्याप्त होने से एका तथा विश्वरूप में अहली ही सृशोभित से नैका कही जाती है । समस्त अज्ञों में मूलाक्षर रूप में रहने वाली, चिन्मयातीता, शू यमाक्षिणी के

सर्वश्रेष्ठ दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध है । उा संसार-नागर से पार करने वाली, दरावार को नष्ट करने वाली दुर्गा देवी को मैं भवसागर से भयभीत हुआ नमस्कार करता हूँ ।”

गठानोपनिषद् में देवी का महारम्य वर्णन करते हुए कहा गया है—“देवी मे अज्ञात की उत्पत्ति की और यही ससार की उत्पत्ति से पट्टे ली । वह ही कामकला और शृङ्गारकला के नाम से प्रसिद्ध है । उन्हीं से अज्ञा, विष्णु व रुद्र का पादुर्भाव हुआ । उन्हीं से सारे मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरायें और किन्नर उत्पन्न हुए, समस्त भोग-वामशी का कारण वहो हुईं । सग कुल उन्हींसे सृजन हुआ । शक्ति से गन्धर्व बना । मनुष्य तथा समस्त स्थावर-जगत् प्राणियों (मण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज) की उत्पत्ति उन्हीं से हुई । उन्हीं को अपराशक्ति, शाम्भवी शिवा, कादिविद्या, ह्यदिविद्या सादिविद्या व रहस्वरूपा कहते हैं । ये ही वह भवार तत्त्व है, जो प्रणव का प्रतिपादन करती हैं—प्रणवस्वरूपा है, प्रत्येक प्राणी की वाणी पर अभिष्ठित हैं । ये ही तीनों अवस्थाओं (जामन, स्मृत और सुपुति) व तीनों प्रकार के शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) में व्याप्त हो रही हैं और वही उनको प्रकाशित कर रही हैं । ये प्रत्येक प्राणी में नेता उत्पन्न करती हैं । उन्हीं को आत्मा कहा जाता है । उनको लोचनर सचकुल मयस्य और मनात्म है । ये परब्रह्म का बोध कराने वाली विद्या शक्ति है । ये ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली हैं । ये सत्, चित् और आनन्दस्वरूपा है । प्रत्येक वस्तु के बाहर और भीतर व्याप्त हो रही हैं । उनके अस्ति, भ्राति और प्रिय तीनों रूप सत् चित् और आनन्द के योग हैं । इस प्रकार से यह महार्णवपुरसुन्दरी समस्त स्थूल वस्तुओं में अभिष्ठित हैं । मैं और तुम, देवता, सारा ससार व शेष सब कुल ये देवी ही हैं । सलिता ही मय है, ये ही परब्रह्म तत्त्व है । पाँच रूपों (प्रति, भाति, प्रिय, नाम, रूप) के स्थायी और अस्थायी रूप के न त्यागने से जो सत्ता जेव रह जाती है, उषी को परम तत्त्व कहते हैं ।

“वह (शक्ति) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर की परमशोभा है, वह सत्, चित, आनन्द की लहरी है । वह भीतर बाहर व्याप्त रहती हुई स्वयं प्रकाशित हो रही है । वह समस्त दृश्य पदार्थों के पीछे रहने वाली वस्तु-सत्ता है । वह आत्मा है । उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् अनात्म है । वह नित्य, निर्विकार, अद्वितीय, परमात्मा की परम दिव्य चेतना की आदि अभिव्यक्ति है । सृष्टि के आदि में देवी ही थी और इसी पराशक्ति भगवती से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सम्पूर्ण स्यावर जडात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई । ससार में जो कुछ है इसी में सन्निविष्ट है । भुवनेश्वरी, प्रत्यगिरा, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मानन्दकला आदि अनेक नाम इसी पराशक्ति के हैं ।”

सरस्वती रहस्योपनिषद् में सरस्वती देवी से इस प्रकार दीन भाव से प्रार्थना की गई है ।

‘जिस सरस्वती का स्वरूप वेदात्त का सार भूत ब्रह्मत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपों में प्रकट हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हों ।’
दान से सुशोभित होने वाली स्तोत्रार्थों की रक्षिका एवं भगवती भगवती सरस्वती इन साधकों को भक्त से परिपूर्ण करें ।

“वेदों और उनके अग्रे उपागों में जिन एक देव की स्तुति की जाती है तथा जो परब्रह्म की अद्वैत शक्ति है, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हों ।”

“जो वर्ण, पद, वाक्य में अर्थों सहित सर्वत्र व्याप्त है जो आदि अन्त से परे एवं अनन्त रूप वाली हैं, वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हों ।”

‘जो सरस्वती देवताओं की प्रेक्षात्मिका शक्ति, अधिदैवरूपिणी एवं हमारे भीतर वाणी रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे भगवती मेरी रक्षिका हों ।’

जो सरस्वती अन्तर्यामी रूपसे लोकत्रय का नियन्त्रण करने

वाली है तथा जो रुद्र-आदित्य आदि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित वे हमारी रक्षिका हों ।

‘जिन सरस्वती देवी में ब्रह्मतत्त्ववेत्ताजन नाम-रूप वाले सम्पूर्ण प्रपञ्च को आविष्ट करते हुए उनका ध्यान करते हैं, वे देवी मेरी रक्षिका हों ।’

‘जो सरस्वती देवी अन्तर्हृद् वाले जीवों के समस्त विभिन्न रूपों में प्रकट होती तथा जो जसि रूप से व्याप्त है, वे सरस्वती मेरी रक्षिका बने ।’

सौभाग्यलक्ष्मी उनिषद् में देवताओं के पूछने पर भगवान् आदि नारायण ने उपदेश देते हुए कहा ।

देवताओं । एकाग्र मन से सुनो । स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप अवस्थाओं से जो तुगीयावस्था, वरन् तुगीयावस्था से भी परे निर्गुण एव विराट रूप वाली हैं, जो मन्त्र रूप आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली हैं, पीठों और उगीठों में विराजमान देवगण में घिरी हुई हैं, उन चार भुजा वाली लक्ष्मीजी का श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओं के द्वारा वितन करना चाहिए ।

राघोपनिषद् में श्री राधा का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

‘श्री कृष्ण ही प्रकृति से परे और अविनाशी हैं । जाह्नवादिनी, सन्धिनी, ज्ञानेच्छा, क्रिया इत्यादि इनकी अनेक शक्तियाँ हैं । इन सबमें ‘ब्रह्मादिनी’ सबसे प्रधान है । यह उनकी सर्वाधिक अन्तरंग है, इन्हीं को राधा कहते हैं । भगवान् कृष्ण स्वयं इनकी आराधना करते हैं । श्री राधाजी सदैव कृष्ण की आराधना करती हैं । राधिका को ‘गन्धर्वा’ भी कहा जाता है । समस्त गोपियाँ, श्री कृष्ण भगवान् की महपियाँ और लक्ष्मी का आविर्भाव भी राधाजी के शरीर में ही हुआ है ।

रम-सागर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही श्रीडार्थ एक से दो रूपों में विभक्त हो गए हैं ।

श्रीराधा सर्वेश्वर भगवान कृष्ण की भी सर्वेश्वरी हैं, उनकी समस्त विद्याओं में सनातनी हैं । ये श्री कृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिय देवी हैं । चारों वेद भी एकान्त भाव से इनकी स्तुति करते हैं । ब्रह्मज्ञानी ऋषि इनकी गति को जानते और कहते हैं । इनकी महिमा इनकी अधिक है कि मैं चाहे अपनी समस्त आयु उसे कहता रहूँ तो भी समका पार नहीं मिल सकता । १ । श्री राधा जी जिस पर प्रसन्न होती है, उसे तुरन्त परमचाम की प्राप्ति हो जाती है । यदि कोई राधाजी की प्रवृत्ति करके कृष्ण भगवान की आराधना करने की इच्छा करता है तो वह सर्वाधिक भूढ़ है ।

सीतापनिषद् में सीता की मूल प्रकृति स्वीकार करते हुए कहा गया है —

सीताजी शक्ति रूपिणी हैं । मूल प्रकृति होने-से वे ही प्रकृति बही जाती है । प्रणव की प्रकृति रूपा होने से भी उन्हें प्रकृति कहते हैं । वे साक्षात् योगमाया ही हैं । उनका सीता नाम तीन वर्णों का है । सम्पूर्ण विश्व प्रपञ्च के बीज भगवान विष्णु हैं । उनकी योगमाया का वा रूप ईश्वर है । 'स' कार को सत्य अमृत, सिद्धि चन्द्र तथा प्राप्ति का वाचक कहते हैं । दीर्घ अकारयुक्त 'त' कार विस्तार करने वाला एवं महालक्ष्मी रूप वाला कहा है । ईकार वाली अव्यक्त महामाया अपने अमृतमय, अवयवों और दिव्य भूषणों से विभूषित रूप से व्यक्त होती है । वे त्रयरूपा अपने प्रथम रूप में शब्दब्रह्म से युक्त हैं । वे प्रसन्न होकर बुद्धि रूप में बोध देने वाली हैं । वे अपने द्वितीय रूप में जगत् हम भूतल पर अव्यक्त हुई तब जनक की यज्ञ भूमि में हलके अग्र-भाग से प्रकट हुई । उनका तृतीय रूप ईकारमय एवं अव्यक्त हैं । यही तीन रूप पर्याप्त रूप से सीता कहे गए हैं । शौनकीय तन्त्र में कहा

है कि श्री राम के नित्य सान्निध्य के कारण सीता जी विश्व का कल्याण करने वाली हैं। वे ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वही मूल प्रकृति के रूप में प्रसिद्ध षडैश्वर्य से युक्त भगवती हैं। प्रणवस्वरूपा होने से ब्रह्मवेत्ता उन्हें प्रकृति कहते हैं। वे सीताजी सर्वदेवता स्वरूप, सर्ववेद-रूपिणी, सर्वलोकमयी, सबकी आश्रयभूता, सर्वकीर्तियों से सम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सब देव गन्धर्व, मनुष्य आदि प्राणियों की स्वरूप हैं। वे सभी प्राणियों की देहरूपा और समस्त विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं। वे भगवान से भिन्न और अभिन्न भी कही जाती हैं।

वे शक्ति रूपिणी होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात् शक्ति से रूप में प्रकट होती हैं। उनकी इच्छाशक्ति से युक्त स्वरूप भी तीन प्रकार का है। श्रीदेवी, भूदेवी, नीलादेव के रूप में वे मंगल-रूपिणी, प्रभावरूपिणी तथा चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूप में अत्यन्त तेजमयी होती हैं। वे चन्द्ररूपिणी होकर औषधियों की पुष्ट करती हैं। वे कल्पवृक्ष, लता गुल्म, पुष्प, पत्र फल तथा औषधियों-महौषधियों के स्वरूप को प्रकट करने वाली हैं। उसी चन्द्र रूप में देवताओं को 'महस्तोम यज्ञ का फल देती हैं। अग्नि द्वारा प्राणियों को और अमृत द्वारा देवताओं को वे ही तृप्त करती हैं।

वे ही सब लोको को प्रकाशित करती हैं दिवस, रात्रि निमेष, घड़ी, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और सम्बत्सर आदि के भेद से मनुष्य को शतायु प्रदान करती हुई स्वयं प्रकाशित होती हैं। निमेष से परावं तनू तथा विलम्ब और गीघ्र ता के भेद से परिपूर्ण कलाचक्र तथा जगत-चक्रादि के भेद से काल के सभी अण-प्रत्यण उन्हीं के स्वरूप हैं। इसी लिए वे प्रकाश स्वरूप और कालस्वरूपा हैं।”

केनोपनिषद् की कथा के अनुसार जब देवताओं को अपनी सफलता पर गर्व होने लगा कि यह उनकी अपनी शक्तियों के द्वारा

हुआ हो तो ब्रह्म ने उनके इस अहंकार की चूर करना चाहा । वे एक वृक्ष के रूप में प्रकट हुए । सभी देवनाग्यो ने अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया परन्तु सभी अस्फल रह । उन्हें ब्रह्मविक्ता में परिचित कराने के लिए हृषिकेशी उमा प्रकट हुई और कहा कि वह परब्रह्म है । इसमें ब्रह्म का परिचय देन का श्रेय देवी का ही दिया गया है ।

राम पूजाननोपोनिपद् में ब्रह्माण्ड का प्राकट्य शक्ति से स्वीकार करने हुए कहा गया है—

काग्गुत्वेन चिच्छक्त्या रजस्मत्त्वतमोगुणै ।
यथैव वटवीजस्य प्राकृतोऽयं महाद्रुम ॥

"प्राकृत ब्रह्माण्ड की चिच्छक्ति में उमी तरह उत्पत्ति होती है जैसे एक वटवीज में सूक्ष्म रूप से एक महानवृक्ष अवस्थित रहता है और उत्पन्न होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाता है ।"

जावानोपनिषद् में शक्तिका महत्त्व प्रदर्शन हुए कहा गया है—

आधारशक्त्यावधूत, कालाग्निरयमूर्वंग ।
तथैव निम्नग सोम शिवशक्तिपदाम्पद ॥
विद्याशक्ति ममन्ताना शक्तिरित्यभिधीयते ।

अर्थात् "आधार शक्ति में अवधारण किया हुआ—कालाग्नि वह ऊर्ध्वगामी है । उमी शक्ति निम्नगामी भी है । यह सोम शिवशक्ति के स्थात में ग्रानय रखने वाला है । समन्तो की विद्याशक्ति शक्ति नाम से कही जाती है ।

समष्ट्योपनिषद् में काली का विवेचन करते हुए कहा गया है—

काली काली च मनोजवा च
मूलोहिता या च मुञ्चमवर्णा ।

स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी

लेलायमाना इति सप्त जिह्वा ॥

अर्थात् “काली अत्यन्त उग्र, मन के समान चंचल, लालीयुवत, धूम्र वर्णा, चिह्नारियो से युवत, दैदीप्यमान, विश्वरुचि — यह लपलपाती हुई सात जिह्व ऐ अग्नि की हैं ।

मारुहकोपनिषद् में शक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह वह तत्त्व है जो मन, वाणी और इन्द्रियो की दिखाई नहीं देता —

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

विद्युत्, अग्नि आदि भी वहाँ नहीं पहुँच सकती ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक

न विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में ‘बाल्येन तिष्ठासेत’ वाक्य द्वारा मातृभाव की उपासना का उपदेश दिया गया है ।

छान्दोग्योपनिषद् (६।३।२) में ब्रह्म के लिए स्त्री वाचक देवता शब्द का प्रयोग हुआ है । यह भी कहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व वह चिति शक्ति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है—

आसीदेवेदमग्र आसीत् तत्समभवत् ।

(७।२४।१) में नारदजी के पूछने पर सनत्कुमार ने कहा—

स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नोति ।

“भूमा अपनी ही महिमा में स्थित है और वस्तुतः तो उसमें भी नहीं है अर्थात् आश्रय रहित है ।”

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि इस प्रकार घोषणा करते हैं —

माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम् ।

तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्त सर्वमिदं जगत् ॥

“प्रकृति को माया और महेश्वर की माया का स्वामी समझे ।
उसीके अंगों से यह अखिल विश्व व्याप्त हो रहा है ।”

परास्य शक्तिविविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥

(६।८)

“उस परमेश्वर की स्वाभाविक पराशक्ति, ज्ञान, बल और
क्रिया विभिन्न प्रकार की सुनी गई है ।”

जिम परमेश्वर को अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल,
प्रजापति और ब्रह्मा कहा गया है (४।२), उसे ही स्त्री और कुमारी
भी घोषित किया गया है—

त्व स्त्री त्व पुमानमि त्व कुमार उत्तवा कुमारी ।
त्व जीर्णो दण्डेन वचसि त्व जातो भवसि विश्वतोमुख ॥

(४।३)

“ तू स्त्री है, पुरुष भी तू है, तू ही कुमार और कुमारी है, तू
वृद्ध होकर लाठी के सहारे में चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब
और मुख वाला हो जाता है ॥”

एक और स्थान पर कहा है—

य एको वण शक्तियोगाद्वर्णान् निहितार्थो दधाति ।

(लयमें) जो एक होकर भी शक्ति के योग से सृष्टि में अनेक
हो जाता है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी यही भाव व्यक्त किए गए है “आनन्द
रूपा चित्ति-शक्ति से सब भूत उत्पन्न होते है, उसी से जीते और उसी में
लीन हो जाते है ।”

नृसिंह उत्तर तापनोयोपनिषद् मे शक्ति तत्त्व को विभिन्न नामों मे स्मरण किया गया है । वह नाम हैं—आत्मा, अव्ययत, अलता, असग, अलिग, अमय, अगन्ध, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, बुद्ध, शृद्ध, अद्वय, अबोद्धव्य, अगन्तव्य, आदि ।

कठोपनिषद् मे कहा है “(जिस तरह अग्नि सर्व व्यापक है, उसी तरह चित्ति शक्ति भी सारे जगत में व्याप्त है ।”



शक्ति और पुराण

पुराण भारतीय साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है । वे भी तत्र मे प्रभावित दिखाई देते हैं । इसका प्रमाण यह है कि उनमें तान्त्रिक विद्वानों और विविध विधानों का प्रवेश हुआ है । कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस विषय पर खोज की है । डा० हाजरा ने अपनी पुस्तक "Puranic Records on Hindu Rites and customs" मे इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है और कहा है—अष्टम शती मे प्राचीनतर पुराणांशो मे तान्त्रिक पूजा का लेश भी विद्यमान नहीं है । प्रथमतः पुराणो मे किसी देव विशेष के मुद्रा-मास आदि का ही वर्णन किया गया और तदनन्तर समग्र तान्त्रिक विधियों का उपन्यास स्मार्त कर्मों के सग मे ही बिना किसी वैषम्य के पुराणो ने प्रस्तुत किया । दशम और एकादश शती मे पुराणो मे तत्रो ने अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा तथा प्रामाण्य प्राप्त का लिया । गरुड और अग्नि पुराण मे उपलब्ध तान्त्रिक विधान इसके प्रमाण है ।”

देवी भागवत पुराण—

देवी भागवत को भले ही उप-पुराण माना जाता हो परन्तु गावतों के लिए वह किसी भी महापुराण से कम नहीं है क्योंकि इसमे शक्ति तन्त्र का विस्तृत प्रतिपादन है । इसमें जहाँ भी दृष्टि दी जाए, तन्त्र का प्रभाव ही परिलक्षित होना है । इनमे शक्ति की प्रधानता को खुले रूप मे स्वीकार किया गया है । शक्ति की महिमा पर प्रकाश डालते हुए एक स्थान पर कहा है—

वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ।
शिववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वदा ॥

अर्थात् हे राजन ! समस्त भूतो में सर्वरूप से शक्ति विद्यमान है । शक्ति के बिना ही प्राणी शिव की तरह हो जाता है ।

ब्रह्मा ने भगवती से प्रश्न किया कि जिस ब्रह्मा को वेद 'एकम्' 'अद्वितीयम्' स्वीकार करते हैं, वह ब्रह्मा आप ही हैं ? यदि है तो पुरुष या स्त्री हैं । इस पर भगवती ने यूँ उत्तर दिया—

सदेकत्व न भेदोऽस्ति सर्वदेव ममास्य च ।
तोऽसौसाहमह योऽमौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥

मेरा और ब्रह्मा का सदैव से एकत्व रहा है । किसी तरह का भेद नहीं रहता । मैं वही हूँ जो वे हैं और वे वही हैं जो मैं हूँ । मतिविभ्रम से ही यह भेद दिखाई देता है ।

सृजासि जननि देवान् विष्णुर्द्राजमुख्यान् ।
तै स्थितिलयजनन कारयस्येकरूपा ॥

(देवी भागवत)

अर्थात् हे जननि ! विष्णु रुद्र और अज प्रमुख देवों का आप सृजन किया करती हैं । उनके द्वारा एक रूप वाली आप स्थिति-लय और जन्म किया करती हैं ।

सर्वचैतन्यरूपा तामाद्या विद्य च धीमहि ।
—•—बुद्धि या न प्रचोदयात्

अर्थात्—सबका प्रातरूप जो ईश्वर की पराशक्ति है, उसका मैं ध्यान करता हूँ ।

देवी भागवत में जहाँ जहाँ देवीय उल्लेख आया है वहाँ-वहाँ उस शक्ति विशिष्ट परब्रह्मा से ही अभिप्राय स्वीकार किया गया है ।

तून सर्वेषु देवेषु नाना नामधरा ह्यहम् ।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च प्राक्रमम् ॥
गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ।
वारुणी चाथ कौवेरी नारसिंही च वैष्णवी ।

अर्थात्—समस्त देवों में निश्चय ही मैं नाना रूप धारण करने वाली हूँ । मैं शक्ति रूप से होनी है और प्राक्रम किया करती हूँ । मैं ही गौरी—ब्राह्मी—रौद्री—वाराही—वैष्णवी—शिवा वारुणी कौवेरी—नारसिंही तथा वैष्णवी रूप वाली होनी हूँ ।

तृतीय स्कन्ध के २६वें अध्याय में नारद के उपदेश से भगवान् राम ने शक्ति की आराधना की और परिणाम स्वरूप रात्रण से सीता, को छुड़ाने में सफल हुए ।

एक स्थान पर कहा है कि समस्त देवता भी शक्ति की ही प्रेरणा से ही सुख दुःख का अनुभव करते हैं । मनुष्य तथा अन्य जीवों की तो बात ही क्या ?”

देवी से पूछने पर स्वयं उन्होंने एक स्थान पर कहा है —

एक मात्र ब्रह्म ही अद्वितीय है, वही नित्य और सनातन है, परन्तु जब वह विश्व-रचना में तत्पर होता है, तब एक से अनेक हो जाता है । जैसे किसी उपाधि के कारण दीपक एक का दो दिखायी देना है, या दण्ड में प्रतिविम्ब दिखायी देने से एक का अनेकत्व प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्म या मुझमें अनेकत्व की प्रतीति होती है । यह भेद सृष्टिकाल में विश्व-सृजन के लिए ही होता है, और इसके भी दृश्य और अदृश्य रूप से दो भेद हैं । सृष्टि का अन्त होने पर मैं पुरुष, स्त्री या नपुंसक कुछ नहीं रहती । यह भेद सृष्टि कार्य के अवसर पर ही उत्पन्न होता है जिसे मैंने ही स्वकल्पना द्वारा रचा है ।”

“मैं ही वृद्धि हूँ, श्री, वृत्ति, कर्त्ति, मति, श्रद्धा, मेधा, दया,

लज्जा, क्षुधा, तृष्णा एव क्षमा भी मैं ही हूँ । कान्ति, शान्ति, पियासा, निद्रा, तद्रा, जरा-अजरा, विद्या-प्रविद्या, स्पृहा, मेधा, शक्ति और अशक्ति भी मैं हूँ, ससार मे ऐसा कुछ भी नहीं जिसमे मेरी सत्ता न हो, जो कुछ दिखाई देते हैं वे सब मेरे ही रूप है । मैं ही सब देवताओं के रूप मे विभिन्न नामों से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती रहती हूँ । जन मे जो शीतलता है वह मैं हूँ । अग्नि मे उष्णता, सूर्य मे ज्योति और चन्द्रमा मे ठंडक मैं ही हूँ । ससार के सम्पूर्ण जीवों की स्पन्दन क्रिया मेरी ही शक्ति से होती है, यह निश्चय है कि मेरे अभाव मे वह नहीं हो सकती । मेरे बिना शिवजी दैत्यों का सहारा नहीं कर सकते । ससार मे जो व्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नहीं कहता ।

“पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होता है, तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति—शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नहीं उठा सकती । शेष, कूर्म तथा दसो दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने काय की सिद्धि मे समर्थ होते हैं । मैं सम्पूर्ण ससार के जल को पी सकती हूँ, अग्नि को नष्ट कर सकती हूँ और वायु की गति को रोक सकती हूँ । विश्व मे कभी किसी तत्व का अभाव नहीं होता । जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती और जिस वस्तु का आदि है, वह अनन्त समय तक टिक नहीं सकती । जिस प्रकार घड़ा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रकार अगर यह समग्र पृथ्वी ध्वंस हो जाय तो भी परमाणुओं के रूप में उसका अस्तित्व बना ही रहेगा ।”

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण पर भी तान्त्रिकप्रभाव स्पष्ट दिखाई देना है क्योंकि शक्तिवाद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सप्तशती', इसी पुराण का एक अंश

है जिसमें भगवती की कथा विस्तृत रूप से वर्णित हैं । देवी माहात्म्य, मधुकैटभ वध, महिषासुर सैन्य वध, देवताओं के सम्मिलित तेज से देवी का आविर्भाव और उसका महिषासुर की सेना से भयंकर संग्राम महिषासुर वध, उसके प्रमुख मेनाध्यक्षों का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमुख, रक्तबीज, निशुम्भ, शुम्भ आदि का वध, देवी स्तोत्र, देवताओं की देवी का वर्णन आदि विषय विस्तार से आए हैं, जिनमें देवी की महान महिमा प्रकट होती है । देवी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

“देवी ने इस विश्व की उत्पत्ति किया है और वही जब प्रसन्न होती है, तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है । मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं समार-वधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अतीश्वरी हैं ।”

शक्राश्रित देवीस्तव का काफी विस्तार है । कुछ श्लोको का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं ।—

“देवताओं ने कहा—इस प्राणिजगत् को अपने प्रभाव में विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई है, एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या हैं हम भवितपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कन्यारा करें । अनन्त भगवान् ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उनके अहित व भय के नाश के लिये आकाशित हों । पुनीत कार्य करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मीस्वरूप पाप-कर्म करने वालों के गृह में दग्ध स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, मदआचरण वालों के लिए श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुल में उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप है, उनदेवी को नमस्कार करते हैं । हे देवी ! आप

लज्जा, क्षुधा, तृष्णा एव क्षमा भी मैं ही हूँ । कान्ति, शान्ति, पियासा, निद्रा, तद्रा, जरा-अजरा, विद्या-प्रविद्या, स्पृहा, मेधा, शक्ति और अशक्ति भी मैं हूँ, ससार मे ऐसा कुछ भी नहीं जिसमे मेरी सत्ता न हो, जो कुछ दिखाई देते हैं वे सब मेरे ही रूप है । मैं ही सब देवताओं के रूप मे विभिन्न नामों से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती रहती हूँ । जन मे जो शीतलता है वह मैं हूँ । अग्नि मे उष्णता, सूर्य में उष्णता और चन्द्रमा मे ठंडक मैं ही हूँ । ससार के सम्पूर्ण जीवों की स्पन्दन क्रिया मेरी ही शक्ति से होती है, यह निश्चय है कि मेरे अभाव मे वह नहीं हो सकती । मेरे बिना शिवजी दैत्यों का संहार नहीं कर सकते । ससार मे जो व्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नहीं कहता ।

“पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होता है, तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति—शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नहीं उठा सकती । शेष, कूर्म तथा दसो दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने काय की सिद्धि मे समर्थ होते हैं । मैं सम्पूर्ण ससार के जल को पी सकती हूँ, अग्नि को नष्ट कर सकती हूँ और वायु की गति को रोक सकती हूँ । विश्व मे कभी किसी तत्व का अभाव नहीं होता । जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती और जिस वस्तु का आदि है, वह अनन्त समय तक टिक नहीं सकती । जिस प्रकार घड़ा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रकार अगर यह समग्र पृथ्वी ध्वस्त हो जाय तो भी परमाणुओं के रूप मे उसका अस्तित्व बना ही रहेगा ।”

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण पर भी तान्त्रिकप्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि शक्तिवाद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सप्तशती, इसी पुराण का एक अंश

है जिनमें भगवती की कथा विस्तृत रूप से वर्णित है । देवी माहात्म्य, मधुकैटभ वध, महिषासुर सैन्य वध, देवताओं के सम्मिलित तेज से देवी का आविर्भाव और उसका महिषासुर की सेना से भयंकर संग्राम महिषासुर वध, उसके प्रमुख मनाव्यक्षों का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमृगड, रक्तबीज, निशुम्भ, शुम्भ आदि का वध, देवी स्तोत्र, देवताओं की देवी का वर्गदान आदि विषय विस्तार से आए हैं, जिनमें देवी की महान महिमा प्रकट होती है । देवी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

“देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न होती है, तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है । मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं ममार-वधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अवीश्वरी है ।”

शक्तान्त्रिकत देवीमत्तव का काफी विस्तार है । कुछ श्लोको का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं ।—

“देवताओं ने कहा—इस प्राणिजगत को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई है, एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या है हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें । अनन्त भगवान् ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ है, वह देवी चण्डिका समस्त त्रिश्व का पोषण करने के लिए और उनके अहित व भय के नाश के लिये आकाशित हो । पुनीत कार्य करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मीस्वरूप, पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, मदआचरण वालों के लिए श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुलमें उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप है, उनदेवी को नमस्कार करते हैं । हे देवी ! आप

जगत का पोषण करे । आपका चिन्त्ये स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ है । हे देवी ! आपका दानवी का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एव दानवी व देवगणों के प्रति रण-क्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार वर्णन करे । हे देवि ! आप विकारहीन आद्या-प्रकृति है, अथ च सत्त्व, रज एव तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो । राग-द्वेष आदि से युक्त विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते । हे देवि ! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आश्रय-स्वरूप हैं, यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है ।”

उपरोक्त विवरण से ही स्पष्ट है कि पुराणकार किस रूप में देवी को देखते हैं ।

अग्नि पुराण—

अग्नि पुराण पर शक्ति अथवा शैव तंत्रों का कुछ भी प्रभाव नहीं है केवल वैष्णव पांचरात्रों का प्रभाव है जिनके सम्बन्ध में २५ पांचरात्र संहिताओं का उल्लेख भी ३१ वे अध्याय में आया है । इसमें तांत्रिक विविध विधानों तथा कर्मों का पयति वर्णन है । दीक्षा विधान पर पूरा प्रकाश डाला गया है । मंत्रों का विस्तार भी काफी है । गणेश, विन्ध्य वासिनी, त्रिपुरा, बटुक तथा योगिनी और वागेश्वरी के पूजा विधान दिए हुए हैं । षट् कर्मों से सम्बन्धित मन्त्र दिए गए हैं—

शान्तिवश्यस्तम्भनादि-विद्वेषोच्चाटने तत्
मारणान्तानि शसन्ति षट् कर्माणि मनीषिण

“शान्ति-वश्य-स्तम्भन-विद्वेषण-उच्चाटन और मारण ये छह कर्म मनीषी लोग कहते हैं ।”

त्रैलोक्य मोहन मन्त्र, सग्राम विजय मन्त्र, भी दिए गये हैं ।

अग्नि पुराण की अनुशीलन में तो ऐसा लगता जैसे पुराणकार किसी तत्र ग्रंथ को ही रचना करने जा रहे हो ।

कालिका पुराण—

कालिका पुराण तो शक्तिवाद का स्वतंत्र पुराण है । ब्रह्माण्ड पुराण के दूसरे भाग के अन्तर्गत ललिता सहस्र नाम का ३२० श्लोको का पूरा प्रकरण आता है । कूर्म पुराण में परमेश्वरी के आठ हजार नाम आए हैं । वही ऐसा उल्लेख है कि अर्धनारीश्वर के पुरुष अंश में से शिव प्रकट हुए और स्त्री अंश में से शक्तियाँ । वाराह पुराण ७०।२४-२५ और पद्म पुराण ६।५३।४५ के अनुसार चारों युगों में क्रम से वेद, स्मृति पुराण और तत्र का प्रचार रहा है । परिणाम स्वरूप कलियुग के प्राणिमोक्ष के लिए तत्र ही कल्याणकारक माना गया है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण—

विष्णु धर्मोत्तर में चण्डिका का वर्णन है ।

निगद्यते ह्यथो चण्डी हेमाभा सा सूरूपिणी ।

त्रिनेत्रा यौवनस्था च क्रुद्धा चोर्ध्वस्थितामता ॥

“इसके अनन्तर वह सूरूप वाली हेम की आभा के समान आभा वाली—तीन नेत्रों से युक्ति यौवन में स्थित, परमक्रुद्ध और ऊर्ध्व में अवस्थित चण्डी कही जाती है ।”

भद्रकाली का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

अष्टादशभुजा कार्या भद्रकाली मनोहरा ।

आलीढस्वासनस्था च चतुर्भिर्हस्तैश्च स्थिता ॥

अक्षमाला त्रिशूल च खड्गश्चन्द्रश्च यादव ।

बाणचापे च कर्तव्ये शस्त्रपद्मे तथैव च ॥

अर्थात्—भद्रकाली अठारह भुजाओं वाली, मनोहर—अलीढ
अरने आमन पर स्थित, चार सिंहों वाले रथ में विराजमान—अक्ष माला—
त्रिमूल—खड्ग—चन्द्र—वाण—चाप—शस्त्र और पद्म को धारण करने
वाली हैं ।

भागवत पुराण—

भागवत (१०।२।१०-११) में भगवान ने योगमाया को व्रत में
जन्म लेने की आज्ञा देते हुए कहा था—

अचिष्यन्ति मनुष्यास्त्वा सवकामवरेश्वरोम् ।

धूपोहापरबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।

दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च

अर्घान—समस्त कामना तथा वरो की ईश्वरी आपको मनुष्य
धूप-उपहार और बलिके द्वारा सब काम वरप्रदा की भाँति अर्चना किया
करते हैं । मनुष्य भूमण्डल में नामधेय और स्थानों को किया करते हैं ।
दुर्गा-भद्रकाली-विजया और वैष्णवी ये नामधेय लिया करते हैं ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—

ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति० २।६६।७-१०) में स्वयं भगवान
कृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।

त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ म्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥

कार्यार्थे मगुणा त्वा च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।

परब्रह्मस्वरूपा त्व सत्या नित्या सनातनी ॥

तेज स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रह ।

मवस्वरूपा सर्वेशा सर्वधारा परात्परा ॥

सर्व बीज स्वरूपा च सवपूज्या निराश्रय ।

सवज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गल मङ्गला ॥

“तुम सबकी जननी भूत प्रकृति ईश्वरी ही, सृष्टि उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में रहती ही और अपनी इच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जानी है, तुम कार्य के लिए सगुण बन जानी ही परन्तु वास्तव में तुम निर्गुण ही हो, तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य और अनानाही हो, तेज स्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली ही, सव-स्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार और परात्पर ही तुम बिना आव्रय के, सर्व पूज्या और सर्व बीज स्वरूपा ही, तुम सर्वज्ञ, सब तरह से मंगल-कारक और सब प्रकार के मंगलों का भी मंगल ही ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक और स्थान पर कृष्ण राधा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं ।—

“हे राधे ! जिस तरह तुम ही, उसी तरह मैं भी हूँ । हम दोनों में अभेद है । जिस तरह क्षरि में ध्वलिमा अग्नि में जलाने की शक्ति और पृथ्वी में गन्ध बिद्यमान है, उस तरह मैं तुम से हूँ । जिस तरह कुम्हार मिट्टी के बिना और सुतार बिना सोने के आभूषण नहीं बना सकता । उसी तरह मैं तुम्हारे बिना सृजन क्रिया में असमर्थ रहता हूँ । सृजन क्रिया का मैं बीज रूप और तुम आवार भूता ही । तुम्हारे बिना मैं केवल ‘क्रमण’ पुकारा जाता हूँ परन्तु तुम्हारे साथ लीग ‘श्रीकृष्ण’ कहते हैं । तुम भी सम्प्रति, विश्व की आश्रय कृता और मेरी सबकी सर्वशक्ति रूपा ही ।”

कूर्म पुराण

कूर्म पुराण में देवी तत्त्व की व्याख्या इस प्रकार की है —

एक सर्वगत सूक्ष्म कूटस्थ मचल ध्रुवम् ।

योगी नस्त प्रपश्यन्ति महादेव्या परम पदम् ॥

परात्पतर तत्त्व शाश्वत शिवमच्युतम् ।

अनन्ते प्रकृतौ लीन देव्यास्तत् परम पदम् ॥

अर्थात् "वह देवी ही एक मात्र आद्वितीय सर्वगामी, सूक्ष्म, कूटस्था, अचल और नित्य स्वरूप है । योगीजन ही उसके उपावि रहित परम पद के दर्शन करने में समर्थ हैं और वे ही उसके परात्पर तत्त्व, शाश्वत, कल्याणकारी और अविनाशी स्वरूप का अनुभव कर सकते हैं ।

शिव पुराण

पुल्लिङ्गमखिल धत्ते भगवान् पुरशासन ।

स्त्रीलिङ्ग चाखिल धत्ते देवी देवमनोरमा ॥

(शिवपुराण वा० उ० अ० ४)

“पुरारि भगवान् शिव ससार व्यापी पुल्लिङ्गता को धारण करते हैं और देवप्रिया शिवा समस्त स्त्रीलिङ्गता को धारण करने वाली हैं ।”

गरुड पुराण में भी तान्त्रिक विधि विधान अध्याय ७-११, २१-२३, ३५, ३७-३८ में दिए हुए हैं ।

इससे स्पष्ट है कि इन पुराणों ने शक्ति के महत्त्व की स्वीकार किया है और इस मिद्धान्त के व्यापक प्रसार में सहयोग दिया है ।



शक्ति और योग-वासिष्ठ

योग वामिष्ठ भारतीय दार्शनिक साहित्य में एक उच्च स्थान रखता है । इसे भारतीय मस्तिष्क की सर्वोत्तम उपज और कृति स्वीकार किया जाता है । ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का यह मरल व श्रेष्ठ साधन है । दर्शन के अतिरिक्त इसका काव्य भी उच्च कोटि का है । इसकी श्रेष्ठता का मूल्यांकन इसी तथ्य में किया जा सकता है कि अनेकों उपनिषद् में योग वासिष्ठ के श्लोक उद्यो के त्यों ने लिए गए हैं और अधिकांश में उसके भाव ग्रहण किए प्रतीत होते हैं । महोपनिषद्, याज्ञवल्क्य उपनिषद्, योग कुण्डली उपनिषद्, वराह उपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, गाडिल्य उपनिषद्, अग्नि उपनिषद् अन्नपूर्णा उपनिषद् ब्रह्मसंन्यासोपनिषद् और पैगल उपनिषद् में कहीं श्लोक और कहीं पूरे अध्याय के अध्याय ले लिए गए हैं । तेजोविन्दु, योग शिखा, अमृत विन्दु, मोभाग्यलक्ष्मी, मैत्रायणी, त्रिपुरातापिनती और जावाल उपनिषद् में प्रायः सिद्धान्त योगवासिष्ठ में मिलते जुलते हैं । ऐसा लगता है कि इनके रचयिताओं ने इनकी निर्माण सामग्री इसी मूल स्रोत से ग्रहण की है । इसलिए भारतीय दार्शनिक साहित्य में इसका स्थान गीता और उपनिषदों से किसी भी तरह कम नहीं है वरन् अधिक ही है ।

भारतीय दर्शन के इस सिरमौर ग्रन्थ ने शक्ति का सुन्दर प्रतिपादन किया है । योग वसिष्ठ के प्रसिद्ध भाष्यकार दार्शनिक श्री भीखन लाल आश्रय ने योग वासिष्ठ में शक्ति विषयक सिद्धान्त का

विवेचन करते हुए लिखा है “ ‘ब्रह्म’ और ‘माया’ अथवा ‘शिव’ और ‘शक्ति’ दो तत्व नहीं हैं । ‘शिव’ + ‘शक्ति’ अथवा ‘चिन्मयशक्ति’ उस एक ही परम तत्व का नाम है जो जगत् में दो रूप में प्रकट हो रहा है । एक वह रूप जो हमारा तथा ससार के समस्त पदार्थों का ‘मात्मा’ है । वह सदा एक रस, निर्विकार और अखण्ड रहता हुआ सब विकारों का साक्षी है । दूसरा वह रूप है जो दृश्यमान है, जिसमें नाना रूपात्मक विकार सदा ही होते रहते हैं । ससार के जितने क्षण क्षण में रूप बदलने वाले दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी परम तत्व के इस रूप के रूपान्तर हैं । एक रूप का नाम ‘शक्ति’ है । दूसरे रूप का नाम ‘शिव’ है । एक रूप क्रियात्मक है, दूसरा शान्त्यात्मक । एक का दशन बाह्य पदार्थों में होता है, दूसरे का हृद्गुहा में । एक को उपासना करने से अभ्युदय की सिद्धि होती है, दूसरे के ध्यान से नि श्रेयस की, सदा से कुछ मनुष्यों की रुचि एक की ओर रही है और दूसरों की दूसरी ओर । पहली श्रेणी के मनुष्यों को हिन्दू शास्त्रों में प्रवृत्ति मार्ग के पथिक और दूसरी श्रेणी के मनुष्यों को निवृत्तिमार्ग के पथिक कहा है । इनमें उच्च कोटि के वे सीमाशाली महात्मा हैं जिनके जीवन में दोनों रूपों की उपासना का अविरोधात्मक समन्वय है । उन लोगों के लिये एक रूप बिना दूसरा अधूरा है । ”

योग वसिष्ठ ब्रह्म को सर्वशक्तिमान स्वीकार करता है ।

समस्तशक्तिरखचित ब्रह्म सर्वेश्वर सदा ।

ययैव शक्त्या स्फुरति प्राप्ता तामेव पश्यति ॥

(३१६७२)

“वह सर्वेश्वर ब्रह्म समस्त शक्तियों में युक्त है । उसमें प्रत्येक शक्ति को अपनी इच्छानुसार प्रकट करने की क्षमता है ।

सर्वशक्तिपर ब्रह्म नित्यमापूर्णमव्ययम् ।
न वदस्ति न तस्मिन्यद्विद्यते विततात्मनि ॥

(३।१००।५)

“वह सर्व शक्तिमय ब्रह्म नित्य, सर्वथा, पूर्ण और अव्यय है । ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उस विस्तृत स्वरूप में अवस्थित न हो ।”

सर्वशक्तिहि भगवान्येव तस्मै हि रोचते ।
शक्ति तामेव वितता प्रकाशयति सर्वग ॥

(३।१००।६)

“भगवान् सब तरह की शक्तियों से सम्पन्न हैं और सभी स्थानों पर निवास करता है । वह जहाँ भी चाहे, शक्ति को वही प्रकट कर सकता है ।”

ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति कर्तृताऽकर्तृताऽपि च ।
इत्यादिकाना शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मन ॥

(६-१।३७।१६)

“ज्ञान, क्रिया, कर्तृत्व और अकर्तृत्व आदि शक्तियों का उस शिवात्मा में कोई अन्त नहीं है ।”

ब्रह्मण सर्वशक्तिहि दृश्यते दशदिग्गता ।
नाशशक्तिविनाशेषु शोकशक्तिश्च शोकिषु ॥

(३।१००।६)

“ब्रह्म की चेतन शक्ति सभी दसों दिशाओं में, सब में साधारण शक्ति, नाश में नाश शक्ति, शोक करने वालों में शोक शक्ति दृष्टि-गोचर होती है ।”

आनन्दशक्तिर्मुदिते वीर्यशक्तिस्तथा भटे ।

सर्गेषु सर्गशक्तिश्च कल्पान्ते सर्वशक्तिता ॥

(३।१००।१०)

‘प्रसन्न चित्त वालो मे आनन्द शक्ति, वीर्य शक्ति, सृष्टि मे सृजन शक्ति और कल्पात मे समस्त शक्तियाँ उसीमे दिखाई देती हैं ।’

सर्वशक्तिमयो ह्यात्मा यद्यथा भावयत्यलम् ।

तत्तथा पश्यति तदा स्वसङ्कल्पविनृम्भितम् ॥

(६-१।३३।४१)

“आत्मा सब शक्तियों से सम्पन्न है, वह जहाँ जिस शक्ति की याचना करती है, वही अपनी सकल्प शक्ति द्वारा उसे प्रकट देखती है ।”

ब्रह्म की स्पन्द शक्ति से सृष्टि की रचना होती है । योग वासिष्ठ के अनुसार—

स्पन्दशक्तिस्तथेच्छेद दृश्याभास तनोति सा ।

साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम् ॥

(६।२।८४।६)

“जैसे शरीर धारण करने वाले व्यक्ति की इच्छा कल्पना नगर के निर्माण की क्षमता रखती है, उसी तरह भगवान की स्पन्दशक्ति रूपी इच्छा इस दृश्य जगत का निर्माण करती है ।

सा राम प्रकृति प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी ।

जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ॥

(६-२८५।१४)

“हे राम । शिव की स्वाभाविक स्पन्दशक्ति की प्रकृति कहते हैं, वही जगत माता आदि नामों से विख्यात है ।”

इस महाशक्ति को दूसरे नामों से भी पुकारा जाता है जैसे दुर्गा, उषा, गौरी, भवानी, काला, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, चण्डिका, अपराजिता, विजया, जयन्ती, सिद्धा, जाय, उत्पला और शुक्ला आदि । इन सब के नाम विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों में भी मिलते हैं ।

प्रकृति ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ वही है, वह तो उसी का एक रूप है—

ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जड ।

नित्यात्प्रबुद्धात्पुरुषादब्रह्मण प्रकृतिस्तथा ॥

(३।६।७१)

“जैसे चेतन मकड़ी से जड जाला उत्पन्न होता है, उसी तरह नित्य प्रबुद्ध पुरुष ब्रह्म से प्रकृति उत्पन्न होती है ।”

सूक्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेते सा कल्प्यते त्रिधा ।

सत्त्व रजतम इति एवैव प्रकृति स्मृता ।

(६।१।६।५)

“उस प्रकृति के तीन रूप हैं—सूक्ष्म-मध्यम और स्थूल । इन्हीं को सत्त्व, रज, तम कहा जाता है ।”

शिव और शक्ति की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है —

यथैक पवनस्पन्दमेकमौठण्यानली यथा ।

चिन्मात्र स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥

(६-२।८।४।३)

“जैसे वायु और उसकी क्रियाशीलता, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति को एक माना जाता है उसी तरह से चिन्मात्र शिव और उसकी स्पन्द शक्ति एक ही हैं ।”

अनन्या तस्य ता विद्धि सान्द्रशक्तिं मनोमयीम् ।

(६-२ । ८४।२)

मनोमयी सान्द्र शक्ति उससे अन्य पदार्थ नहीं है ।

व्यावृत्त्यैव तथैवास्ते शिव इत्युच्यते तदा ।

चितिशक्ते क्रियादेव्या प्रतिस्थान यदात्मनि ॥

(६।२ ८४।२६)

“शिव-शक्ति की उस अवस्था का नाम है जब वह चिति शक्ति क्रिया देवी, क्रिया करके अपने मूल स्थान आत्मा की लौटती है और वहाँ पर शांत भाव से अवस्थित हो जाती है ।”

कथमास्ता वद प्राज्ञ मरिच तिक्ता बिना ।

(६।२ । ८२।७)

बिना तिष्ठति माधुर्ये कथयेक्षुरस, कथम् ॥

(६।२ । ८२।६)

‘जैसे तिक्ता के बिना मिर्च और मधुरता के बिना गन्ने का रस नहीं रहता, उसी तरह’ शक्ति के बिना शिव नहीं रहता ।”

सविन्मात्रैकधामित्वात्काकतालीययोगत ।

सवित्देवी शिव स्पृष्ट्वा प्रकृतित्व समुज्झति ।

(६।२ । ८१।१८)

“सवित मात्र मत्ता से जब भी प्रकृति का तादात्म्य ही जाता है और देवयोग से पुरुष का स्पष्ट हो जाता है, तब वह अपने प्रकृतित्व निवृत्त होकर पुरुष के साथ एक्य स्थापित कर लेती है ।”

प्रकृति पुरुष स्पृष्ट्वा तन्मयीव भवत्यनलम् ।

तदन्तरेकता गत्वा नदीरूपमिवाणवे ॥

(६-२ । ८५।१६)

“समुद्र मे नदी मिल कर जौ अपना रूप छोड देती है और समुद्र का ही रूप धारण कर लेती है, उमी तरह प्रकृति पुरुष के साथ मिलकर पुरुष रूप हो ही जाती है ।”

प्रकृति जब पुरुष से मिलती है, उमीको निर्वाण पद कहा जाना है —

चित्तिनिर्वाणरूप यत्प्रकृति परम पदम् ।

प्राप्य तत्तामवाप्नोति सरिदध्याविवाविताम् ॥

(६-२ । ८५।२६)

प्रकृति, की परमगति सवित में निर्वाण प्राप्त करना है । जब वह इन स्थिति मे आ जाती है, तब ऐमे ही होती है जैसे नदी समुद्र मे पड कर उनी का रूप धारण कर लेती है ।

शक्ति जगत को अपने मे धारण करती है और विभिन्न रूपो में सर्वत्र व्याप्त है —

चित्स्पर्न्दोऽन्तर्जगद्धत्ते कल्पनेव पुर हृदि ।

सर्व वा जगदित्येव कल्पनेव यथा पुरम् ॥

पवनस्य यथा स्पन्दस्तथैवेच्छ शिवस्य सा ।

यथा स्पन्दोऽनिलस्यान्त प्रशान्तेच्छस्तथा शिवः ॥

अमूर्तो मूर्तमाकाशे शब्दाऽम्बरमानिल ।

यथा स्पन्दस्तनोत्येव शिवेच्छा कुरुते जगत् ॥

(योग व० ६ (२) ८५।४-६)

“वह चित्स्पर्न्दरूपी शक्ति जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कल्पना अपने भीतर कल्पित नगर को । अथवा यो कहना चाहिये कि जैसे कल्पना स्वय ही कल्पित नगर है वैसे ही वह शक्ति ही स्वय जगत है । वह शक्ति शिव की इच्छा है और वायु के स्पन्दन की तरह शिव का ही स्पन्दन है । जैसे स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र पर शान्ति रहती है उसी प्रकार महाशक्ति रूप स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र में शान्त इच्छा वाला शिव वर्तमान मे । यह शिव

की इच्छा अव्यक्त शिव में इस प्रकार जगत को प्रकट कर देती है जैसे कि अमूर्त आकाश में वायु का स्पन्दन मूर्त शब्द को प्रकट कर देता है ।”

सा हि क्रिया भगवतो परिस्यन्दैक रूपिणी ।

वितिशक्तिरनाच्छन्ता तथा भातात्मनात्मनि ॥

देव्यास्तथा हि या काल्पा नानाभिनय नर्तना ।

ता इमा ब्रह्मणा सर्ग जरामरणरीतय ॥

क्रियासौ ग्राम नगर द्वीप मण्डल मालिक ।

स्पन्दान् करोति घत्तेऽन्त कल्पितावयवार्त्मका ॥

काली कमलिनी काली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका ।

घत्ते स्वावयवीयूता दृश्यलक्ष्मीमिमा हृदि ॥

(योग व ६ (२) ८४।१ २२)

“वह भगवती क्रिया, स्पन्दन ही जिसका स्वरूप है, अनादि और अनन्त चित्ति शक्ति, जगत रूप से अपने आप ही अपने भीतर प्रकट हुई है। उस देवी के सामयिक अभिनय और नर्तन ही ब्रह्म की सृष्टि वृद्धि और लय के नियम हैं। यही कल्पित अवयव वाली क्रिया देवी ग्राम, नगर, द्वीप, मण्डल आदि स्पन्दनों की माला रचती है और अपने भीतर धारण करती है। यह ब्रह्माण्ड रूप से स्पन्दन होने वाली काली क्रिया अपने अवयव रूप इस जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कि कमलिनी अपने भीतर पुष्प-लक्ष्मी को ।”

चिच्छावित ब्रह्मणो राम शरीरेमिदृश्यते ।

स्पन्द शक्तिश्च वातेषु जड शक्ति स्तथोपले ॥

अर्थात्—“ब्रह्म की चित्-शक्ति चैतन्य शरीर में, स्पन्दन-शक्ति वायु में और जड-शक्ति पत्थर आदि में दृष्टि गेचर होती है।

इस प्रकार में योग-वासिष्ठकार ने शक्ति विद्वान्त की स्पष्ट व्याख्या की है जो तत्र सिद्धान्त के अनुकूल है।

शक्ति और महाभारत

महाभारत में भगवती को परम पूज्या स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत काल में शक्ति की उपासना प्रचलित थी। इस तथ्य से पुष्टि इसमें होती है कि सग्राम के आरम्भ के पूर्व सीति ने दुर्गा की भक्ति की प्रेरणा की है। विराट पर्व में दुर्गा का स्तोत्र उपलब्ध होता है। यहाँ इसे श्रीकृष्ण की बहिन, कस द्वारा पत्थर पर पछाड़ी जाने वाली और यशादा के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है।

भीष्म पर्व के ३३ वें अध्याय में वर्णित दुर्गा का स्तोत्र तो स्कन्द पुराण की ही तरह है। महाभारत युद्ध के समय जब भगवान् कृष्ण ने कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओं को आपने सामने देखा तो अर्जुन को प्रेरणा दी कि विजय प्राप्ति के लिए तुम दुर्गा का स्तवन करो। अर्जुन ने कहा—हे आर्य्ये ! हे सिद्ध सेनानि ! हे मन्दिर-पवत वासिनी देवि ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कुमारी, भद्रकाली, कपाली, कृष्ण पिंगले, महाकाली, चण्डि, चण्डे तारिणी, वरवर्णिनि, मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कात्यायिनि, महाभागे, करालि, विजया, जया, मयूरपख ध्वजा धारिणी, महिषासुर-मर्दिनी, कोशिकी, नित्य पीन-वर्मिनी, अट्टहासकारिणी, चक्रसमान मुख वाली रणप्रिये, मेरा आपको नमस्कार है। हे उमे, शाकम्भरि, श्वेते, कृष्णे, कैटभ दैत्य-नाशिनी, हिरण्यक्षि, विरूपाक्षि, सुन्दर धूम्राक्षि, मेरा आपको प्रणाम है। हे ब्रह्मण्ये ! भूतकालजा, जम्बूद्वीपवासिनी, वेद जिनकी महा-

पुण्यदायिनी महिमा का गान करते हैं, आपको मेरा प्रणाम है। हे स्वामि कार्तिक की माता, दुर्गे, भगवति, वनवासिनी, मेरा आपको प्रणाम है। आपही स्वाहाकार, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेद माता सरस्वती और वेदान्त स्वरूपा हैं। हे महादेवी ! मैंने पवित्र मनसे आपका स्तवन किया है, आपकी कृपा से युद्धक्षेत्र में मेरी विजय हो। जयनी, मोहिनी, माया, ही सन्ध्या, प्रभावती सावित्री और जननी आप ही हैं। आप ही तुष्टि, पुष्टि, घृति, सावित्री, चन्द्र और सूर्य की वृद्धि करने वाली हैं। आप ऐश्वर्यवानों का ऐश्वर्य हैं। युद्ध में सिद्ध और चारण आपका दर्शन करके घन्य होते हैं।”

अर्जुन के पवित्र भाव से स्तुति करने पर देवी आकाश में प्रकट हुई और बोली ‘हे पाण्डव ! तुम कुछ ही समय में शत्रु पर विजय प्राप्त कर लोगे। यदि इन्द्र भी तुम्हारा विरोधी हो जाए, तब भी कोई शत्रु तुम्हें पराजित नहीं कर सकता।”

इस वर्णन से महाभारत काल में प्रचलित दुर्गा उपासना पर प्रकाश पड़ता है। कृष्ण और अर्जुन इसको स्वीकार करते हैं।

शक्ति और वेदान्त-दर्शन

तत्र का मुख्य सिद्धान्त शक्ति की उपासना है । इसमें योगेश्वरी का ध्यान किया जाता है जबकि वेदान्त में योगेश्वर का ध्यान किया जाता है । वेदान्त ज्ञान का मार्ग है । योगेश्वर से अभिप्राय उस चिन्मय पुरुष से है जो जानने, देखने, आकर्षित करने और शासन करने की क्षमता रखता है । तत्र मे यह गुण योगेश्वरी के पाये जाते हैं जो शक्ति रूपा, सकल्प रूपा, विश्व की अधिष्ठात्री, प्रकृति देवी हैं ।

तत्र का मत है—

मनस्त्व व्योम त्व मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्व भूमिस्त्वयि परिणताया न हि परम् ।
स्वमेव स्वात्मान परिणमयितुं विश्वं वपुषा
चिदानन्दाकारं शिवं युवति भावने विभृष ॥

(सौंदर्यलहरी ३५)

इससे अभिप्रेत है कि यह समस्त व्यक्त जगत् अर्थात् पचनत्वो का बना हुआ यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन बुद्धि और अहङ्कार शिव की प्रधान अर्द्धाङ्गी भगवती जगदम्बा के ही रूप है ।

इसी प्रकार का सिद्धान्त वेदान्त का भी है छान्दोग्योपनिषद् ६।३।२,३ में कहा है —

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन
जीवेतात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥
ताना त्रिवृत् त्रिवृत्मेकैका करवाणीति सेयं

देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य
नामरूपे व्याकरोत् ।

“तब उस सत रूप देवता ने सकल्प किया—“अब मैं इन तीनों देवताओं में जीव रूप में प्रवेश कर जाऊँ और नाम तथा रूप को स्पष्ट करूँ और उनमें से एक-एक को त्रिवृत्ति (तीन प्रकार का) करूँ।” ऐसा सकल्प करके उस देवता ने इन तीनों में प्रवेश करके नाम रूप को स्पष्ट किया।”

तैत्तिरीयोनिषद् २।६ में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है—

सोऽकामयत । बहुस्या प्रजायेयेति । स तपोऽनप्यत ।

स तपस्तप्त्वा इदं १७ सवमसृजत यदि किं च ।

तत्सृष्ट्वा तदेवानुपाविशत् ।

तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् ।

निरुक्त चानिरुक्त च ।

निलयन चानिलयन च ।

विज्ञान चाविज्ञान च ।

सत्य चानृत च सत्यम् भवत् ।

यदिदं किं च । तत्सत्यमित्याचक्षते ।

तदप्येष श्लोको भवित ।

“परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और तप से तेजस्वी होकर इस दृश्य जगत को रचा और उसी में प्रविष्ट होगया । फिर वह साकार और आकार रहित हुआ । निरुक्त, अनिरुक्त तथा आश्रय रूप एवं अनाश्रय रूप हुआ । वही चैतन्य स्वरूप और चेतनाहीन भी हुआ, वही सत्य स्वरूप हुआ । बुद्धिमानों का कहना है कि जो कुछ देखा, सुना या अनुभव में आया, वही सत्य है । मिथ्या भी वही हुआ (क्योंकि दिखाई न देने के कारण उसमें सम्मन्य में शका उत्पन्न होती है ।

ऋग्वेद के नारदीय सूक्त में दर्शन का सुन्दर विवेचन किया गया है, उसकी व्याख्या सप्तशती के प्रथम अध्याय में की गई है—

यच्च किञ्चिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिनात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्ति सा स्वम् ... ॥

इसमें भगवती की ही सद् और असद् दोनों प्रकार की वस्तुओं के भीतर शक्ति के रूप में व्याख्या की गई है ।

वेदान्त में अद्वैत वाद का सुन्दर निदर्शन है । सप्तशती में अनेकों स्थानों पर इन भावों की व्याख्या किया गया है । दसवें अध्याय में देवी कहती है —

एकैवाह जगत्पत्र द्वितीया का समापरा ।

‘ इस विश्व में मैं अकेली हूँ । मेरे अतिरिक्त और कौन है ? ’

वेदान्त का दूसरा सूत्र है—

जन्माद्यक्षय यत ॥

सबके देखने, सुनने और अनुभव में आने वाले इसे अदभुत विश्व का ही रचयिता जो परमात्मा इसका धारण पोषण करके अत मे सबको अपने में ही लीन कर लेता है, वही ब्रह्म है ।

सप्तशती के प्रथम अध्याय में यही बात ब्रह्मा जी के माध्यम से कहलाई गई है—

... त्वयैतत् सृज्यते जगत् ।

त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वयैतत् सृज्यते जगत् ॥

‘ हे देवी ! तू ही इस विश्व का सृजन करती है, तू ही इसकी पालन करती है और अन्त में तू ही इस अपने में लीन कर लेती है । ’

अद्वैतवाद तान्त्रिक उपासना का भी प्रमुख सिद्धान्त है जहाँ उपासक का दृष्टिकोण रहता है—

देवी भूत्वा गतेद् देवम् ।

अर्थात् “देव स्वयं बन कर ही देव का गजन करे ।” सात्त्विकार्म
ही भक्त का साधन पथ है । साधक कहता है—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोक भाक् ।

सच्चिदानन्द रूपीऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान् ॥

अर्थात्—‘मैं देवी हूँ और अन्य नहीं हूँ । मैं ही ब्रह्म हूँ और
शोक को भजने वाला नहीं हूँ । मैं सच्चिदानन्द रूप वाला हूँ । मैं निरन्तर
मुक्त होने के स्वभाव वाला हूँ ।’

सात्त्विक महा योगी भ स्वर राज ने ब्रह्म और जगत् की एकरा
को प्रतिपादित करते हुए कहा है—

वस्तुतस्तु जगतो ब्रह्मपरिणामकत्वं स्वीकुर्वन्तो तान्त्रि-
काणां मते जगत् सत्यत्वमेव मृदूधटयोरिव ब्रह्मजग-
तोऽत्यन्ताभेदेन ब्रह्मणः सत्यत्वेन जगतोऽपि सत्यत्वा-
वश्यम्भावात् भेदमात्रस्य मिथ्यात्वस्वीकारेणैतत्पु-
तीनामखिलानां निर्वाह भेदस्य मिथ्यात्वादेव भेदध-
टिताधाराधेयभावसम्बन्धोऽपि मिथैव ।”

—सौभाग्य भास्कर पृ० १५१

अर्थात्—“वास्तव में हम जगत् की ब्रह्म का परिणामक मानने
वाले तान्त्रिकों के मत में यह जगत् सत्य ही है । भिड़ो और धट को
तरह ब्रह्म और जगत् का अत्यन्त अभेद होने से और ब्रह्म की सत्यता से
हम जगत् की भी सत्यता अवश्यम्भावी है । जो भेद है उसको मिथ्या
मान लेने से समस्त भक्त प्रतिपादक श्रुतियों का निर्वाह हो जाता है ।
भेद के मिथ्या होने से ही भेद में पड़ते आधार और धाधेय भाव सम्बन्ध
भी मिथ्या ही होता है ।”

तब और वेदा न में कुछ मतभेद भी है । वेदान्त जगत् को
असत्य और मिथ्या घोषित करते हैं । अतः तान्त्रिक दृष्टिकोण दूसरा है ।

तत्र इस जगत् में रहने वाले जीवों की शिव की अनुभूति मानता है । जीव को भी वह मन और जगत् में विभूषित शिव ही स्वीकार करता है । इनके अनुसार शिव यदि चेतना का अव्यक्त रूप है तो शक्ति उसका सक्रिय रूप है । अतः तत्र का मत है कि विश्व दिव्यरूप में सत्य है और इसमें निवास करने वाला हर जीव ईश्वर की सत्य सत्ता की आकृति है । यहाँ चार्गे और सत्य ही बिखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है । अतः इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है । इसमें रहकर यहाँ उत्पन्न वस्तुओं का अनिष्ट भाव से उपयोग करने हुए सत्य सत्ता का अनुभव करना ही शक्तिदर्शन का अभीष्ट है । इस मत में शक्तिवाद वेदान्त से भी उच्च और श्रेष्ठ सिद्ध होता है ।

शक्ति और सांख्य-दर्शन

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शनों में सबसे प्राचीन माना जाता है । सांख्य सिद्धान्त का दर्जा तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से बहुत ऊँचा है । प्राचीन काल से विद्वानों में यह कहावत चली आ रही है कि—

“नहि सांख्य सम ज्ञान नहि योग सम बल ।”

वास्तव में सृष्टि के निर्माण में प्रकृति का विकास किस प्रकार हुआ और उसमें आत्मा का क्या स्थान है, इसका विवेचन कपिल ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से किया है, वह सराहनीय है । सांख्य दर्शन वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक दर्शन है । भगवद्गीता में भी सांख्य निष्ठा को बहुत महत्व दिया गया है और उसको ‘निष्काम कर्मयोग’ का पूरक ही माना है । इसी लिए गीताकार सांख्य और योग में भेदभाव करने वालों को अज्ञानी समझते हैं—

सांख्य योगो प्रथमऽवालः प्रवदन्ति न पण्डितः ।

सृष्टि निर्माण के सम्बन्ध में सांख्य की अलग धारणा है । सांख्य-शास्त्र में यह समस्त विश्व २५ तत्वों का खेल माना गया है । इनके दो मुख्य विभाग हैं—पुरुष और प्रकृति । इनमें से ‘पुरुष’ अथवा आत्मा तो चैतन्य स्वरूप है, वह न किसी तत्व में बनता है और न उसमें कुछ बनता है । प्रकृति के आठ विभाग माने गए हैं और उनमें से सातह विकारों (विकृति) की उत्पत्ति कही गई है । आठ प्रकृतियाँ ये हैं—

१ मूल प्रकृति २ महत्तत्त्व (बुद्धि) ३ अहकार ४ शब्द
५ स्पर्श ६ रूप ७ रस ८ गन्ध ।

शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती हैं। सांख्य में प्रकृति उसको कहते हैं जिससे आगे चल कर कोई अन्य तत्त्व उत्पन्न हो। इसलिए बुद्धि और अहंकार के साथ पाँचो तन्मात्राओं को भी प्रकृति माना गया है क्योंकि उनमें ही सोलह विकृतियों की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार हैं—

पाँच स्थूलभूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, श्रोत्र त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा और ग्यारहवाँ मन कहा गया है।

यह पाँच स्थूलभूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष हैं और इनसे आगे चलकर किसी अन्य तत्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये इन्हें विकृति कहा गया है। यह ग्यारह जिन सूक्ष्म तन्मात्राओं से उत्पन्न होती हैं, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है तो उसे सूक्ष्म और निर्मल शब्द, स्पृश, रूप रस और गन्ध का ज्ञान होता है। जब इन पाँचों के भी मूल उद्गम की खोज की जाती है तो 'अहवृत्ति' का साक्षात्कार होता है। 'अहंकार' से भी ऊपर उठकर विचार करने से 'महत्तत्त्व' अथवा 'अस्मितावृत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नहीं चलता तो अनुमान द्वारा 'महत्तत्त्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है जो कि अनादि है। इस प्रकार महर्षि कपिल ने जडतत्त्व के जो चौबीस विभाग बतलाये हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तक द्वारा सिद्ध नहीं किये गए हैं। यह मूल प्रकृति ही तीन गुणों—सत्, रज और तम की न्यूनाधिकता के कारण जगत् के विभिन्न तत्वों तथा नाम रूपों में प्रकट होकर विश्व की रचना करती रहती है।

तन्त्र का मत सांख्य से भिन्न है। तन्त्र दार्शनिक विश्व को ३६ तत्वों से निर्मित स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सांख्य में पुरुष के

ऊपर पञ्च कञ्चुक अर्थात् पाँच आवर्ण हैं—नियति, काल, राग, विद्या और कला । इन पाँच आवर्णों में से कला के ऊपर माया, युद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव हैं । इस तन्त्र में २५ तत्वों के अतिरिक्त तन्त्र-मत में ११ तत्व और हैं । शिव तत्व को एक अलग तन्त्र माना जाता है । सदाशिव, ईश्वर और युद्ध विद्या को योग विद्या-तत्व कहलाता है । माया से लेकर नीचे वाले ३२ तत्वों को आत्म-तत्व कहा जाता है । इस तरह से तार्किक दृष्टि में दोनों दर्शनों में अन्तर है ।

सांख्य में पुरुष तथा प्रकृति में द्वैत सिद्धान्त को माना गया है परन्तु तन्त्र अद्वैत मत का समर्थक है ।

विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कारिका में लिखा है—
तस्मात्तत्सयोगादचेतन चेतनावदिव लिङ्गम् ।

गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तव्यं भवत्युदासीन ॥

इस तरह से पुरुष और प्रकृति के मिलने में इस चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई ।

सांख्य पुरुष और प्रकृति दोनों को अनादि मानता है—
प्रकृति पुरुष चैव विद्वयनादी उभावपि ।

श्री शंकराचार्य ने इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कहा कि ईश्वर सनातन प्रभु है, यह स्वीकार करना ठीक है कि उसकी दोनों प्रकृतियाँ—परा और अपरा भी सनातन और शाश्वत हैं । इस पर शंकराचार्य का यह मत है कि यदि प्रकृति और पुरुष को सनातन, अनादि और स्वतन्त्र स्वीकार करले तो इस ईश्वर की प्रभुता कम हो जाती है ।

वास्तव में सांख्य में जिन प्रकृति का वर्णन है वह अत्यन्त ही स्थूल है । इसे अशुद्ध प्रकृति कहते हैं । तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्य की तरह जड़ नहीं है । वह पूर्ण चैतन्यमयी है । मोन्दर्य लहरी के प्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मीधर ने (३४ श्लोक में) पारावार को प्रकृति कहा है । परा कहते हैं—मत् रज और तम की साम्यावस्था को । यह तीनों गुण ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक माने जाते हैं । इस परा को ही शुद्ध प्रकृति

माना जाता है ।

तन्त्र की प्रकृति निश्चल, परावाक् रूप प्रवणात्मक कुण्डलिनी शक्ति है । प्रपञ्चसार तन्त्र के अनुसार—

प्रकृति* निश्चला परावाग्रूपिणी परप्रणवालिका
कुण्डलिनीशक्तिः ।

अर्थात् प्रकृति निश्चला होती है तथा वह परावाक् रूप वाली है और पर प्रणव स्वरूप से युक्त कुण्डलिनी शक्ति है ।

अत्र मव्यवदेन स्वसवेद्यस्वरूपा

सेत्युक्ता परा प्रकृति ग्रह्यते ।

(प्र० क्र० दी० पृ० ४००)

अर्थात्, यहाँ पर मन इस शब्द से अपने ही द्वारा वेदन करने के योग्य वह कही गई परा प्रकृति ग्रहण की जाती है ।

प्रकृतिरिहापरोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

(प्र० क्र० दी० पृ० ४०३)

अर्थात्, यहाँ पर प्रकृति अपर से उपलक्षित पदा कही गई है ।

प्रपञ्चसार तन्त्र में परा प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

स्वामिन् प्रसीद विश्वेश केवय केन भाविता ।

किं मूला किं क्रिया, सर्वमस्मभ्य वक्तुमर्हसि । १६।

इति पृष्ठ पर ज्योतिरुवाच प्रमिताक्षरम् ।

यूयमक्षरसम्भूता सृष्टिस्थित्यन्तहेतव । १७।

तैरेव विकृति यातास्तेषु वो जायते लय ।

इति तस्य वच श्रुत्वा तमपृच्छत् सरोजभू, । १८।

अक्षर नाम किं नाथ कुतो जात किमात्मकम् ।

इति पृष्ठो हरिस्तेन सरोजोदरयोनिना । १९।

मूलार्णमर्णविकृतोविकृतेविकृतीरपि ।
 तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगाश्च पृथग्विधान् । २०।
 वैदिकास्तान्त्रिकाश्चापि सर्वानित्यमुवाच ह ।
 प्रकृतिः पुस्पश्चैव नित्यो कालश्च सत्तम् । २१।
 अणोरणायसी स्थूलात् स्थूला व्याप्तचराचरा ।
 आदित्येन्द्रग्नितेजोमद यद्यत्तत्तनमयी विभु । २२।
 न श्वेतरक्तपीतादिवर्णैर्निर्वार्यं चोच्यते ।
 गुणेषु न भूतेषु विशेषेण व्यवस्थिता । २३।
 अन्तरान्तर्बाहश्चैव देहिना देहपूरणी ।
 स्वमवेद्यस्वरूपा सा दृश्य देशिकदर्शितं । २४।
 यथाकाशस्तसो वापि लब्धा या नोपलभ्यते ।
 पुन्नपु सकयोतुल्याप्यङ्गनासु विशिष्यते । २५।
 प्रधानमिति यामाहुर्वाशक्तिरिति कथ्यते ।
 या युष्मानपि मा नित्यमवष्टभ्यातिवर्तते । २६।
 साह यूय तथैवान्यद् यद्वद्य तत्तु सा स्मृता ।
 प्रलये व्याप्यते तस्या चराचरमिदं जगत् । २७।
 सैव स्वावेतिपरमा तस्या नान्योस्ति वेदिता ।
 सा कालात्मना सम्यक् मयैव ज्ञायते सदा । २८।

(प्रथम पटल)

“हे स्वामिन ! आप प्रसन्न होइये । हे विश्वेश ! हम कौन हैं, किसके द्वारा भावित हैं, क्या हमारा मूल है और क्या क्रिया है—यह सभी हमको आप बतलाइये । इस प्रकार से पूछी गई परम ज्योति प्रमित अक्षरो मे बोली—आप लोग अक्षर से समुत्पन्न हैं और सृजन, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं । उनके द्वारा ही विकृति को प्राप्त हुए हैं और उनमें ही लय को प्राप्त होते हैं । उसके इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मा ने उनसे पूछा—हे नाथ ! अक्षर वाला क्या है ? वह कहाँ से उत्पन्न हुआ है और उसका क्या स्वरूप है ? । इस प्रकार कमलोद्भव के

द्वारा पूछने पर हरि ने कहा—मूलवर्ण विवृति है और विवृति की भी विवृति ये प्रभिन्न मन्त्र हैं और अनेक प्रकार के प्रयोग हैं, जो चाहे वैदिक हो अथवा तन्त्रोक्त हो। हे सत्तम ! प्रकृति और पुरुष नित्य हैं तथा काल नित्य है। अणु से भी अणु और स्थूल से भी स्थूल चराचर में व्याप्त है। सूर्य-चन्द्र अग्नि तेजयुक्त हैं और तन्म ही विभु है। उसका कोई भी श्वेत रक्त आदि वर्ण के द्वारा कथन नहीं किया जा सकता है। गुणों में और भूतों में विशेष रूप से व्यवस्थित नहीं है। अन्दर-बाहर देहधारियों के देह की पूर्ति करने वाली है। आचार्यों के द्वारा वह स्वयसवेश्व स्वरूप वाली है तथा दृश्यमान है। आकाश तथा तम में भी लब्ध वह लभ्यमान नहीं होती है, पुरुष और नपुंसक में वह समान है। अगमाओं में विशेषता वाली होती है। उसको प्रधान या शक्ति कहा जाता है। जो आप सबको और प्रभु को अब प्रसन्न करके अति-वर्जित होती है। वही मैं हूँ और आप हैं तथा अन्य भी है जो वेद्य हैं, वह बताई गई है, प्रलय में यह चराचर जगत् उसमें व्याप्त हो जाता है।

वही अपने आपको जानती है, वह परमा है और अन्य उसका ज्ञाता नहीं है। उसको काल के स्वरूप से ही सर्वहर मेरे द्वारा जानी जाती है।

शारदा तिलक तन्त्र में पराप्रकृति का वर्णन इस प्रकार —

नित्यानन्दवर्णनिरन्तरगलत्पञ्चाशदूर्णं क्रमाद्
व्याप्त येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूपं जगत् ।

शब्दब्रह्म यद्वचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतं
तद्विज्यादनिशं शशाङ्कसदनं वाचामधीशं महं ।१।

अर्थात्, नित्य आनन्द वपुवाली है और निरन्तर गलत् पञ्चाश पार्श्वों के द्वारा क्रम से जिसके द्वारा यह चराचर शब्दार्थ रूप जगत् व्याप्त हो रहा है। सुकृतीगण अन्तर्गत चैतन्य उसको शब्द ब्रह्म कहते हैं, वह वाणियोका अधीश चन्द्रमे मदन वाला तेज आपकी निरन्तर रक्षा करें।

इस तरह सांख्य दर्शन की विचार-धारा शक्ति दर्शन के सामने फीकी पड़ती दिखाई देती है। क्योंकि सांख्य की प्रकृति स्थूल है और शक्तिवाद की सूक्ष्म है।

शक्ति और आरण्यक

आरण्यक में त्रिपुरा का वर्णन आता है जिसे श्रीविद्या भी कहते हैं । यह धर्म, अर्थ और काम की देने वाली है । वहाँ इसकी सुभगा, अम्बिका, सुन्दरी की सजा भी दी गई है । सुभगा इसलिए कहा गया है कि यह श्री, यश, ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान और वैराग्य, इन छ दिव्य गुणों को देने वाली है ।

तैत्तिरीय आरण्यक के १० वें प्रपाठक में वेद माता की स्तुति की गई है—

आयातु वरदा देवि अक्षर ब्रह्मसम्मितम् ।

हे देवि । ब्रह्म के समान अक्षर अर्थात् नाश रहित और वरदान देने वाली आप आवें ।

भद्रकाली के स्तोत्र भी देव आरण्यक में हैं जो इसी प्रपाठक के आरम्भ में दिए हुए हैं—

भद्र शुद्धात्मविज्ञान भद्रलोकानरूप मङ्गलं
च वा कलयति जनयतीति भद्रकाली ।

भद्र अर्थात् परम विशुद्ध आत्म ज्ञान और भद्रलोक के अनुरूप मङ्गलका जो कलन करती है अर्थात् प्रजनन किया करती है वही भद्रकाली कही जाती है ।

भद्र कर्णोभि, शृणुयाम देवा

भद्र पश्येमाक्षिभर्यजत्रा

हे देववरण ! हम कानो से भद्र श्रवति मङ्गलमय श्रवण करें ।
हे यजत्र वृन्द ! हम नेत्रो से भद्र ही देखें ।

इस तरह से आरण्यक से शक्ति का सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।



गीता में शक्ति-तत्त्व

गीता का शक्ति तत्त्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शक्ति के पर्याय प्रकृति का अनेक स्थानों पर स्पष्टीकरण किया गया है।

गीता (६।१०) में कहा है—मैं स्रष्टा होकर प्रकृति से सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ। हे कौन्तेय ! इस कारण जगत का यह बनना बिगड़ना हुआ करता है। प्रकृति और पुरुष, दोनों को ही अनादि समझकर विकार और गुणों की प्रकृतिसे उपजा हुआ ज्ञान जानो।' (१३।१६)। 'क्योंकि पुरुष प्रकृति में अवस्थित होकर प्रकृति के गुणों का उपयोग करता है और प्रकृति के गुणों का यह संयोग पुरुष को भली-बुरी योनियों में जन्म लेने के लिए कारण होता है।' (१३।२१)। 'हे भारत ! महद् ब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरी ही योनि है। मैं उसमें गर्भ रखता हूँ। फिर उससे समस्त भूत उत्पन्न होने लगते हैं।' (१४।३७)। 'हे कौन्तेय ! पशु, पक्षी आदि सब योनियों में जो मूर्तियाँ जन्मती हैं, उनकी योनि महत् ब्रह्म है और मैं बीजदाता पिता हूँ।' (१४।४)। 'हे महाबाहु ! प्रकृति से उत्पन्न हुए नत्व, रज और तम रूपी गुण देह में रहने वाले अव्यय अर्थात् निर्विकार आत्मा को देह में बाँध लेते हैं।' (१४।५)। और स्पष्ट शब्दों में भगवान् ने कहा है, 'पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, (यह पाँच सूक्ष्म भूत) मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकारों में मेरी प्रकृति विभाजित है।' (७।४)। यह अपरा अर्थात् निम्न श्रेणी की (प्रकृति) है। हे महाबाहु अर्जुन ! यह जानो कि इससे भिन्न, जगत को धारण करने वाली मेरी दूसरी प्रकृति है।' (७।५)।

‘समस्त रखो कि इन्ही दोनो से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं । सारे जगत का प्रभव अर्थात् मूल और प्रलय अर्थात् अन्त में ही हैं ।’ (७।६) ।

शक्ति-मन्त्र—

गीता में शक्ति तत्व का ऐसा सजीव व सक्रिय चित्रण व आवा-ह्वान है कि कायर से कायर पुरुष को भी अपनी सुप्त शक्तियों का आभास होने लगता है और वह यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि वह कठिनाइयों से घबरा कर, जीवन से निराश होकर अन्धकार में भटक रहा था, यह आशा की जीवन ज्योति पाकर तो मैं धन्य होगया । अर्जुन जैसे करोड़ों व्यक्ति मानसिक निर्बलता से आक्रान्त होकर जीवन को भाग्य भरोसे ही छोड़ देते हैं । परिस्थितियाँ जैसे भी मोड़ खाती रहे, उस पर सन्तोष कर लेते हैं । उन्हें अपनी अन्तर्निहित शक्तियों पर विश्वास नहीं होता । वे वही जानते कि प्राणी की शक्ति पहाड़ों को चूर-चूर कर सकती है, समुद्रों को सोख सकती है, हवाओं के रुख मोड़ सकती है, राक्षसी शक्तियों का दलन करने की क्षमता रखती है, प्राकृतिक शक्तियों पर अपना आधिपत्य स्थापित करके अपनी इच्छानुसार कार्य करा सकती है । उसे सहज में यह विश्वास नहीं होता कि मानव शक्ति का आगार है, उसके अग-अग में शक्ति के खजाने भरे पड़े हैं । उसकी नस नस से शक्ति की ध्वनि आती है परन्तु खेद है कि भोग-विलास के इस भौतिक वासनामय जीवन में फँस कर वह अपने को क्षुद्र समझने लगता है । दुर्बलता के साधनों को अपनाना ही उसके जीवन का स्वभाव बन जाता है । चारों ओर उसे अपने शत्रु दिखाई देने लगते हैं । धन, वैभव आदि की सुरक्षा के लिए उसे भय सताने लगता है । सामाजिक बाधाएँ उसे रुलाती हैं और दिन-दिन कायर, बुजदिल और निर्बल बनाती चलती हैं । अर्जुन की भी यही स्थिति थी । उसके मन में भी निर्बलता ने स्थान बना लिया था । अब वह युद्ध से कतरा कर बहाने बनाने लगा था और नाना प्रकार के तर्क-वितर्क उपस्थित करने

लगा था । तभी भगवान ने शक्ति मन्त्र को फूँका और स्पष्ट कहा —

क्लेशं मा स्म गम पाथं नैतत्त्वय्युपपद्यते ।

क्षुद्र हृदयोदबल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

(गीता २।३)

‘हे अर्जुन ! कायर मत बन, यह तेरे लिए उचित नहीं है । हृदय की तुच्छ-सी निर्बलता को त्याग और युद्ध के लिए उठ खड़ा हो ।’

जीवन सघष का दूसरा नाम है । पग-पग पर हमें विभिन्न प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है । यदि हमने बाधाओं के समक्ष अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित कर दिए तो हमें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि सघर्ष करके जीवन को विरुसित करने के लिए तो हमें यह सौभाग्य मिला है । यदि इसका उचित उपयोग न किया तो दुर्भाग्य में परिवर्तित होने में देर न लगेगी क्योंकि कायर ही दुखी, दरिद्र और क्षुद्र होते हैं । वीर और साहसी, पुरुषार्थी का इन क्षुद्र वृत्तियों से क्या सम्बन्ध ? भक्त भगवान ने उपदेश दिया कि हे अर्जुन ! तुम्हें यह निर्बलता शोभा नहीं देती । शक्तिहीन का कहीं सम्मान नहीं होता । उठो ! अपने अस्त्रों को सम्भालो और हृदय को निर्बल करने वाली आसुरी शक्तियों का विनाश करो ।

गीता का यह शक्ति मन्त्र कायरों को भी वीर सेनानी बनाने की क्षमता रखता है क्योंकि वह शरीर से सम्बन्धित क्षुद्र वासनाओं तक ही सीमित नहीं रहने देता वरन् वस्तुस्थिति से परिचय कराता है । गीता का स्पष्ट उपदेश है कि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो । शरीर के स्वभावगत गुणों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि इसकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है, यह अनित्य और नाशवान् है ! इसलिए शरीर के नाश से शोक करना व्यर्थ है ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तोस्तितिक्षस्व भारत

(गीता २।१४)

अनश्नितोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥

(गीता २।१५)

भगवान् ने कहा कि जब तुम शरीर नहीं हो तो उसका शोक क्यों करते हो ? तुम तो आत्मा हो जो जन्म-मरण आदि व्याधियों से रहित है । यह तो नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिणः ।

(गीता १।१८)

वास्तव मे यह न तो मरता है, न मारा ही जाता है ।

उभौ तौ न विजानीतो नाय हन्ति न हन्यते ॥

यह तो सर्वथा अवध्य है—

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।

(गीता २।३०)

इसे शस्त्र मार नहीं सकते अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो अथवा गला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

(गीता २।२३)

अतः यह अटल सत्य है कि न मरने वाला, न जलने वाला, न भोगने वाला और न सुखने वाला यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और चिरन्तन है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्य सर्वगत. स्थणुरचलोऽय सनातन ॥

(गीता २।२४)

जो इस आत्म ज्ञान की व्यवहारिक रूप देकर शारीरिक सुख और दुःख को समान समझ कर उसकी व्यथा से प्रभावित नहीं होता । वही अमृतत्व का अधिकारी होता है—

य हि न व्यथयन्त्येते पुरुष पुरुषर्षभ ।

समुद. खसुख धीर सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

(गीता २।१५)

जिस व्यक्ति का आत्म तत्त्व से परिचय हो जाना है, वह एटम बम्बो के भोषण प्रहारों से भी भयभीत नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि नाश तो शरीर का स्वभाव है, वही जन्म लेता है, उसी की मृत्यु होती है (गीता २।२७), आत्मा न जन्म लेता है और न उसकी मृत्यु होती है । वह तो पुराने वस्त्रों के बदलने की भाँति पुराने जीर्ण शरीर को छोड़ कर नए धारण करता रहता है ।

वासासि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि ग्रहणाति नरोऽप-राणि ।

तथा शरीरं विहाय जीर्णान्यन्यानि

सयाति नवा निदेही । (गीता २।२२)

अतः शरीर के विनाश से भय क्यों ? वह तो नए जीवन का सन्देश है ।

गीता का यह शक्ति-मन्त्र पहिले से अधिक शक्तिशाली है । यह विश्वास दिलाता है कि हम इतनी महान शक्तियों के पुञ्ज हैं कि विश्व की भोषणतम शक्ति भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती । उनके प्रहार हमारे बाह्य जगत को ही प्रभावित कर सकते हैं, अन्तर्जगत में उनका प्रवेश सम्भव नहीं है । यह शक्ति मन्त्र हमें जगत की समस्त व्याधियों से सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है ।

शक्ति विकास के दो साधन-यज्ञ और योग

१-यज्ञ —

आत्म विकास के लिए भगवान ने दो प्रमुख साधनों का निर्देश किया है। वे हैं—यज्ञ और योग। यह दोनों शक्ति विकास के श्रेष्ठ साधन हैं। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परोपकार, नि स्वार्थ सेवा। यह भोगवाद का विरोधी है। यज्ञ यह जीवन भोगवाद का समर्थन नहीं करता क्योंकि भोगों से शक्ति का व्यय होता है। इस शक्ति व्यय को रोकने के लिए स्पष्टतम कर्म-यज्ञ का सङ्ग्राह लेना पड़ना है। वहाँ शत्रु-मित्र का कोई भेद भाव नहीं सब अपने ही अपने दिखाई देते हैं, यज्ञकर्ता चारों ओर अपने आत्मीयजनों के ही दर्शन करता है। तभी भगवान ने स्वयं यज्ञ रूप होने की घोषणा की —

अहं क्रतुरहं यज्ञं स्वधाहमहमौषधम् ।

मन्त्रोऽहममेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ (६।१६)

अर्थ—(भगवान कहते हैं) “श्रौत कर्म मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ औषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, आज्य (घृत) मैं हूँ अग्नि मैं हूँ और हवन रूपी क्रिया भी मैं ही हूँ।”

तभी यज्ञ को ब्रह्ममय व्यक्त किया गया है —

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ॥ (६।२४)

अर्थ—“अर्पण [श्रुवादि] भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूपकर्ता के द्वारा जो हवन किया गया है तथा ब्रह्मरूप कर्म में समाविष्ट हुए उस पुरुष के द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही है।”

जब चारो ओर ब्रह्म का ही विस्तार है तब अपने को शेष विश्व से अलग मान कर स्वार्थपरता की भावना में लिप्त रहना और वैसा कर्म करना क्षुद्रता और अज्ञानता का चिह्न है। इसे भगवान ने चोर की सजा दी है और अकेले खाने को पाप भक्षण रहा है—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविता
तैदत्तान् प्रदायैभ्यो यो भुजते स्तेन एव स (३।१२)

अर्थ—यज्ञभाविता, देवगण तुम लोगों को इष्ट भोग प्रदान करेगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष उनको अपेण किये बिना भोग करता है, वह निश्चय ही चोर है।”

यज्ञ शिष्टाशिन सन्तोमुच्यन्तेसर्वंकिल्बिषं ।

भुजते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ (३।१३)

अर्थ—“यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने ही शरीर-पोषण के लिए पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।”

यज्ञ की यह एक्य भावना मुक्ति के द्वार खोलती है क्योंकि जब तक द्वैत में स्थिति रहती है, तब तक बन्धन रहता है, अद्वैत में प्रवेश करने पर स्वतन्त्रता के दर्शन होने लगते हैं। तभी भगवान ने कहा है—

यज्ञार्थत्किर्मणोऽन्यत्र लोकोऽय कर्म बन्धन ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त सग समाचर ॥ (३।९)

अर्थ—“यज्ञ के निमित्त किये गये काम के सिवाय दूसरे काम को करने से यह मनुष्य कर्मबन्धन में बँधता है, इसलिए है अर्जुन ! मुक्त सग रह कर तदर्थं कर्म को ही भली भाँति आचरण कर ।”

यज्ञ को इस श्रेष्ठता के कारण भगवान ने इसे ग्रहण करने की प्रेरणा की है —

यज्ञ दान तप कर्म न त्याज्य कार्यं मेवतत् ।

यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ (१८।५)

अर्थ—“यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं । वरन् वह कर्म तो करने ही योग्य हैं, करना कर्त्तव्य ही है । यज्ञ दान और तप, यह तीनों तो मनीषियों को प्रवित्र करने वाले हैं ।”

वेद मे यज्ञ के लाभो पर विशिष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है ऋग्वेद मे कहा है —

“यज्ञ से ज्ञान बुद्धि और बल की वृद्धि होती है (१।१३।३) यज्ञ सुखो की वर्षा करने वाला है (१।१६।१।१)—यज्ञ से सब तरह का कल्याण होता है (५।४।७) जो यज्ञ करता है । वह धन ऐश्वर्य से, तेज से तथा यश और कीर्ति से मनुष्यो मे चमकता है और अन्त मे आत्मज्ञानी होकर अमर हो जाता है । (६।५।५५) हे वेद पाठ के देवता उठो देवताओ को यज्ञ का सन्देश सुनाओ । आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति बढ़ाओ । यज्ञकर्त्ता को हर प्रकार से बढ़ाओ । (१०।१६।४।२)” यजुर्वेद मे यज्ञ पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

‘यज्ञ से अशुद्ध तत्वो का नाश होता है (१।१३) यज्ञ से आरोग्यता प्राप्त होती है । (१।१४।४।१५) .. यज्ञ से दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है । (१।१५) यज्ञ से आन्तरिक शत्रुओ का नाश होता है । (१।१७) यज्ञ नेत्र रक्षक है । (२।१६) यज्ञ से असुरो का नाश होता है । (२।३०) यज्ञ सुखो का सचय करने वाला है । (३।४६, ४।६) यज्ञ निश्चय से कल्याणकारी है । वह दीप्त आयु उत्तम, अन्न, ऐश्वर्य समृद्धि, सुसतति व बल पराक्रम

प्रदान करता है । (३।६३) यज्ञ वीरना दायक और कायरता विनाशक है । (४।३७) यज्ञ ऋषियों के हृदय को पवित्र करने वाला है । (३।४) यज्ञ बन्धन का साधन है । (५।३०) मुक्ति का देवताओं मनुष्यों पितृजनो और अपने प्रति किए गए, जाने या अनजाने किए गए पापों से बचाने वाला है । (८।१३) “यज्ञ करने वाले के लिए वायु और नदियाँ मधुर रस बहाती हैं (१३।२७) “यज्ञ से आत्म वन की वृद्धि होती है । (१७।६५) “ मन, आत्मा, वाणी, प्राण, ज्ञान ज्योति, श्री, वेद आयु, नेत्र, यज्ञ से सम्पन्न होते हैं (१८।२८) “ यज्ञ से ब्रह्म वर्चस को प्राप्ति होती है । (१९।१९) “ यज्ञ से सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है । (२०।८५) “ यज्ञ से तीनों छन्दो (तीनों लोकों) जगती, बिष्णु और गायत्री से कल्याण होता है । (२।२५, ५।१३।१८)”

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में यज्ञ से अनन्त लाभों का प्रार्थना के रूप में इस प्रकार वर्णन है “मेरा अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, ध्यान, प्रजा, स्वर, प्रशंसा, कीर्ति, ज्ञान, सुख, प्राण, चित्त विचार, वाणी, मन, चक्षु, चातुर्य, बल-श्रोज, साहस स्वाभित्व, मानसकोप, क्रोध, चद्वेग, सौम्यभाव उशर भाव, दीर्घ जीवन, लोक, धनधान्य, बुद्धि, समृद्धि, सत्प, श्रद्धा, तेज व्यवहार हर्ष, सुन्दर वचन, श्रेष्ठ कर्म, दान, अमर स्वरूप, आरोग्य, स्वास्थ्य, शत्रु रहित्य, निर्भयता, सयम शक्ति, धारण शक्ति, धैर्य, प्रेरणा, कल्याण, कामनी, प्रसन्नता, भूत भविष्य, सुमार्ग और सुपथ समय और शक्ति उद्देश्य यज्ञ से सुसम्पन्न हों ।”

“यदि रोगी अपनी जीवनी-शक्ति को खो भी चुका हो निराशा जनक स्थिति को पहुँच गया हो, मरण काल भी समीप आ पहुँचा हो तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चणुल से बचा लेता है । और सौ वर्ष जीवति रहने के लिये पुन बलवान कर देता है (अथर्व वेद ३।११।२)

इसमे स्पष्ट है कि गीता मे निर्देशित यज्ञ किया शक्ति का महान स्रोत है, इससे भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों प्रकार की शक्तियों का विकास होता है ।

योग—

शक्ति-विकास का दूसरा साधन योग को बनाया गया है । तभी योगी बनने की प्रेरणा देते हुए भगवान ने कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चाधिकौ योगी तस्मद्यागी भवार्जुन ॥

अर्थात्—योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ हैं और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ हैं तथा सकाम कर्म (कमकारण पूजा-पाठ आदि) करने वालों से भी श्रेष्ठ हैं, इससे ही अर्जुन तू योगी बन ।

वास्तव मे भगवद्गीता को यदि योग का एक प्रमुख ग्रन्थ कहा जाय तो उसमे कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है । गीता मे 'योग' 'योगी' और 'योग युक्त' का शब्द जितना अधिक आया है, उतना किसी बड़े ग्रन्थ मे भी कदाचित् ही मिलेगा । गीता के प्रत्येक अध्याय का नाम किसी प्रकार के योग नाम पर ही है जैसे दूसरा अध्याय साख्य योग, तीसरा कर्म योग, चौथा ज्ञान-कर्म सन्यास योग, पाँचवा कर्म सन्यास योग, छठा आत्म-मय योग, सातवाँ ज्ञान-विज्ञान योग आदि । प्रत्येक अध्याय के अन्त मे 'इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्याया योगशास्त्रे' ये शब्द भी लिखे जाते हैं । इससे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि गीता का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को ऐमा योगयुक्त जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना ही है जिससे इहलौकिक जीवन मे सफल मनोरथ होकर पन्मात्मा का माम्निध्य प्राप्त कर सकें । यह सत्य है कि गीता मे सबसे अधिक प्रधानता 'निष्काम कर्मयोग' को दी गई है और योग की सबसे श्रेष्ठ व्याख्या 'योग-कर्मसुखीशलम्' बतलाई गई है, फिर भी उसमें

पतञ्जल योगदर्शन में वर्णित षष्ठाङ्ग-योग की विधि का भी सर्वथा अभाव नहीं है । गीता में प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है और छठे अध्याय में तो पतञ्जल योग-दर्शन में दी गई योग विधि का यथातथ्य वर्णन पाया जाता है ।

इस प्रकार के योग का फल भी महान कहा गया है । ऐसे योगाभ्यासी को ससार के दुःख, क्लेश, चढाव उतार, विघ्न-बाधायें किसी भी समय व्यथित या व्याकुल नहीं कर सकती । वह प्रत्येक अवस्था में पूर्ण शान्त, सन्तुष्ट और निश्चल रहता है । इसका वर्णन करते हुए कहा गया है —

यथा दीपो निवातस्यो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योग मात्मनः । १६।

यत्रोपरमते चित्ति निरुद्ध योग सेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति । २०।

त विद्याद् दुःखं सयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णं चेतसा । २३।

अर्थात्—जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक जलायमान नहीं होता, वैसी ही अवस्था परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की होती है । जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म वृद्धि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है तो वह योगी सच्चिदानन्द परमात्मा में ही सन्तुष्ट होता है । जो दुःख रूप ससार के सयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसी को जानना चाहिए । वह योग बिना उक्तवाये हुए अर्थात् तत्पर हुए चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है ।

गीता में जो योग प्रतिपादित किया गया है, वह अधिकांश

वेदान्तियों के सिद्धान्त की तरह शुद्ध अथवा वर्तमान समय के भक्तों की तरह अपने ही उद्धार की आकांक्षा रखने वाला नहीं है, वरन् उसका मुख्य आधार सर्वव्यापी प्रेम है जो अपने साथ सब जीवों के उद्धार की कामना करता है । यही भाव निम्न श्लोक मे स्पष्ट व्यक्त होता है —

आत्मौपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन ।

मुख वा यदि दुःख म योगो परमो मत ॥ (६-३२)

अर्थात्—जो दूसरों को आत्मवत् समझकर उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझता है, वही परम योगी है । यही बात गीता के इस श्लोक मे कही गई है —

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन ॥

—भगवद्गीता ६-२६

अर्थात्—“योगयुक्त पुरुष सब पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है । इस प्रकार उसे ससार की वास्तविक एकता का ज्ञान हो जाता है और वह समदर्शी बन जाता है ।”

समता का व्यवहारिक रूप और उसके आर्थिक लाभ का वर्णन करते हुए गीता ५-१८, १९ मे कहा गया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैवश्वपाके च पण्डितो समदर्शन ॥

इहं व तैजित सर्गो ये पा साम्ये स्थित मन ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

अर्थात्—“ज्ञानियों की दृष्टि मे विद्या विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल समान रहते हैं । जिन साधकों का मन साम्यावस्था मे स्थिरता को प्राप्त हो जाता है वे इसी जीवन मे मृत्यु लोक पर विजय प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है । अतः मृत्यु की प्रतीक्षा न करके वे यहीं ब्रह्मभूत हो जाते हैं ।”

यही बात गीता १८।५४ में कही गई है कि समस्त प्राणीमात्र में समझोकर वह मेरी परम भक्ति की प्राप्ति कर लेता है—

सम, सर्वेषु भूतेषु मदभक्तिं लभते पराम् ।

यह गीता का साम्ययोग है। यही योग का वास्तविक लाभ है। ससार में मनुष्य को जो कुछ भय, विरक्ति व दुःख का अनुभव होता है, उसका एक मात्र कारण भिन्नता अथवा परायापन का बोध ही होता है। दो भिन्न पदार्थों अथवा व्यक्तियों में ही प्रतियोगिता अथवा संघर्ष हो सकता है। पर जब प्रथकता की भावना को मिटाकर मनुष्य ससार में सर्वत्र एक ही सत्ता, एक ही तत्त्व का अनुभव करने लगेगा तो न तो वह किसी से भयभीत हो सकता है, न घृणा कर सकता है, न क्रोध कर सकता है। ऐसा व्यक्ति ही पूर्ण निभय, निद्वन्द्व हो सच्ची शान्ति और सुख का उपभोग कर सकता है।

अपने समस्त साधनों को भगवान के अर्पण करने पर गीता में विशेष बल दिया गया है। यथा—

यत्करोषि यदभनासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ (६।२७)

अर्थात्— हे कौन्तेय ! तू जो कुछ काम करता है, आहार ग्रहण करता है, यज्ञ करता है, दान अथवा तप करता है, वह सब मुझे ही समर्पित कर ।

फिर कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु ।

मामेवैष्ण्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणम् ॥ (६।३४)

अर्थात् “मुझमें मन लगा, मेरी भक्ति करो, मेरी उपासना करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह से मत्परायण होकर योगाभ्यास करने पर तुम्हें मेरी प्राप्ति होगी।”

यही बात २८वें श्लोक में कही गई है—

शुभाशुभफलैरेव मोक्षयसे कमवन्वने ।

सत्यामयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

अर्थात् “इस प्रकार कर्म करके कर्मों के शुभ शुभ परिणाम के बन्धन से तुझे मुक्ति मिलेगी । और इस कर्मफल के सत्याम से युक्तात्मा होकर तू मुक्त हो जायेगा और मुझमें एकात्मता प्राप्त कर लेगा । ”

इस योग की विवेचना एक विद्वान ने इस प्रकार की है—

“गीता के योग का मार्ग भगवान ने अठारहवें अध्याय के ६५वें श्लोक में कह दिया है कि ‘मेरे (भगवान के) मन में अपना मन मिला दो, मेरे भक्त हो जाओ, मेरा भजन करो, मुझे प्रणाम करो । मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम मुझसे ही प्राप्त होगे, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो ।’ यह तत्त्व गीता का हृदय है । जैसा हम समझ सकते हैं, यह वह योग है जो मानव प्रकृति के सब अङ्गों को एक मूल में ले आता है । इसके बिना योग क्या है ? ऐसा विकास किस काम का जिसमें सब अङ्गों का सामञ्जस्य न हो ? सभी अशुद्ध, पवित्र और दिव्य न बनें ? यदि कोई कहे कि यह बड़ा कठिन और दुर्गम मार्ग है तो उत्तर यही है कि इसके बिना और कोई रास्ता नहीं है यदि अधोगति से बाहर निकलना है, तो अन्त में इसी को अगोकार करना पड़ेगा । भगवान कृष्ण ने स्वयं कह दिया है कि ‘अनेक जन्मों के पश्चात् ज्ञानी पुरुष मेरे पास आता है । सभी या पीछे सभी को इसी दुर्गम मार्ग या ‘ध्रुवस्य वारा ’ (तल-वार की वार) पर चलना होगा । चलते हुए चाहे पावों से कितना ही रक्त निकले और हृदय का मांस दूटे पर इसमें संदेह नहीं कि भगवान मदा हमारे आदर्श में रहते हैं, एक क्षण के लिए भी अक्रान्त नहीं छोड़ते ।

योग की जितनी भी प्रणालियों का वर्णन गीता में किया गया है, उन सब का आशय एक ही है—शक्तिहीनता अर्थात् बन्धन का निवारण शक्ति-सम्पन्नता अर्थात् स्वतंत्रता—मोक्ष की ओर बढ़ना ।

माया-प्रकृति-शक्ति

गीता (४-६) में माया शब्द आया है जहाँ भगवान ने कहा है अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ। भगवान शङ्कराचार्य इस माया को शक्ति रूपिणी कहा है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति-

रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।

कार्यानुमेया सुधियेव माया

यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥

अर्थात् "परमेश्वर की अव्यक्तनाम्नी शक्ति जिसने इस सारे जगत को रचा है अनादि अविद्या, त्रिगुणात्मिका और ससार रूपी कार्य के परे है। कार्य रूपी विश्व को दृष्टि में रख कर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।"

गीता (६-१४) में भगवान के कहा है कि मेरी यह गुणात्मक और दिव्य माया बड़ी दुस्तर है।

दैवो ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

फिर कहा है—

नाहं प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

"अपनी योगमाया से निहित मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता।"

भगवान ने चेतावनी देते हुए कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमः ।

माययापहृतज्ञाना आसुर भावमाश्रिता ॥

(गीता ७-१५)

"माया ने जिनके ज्ञान को विनष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराधम आसुरो बुद्धि में पड़कर मेरी शरण में नहीं आते।"

अपनी शरण में आने का भगवान ने माया को पार करने का उपाय गीता में बताया है—

मायैव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते । (७-१४)

श्रुति ने कहा है कि त्रिगुणमयी माया मे स्थित यह मारा चर-
चर जगत ईश्वर से अधीन है ।

ईशावस्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

(ईशीपनिषद् १)

श्वेताश्विनोपनिषद् ४-१० मे प्रकृति को माया और माया
के अश्रिपति को परमेश्वर कहा है—

‘माया तु प्रकृतिं विद्यान्मायिन तु महेश्वरम् ।’

इस प्रकृति को गोना १३।१६ में अनादि कहा है और विकार
व गुणों को इसी से उपजा हुआ माना है । गीता (१४-३) मे सृष्टि की
व्यवस्था प्रकृति और पुरुष के संयोग मे ही मानी है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गभ दधाम्यहम् ।

समव सर्वभूताना ततो भवति भारत ॥

अर्थात् ‘है भारत । मेरी महद्ब्रह्म रूपी प्रकृति सम्पूर्ण भूतों
की योनि है और मैं उस योनि मे चेतन रूप बीज बी व्यापना करता
हूँ । उस जब चेतन के सहयोग से ही समस्त भूतों की सृष्टि होती है ।’

विद्यारण्य मुनि ने इसका कारण बताने हुए कहा है—

न केवल ब्रह्मैव जगत्कारण निर्विकारत्वात् । नापि
केवल शक्ति कारण स्वातन्त्र्याभावात् । तस्मादुभय मिलित्वैव
जगत्कारणं भवति ।

“निर्विकार होने के कारण केवल ब्रह्म जगत का कारण नहीं है ।
केवल शक्ति को भी कारण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमे भी
स्वतन्त्रता का अभाव है । इस लिए ब्रह्म और शक्ति दोनों के संयोग मे
ही विश्व की उत्पत्ति होती है ।”

गीता (३-२७) में प्रकृति के गुणों—तत्, रज और तम से ही
समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति मानी है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश ।

गीता (१३-२०) से काय और कारण (शरीर और इन्द्रियाँ) के कार्यों के लिए प्रकृति को ही कारण माना है—

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतु प्रकृतिरुच्यते ।

गीता (१४) में सत्, रज और तम को भी प्रकृति के ही कारण माना है—

सत्त्वं रजस्तम इति खुणा, प्रकृतिसम्भवा ।

यही निर्विकार आत्मा को शरीर स वावते हैं—

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् । (गीता १४-५)

इस पृथ्वी, आकाश अथवा देवलोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो प्रकृति के इन गुणों से मुक्त हो ।

न तदस्ति प्रथिव्या वा दिवि देवेषुवा पुन ।

सत्त्वं प्रकृयिर्जमुक्त यदेभि स्यात्त्रिभिर्गुणै ॥

(गीता १८-४०)

यह प्रकृति आठ प्रकार की है—गीता ६-४५ के अनुसार—

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।

अहकार इतोय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूता महाबाहो ययद धायते जगत् ।

पाँच सूक्ष्म भूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मन, बुद्धि, अहकार यह आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है । इसे अपरा प्रकृति कहते हैं जो निम्न श्रेणी की है । दूसरी प्रकृति है—परा जो उच्च श्रेणी की है जो जगत् को ही धारण करती है ।

भगवान् ने कहा है जो इस रहस्य को नहीं जानता, वह अह-से मोहित होकर अपने को ही कर्त्ता मानने लगता है वह अज्ञानी है—

अहकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ।

गीता १३ २६ में कहा है—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वश ।

य पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥

अर्थात् “जिसने यह समझ लिया कि सब कर्म सब तरह से प्रकृति से ही क्रियान्वित होने हैं और आत्मा अकर्ता है, समझना चाहिए कि अपने वास्तविक तत्त्व को जान लिया ।”

इसी प्रकृति को शक्ति के नाम से अभिहित किया गया है । गीता का यह सिद्धान्त शक्ति-सिद्धान्त से मिलता जुलता है । गीता में शक्ति-सिद्धान्त बड़े ही सशक्त रूप में वर्णित किया गया है । चौथे अध्याय के श्लोक ६ से ९ में जहाँ अवतारवाद का विवेचन किया गया है, यह सिद्धान्त और निखर कर आया है । गीता में शक्ति के ऊँचे से ऊँचे स्वरूप का वर्णन है । उसके स्तर को क्रमशः बढ़ाया गया है । शक्ति की स्वतन्त्र सत्ता भी बताई गई है । उसे ईश्वर के आधीन भी बताया गया है —

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।

भूतग्राममिमं कृतस्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ (गीता ९-८)

“मैं अपनी प्रकृति को अपने हाथ में लेकर भूतों के इस समग्र समुदाय को बार-बार उत्पन्न करता हूँ ।” गीता में शक्ति न और पुरुष की अभिन्नता का भी सिद्धान्त स्वीकार किया गया है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वं भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ (९-४)

“मैंने अपने अव्यक्त रूप से इस सारे विश्व को विस्तृत और व्यापक किया । सारे भूत मुझमें हैं ।”

यथाकाशस्थितो नित्यम् वायुः सवत्रगो महान् ।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

“सब ओर प्रकाशित होने वाली महान वायु जिस तरह सब ओर आकाश में रहती है, उसी तरह सब भूतों को मुझ में जान ।”

गीता के शक्तिवाद की यह महान विवेचना है जिसे तत्र और वेद मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं ।

दुर्गा सप्तशती और गीता में अनुकूलता

दुर्गा सप्तशती गीता की परवर्ती मानी जाती है। यूँ कहना चाहिए कि भगवद्गीता की आधारशिला पर ही सप्तशती की रचना हुई है। दोनों का अध्ययन विषयो में साम्य प्रदर्शित करता है।

गीता में ७०० श्लोक हैं। सप्तशती में ५३५ श्लोक १०८ अर्ध श्लोक और ५७ 'उवाच' है। उनका योग ७०० होता है।

गीता महाभारत का एक अंग है। महाभारत के रचियता महर्षि व्यास हैं। अतः गीता व्यास की ही रचना है। सप्तशती मार्कण्डेय पुराण का एक भाग है। पुराणों के रचियता भी व्यासजी ही माने जाते हैं। अतः सप्तशती के लेखक भी व्यास ही सिद्ध होते हैं।

गीता में ज्ञान के उद्देश्य स्वयं भगवान् कृष्ण हैं और श्रोता हैं अर्जुन। सप्तशती के उपदेशक हैं—मेधा ऋषि और श्रोता हैं—सुरथ—क्षत्रिय राजा और समाधि वैश्य। मेधा का अर्थ है—आत्म ज्ञान। शङ्कर-भाष्य गीता (१८।१०) में कहा है—

मेध्या आत्मज्ञान लक्षणया प्रज्ञया ।

सुरथ का अर्थ करते हुए कहा गया है—

सुष्ठु रम्यतेऽत्र इति सुरथः ।

यहाँ सत्य प्रवृत्ति-मार्ग के पथिक को सुरथ कहा है। दुर्गा १।४ में भी कहा है—

स्वारोचिवेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवसशमुद्भव ।

सुरथो नाम राजाभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥

अर्थात् “पहले स्वारोचिप मन्वन्तर से चैत्र के वंश में उत्पन्न होने वाला सुरथ नाम का राजा इस समस्त भूमण्डल पर हुआ था ।”

दुर्गा सप्तशती (शान्तनवी टीका) के अनुसार —

“रमन्तेऽस्मिन् इति रथ । शोभनो रथो यस्य स सुरथ ।”

अर्थात् “जिसमें देवता रमण किया करते हैं वह रथ है। अथवा शोभन त्रिमका रथ है वह सुरथ है।

समाधि का अभिप्राय निवृत्तिमाग के पथिक साधक से है।

समाधि,— समाधीयने सर्वमस्मिन् ।

अर्थात्—जिसमें सभी कुछ का समाधान किया है उसे समाधि कहा जाता है।

समाधोयतेऽस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वमिति समाधिः ।

अर्थात् ‘जिसमें पुरुष के उपभोग के लिए सब का समाधान किया जाता है। भली भाँति ग्रहण करने को समाधान कहा जाता है।’

अर्जुन ज्ञानी था परन्तु जब मिथ्या अज्ञान ने उसे घेरा तब उसे ज्ञानयोग के उपदेश की आवश्यकता हुई। अविवेक से ही अज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस महारोग की रामबाण औषधि विवेक ही हो सकती है। इसलिए भगवान ने अर्जुन को बुद्धि की शरण में जाने का

“बुद्धी शरणमन्विच्छ”

(गीता, २।४६)

मेधा श्रुति भी इसी तत्त्व के प्रतीक हैं। सुरथ और समाधि को जब जीवन-माग में बाधा और विपत्ति आती है और चारों ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है तो बुद्धि की शरण में जाने के अतिरिक्त और कोनसा माग हो सकता है? बाधाएँ आने पर चिंता मग्न रहना, अपने भाग्य और उसके निर्माता को कोसना, जिनसे प्रत्यक्ष रूप से कष्ट हो रहा है, उन पर आरोप प्रतिरोप लगाना ही कायरता और अज्ञानता के

चिह्न हैं। इसका उपाग ही नेचल बुद्धि के निर्देशन में चलना है। वही सप्तशती के दोनों पात्रों ने किया है।

अज्ञान को शास्त्रीय भाषा में असुर कहते हैं और ज्ञान को देव। मानव मन में दोनों विलग्न रहते हैं। उसकी प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्, रज और तम। जब रज और तम मिलकर सत् को दबा लेते हैं अर्थात् जब मनुष्य भोग ऐश्वर्यों में लिप्त होकर अपने सत् तत्त्व को निर्बल कर देता है, तो उसे असुरता का देयत्व पर बाधित होना कहते हैं।

आसुरी बुद्धि की परिभाषा करते हुए गीता (१७।५।६) में कहा गया है—

अशास्त्रविहित घोर तप्यन्ते ये तपो जना ।

दम्भाहंकारसंयुक्ता कामरागबलान्विता ॥

कषयन्त शरीरस्थ भूतग्राममचेतसः ।

मा चैवान्तः शरीरस्थ तान्विद्वयासुरनिश्चयान् ॥

अर्थात् जो व्यक्ति दम्भ और अहंकार के बलीभूत होकर काम और आसक्ति की पूर्ति में शास्त्र विरुद्ध कार्यों में लीन रहते हैं, और जो न केवल देह के पञ्चमहाभूतों को ही बल्कि उसमें निवास करने वाले शुभको भी कष्ट दिया करते हैं, उन भविये की जनो को आसुरी बुद्धि का मानो।”

प्रमुख असुरों का वर्णन सप्तशती में आता है। उन्हीं का वध देवी का उद्देश्य था। ये असुर हैं—मधु, कैटभ, महिषासुर शुम्भ, निशुम्भ, धूम्रलोचन, रक्तबीज, चण्ड मुण्ड, सुग्रीव।

मधुकैटभ का आध्यात्मिक अर्थ है—राग और द्वेष, महिषासुर तामस् अहंभाव है, शुम्भ का अर्थ है—अहंकार और निशुम्भ का अर्थ है ममकार, धूम्रलोचन लोभ है। रक्तबीज का अभिप्राय है—विषयाभिलाष। शुम्भ और निशुम्भ के भूतत्व है—चण्ड और मुण्ड अर्थात् काम और

क्रोध । नुग्रोव इनका काम करता है, वह परिग्रह का प्रतीक है । सप्तशती (५।११४) मे कहा है—

परमैश्वर्यमनुल प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।

एतद्वुद्धया समालोच्य मत्परिग्रहता व्रज ॥

अर्थात् 'मेरा परिग्रह प्राप्त करने से अर्थात् मेरी प्रपत्ति में प्राप्त हो जान पर अत्यधिक एवं अमीमित वैभव की प्राप्ति कर लेगा । इसको अपनी बुद्धि मे मलीभाति विचार करके मेरी परिग्रहता को ग्रहण करो ।'

गीता मे भी कहा है कि जो व्यक्ति काम, क्रोध, महङ्कार, बल, दर्प को आचार मानकर अपने और अन्य शरीरो मे निवास करने वाले मुक्त को द्वेष करते हैं और सन्मार्ग के पथिकों की निन्दा करते हैं । वे असुर हैं, अशान्त रहते हैं । शान्त अवस्था प्राप्त करने के लिए इस आसुरी सम्पत्ति का त्याग करना होगा । (१६।१८) काम-क्रोध और लोभ को नरक का द्वार कहा गया है जो हमारा नाश करते हैं । इसलिए इनके त्याग की प्रेरणा दी गई है—

त्रिविध नरकस्येद द्वार नाग्नमात्मन ।

काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयत्यजेत् ॥

(गीता १६।२१)

अनेक प्रकार की कल्पनाओ में अमृत, मोहक चणुन में फंसे और विषय वासनाओ मे आसक्त असुर अपवित्र नरको में जाते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृथा ।

प्रसक्ता, कामभोगषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

(गीता १६।१६)

भगवान कहते हैं कि अशुभ काम करने वाले इन द्वेषी और क्रूर अशुभ व्यक्तियों को सदैव पाप योनियो मे पटका जाता है—

तानह द्विषत क्रूरान्ससारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीध्वेवरयीनिषु ॥

(गीता १६।१६)

गीता (३।३६) में भी काम और क्रोध को मानव का शत्रु कहा है । ३।३८ में काम को कभी भी तृप्त न होने वाली अग्नि कहा है । इस पर ज्ञानको ढकने का आरोप लगाया गया है । (३।४०।४३) में इस काम रूपी शत्रु को मार डालने की प्रेरणा दी गई है । सप्तशती में भी देवता देवी से यही प्रार्थना करते हैं ।

असुर विनाश का उद्देश्य सप्तशती और गीता दोनों में है । गीता में इसके माध्यम अर्जुन बनते हैं परन्तु प्रोत्साहन मिलता है भगवान् कृष्ण से । अर्जुन तो केवल औजार मात्र बनते हैं । दोनों के सम्मिलित प्रयत्न का उद्देश्य है समाज में व्यापक रूप से फैले हुए आसुरी भाव को दूर करना । सप्तशती में भी भगवती का यही उद्देश्य है परन्तु इस कार्य की वह स्वयं करती हैं और रण में असुरों को ललकार कर एक-एक करके उनका वध करती हैं ।

दोनों ग्रन्थों की उपासना पद्धति में कुछ अन्तर प्रतीत होता है । जहाँ सप्तशती में सकाम उपासना पर बल दिया गया है और कहा गया है “रूप देहि, जय देहि, यशो देहि, द्विषो देहि” वहीं गीता में निष्काम कमयोग की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि काम करते जाओ परन्तु फल की इच्छा मत करो ।

गीता में भगवान् ने अपने अवतार का उद्देश्य बताते हुए कहा है —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधमस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनोशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात् 'हे भारत ! अब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म प्रबल हो जाता है तब मैं स्वयं अवतार लिया करता हूँ । साधुओं के संरक्षण और दुष्टों के विनाश के लिए, युग युग में धर्म की स्थापना के लिए मैं जन्म लिया करता हूँ ।

सप्तशती के अनुसार जब देवता भोगों में लिप्त होते हैं तो उनकी शक्ति क्षीण होती है नभों उनके अधिकार छीन लिए जाते हैं, परन्तु जब वे भगवान का स्मरण करते हैं और भगवती के दर्शन करते हैं तो उनका संरक्षण होता है और असुरों का नाश होता है । दोनों का मूल उद्देश्य एक ही है ।

सप्तशती में जब देवता असुरों से पराजित होते हैं तो वह भगवती की शरण में जाते हैं और शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, घूँघ्रलोचन, चण्ड मुण्ड और सुग्रीव सात असुरों के विनाश की प्रार्थना करते हैं । सप्तशती के असुर अलङ्कारिक रूप से वर्णित किए गये हैं परन्तु गीता का स्पष्ट प्रतिपादन है—वे हैं अहंकार, ममत्व, काम, क्रोध, बल, दर्प और परिग्रह । गीता के अनुसार जो व्यक्ति इन्हें आश्रय देत है वह भगवान से द्वेष करते हैं और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं । इसके विपरीत जो इन आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करते हैं, वह परमात्मा को प्राप्त होते हैं ।

सप्तशती में देवताओं ने "या देवी सर्वभूतेषु" आदि स्तुति की है । इसमें भगवती के अग्र्य व अविनाशी रूप का वर्णन है । इस स्तुति में सात्त्विक ज्ञान की झलक मिलती है । गीता में सात्त्विक ज्ञान का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

सर्वभूतेषु येनेक भावमव्ययमोक्षते ।

अविभक्त विभक्तेषु तज्ज्ञान विद्धि सात्त्विकम् ॥

(गीता १८।२०)

अर्थात् "जिस ज्ञान से यह प्रतीत हो कि भिन्न-भिन्न प्राणियों

में एक ही अविभक्त भाव और अव्यय भाव है, वह मात्त्विक ज्ञान है ।”

सप्तशती में देवता भगवती की इस प्रकार स्तुति करते हैं—

देव्या यया तत्तुमिद जगदात्मशक्त्या.

अर्थात् जिस जगज्जननी देवी ने यह सम्पूर्ण जगत् अपनी शक्ति के द्वारा विस्तार वाला निर्मित किया है ।

यस्या प्रभावमतुल भगवाननन्तो

ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमल बल च ।

अर्थात् जिस महामाया के इस असोम प्रभाव को साक्षात् अनन्त भगवान्-ब्रह्मा और शिव भी बनलाने की क्षमता नहीं रखते हैं और देवी के बल विक्रम को भी जो कि अनुज है वे नहीं कह सकते हैं ।

‘हेतु समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषेर्न जायसे’

“सत्त्व -रज-तम इन तीन गुणों वाली आप हैं और समस्त लोको के सृजन का कारण भी हैं किन्तु दोषों से आपका स्वरूप जाना नहीं जाता है

‘स्वर्ग प्रकाति च ततो भवतोप्रसादा-

ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ।

“फिर हे देवि ! आपके प्रसाद से स्वर्ग की प्राप्ति किया करता हैं । इससे आप तीनों लोको में फल प्रदान करने वाली हैं-इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

इसका अभिप्राय यह है कि जब देवताओं में दोष उत्पन्न हो जाते हैं तब वह भगवती को भूल जाते हैं । उनकी निवृत्ति होने पर ही उसका स्मरण होता है ।

इन भावों को गीता में हम प्रकार व्यक्त किया गया है—

इच्छाद्वेषमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।

सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ (७।२७)

अर्थात् "हे भारत ! इच्छा और द्वेष से उपजने वाले द्वन्दो के मोह से इस सृष्टि में समस्त प्राणी भ्रम में फस जाते हैं ।"

सप्तशती के ११वें अध्याय के आठवें श्लोक से २३ वें श्लोक तक नारायणी स्तुति है । यहाँ देवी के विभिन्न रूपों का वर्णन है । उसे विश्व का उपसंहार करने वाली (६), कल्याण दायिनी शरणागतवत्सला (१०), सृष्टि, पालन और संहार की शक्तिभूता (११) बताया गया है । ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कोमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, शिवदूती, मुण्डमर्दिनी चामुण्डा, सभी रूप उसी देवी के हैं और सहस्र नेत्रों वाली (१३-२१), लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, (२२) मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, ऐश्वर्यरूपा सयम परायणा, और सबकी अधीश्वरी वही है (२३) वह सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी और सब प्रकारकी शक्तियों से सम्पन्न है (२४), जो साधक भगवती के इस तत्त्व ज्ञान को जानता है, वही उसे पाने का अधिकारी है ।

गीता ७।१६ में भी यही भाव है--

बहूना जन्मनाम ते ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।

वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥

अर्थात् 'अनेक जन्मों के बाद जब यह ज्ञान हो जाए कि जो कुछ है वह सब वासुदेव ही है', ज्ञानवान् मुझे पा लेता है, ऐसा महात्मा दुर्लभ है ।"

दोनों के भावों में अनुकूलता है ।

सप्तशती के मध्यम चरित्र के अनुसार जब महिषासुर ने देवताओं को पराजित किया और इन्द्रामन का अधिकारी हो गया तो देवता ब्रह्मा को लेकर विष्णु और शिव के पास गए । हरि-हर को देवताओं पर दया आई । उनके मुख से तेज निकला । अन्य देवताओं ने भी अपने तेज को इसमें सम्मिलित कर दिया और वह तेज-पुञ्ज देवी के रूप में

परिणित हुआ । इस देवी ने महिषासुर का वध किया और देवी की इच्छा पूर्ण हुई । हरि-हर की शरण में जाने से निश्चित रूप से यही परिणाम होता है ।

गीता ८।१४ में भी यही भाव व्यक्त किया गया है—

अनन्यचेता सततं यो मा स्मरति नित्यश ।

तस्याह सुलभ पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन ॥

अर्थात् 'हे पार्थ ! अनन्य भाव से जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस नित्य युक्त योगी को मेरी प्राप्ति सुविधापूर्वक होती है ।

देवी के मध्यम चरित्र के अनुसार जब निशुम्भ मारा गया तब शुम्भ ने दुर्गा से कहा कि तू तो व्यर्थ ही विजय का घमण्ड कर रही है, तू तो दूसरी स्त्रियो के बल पर युद्ध कर रही है (१०.३) । इस पर देवी ने उत्तर दिया—

एकैवाह जगत्पत्र द्वितीया का समापरा !

पश्येता दुष्ट मय्येव विशन्त्योर्माद्विभूतय (१०।५)

'मैं अकेली ही हूँ । इस जगत मेरे अतिरिक्त और कौन है ? देखो यह मेरी ही विभूतिया मुझ में ही विलुप्त हो रही हैं ।'

तत समस्तातता देव्यो ब्रह्माणोप्रमुखा लयम् ।

तस्या देव्यास्तनौ जगमुरेकैवासीत्तदाम्बिका (१०।६)

इसके बाद ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवी के शरीर में प्रविष्ट हो गईं । उस समय केवल अम्बिका देवी ही शेष रह गई ।'

फिर देवी ने कहा—

अह विभूत्या बहुभिरिहि रूपैर्यदास्थिता ।

तत्सहृत मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव । (१०।८)

'मैं अपनी विभूति से विभिन्न रूपों में यहाँ प्रस्तुत हुई थी, उन्हें

मैंने ममेट लिया । अब अकेली ही युद्ध मे स्थित हूँ । तुम भी स्थित हो जाओ ।”

उपरोक्त श्लोकों मे देवी ने अद्वैत भावना को व्यक्त किया है ।

नान्तोऽस्ति मम दिव्याना विभूतीना परन्तप । (१०।४०)

‘मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है ।’

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जियमेव वा
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसम्भवम् (१०।४१)

वह सभी वस्तुएँ मेरे ही तेज से उज्जयी हुई समझो जो वैभव, लक्ष्मी या प्रभाव से युक्त हैं ।”

भगवान ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है कि मे रूद्रों में शक्र यज्ञ और राक्षसों मे कुबेर वसुओं मे पावक, पर्वतों मे मेह (१०।२३) पुरोहितों मे वृहस्पति, सेनापतियों मे स्कन्द जलाशयों मे समुद्र (२४), महर्षियों मे भृगु, वाणीमे ऊँकार यज्ञोंमें जपयज्ञ स्थावर पदार्थों मे हिमालय, (२५), वृक्षों मे पीपल, देवर्षियों मे नारद, मिथ्यों मे कपिल, (२६) घोड़ों में उच्चैः श्रवा, गजेन्द्रों मे एरावत, मनुष्यों मे राजा (२७) आयुओं मे वज्र, गीतों में कामधेनु, सर्पों मे वामुकि (२८), नागों मे अनन्त, जन्तुओं मे प्राणियों मे वरुण, पितृगो मे अर्यमा और नियमन करने वालों मे यम हैं (२४), देवों में प्रह्लाद प्रसन्न वालों मे काल पशुओं मे विश्व, पक्षियों मे गरुड, वेग वालों मे वायु, शस्त्र धारियों मे राम, मछलियों मे मगर, नदियों मे भागीरथी (३१) विद्याओं मे आत्म विद्या, (३२) वैदिक स्तोत्रों मे बृहत्साम, छन्दों, मे गायत्री, मातों मे मार्गशीप, ऋतुओं मे वसन्त (३५) यादवों में वसुदेव, पाण्डवों मे धनञ्जय, मुनियों मे व्यास और कवियों मे शुक्राचार्य (३६) में हूँ । अन्त मे भगवान कहते हैं कि सब भूतों का जो

कुछ बीज है, मैं हूँ, ऐसा कोई चर अचर भूत नहीं जो मुझे छोड़ दे (३८) ।

भगवान ने सभी भूतो और प्राणियों के साथ अपना एकत्व प्रदर्शित किया है ।

सप्तशती और गीता के ढग अलग-अलग हैं, अद्वैत भावना को व्यवस्त करने का भावना दोनों की एक ही है ।

सप्तशती के तीनों चरित्रों में ब्रह्म विद्या का चित्रण किया गया है । प्रथम अध्याय के श्लोक ५४-५८ तक महामाया भगवती (ब्रह्म विद्या) का विवेचन है । सूत संहिता में भी पार्वती को परम विद्या और ब्रह्म विद्या प्रदान करने वाली कहा है ।

“पार्वती परमा विद्या ब्रह्म विद्या प्रदायिनी ’

गीता का भी विषय ब्रह्म विद्या है, इसके तो प्रत्येक अध्याय के अन्त में ‘ब्रह्म विद्याया योग शास्त्रे’ लिखा है, इससे दोनों का प्रतिपाद्य विषय एक ही प्रतीत होता है ।

सप्तशती के प्रथम चरित्र की कथा के अनुसार जब मधु और कैटभ नामक दैत्यो ने ब्रह्मा को असने का प्रयत्न किया तो ब्रह्मा ने परमा-शक्ति से रक्षा की प्रार्थना की इसका । अभिप्राय है कि ब्रह्मा को परमा शक्ति का ज्ञान था जो गुणत्रय से परे परम भाव की प्रतीक है ।

इस भाव का, प्रतिपादन गीता १४।१४ में इस प्रकार है—

नान्य गुरोम्य कर्तारि यदा द्रष्टानुपश्यति ।

गुरोर्यश्च पर वेत्ति मदभाव सोऽधिगच्छति ॥

‘द्रष्टा जब यह समझ जाता है कि (‘प्रकृति’) गुणों के सिवाय और कोई कर्ता नहीं है और जब तीनों गुणों से परे तत्त्व को भली प्रकार जान लेता है, तो वह मुझमें मिल जाता है ।

यही बान गीता ३।२७ में कही गई है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

“प्रकृति के सत्व-रज-तम गुणों से ही सब काम होते हैं, पर अहंकार से मोहित अज्ञानी अपने को कर्ता समझता है ।”

ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता है परन्तु उनमें अहंकार नहीं था, इसी तरह जो साधक प्रकृति का कर्ता मान कर अपने को निरहङ्कार स्थिति में रखते हैं, उन्हें ही परम ज्ञान हो पाता है ।

इस तरह से दुर्गा सप्तशती और गीता के विचारों में अनुकूलता सिद्ध होती है ।



दुर्गा उपासना का बौद्धिक अध्ययन

परिभाषा

दुर्गा-दुर्गतिनाशिनी हैं। दुर्गोपा हाने के कारण दुर्गा प्रकृति की दुर्गा कहा जाता है। दुर्गा में 'दु' अक्षर, दारिद्र्य, दुःख, दुःमिक्ष, दुर्व्यसन आदि दैत्य के नाश का प्रतीक है 'रेफ' रोगघ्न है, गणा पापघ्न और अगर् अन्धाय अत्याचार अधर्म, अनेकता, आलस्यदि असुरो प्रकृतियों के नाश वाचक है।

प्राचीनता

भारत में प्राचीन काल से दुर्गा की उपासना इसी उद्देश्य के लिए चली आ रही है। महाभारत के समय भगवान् कृष्ण ने विजय श्री प्राप्त करने के लिए दुर्गा की पूजा करने की प्रेरणा की थी। महाभारतलीन कि गोपो ने अम्बिका की पूजा की थी। भगवान् के अनुसार गोपियो ने 'कात्यायनी' देवी की आराधन की थी। यादवो ने दुर्गा की साधना को अपनाया था—'दुर्गा कररणपलव्वये' (भगवान्)। रुक्मिणी जी ने अम्बिका की उपासना की थी।

तमस्ये त्वन्विकेऽभीक्ष्ण स्वसन्तमयुता शिताम्'

अवतार का उद्देश्य

दुर्गा सद्यः शक्ति की प्रतीक हैं क्योंकि उनका आविर्भाव ही देवताओं की सगठन शक्ति से हुआ है। यमिण्ड के पुराण में इसका रोचक वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है —

“कोष मे युक्त विष्णु भगवान् शिवजी एव ब्रह्मा जी के मुखों मे एक विस्तृत तेज प्रकट हुआ । इसी प्रकार इन्द्र और हमारे देवताओं के मुखों मे भी तेज निकला अन्यत्र निकला हुआ समस्त तेज मिल कर एक ही गया इसके पश्चात् मिल कर एक हुए उस अत्यन्त तेज पुञ्ज को जिसकी ज्वालाएं सम्पूर्ण दिशाओं मे फैल गई पर्वत के तुल्य जलते हुए देवा । फिर वह एकत्रित त्रिभुवन का अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज-पुञ्ज स्त्री रूप मे परिवर्तित होने लगा । शिव जी के मुख से प्रकट हुए तेज मे उसका मुख, राम के तेज मे केश तथा विष्णु, के तेज मे उसकी दो भुजाएं बन गई । चन्द्र के तेज मे दोनों मन इन्द्र के तेज मे मध्य प्रदश, वरुण के तेज मे जघा, और अरु पृथ्वी के तेज मे निनम्ब, ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरगो की अगुनिया वसुगणों के तेज से हाथों की अगुनियाँ, कुबेर के तेज मे तामिका, प्रजापति के तेज से दन्तावलि, अग्नि के तेज मे त्रिनेत्र, दोनों मन्वाओं के तेज मे भृकुटि पवन के तेज मे दो कान बन गये एवं अन्य हमारे देवताओं विश्वकपी आदि के तेज मे भी उनके अंग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युष्टाम्ब प्रदान किये । उसके पश्चात् शिव जी ने अपने शूल मे शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया विष्णु भगवान् ने अपने चक्र मे चक्र उत्पन्न करके दिया, वरुण ने उन्हें शख, हुनाशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये ।

सहस्राक्ष अमरेश्वर इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी का घण्टा खोलकर दिया । यमराज ने काल-दण्ड मे एक दण्ड उत्पन्न करने उन्हें प्रदान किया । वरुण ने पाश, वज्र, प्रजापति ने अज्ञमाना एवं ब्रह्मा जी ने उन्हें कमण्डल, प्रदान किया, दिनकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणों प्रदान की । काल ने उन्हें म्रच्छ डाल तन्त्रार और डाल दी ।

क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोनियो का हार, दो स्वस्थ वस्त्र सुन्दर चूडामाणी, दिव्य कुण्डल और कगन प्रदान किये । अर्द्धचन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनो बाहुओं में बाजूबन्द, कन्ठ के लिए सुन्दर आभूषण एवं समस्त अगुलियों में अनुपम अगूठियाँ दी । विश्वकर्मा जी ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हें प्रदान किया । समुद्र ने खिले हुए कमल पुष्पो की शोभायमान मालाएँ कण्ठ एवं सिर पर धारण करने के लिए दी । हिमालय ने देवी को सवारी के लिए मिह और विभिन्न रत्न प्रदान किये । पृथ्वी के आवार अनन्त नागेश ने देवी जी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया । अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हें विभिन्न प्रकार के अस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये ।

दुर्गा प्रेरित करती हैं कि जब भी आसुरी तत्व सर उठाए और उनके विनाश की आवश्यकता पड़े तो इसका केवल मात्र उपाय यही है कि देव तत्व आपस में सगठित हो जाएँ । इस एकत्रित शक्ति पुञ्ज से ही उन्हें परास्त करना संभाव होगा । यह शक्ति ही विश्व कल्याण का हेतु ही सकती है ।

दुर्गा के अवतारण का उद्देश्य समाज की शव्यवस्थित करने वाली आसुरी शक्तियों का दमन है । भगवान् कृष्ण ने गीता में प्रतिज्ञा की है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, तब तब वे धर्म को विनाश से बचाने और उसकी सस्थापना के लिए मनुष्य रूप में अवतार धारण करते हैं । दुर्गा भी मार्कण्डेय में पुराण में ऐसी ही प्रतिज्ञा करती है । दुर्गा चरित्र से विदित होता है कि उन्हीं ने अपनी प्रतिज्ञा की निभाया है और अनचार, अन्याय, अत्याचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों का विनाश किया है ।

विभिन्न नाम

दुर्गा सप्तशती में दुर्गा के १०८ नामों का इस प्रकार वर्णन आता है ।

१ ऊँ सनी, २, साध्वी, ३, भवगीता, ४, भवानी, ५, भव-
मोचनी, ६, आर्या, ७, दुर्गा, ८, जया, ९, आद्या, १०, त्रिनेत्रा, ११,
शूलधारिणी, १२, पिनाक धारिणी, १३, विद्या, १४ चण्डघण्टा
१५ महातमा, १६ मन १७ बुद्धि, १८ अहकारा, १९ चित्तरूपा,
२० चिता, २१ चित्ति, २२ सर्व मन्त्रमयी, २३ सता २४ सत्यानन्द
स्वरूपिणी, २५ अनन्ता, २६ भाविनी, २७ भाव्या, २८ भव्या,
२९ अभव्या, ३० सदागति, ३१ आम्भवी, ३२ देवमाता ३३
चिन्ता, ३४ रत्नप्रिया, ३५ सर्व विद्या, ३६- दक्षकन्या ३७ दक्षयज
विनाशिनी, ३८, अपर्णा, ३९, अनेकवर्णा, ४० पाटला ४१ पाटलावती
४२, पट्टाम्बरपरीधाना, ४३ कनकजीररञ्जिनी ४४ अमेयविक्रमा,
४५ क्रूरा, ४६ सुन्दरी, ४७ सुरसुन्दरी ४८- मातङ्गी, ५० मतेङ्ग-
मुनिपूजिता, ५१ ब्राह्मी, ५२ माहेश्वरी, ५३ ऐन्द्री, ५४ कोमारी,
५५ वैष्णवी, ५६ जामुण्डा ५७ वाराही, ५८ लक्ष्मी, ५९ पुरुषा-
कृति, ६० विमला, ६१ उत्कर्षणी, ६२ ज्ञाना, ६३ क्रिया, ६४
नित्या, ६५ बुद्धिदा, ६६ बहुला, ६७ बहुला प्रेमा, ६८ सर्व वाहन
वाहना, ६९ निशुम्भशुम्भहननी, ७० महिषासुरमर्दिनी ७१, मधुकैटभ-
हन्त्री, ७२ चण्डमुण्ड विनाशिनी, ७३ सर्वामुर विनाशा, ७४
सर्वदानवघातिनी, ७५ सर्वशास्त्रमयी, ७६, सत्पा, ७७ सर्वास्त्र-
धारिणी ७८ अनेकशस्त्रहस्ता, ७९ अनेकास्त्रधारिणी, ८० कुमारी
८१ एक कन्या, ८२ केशी, ८३, युवती, ८४ यति ८५, अप्रौढा
८६, प्रौढा, ८७ वृद्धमाता, ८८, बलप्रदा, ८९ महोदरी ९० मुक्तकेशी,
९१ घोररूपा, ९२ महाबला, ९३ अग्निज्वाला, ९४ रौद्रमुखी,
९५ कालरात्रि ९६ तपस्विनी, ९७ नारायणी, ९८- भद्रकाली
९९ विष्णुमाया, १०० जलोदरी, १०१ शिवदूती, १०२ कराली
१०३ अनन्ता, १०४ परमेश्वरी १०५, कात्यायनी १०६ सावित्री,
१०७ प्रत्यक्षा, १०८ ब्रह्मवादिनी ।

दुर्गा के ३२ नामों का जोर भी मगन था है, ता उस प्रकार है—

१ दुर्गा दुर्गाविजयती, ३ दुर्गाविदि (विद्यायमा), ४ दुर्गा विजयी, ५ दुर्गाविजयी, ६ दुर्गाविजयी, ७ दुर्गाविजयी, ८ दुर्गाविजयी, ९ दुर्गाविजयी, १०, दुर्गाविजयी, ११, दुर्गाविजयी, १२, दुर्गाविजयी, १३, दुर्गाविजयी, १४, दुर्गाविजयी, १५, दुर्गाविजयी, १६, दुर्गाविजयी, १७, दुर्गाविजयी, १८, दुर्गाविजयी, १९, दुर्गाविजयी, २०, दुर्गाविजयी, २१, दुर्गाविजयी, २२, दुर्गाविजयी, २३, दुर्गाविजयी, २४, दुर्गाविजयी, २५, दुर्गाविजयी, २६, दुर्गाविजयी, २७, दुर्गाविजयी, २८, दुर्गाविजयी, २९, दुर्गाविजयी, ३०, दुर्गाविजयी, ३१, दुर्गाविजयी, ३२, दुर्गाविजयी ।

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा के कुछ नाम इस प्रकार पाये हैं,—

पायली जो के देवीको से उत्पन्न होने के कारण यह 'विद्या-कोशिका' नाम से प्रसिद्ध हुई । देवी ने विद्याको का दीर्घवर्ष में स्वयं नियुक्त किया, इस लिए उन्हें 'विद्यावती' कहा गया । गारागणि, माहे-द्वारी और कोमारी नाम भी पाये हैं । ये ता, सरस्वती, शक्ति, धात्री, सागरिणी आदि नाम से भी उन्हें सम्बोधित किया गया है । कल्याणन नाम से प्रसिद्ध है ही भद्रकाली और धर्मिणी के रूप में उनसे भक्त से रक्षा की प्रार्थना की गई है । देवी ने स्वयं कहा है कि राम देवों को भक्षण करते हुए मेरी दन्त-मुखावली कृष्ण के समान लाल रंग की हो जायेगी ता सर्व 'रक्त-दातका' प्रसिद्ध होगी । 'क्षताधी' नाम का भी स्वयं स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जब सी धर्म तक समाप्त होने के कारण सृष्टि पड़ने लगेगी और मैं बिना मनुष्य मोक्ष के जन्म लूँगी तो उस समय मेरे ही रूप होये जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिमण्ड मुझे 'क्षताधी' कह कर कीर्तन करेंगे ।

कुछ और नामों के सम्बन्ध में देवी कहती है:—

घरने शरीर में प्राण को धारण करके 'शाको' को उत्पन्न करके लोको का पालन वहूगी । इसलिए 'शाकम्भरी' कहलाऊँगी । दुर्गम क्षेत्र का वध करने के कारण 'दुर्गा' नाम होगा । भीमरूप ग्रहण करके हिमालय के राक्षसों का वध वहूँगी । इसलिए 'भीमा' कहलाऊँगी । अन्धशानु को मारने के लिए भ्रमर रूप धारण कहूँगी । इसलिए 'भ्रामरी' नाम होगा ।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस स्तुति में उमा, काली, कमाली, कपिला, कोशिकी, चण्डी कात्यायनी, सद्रकाली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये हैं । कालीदास ने पार्वती का तीन नामों—भवानी, गौरी और चण्डी में सम्मिश्रित किया है । महाभारत में विन्ध्यवामिनी का नाम आया है । कुमार सम्भव में वे नम्र्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती हैं । अषर्गा, उमा और पार्वती विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं । याज्ञवल्क्य ने अम्बिका का विनायक की माना स्वीकार किया है । भवानी नाम कुमार सम्भव में आया है जहाँ पर शङ्कर के साथ सम्मिश्रित है ।

दुर्गा नामकरण का उद्देश्य नायुक्तों की रक्षा और पापियों का नाश करना है । अन्न, देवी के युद्धकालीन रूप का नाम दुर्गा है । वही मूल-शक्ति है, जो विभिन्न रूप धारण करती है । युद्ध के समय वह दुर्गा बनती है, क्रोध में वह काशी रूप धारण करती है, ग्रहस्थ में वह भवानी है और पुरुष में विष्णु उमा का रूप है । तैत्तिरीय आरण्यक में नरम्बरी से सम्मिश्रित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्ध्या, वरदा आदि नाम आये हैं । मुण्डकोपनिषद् में नात जिह्वाओं वाली अग्नि का नामकरण काली-काली के रूप में किया गया है । यह नाम दुर्गा के धरित्रगत लक्षण है ।

महिमा

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है —

दुर्गा के ३२ नामों का और भी वर्णन आता है, जो इस प्रकार है—

१ दुर्गा दुर्गतिशमनी, ३ दुर्गापट्टि निवारिणी, ४ दुर्गमच्छेदिनी, ५ दुर्गसाधिनी, ६ दुर्गनाशिनी, ७ दुर्गतोद्धारिणी, ८ दुर्गनिहन्त्री, ९. दुर्गमापहा, १०, दुर्गमज्ञानदा, ११, दुर्गदैत्यलोकदवानना, १२ दुर्गमा, १३. दुर्गमालोका, १४ दुर्गम त्मस्वरूपिणी, १५ दुर्गमार्ग-प्रदा, १६ दुर्गमविद्या, १७ दुर्गमाश्रिता, १८ दुर्गम ज्ञान सस्थाना, १९ दुर्गमज्ञानभासिनी २० दुर्गमोहा, २१ दुर्गमगा, २२ दुर्गमा-थस्वरूपिणी, २३ दुर्गमासुराहन्त्री, २४ दुर्गमायुधधारिणी, २५ दुर्गमाङ्गी, २६ दुर्गमता, २७ दुर्गम्पा, २८ दुर्गमेश्वरी, २९ दुर्गभीमा, ३० दुर्गभामा, ३१ दुर्गभ, ३२, दुर्गद्वारिणी ।

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा के कुछ नाम इस प्रकार आये हैं,—

पावती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा-कोशिको' नाम से प्रसिद्ध हुई । देवी ने शिवजी का दौत्यकर्म में स्वयं नियुक्त किया, इस लिए उन्हें 'शिवदूती' कहा गया । नारायणि, माहे-श्वरी और कौमारी नाम भी आये हैं । मेवा, सरस्वती, भूति, ब्राह्मवी, तामसि आदि नाम से भी उन्हें सम्बोधित किया गया है । कात्यायनि नाम तो प्रसिद्ध है ही भद्रकाली और चण्डिके रूप में उनसे भय से रक्षा की प्रार्थना की गई है । देवी ने स्वयं कहा है कि जब दैत्यों को भक्षण करते हुए मेरी दन्त-मुक्तावली कुसुम के समान लाल रंग की हो जायेगी तो सर्वत्र 'रक्त-दन्तिका' प्रसिद्ध हूँगी । 'शताक्षी' नाम का भी स्वयं स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जब सौ वर्ष तक वर्षा न होने के कारण सूखा पड़ने लगेगी और मैं बिना मनुष्य योनि के जन्म लूँगी तो उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे 'शताक्षी' कह कर कीर्तन करेंगे ।

कुछ और नामों के सम्बन्ध में देवी कहती है —

अपने शरीर से प्राण को धारण करके 'शाको' को उत्पन्न करके लोको का पालन करूँगी । इसलिए 'शाकम्भरी' कहलाऊँगी । दुर्गम दैत्य का वध करने के कारण 'दुर्गा' नाम होगा । भीमरूप ग्रहण करके हिमाचल के राक्षसों का वध करूँगी । इसलिए 'भीमा' कहलाऊँगी । अरुणासुर को मारने के लिए भ्रमर रूप धारण करूँगी, इसलिए 'भ्रामरी' नाम होगा ।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस स्तुति में उमा, काली, कपाली, कपिना, कौशिकी, चण्डी कात्यायनी, भद्रकाली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये हैं । कालीदास ने पार्वती को, तीन नामों—भवानी, गौरी और चण्डी से संबोधित किया है । महाभारत में विन्ध्यवासिनी का नाम आया है । कुमार सम्भव में वे तपस्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती हैं । अपर्णा, उमा और पार्वती विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं । याज्ञवल्क्य ने अम्बिका को विनायक की माना स्वीकार किया है । भवानी नाम कुमार सम्भव में आया है जहाँ पर शङ्कर के साथ सम्बन्धित है ।

दुर्गा नामकरण का उद्देश्य मायुजनों की रक्षा और पापियों का नाश करना है । अतः देवी के युद्धकालीन रूप का नाम दुर्गा है । वही मूल-शक्ति है, जो विभिन्न रूप धारण करती है । युद्ध के समय वह दुर्गा बनती है, क्रोध में वह काली रूप धारण करती है, ग्रहस्य में वह भवानी है और पुरुष में विष्णु उमा का रूप है । तैत्तिरीय आरण्यक में सरस्वती से सम्बन्धित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्ध्या, वरदा आदि नाम आये हैं । मुण्डकोपनिषद् में सात जिह्वाओं वाली अग्नि का नामकरण काली-कराली के रूप में किया गया है । यह नाम दुर्गा के चरित्रगत लक्षण हैं ।

महिमा

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है —

यथा त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽस्ति यो जगत् ।

सोऽपि निद्रावश नोत कस्त्वा स्तोनुमिहेश्वर ॥

विष्णु शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।

कारितास्ते यतोऽनस्त्वा क. स्तोतु शक्तिमान भवेत् ? ॥

‘विश्व की सृष्टि, रक्षा और नाश करने वाले नाशायण हरि की भी जो निद्रा के अधीन लाने की क्षमता रखनी है, त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिनकी इच्छा से शरीर धारण करते हैं, उन महान महिमा वाली की स्तुति कौन कर सकता है ?’

इसी प्रकार से ८१वें अध्याय में फिर कहा में,—

ज्ञानिनामपि चेत्तासि देवी भगवती हि सा ।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

तया विसृज्यते विश्व जगदेतच्चराचरम् ।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणा भवति मुक्तये ।

ससारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

अर्थात्—वह भगवती देवी ज्ञानियों के चित्तों को भी बलपूर्वक आकर्षित करके महामाया, मोह समुत्पन्न कर देती है । उसी के हाथ यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विश्व विसृष्ट होता है अर्थात् विश्व का सृजन होता है । वह देवी प्रसन्न हो जाती है तो मनुष्यों को वरदान देने वाली होती है और मुक्ति प्रदान कर देती है । वह परमाविद्या और मुक्ति की हेतु है । वह समानवी है वह सब ईश्वरों की भी स्वामिनी ससार के बन्ध की हेतु भी है ।

भागवत में दुर्गा पूजा का स्पष्ट आदेश है—

‘दुर्गा विनायक व्यासम्’

अर्थात् “दुर्गा तथा गणेश और व्यास का भी नाम है ।”

स्वरूप

दुर्गा का स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है—

देवताओं के पूछने पर देवी ने उत्तर दिया कि मैं ब्रह्म हूँ । मुझ से ही प्रकृति पुरुषात्मक विश्व की सृष्टि होती है । स्कन्द पुराण में देवी को जगत का अविद्याता स्वीकार किया गया है । भार्वापनिषद् में वह ब्रह्मरूपिणी कही गई है । अन्य उपनिषदों—त्रिपुर, तापनीय, सुन्दरी में भी यही भाव व्यक्त किए गए हैं । देवी भागवत में सगुण और निगुण दोनों रूप दिखाए गए हैं । कूर्म पुराण में वह अनन्त, अच्युत, निर्विकार और निगुण ब्रह्म स्वीकार की गई है ।

दुर्गा तत्त्व का विश्लेषण इस प्रकार किया है —

यथेद भ्राम्यते विश्व योगिर्भिर्या विचिन्त्यते ।

यद्भासा भासते विश्व सैका दुर्गा जगन्मयी ॥

अर्थात् “जिसके द्वारा यह ससार चक्र चलता रहता है, योगि-जन जिसका सदैव चिन्तन करते हैं, जिसके प्रकाश से यह समस्त जगत प्रकाशित हो रहा है, वही जगत्प्राणी दुर्गा तत्त्व है ।”

नारद पाञ्चरात्र में दुर्गा तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

जानात्येका परा कान्त सैव दुर्गा तदात्मिका ।

या परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी ॥

यस्या विज्ञानमात्रेण पराणा परमात्मन ।

मुहूर्त्ताद्देवदेवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा ॥

एकेय प्रेमसर्वस्वस्वभावा श्री कुलेश्वरी ।

अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वर ॥

अस्या आवरिका शक्तिमहामायाऽखिलेश्वरी ।

यया मुग्ध जगत्सर्वं सर्वं देहाभिमानिन ॥

एक ही पराशक्ति कान्त भगवान् कृष्ण से परिचित है क्योंकि यह उसी का रूप है । यही परा परमशक्ति ही दुर्गा है । यह महाविराट का रूप है । इसके ज्ञानमार्ग से परमात्मा की उपलब्धि होती है यह एक ही प्रेम

सर्वत्र के स्वभाव वाली श्री कुण्डेश्वरी है। इसके माध्यम से आदि देव अखिलेश्वर की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। महामाया अखिलेश्वरी इसकी आचारिका शक्ति है। इस ने सर्व जगत् और उसके समस्त देहाभिमानियों को मुग्ध कर रखा है।”

सप्तशती महिमा

दुर्गा की अपूर्व महिमा का वर्णन मार्कण्डेय पुराण के अन्न-गर्त ७३ से ८५ अध्याय में किया है। इसमें ७०० श्लोक हैं। इसलिए इसका ‘दुर्गा सप्तशती’ नाम पड़ा। यह कितने ही स्थानों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ कहा गया है। इस कथा को मनघडन्त कहकर बौद्धिक वर्ग में इसकी उपेक्षा कर दी जाती। परन्तु यदि हम इसका गम्भीरता पूर्वक अनुशीलन करें और इसके पात्रों का प्रतीकात्मक अध्ययन करें तो प्रतीत होगा कि यह हर व्यक्ति के जीवन की अपनी कहानी है। हर व्यक्ति के जीवन में कभी ऐसे क्षण आते हैं जब चारों ओर से निराशाओं और विपत्तियों के बादल उमड़ रहे होते हैं परन्तु कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। उस समय यह क्या एक अच्छे निर्देशक और पथ प्रदर्शक का काम करती है। इसीलिए कहा गया है कि दुर्गा दुःख व विपत्ति नाशिनी है। लाखों भक्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दुर्गा की आराधना करते हैं। हम कथा का वर्णन करके उसके बौद्धिक स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

सप्तशती कथा

कथा कुछ नाटकीय ढंग से कही गई है। इसके लिए किसी सुरथ नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उसके राज्य को शत्रुओं ने पडयन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सब कुछ छोड़ कर वन में चला जाना पड़ा। पर वहाँ भी उसका ध्यान अपने महल, कोशाल, नगर हाथी, घोड़ों में लगा रहा और वह उनके विषय में चिन्ता करता हुआ दुखी रहने लगा। वही उसकी भेट समाधि नामक एक वैश्य से हो गई जिसकी उसके स्त्री-पुत्र आदि ने समस्त धन अप-

हरण करके घर से निकाल दिया था और जो अब वनवासियों के साथ रहकर जीवन निर्वाह कर रहा था। अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा नहीं था और वह घर वालों के हानि-नाश मुख दुःख की बात सोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनों ने उषी अरण्य में आश्रय बना कर रहने वाले देवी श्रृपि से अपनी दुदगा और मनोन्मत्ता के विषय में प्रश्न किया। श्रृपि ने उनको मोह जनित भ्रम का रहस्य समझाया और साथ ही देवी की महिमा तथा उपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति में छुटकारा पा सकते थे।

इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत्कर्ता भगवान् विष्णु सो रहे थे और उनकी नाभि से सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उस समय विष्णु के कान के मूल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए और ब्रह्मा जी को मारने के लिए दौड़े। ब्रह्मा उनका सामना करने में असमर्थ थे, अतः उन्होंने परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुति की। इससे सन्तुष्ट होकर देवी प्रकट हुई और उसने विष्णु को जगाकर मधु और कैटभ के कुटुम्ब का उनको ज्ञान करा दिया। विष्णु उन असुरों से पाँच हजार वर्ष तक युद्ध करते रहे पर उनका विनाश न कर सका। तब महामाया ने उनको माहित करके कहलवाया कि “हे विष्णु हम तुम्हारे साथ युद्ध करके मनुष्य हुए हैं, हममें कोई वर मागो।” विष्णु ने कहा ‘तुम मेरे वध्य हो, यही वर मैं मागता हूँ।’ बचन बद्ध होने से उन्हें वर दना पड़ा और तब विष्णु ने चक्र में उनका मस्तक काट लिया।

जब देवलोक का अधिपति इन्द्र को बनाया गया तो महिष नाथ के असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उनको हरा कर देवलोक पर अधिकार कर लिया। इन्द्र और अन्य देव-गण ब्रह्मा जी को नाथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण में गये और महिषासुर के अत्याचारों की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे बड़े

क्रोधित हुए और उनके मुखों से निकले हुए तेज से देवी का आविर्भाव हुआ। वह देवी जब युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महा-शब्द से तीनों लोक कांपने लगे। उम्रे मुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजा कर दौड़ा और दोनों पक्षों में घार सग्राम होने लगा। आरम्भ में महिषासुर के चिक्षुर, चामर, उदग्र, महाहनु, असिलोमा, बाधकल और विडालक्ष सेनापतियों से सामना हुआ और एक एक करके वे सब मारे गये। फिर दुर्धक और दुमुख आदि महिषासुर के पराक्रमी सहयोगी रणभूमि में उतरे पर देवी के सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर सके और सेना सहित मारे गये।

अपनी सेना और साथियों को इस तरह नष्ट होता देख कर महिषासुर अत्यन्त क्रोधिन् होकर मामत आया और अपने ममस्त अद्भुत साधनों से भयङ्कर सग्राम करने लगा। वह कभी महिष, कभी सिंह और कभी हाथी का रूप धारण करके लड़ता था। कभी भूमि पर और कभी आकाश में जाकर शस्त्र वर्षा करता था। उसके भयङ्कर सग्राम से तीनों लोक क्षुब्ध हो गये। तब देवी अपने सिंह से उतर कर महिषासुर के ऊपर कूद पड़ी और उसे पैर से दबा कर तलवार से उसका मस्तक काट डाला। उसका वध होते ही सर्वत्र हष की लहर दौड़ गई और समस्त देवता देवी की जय-जयकार करने लगे। इस अवसर पर देवगणों ने देवी की जो स्तुति की, वह बड़ी अर्थपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि देवी ने अपनी शक्ति का ममस्त विश्व में विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु महेश भी उसके रहस्य को ज्ञात नहीं कर सकते। वही जगत् का कारण, अव्याकृता प्रकृति, देवताओं, पितरों की स्वाहा और स्वधा तथा मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष प्रदान करने वाली परा-विद्या है। देवी ही तीनों वेदों की शब्दमयी मूर्ति, सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाली, समस्त शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती, व सकट से उद्धार करने वाली दुर्गा, विष्णु के हृदय में निवास करने वाली

लक्ष्मी और शिव के मिर पर विराजने वाली गौरी है। उसकी शक्ति और बल अपार है।

तीसरी बार जब शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने देवताओं को हराकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण में पहुँचे। उस समय पार्वती की देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओं की रक्षा के लिए असुरों से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुग्रह सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेज कर अपना प्रणय मदेश कहन-वाया। पर देवी ने उत्तर दिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि "जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा वही मेरा भर्त्ता हो सकेगा।" इस पर शुम्भ ने क्रोधित होकर अपने मेनापति धूम्रचोचन को एक बड़ी सेना के साथ देवी को पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। हम आसुरी सेना के साथ देवी का विकट सग्राम हुआ और अन्त में सब असुर मारे गये। फिर चण्ड-मृण्ड नामक महावीर असुर लड़ने को आये पर वे भी काली द्वारा मार डाले गये, जिससे काली का, नाम चामुण्डा पड गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रणभूमि में आया। इसमें यह विशेषता थी कि उसके रक्त की जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरती थी उतनेही नये असुर और पैदा हो जाते थे और उनका नाश अममभव प्रतीत होता था। तब देवी ने काली से कहा कि जब मैं रक्तबीज पर अस्त्र से प्रहार करूँ तो तुम उसके रक्त को पी जाना, एक भी बूँद को पृथ्वी पर मत आने देना। काली ने ऐसा ही किया और तब उस महा असुर का वध किया जा सका।

रक्तबीज के मारे जाने पर स्वयं शुम्भ और निशुम्भ संपूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। पहले निशुम्भ का देवी के साथ घोर सग्राम हुआ और वह मारा गया। फिर शुम्भ सामने आया और अपने देवी की सहायक सप्तमातृका शक्तियो ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री की ओर संकेत करके कहा "तुम

दूसरो का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूठमूँठ प्रमिमान करनी हों। इस पर देवी ने मातों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि “ये सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ हैं जो मेरी इच्छा ने प्रकट होती रहनी हैं। अब देख मैं अकेली हो तेरा बंधन करती हूँ।” इस के पश्चात् असुर सेना से देवी का सब से बड़ा संग्राम हुआ और शुभ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरों का पूर्णतया बध कर दिया गया। इस महान् विजय के पश्चात् देवताओं ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की, उसमें उनकी ही मृष्टि का कारण बनलाया है। देवताओं ने कहा—

महामाया ही विपत्ति में पड़े जनो का कष्ट दूर करती है। वही जगत् की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विचार और समस्त देवी शक्तियाँ उसी के रूप हैं। जगत् की उत्पत्ति स्थिति और महार उनकी इच्छा से होती है।”

स्तुति में प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को वरदान देते हुए आश्वासन दिया कि “पृथ्वी पर जब-जब असुरों का उपात बढ़ेगा मैं विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।”

‘देवी मत्तशती’ का यह उपाख्यान ‘मर्कण्डेय पुराण’ का एक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंश है और नव रात्रियों के अवसर पर लाखों भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते हैं। एक धार्मिक कथा के रूप में निस्सन्देह यह रचना बड़ी प्रभावशाली और रोचक है। इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ हमसे भी अधिक शिक्षाप्रद हैं।

कथा का आधिभौतिक अर्थ—

आधिभौतिक रूप में तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि मत्सर में देवी शक्तियों के साथ आभूगी जयितया का प्रादुर्भाव तथा सघष

मदैव होना है। अमुर या दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमण-कारी और घूर्ण होने हैं और इस कारण प्रायः आरम्भ में देव शक्तियों को दबा लेते हैं, उनको पीड़ित करते हैं। पर जब कष्ट मिलने में देव-गण सावधान होते हैं, अपनी शक्तियों को एकत्रित और संगठित करते हैं तब वे अमुरों के लिए अजेय बन जाते हैं। अमुरों का संगठन, अहङ्कार स्वार्थपन्ता हमारे के उत्पीड़न की भावना पर आधारित होता है जबकि देवताओं (मज्जों) के संगठन में त्याग, तपस्या, परोपकार, विश्व-कल्याण जैसी उच्च भावनाएँ भी निहित रहती हैं। इसलिए मध्य में अमुरगण चाहे जैसी माया, छल-बल से काम ले, अन्त में उन्हें परास्त होना ही पड़ता है।

कथा का आधिदैविक अर्थ—

आधिदैविक दृष्टि से 'देवी सप्तगती' की कथा का आशय सृष्टि के विकास के आरम्भिक परिवर्तनों में है। जैसा हमें मालूम है हमारी जानी हुई चक्रावर सृष्टि का मूल आधार सूर्य है। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवों की उत्पत्ति और वृद्धि हो सकी है। पर सृष्टि के आरम्भ में जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब बहुत समय तक तम का आवरण इसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने में बाधक होती है, उसे सृष्टि विज्ञान के ज्ञान ऋषियों ने 'अमुर' के नाम से पुकारा है। प्रकाश की तरह प्राण तत्त्व या गति तत्त्व या गति-तत्त्व भी देव-भाव का सूचक है, क्योंकि उसी में प्राणी-जगत् का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्य के तेज का परिपाक नहीं होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्यशील नहीं होती तब तक कि तम के आवरण युक्त अवस्था को वृत्र अथवा महिषासुर का आविर्भाव कहा जाता है। उस समय तक सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सौर तेज सबत्र व्याप्त होकर सृष्टि सृष्टि-रचना के कार्य को अग्रसर करते हैं तो वही वृत्र या महिष का

वध हो जाता है। यह कार्य देव भाव की शक्ति का संग्रह होने से ही होता है, इसलिये उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि विकास और रचना के परिवर्तन करोड़ों वर्षों में होते हैं। अतएव 'देवासुर संग्राम' उतने समय तक चलता ही रहता है। यह सब वर्णन वेदों में स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारों ने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा में लिख दिया है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान ने देवासुर संग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

“देवों के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्राण से है सूर्य में जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना (निद्रा) नहीं है। आसुरी-भाव पृथिवी पर आक्रमण करते हैं, पर सूर्य मण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। केन्द्र पर देवताओं का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नहीं पहुँच पाये। इसीलिये 'शतपथ ब्राह्मण' में इन्द्र के देवासुर संग्राम को वनावटी कहा है—

न त्व युयुत्से कतमच्चनाहर्न

तेऽमित्रोमघवन् कश्चनास्ति,

मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहु-

र्त्तु शत्रु ननु पुरायुयुत्सु ॥

अर्थात्—‘हे इन्द्र ! तुम कभी लडे नहीं, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धों का सब वर्णन माया या वनावटी है। न आज तुम्हारा शत्रु है और न पहले तुमसे लड़ने वाला कोई था।’

वेदों में इन्द्र और वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्र के मारने से इन्द्र 'अमपत्न' (बिना शत्रु के) हो गया वही भाषा माकण्डेय पुराण में महिषासुर के लिये प्रयुक्त की गई है—‘इन्द्रोऽभून्महिषासुर’ (७५-२) महिषासुर ने इन्द्र की स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। पुनः इन्द्र (सूर्य मण्डल का अधिष्ठाता देवता)

देव भाव की वृद्धि में या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महि-
सुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है, जो अपने तम से
सीर तेज को ढक देता है, वही वृत्र या महिष है। सृष्टि काल के हिसाब
में परमेष्ठी को सूर्य भाव आने के लिये समय लगा होगा। सूर्य के जन्म
में लेकर उनके तेज का पूर्ण परिपाक होने तक महिषामुर ही शक्तिशाली
रहा होगा। अन्त में जब इन्द्र पुनः प्रवचन हुए तब वही महिष बध
हुआ।”

कथा के आध्यात्मिक अर्थ—

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अर्थ मनुष्य के भीतर होने
वाली सद् और असद् वृत्तियों के संघर्ष और मानसिक हलचल से है।
भौतिक लाभ और सुखों को प्रधानता देना और उनके लिये अनुचित
ढों का अपनाना बहुमुख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस
जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी यह
धारणा होती है कि हम अपने अन्तकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव
प्राप्त कर लेंगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, वही सार
है, क्योंकि देहत्याग के बाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो? इस प्रकार
के निकृष्ट विचार मनुष्य में स्वार्थ परता के भावों को भड़काते हैं जिससे
वह अन्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने में सकोच नहीं
करता।

यह एक प्रकार का तामसी अहंभाव होता है जिससे मनुष्य के
अन्तर के सद् विचार क्षीण हो जाते हैं और वह समाज या ससार के
लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वंसकारी शत्रु का रूप धारण कर लेता है। ऐसे
तामसी और स्वार्थान्धता के विचारों का नाम ही महिषामुर है जो
आत्मा की सद् वृत्तियों को दबा कर दूषित भावनाओं का राज्य स्थापित
कर देता है। इस दूषित अहंभाव से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को
बड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़ती है। उसके लिए समस्त देव

शक्तियो—श्रेष्ठ मनोवृत्तियो को जाग्रत करके एक लक्ष्य पर एवत्रित करना पड़ता है। तब वह शक्तिरूपा देवी एक-एक करके दुर्विचारो क सेना का सहार करती है। अन्त मे दूषित अहभाव विभिन्न रूपो में उसके सामने आता है पर मद्विचारो की पंती तलवार से उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आचार्य बद्री नाथ शुक्ल ने कथा का आध्यात्मिक स्पर्शकण इस प्रकार किया है—

‘समस्त कार्यं प्रपञ्च के परम कारण मे लय होने का नाम है जगत् का एकाग्रबीभाव। विष्णु शब्द का अर्थ है व्यापक चैतन्य। शेष शब्द का अर्थ है विनश्वर श्रेणी का होते हुए भी एव महाविनाश की सामग्री का मन्त्रिपात होने पर भी बच जाने वाला पदार्थ, वह है जगत् का बीजभूत कर्म तथा ज्ञान जनित जीव का सत्कार। उस जगद्बीज सत्कार-रूप क्षेपशय्या हर व्यापक चैतन्य रूप विष्णु का निष्क्रिय अर्थात् जगत् के व्यापार से हीन ही अवस्थित रहने का नाम है विष्णु की निद्रा। व्यापक चैतन्याकाश हो विष्णु-कण है। चैतन्य का त्रिगुणात्मक अविद्या रूप आवरण ही विष्णु-कण का भल है। इस मल से उद्भूत होने वाला अहम्बोध और बहुभवन की इच्छा ही मधु, कैटभ नाम के असर हैं। इनके द्वारा मन को समारोन्मुख बनाने का उपक्रम ही ब्रह्मा की सारने के लिये मधु, कैटभ का उद्यत होना है। इस रूकट की स्थिति में मन रूप ब्रह्मा चिन्मयी महामाया की यदि पुकार करता है तो वे प्रसन्न हो चैतन्यात्मक विष्णु की आवरण रूप निद्रा को भग कर देती है। फिर अनावृत चैतन्य रूप प्रबुद्ध विष्णु अहम्बोध तथा बहुभवनाभिलाष-रूप मधु, कैटभ का वध करते हैं और तब मन का मार्ग निष्कण्टक हो जाता है। वह समागो-मुखता को त्याग अध्यात्म के उन्मुख हो अपनी नफल यात्रा मे समर्थ होता है।’

देवी-चरित्र की बौद्धिक व्याख्या—

इसकी व्याख्या और ढग से भी की जा सकती है । मधु और कैटभ राग और द्वेष के प्रतीक हैं । यह निन्द्रत अवस्था में पड़े विष्णु के कान के मेल से उत्पन्न होते हैं । जीव को ही विष्णु समझना चाहिए और जिस शेष पर वह सोए हैं, वह उस जीव के शुभाशुभ कर्म हैं । जब जीव को विवेक नहीं होना तो वह जगन और उसकी वस्तुओं में आसक्त हो जाता है । इसी मोह निद्रा को विष्णु का शयन और निद्रा की सजा दी है । मधु और कैटभ प्रह्ला को मारने के लिए दौड़ने हैं । ब्रह्मा मन का द्योतक है । राग और द्वेष मन को दूषित करने का प्रयत्न करते हैं । ब्रह्मा भगवती की शरण जाते हैं तो वह विष्णु को निद्रा से उठते हैं और विष्णु दैत्यो में युद्ध करते हैं और उन्हें परास्त करते हैं । देवी बुद्धि का रूप है । मन यदि बुद्धि का महारा ले तो जाव को मोह-निद्रा से जगा सकता है । तब जीवन अकल्याणकारी आसुरी शक्तियों से संघर्ष करके उनका दमन कर सकता है । बुद्धि में विवेक जाग्रत होता है । विवेक के सामने राग द्वेष रूमी अमुर ठहर नहीं सकते । हर जीव पर मधु-कैटभ का आक्रमण होता है । क्या कहती है कि हमें इनका सामना करने के लिये दुर्गा—बुद्धि का महारा लेना होगा अन्यथा उनमें प्रभावित होकर हम इन्हीं का रूप हो जाएँगे और फिर दैत्य सजा से उठकर देवत्व का विकास एक विकट समस्या हो जायगी । अतः मधु-कैटभ के वध के लिए दुर्गा की आवश्यकता है ।

सप्तशती के ५ से १० अध्याय तक शुम्भ और निशुम्भ से देवी के संघर्ष और परिणाम स्वरूप इन अमुरों के वध का वर्णन है । इस प्रतीकात्मक कथा का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

शुम्भ अहंकार का और निशुम्भ अभिमान का द्योतक है । सांसारिक वैभव और सम्मान से अहंकार की उत्कृति होती है । जब अहंकार का साम्राज्य होता है तो बुद्धि पर अन्धकार छा जाता है ।

वह वास्तविकता को भूल जाता है, शारीरिक शक्तियों को ही सर्वस्व मानने लगता है। निरन्तर नाश होना ही जिसका स्वभाव है, जिस तामसिक बुद्धि के प्राश्रित अहंकार का पोषण होना है, उसी के महयोग से ममत्वाभिमान का विकास होता है। तभी यह दोनों भाई कहे गये हैं। आत्म परायण बुद्धि की प्रतीक देवी है। उसके क्षेत्र में शुम्भ और निशुम्भ रूपी अहंकार और ममकार का पनपना सम्भव नहीं है। यह दोनों आध्यात्मिक रोग बुद्धि को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। वह कीटाणु रूपी अपनी सेना भेजते हैं। देवी उनका विनाश करती है। तब धूम्रलोचन को आदेश मिलता है कि वह दैवी को परास्त करके पकड़ लावे। यह धूम्रलोचन लोभ है। विवेक रूप लोचन पर यह धुँए का-सा काम करता है। इसलिए इसकी सजा धूम्रलोचन है। लोभ हर प्रकार के अतृप्तिके उपायों से भौतिक जीवन में विकास का प्रयत्न करता है। अतः यह सात्विक बुद्धि पर घात-प्रतिघात करता है। विरले वीर ही इसके अचूक निशाने से बच पाते हैं। यह मानव को कुपथग भी बनाता है। जो इसके आप्रिय में आ जाता है, उसका जीवन, मुख और शान्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु जिसके पास विवेक की शक्ति है, उसका धूम्रलोचन कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस धूम्रलोचन का आक्रमण हर मानव पर होता है और अधिकांश इसके चंगुल में फँसे हुए हैं। आत्मकल्याण के पथ का अधिकारी वही हो सकता है जो इसके आक्रमण को निष्फल करके अपने बुद्धि तत्त्व को पवित्र रखता है।

धूम्रलोचन के वध से शान्ति नहीं मिलती। अभी अन्य सेना-पतियों से भी झूझना पड़ेगा। चण्ड और मुण्ड भी शक्तिशाली शत्रु हैं। इनका आणय काम और क्रोध से है। जिस तरह से एक डायन बच्चे का खून पीती है, उसी तरह से यह काम हमारे जीवन-रस का प्यासा रहता है और हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों को खोखला बना देता है। जहाँ अहङ्कार है, वहाँ क्रोध का होना स्वाभाविक है। क्रोध से नसें तमतमाती हैं। यह शक्ति के हान का चिन्ह है। क्रोध

मे अन्धा होकर मानव सभी प्रकार के अनुचित काय कर बैठता है। यह प्रबल मानसिक शत्रु माने जाते हैं। इनकी पराजय के बिना आत्म-विक्रम में बाधा पड़ती है। इनको नियन्त्रण में रखना आवश्यक है। जब यह देवी से युद्ध करते हैं तो वह अपनी चमकती तलवार से इनके सर काट लेती है। आत्मपरायण बुद्धि तीक्ष्ण तलवार का रूप है जो अपने राज्य में घुसे आसुरी तत्वों का सर काटती रहती है।

चण्ड मुण्ड के बाद देवी का युद्ध रक्त-बीज के साथ हुआ। इसमें देवी को बड़ी सावधानी बरतनी पड़ी क्योंकि रक्त बीज का यह गुण था कि उसकी जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरेगी, तत्क्षण उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाएँगे। इसलिए यह अत्यन्त दुर्जेय शत्रु था। इस कार्य के लिये देवी ने काली की सहायता ली। देवी के शस्त्र प्रहार करने पर जो रक्त बारा वहे उसे उसी समय पी जाने का कार्य काली को दिया गया ताकि एक बूँद रक्त भूमि पर न गिरे।

रक्त बीज से अभिप्राय विषय लोलुपता से है। विषयों का जिनना उपयोग किया जाता है तभी ही उनके प्रति लिरप्सा बढ़ती ही रहती है। यही एक बूँद गिरने से एक राक्षस की उत्पत्ति का अर्थ है। रक्त-बीज का वध एक गभीर समस्या है क्योंकि शरीर का अस्तित्व ही इसी के सहारे स्थिर रह पाता है। इन्द्रियाँ भगवान ने उपभोग के लिए बनाई हैं, इनके उपयोग को बंद नहीं किया जा सकता। फिर तो जीवन सकट में आ जाएगा और आत्म कल्याण की सभी योजनाएँ ध्वस्त हो जाएंगी। इसके लिए तो ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे विषयों का उपभोग भी होता रहे और लोलुपता न बढ़े। इस मिद्धान्त को अध्यात्म में भोगमें त्याग की सज्ञा दी गई है। भोग करना तो चाहिए परन्तु त्याग भावना से। भोग के प्रति आसक्ति बुद्धि है। भोग तो आवश्यक है इसके लिए काली तत्त्व का विकास करना होगा। काली विषय में असौन्दर्य, हीनत्व और अप्रियत्वक प्रतीक हैं। वह विषयासक्ति को पीती रहती है। इसी योजना से नित्य व्यवहार में भोग वाले रक्त बीज का वध भी सम्भव है।

रक्तबीज का वध होने पर नियुम्भ मानने आता है। नियुम्भ ममता की मूर्ति हैं। यदि ममता को वृक्ष माने तो 'मैं' को उसका अ कुर और 'मे' को उसका तना मानना होगा। वन मम्पत्ति पत्ते, पुत्रादि पल्लव, पुण्य पाप फूल, मुख दुःख फल, इच्छाएँ-भ्रमर, चित्त-भूमि है। ममता के वशीभूत होकर अनुचित कार्याँ करने को प्रेरणा मिलती है। ममता से आसक्ति बढ़ती है और आसक्ति पापों की जड़ है। पाप पतन की राहें बनाते हैं। अतः, पतन की राहों से वचन के लिए आवश्यक है कि ममत्त्व से बचे। इससे दूर रहना ही निशुम्भ वध है।

निशुम्भ वा भी वध होने पर अन्त में शुम्भ स्वयं युद्ध-स्थल पर उतरता है और विविध रूपों में उन्म्विन हाकर देवी पर आक्रमण करता है परन्तु आत्मपरायण बुद्धि पर अहंकार का क्या प्रभाव पड़ सकता है ? क्योंकि उसका आलम्बन विकृति है। शुम्भ शरीर भावना पर खड़ा है, वही उसका वाहन है, दुर्गुण और दुर्विचार उसके अस्त्र-शस्त्र हैं। देवी का—आत्म परायण बुद्धि का आलम्बन—वाहन सिंह है—पशुपति है, पशुओं का राजा है—परमात्मा है। उसके अस्त्र-शस्त्र—सद्-गुण और सद्विचार हैं। यह देवासुर संग्राम हर युग में, हर काल में और हर मानव के मन में होता रहता है। असुर शक्तिशाली शत्रु हैं परन्तु अन्त में देवत्व की ही विजय होती है। शत यह है कि बुद्धि में आत्म-परायणता लाई जाए। यही देवी सप्तशती की क्या का सारांश है

आन्तिथो का निवारण—

दुर्गा के अनेक विशेषण हैं। उनमें एक दिगम्बरा भी है। ईश्वर सर्वव्यापक है, अतः सभी दिशाओं में उनका निवास है। यह दिशाएँ उनके वस्त्र कह जाते हैं। दुर्गा में भी अभिमान का अभाव है जो सप्तशती की कथा से स्पष्ट है। अहङ्कार रूपी शुम्भ ने जब सर उठाया, उन्होंने उसका सर काट दिया। अतः दुर्गा में शक्ति तत्त्व होने में क्या सन्देह हो सकता है ? जड़ और चेतन सभी में इसका निवास है। कोई दिशा ऐसी

नहीं है जिवर इनका प्रभाव न हो । दिशाओं को वस्त्रों के अलङ्कारिक रूप में वर्णन करने के कारण दुर्गा को दिगम्बर कहा जाता है ।

दुर्गा के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं । उनमें एक यह भी है कि वह युद्ध-क्षेत्र में मद्य का पान करती थी । ऐसा मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है । यहाँ मद्य से अभिप्राय ग्रहद्वार से है । अभिमान-शून्य होकर ही उन्होंने असुरों से युद्ध किया और विजय प्राप्त की । योग वशिष्ठ की कथा में एक शक्तिशाली दैत्य का वर्णन है जो देवताओं के लिए अजेय हो गया था उसकी यह विशेषता थी युद्ध करते समय उसे यह भान ही नहीं होता था, कि वह लड़ रहा है । ब्रह्मा ने देवताओं को की परामर्श दिया कि उसे यह अनुभव करा दो कि वह देवताओं से लड़ रहा है और उन्हें मार-काट रहा है तो उसके मन में अभिमान जाग्रत होगा इसी से उसकी शक्ति का क्षय होना शुरू होगा और देवताओं की विजय के चिन्ह दिखाई देने लगेंगे । देवताओं ने इसी उपाय को अपना कर असुरों को परास्त किया । अभिमान से शक्ति क्षीण होती है और इसका जिनका अभाव होता है, उनका ही शक्ति का विकास होता है । शुम्भ रूपी ग्रहद्वार ने सर उठाया परन्तु वह युद्ध क्षेत्र में दुर्गा के समक्ष धराशायी होगए । दुर्गा के मद्यपान का अर्थ उनकी अभिमान-शून्यता ही है ।

दुर्गा का निवास श्मशान कहा जाता है । जब शिव वहाँ रहते हैं तो उनकी पत्नी का वहीं निवास स्वाभाविक है । यहाँ श्मशान से अभिप्राय प्रलयकाल से है, जब सारे ब्रह्माण्ड की यही दशा होती है, जहाँ चारों ओर जीवोंके रुगड़-भुगड़ ही दृष्टिगोचर होते हैं । प्रलय काल में केवल शिव और पार्वती (दुर्गा) ही रह जाते हैं । ब्रह्माण्ड की इस स्थिति में उनकी सत्ता को सिद्ध करने के लिए ही उन्हें श्मशान वासी और रुगड़-भुगड़ घारी कहा गया है ।

उनके हाथों में त्रिशूल त्रिनागों को दूर करने की सूचना देना है ।

दुर्गा कथा से अद्वैत तत्व का बोध होता है क्योंकि जब शुम्भ कहता है कि तुम तो अन्य देवियों के सहयोग से युद्ध कर रही हो तो देखते ही देखते दुर्गा के शरीर में सभी ब्रह्माणी, इन्द्राणी, वैष्णवी आदि देवियाँ समा गई । तब दुर्गा ने कहा—

एकैवाह जगत्यज द्वितीया का ममापरा ।

“हम जगत में, मैं अकेली हूँ । मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है ।”

दुर्गा के चित्र से यह प्रेरणा मिलती है कि पापी के पाप में घृणा करनी चाहिए न कि उसके व्यक्तित्व से । जब महिषासुर का वध हो चुका तो देवताओं ने कहा कि इमे तो आप वैसे भी भस्म कर सकती थी । हम पर शस्त्र क्यों चलाया ? इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों में यो है कि यदि यह बिना युद्ध करते मरते तो नरक में जाते । अब यह वीर गति को प्राप्त करके स्वर्ग जाएँगे । आपका उद्देश्य तो यह था कि इसके नाश से विश्व का कल्याण हो और साथ ही साथ इनका भी कल्याण हो ।

शक्ति की प्रतिमा—

दुर्गा की उपासना में शक्ति की प्रधानता है । देवताओं की शक्ति से उनका जन्म हुआ है । महिषासुर का वध करके शक्ति का ही उन्होंने प्रदर्शन किया । वह शक्ति की प्रतिमा हैं । शक्ति उपासना के लिए ही दुर्गा की आराधना की जाती है । बल की तो वह प्रतीक मानी जाती हैं ।

दुर्गा की नस-नस में शक्ति के खजाने हैं, उसका अङ्ग-अङ्ग शक्ति से फड़कना है । उसके रक्त में शक्ति उछलती है, उसके मुख पर शक्ति चमकती है, उसके शरीर पर शक्ति का लेप है । उसके प्राणों में शक्ति के बीजों के भण्डार हैं । उसका सारा ससार ही शक्तिमय है । उसकी रचना शक्ति से हुई । इसलिये उसका शक्ति-पुञ्ज बनना स्वाभाविक ही था । वह अपने शक्ति के सूक्ष्म भण्डारों में से जितना भी वांछती रहती है, वह उतना ही बढ़ता रहता है ।

दुर्गा की अलङ्कारिक रचना हमारे ऋषियों ने बुद्धिशील का श्रेष्ठ नमूना है, उनकी कल्पना शक्ति की महान कलाकृति है, जीवन के उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये साधन का सकेत किया है, भव रोग की रामबाण दवा का अविर्भाव कर दिया है, लौकिक या पार-लौकिक अभिवृद्धि के शास्त्रों का निचोड़ एक प्रतिमा में गठित कर दिया है ।

समाज में जहाँ भी प्रगति के चिन्ह दिखाई देते हैं, वहाँ दुर्गा की छाप ममझनी चाहिये क्योंकि दुर्गा अर्थात् शक्ति के प्रकाश हुये बिना एक पग भी चलना असम्भव जान पड़ता है । आधुनिक विज्ञान के विकसित होने का श्रेय दुर्गा की बुद्धि शक्ति को ही है । यही कारण है कि भारत में कोई ऐसा स्थान न होगा जहाँ दुर्गा की पूजा उपासना न होती हो । भक्तों का विश्वास है कि वह सिद्धि दाता है और उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है । विश्वास के आधार पर जब कभी उनकी इच्छा पूरी हो जाती है तो उनका विश्वास अडिग हो जाता है । इस मार्ग का अवलम्बन केवल अम मात्र है । दुर्गा तो शक्ति की प्रतिमा है । वह अपने मुख मोभाग्य के लिये शक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा मात्र देती है । उनकी पूजा करते हुए अपने अन्दर शक्ति के संचार की भावना करनी चाहिये । जिस क्षेत्र में हम सिद्धि चाहते हैं, उसमें अपनी शक्तियों को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये, उसके उपायों पर विचार करना चाहिये, उन विचारों को कार्यान्वित करने के आधारों को अपनाना चाहिये, हममें एकाग्रता पूर्वक दिन रात एक करके तप परिश्रम करना चाहिए । तभी दुर्गा भवानी प्रसन्न होकर वरदान देती है । यह वरदान ही साधक की सफलता का कारण बनता है । दुर्गा की इस प्रकार से की गई उपासना ही मार्ग का उचित मार्गदर्शक करती है ।

आठ भुजाएँ—आठ शक्तियों की प्रतीक

आठ भुजाएँ आठ महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं ।

इन शक्तियों के विकास के अभाव में मनुष्य की सामाजिक व पारलौकिक प्रगति रुकी रहती है । इसलिए जिसे अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति करनी हो, उसे दुर्गा के चित्र में प्रदर्शित आठ भुजाओं के प्रतीक आठ बलों की वृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिये । यदि क्रियात्मक कदम न उठाकर हम सभी कुछ दुर्गा से माँगते रहेगे तो हमें निराशा ही होगी । वह आठ शक्तियों इस प्रकार हैं —

(१) स्वास्थ्य

हर क्षेत्र में प्रगति का यही आधार है । इसकी प्राप्ति किये बिना उन्नति असम्भव है । स्वस्थ मनुष्य में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है । अच्छे मस्तिष्क से ही कल्याणकारी योजनाओं का जन्म होना है, विचार व विवेक शक्ति का उदय होता है । सुख व शान्ति का उद्गम यही है । अस्वस्थ व्यक्ति तो परिवार व समाज पर एक बोझ होता है । स्वस्थ व्यक्ति हजारों के दुःखों को दूर करने की क्षमता रखता है । परिवार का पालन-पोषण, धनोपार्जन, सामाजिक कार्यों में योगदान तभी दिया जा सकता है जब मनुष्य शारीरिक व मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ हो । स्वस्थता प्राप्त करने के लिए उसके मूल सिद्धान्तों पर ध्यान देकर उन्हें क्रियात्मक रूप से अपने जीवन में व्यवहार में लाना होगा । उनकी जानकारी तो हर व्यक्ति को है परन्तु बहुत कम लोग उन्हें अपना पाते हैं । रात्रि को जल्दी सोना और प्रातःकाल जल्दी उठना, शरीर को रगड़-रगड़ कर स्नान करना, तेल की मालिश करना, सूर्य स्नान, सूर्य नमस्कार आसन प्राणायाम, दण्ड बैठक, घूमना, दौड़ना आदि व्यायाम, जल्दी पचने वाले सात्विक आहार को ही ग्रहण करना, उसे इतना चराना कि उसकी सारी लार ही बन जाये, विटामिन-युक्त फलों का सेवन, बीडी-सियारेट, शराब, मांस आदि व्यसनो का त्याग, अश्लील फिल्मों और साहित्य से बचना, वीर्य रक्षा, ईमानदारी से धनोपार्जन करना, मानसिक सन्तुलन बनाने रखना, चटारेपन, कृत्रिमता और आडम्बर से दूर रहना-

ये कुछ ऐसे मूत्र हैं, जिन्हें व्यवहार में लाने में ही एक स्वस्थ मनुष्य का ढाँचा बनता है। तभी दुर्गा की एक भुजा का अनुग्रह प्राप्त होता है।

२-विद्या

इसके दो पक्ष हैं। एक शिक्षा, दूसरी विद्या। शिक्षा में सभी प्रकार की सामाजिक जानकारी जैसे-भूगोल, खगोल, साहित्य चिकित्सा गणित, इतिहास, कला, मञ्जीन, शिल्प, विज्ञान राजनीति, न्याय, भाषा आदि आते हैं। विद्या का अर्थ जीवन निर्माण है। मत्य, प्रेम, दया, न्याय, मेवा, परमार्थ, कर्तव्य परायणता, ईमानदारी, समय, पुण्य, त्याग आदि शुभ-वृत्तियाँ विद्या के अन्तर्गत आती हैं। शिक्षा सामाजिक जीवन के उत्कृष्ट में सहायक होती है। विद्या आत्मिक उत्थान का सम्बल है। ज्ञान-वर्द्धन, जीवकोपाजन के लिए उत्तम शिक्षा आवश्यक है, परन्तु विद्या की प्राप्ति के बिना मनुष्य में मनुष्यता के अनुरूप गुणों को ग्रहण करना असम्भव है। विद्या मायक के जीवन निर्माण की आधार शिला है। इस पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए तभी दुर्गा अपना दूसरा हाथ उठा कर प्रसन्न मुख से आशीर्वाद देती है।

३-धन

परिवार के मञ्चालन शिक्षा प्राप्ति, सामाजिक कार्यों में योगदान देने के लिये धन आवश्यक है। इसके बिना समार का कोई भी कार्य भली प्रकार सम्पादन नहीं होता। परन्तु, परिश्रम और ईमानदारी से धन कमाना ही समाज में व्यवस्था बनाये रखने का आदर्श साधन है। इसलिए लोभवश होकर बेईमानी, ठगी, जबरन छतरी, धोखे, फरेवा, चालाकी, मिलावट आदि के माध्यम से धन कमाना कुछ ऐसे साधन हैं जिनमें समाज में खिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जिस समाज में ऐसी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, वहाँ धन की वर्षा होते हुए भी दुःख, कलह, लड़ाई, झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष, चोरी, लूट, हत्या आदि के कारण सर्वत्र देखे जाते हैं। जो समाज धन को अपने शरीर की रक्षा का

साधन न मानकर सर्वस्व मानकर चलता है और उसके उपार्जन में विचार, विवेक और सद्बुद्धि का उपयोग नहीं करता, वह समाज दिन दिन गिरता ही जाएगा। इसलिए दुर्गा का आदेश है कि धन को ईमानदारी से कमाओ। वेईमानी के एक अन्न के दाने को भी अपने घर में प्रवेश मत होने दो। जो व्यक्ति ऐसे साधन अपनते हैं, उनके घर का अन्न खाना छोड़ दो। सात्विक साधनों से धन कमाओ और उसका उत्तम कार्यों में प्रयोग करना सीखो।

४-व्यवस्था

प्रत्येक कार्य की सफलता में व्यवस्था का होना आवश्यक है। बड़े-बड़े कार्य अव्यवस्था के कारण असफल होते देखे गये हैं। सीमित साधनों से छोटे कार्य भी बड़े हो जाते हैं। एक उत्तम व्यवस्थापक में पांच गुणों का समावेश होना चाहिए। (अ) इसमें दूसरों पर प्रभाव डालने की क्षमता होना चाहिए। (ब) उपयोगी व्यक्तियों को धपधपाते रहना और निरन्तर उनका सहयोग प्राप्त करते रहना। (स) समस्त कार्यों को योजना बद्ध करना। (य) कार्य प्रणाली में नियमितता को उच्च स्थान देना। (ह) मार्ग की रुकावटों को दूर करते रहना। भीठा बोलना और अच्छा व्यवहार करना, दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इसलिए लौकिक व पारलौकिक सभी कार्यों में व्यवस्था की शक्ति का विकास व उपभोग करना चाहिए।

५-संगठन

शास्त्रों ने "सर्व शक्ति कलियुगे" के सूत्र का उद्घोष किया है। सृष्टि की रचना इसी शक्ति पर आधारित है। शरीर का सञ्चालन इसी के सहारे चल रहा है। परिवार की सुख, शान्ति इसी पर अवलम्बित रहती है। समाज का विकास इसी पर निर्भर करता है। राष्ट्र की एकता का सम्बल यही है। यह समस्त प्रकार की शक्तियों के विकास का मूलाधार है। इसी लिये धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय संगठन बनाने चाहिये तभी दुर्गा की प्रमन्नता प्राप्त होगी।

६-यश

त्याग, मेवा, परमार्थ, निस्वार्थता से समाज बलयाण की योजनाओं में योग देना ही यश प्राप्त करने का उपाय है। यह शीर ना अम्थाई है, परन्तु आदर्श कार्यों की स्मृति समाज के हृदय पर युगो तक बनी रहती है। इसलिये दुर्गा अपने उपामक को सावधान करती है कि उसे कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जिसमें अपयश के कलङ्क का टीका उसके माथे पर लग जाए जो धोए न बुने।

७-शौर्य

शौर्य का अर्थ है साहस, बहादुरी निर्भीकता। कायर व ड-पोक होना निर्वलता के चिन्ह है। ऐसे व्यक्ति हर समय भाग्य का रोना रोने रहते हैं। थोड़ी भी कठिनाई व विपत्ति आने पर उनका दम निकलन लगता है। साहसी व्यक्ति निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं। विपत्तियों को पहाड़ उनके कन्धों पर रख दिये जाते हैं, परन्तु वह हँसते-हँसते उन्हें इधर-उधर फेंकते हुए इठलाते हुए आगे बढ़ते जाते हैं साहस पहाड़ों को चीरता है, समुद्रों को पार करता है। आकाश की गहराइयों को नापता है। साहस के बिना सफलता अमम्भव है।

८-सत्य

सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर ही सत्य है। सत्य को अपनाना ईश्वर की समस्त शक्तियों का आह्वान है। सत्य में विचलित होना ईश्वर का खुला विरोध है। सत्य का पक्ष लेना ईश्वर का सहयोग प्राप्त करना है। सत्य विचार व सत्य व्यवहार शक्ति के खजानों के खुले द्वार हैं। जिनके शरीर पर यह आवरण चढ़े हैं, वह निश्चय रूप से शक्तिवान हैं। लौकिक व पारलौकिक सिद्धियाँ बिना बुलाये उनके पास आती हैं। यह समाज की सभी शक्तियों का मिरमौर है। दुर्गा की प्रेरणा है कि मेरे उपामक की नस-नस में इस शक्ति की ध्वनि सुनाई देती हो उसके रक्त के प्रवाह में इसी का जाप होता हो, उसकी मास पेशियों में यही अन्ध खुदा हो, उसके मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु इसी से निर्मित हों, उसके पग पग में इसी की छाप पृथ्वी पर पड़ती हो।

जो सावक उपरोक्त आठ शक्तियों को विकसित करने का प्रयत्न करता है, दुर्गा की आठ भुजाये एक साथ चठ कर प्रसन्न मुद्रा में उसे सफलता का आशीर्वाद देती है ।

अधिकार

दुर्गा ने एक महान सांस्कृतिक यज्ञ का सम्पादन किया है । दुर्गा विश्व माता है” । वे किसी जाति विशेष तक सीमित नहीं हैं । उनकी पूजा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है । सभी जातियों और वर्गों को इसका अधिकार है । हरिवंश पुराण के अनुसार जगती जानियाँ भी दुर्गा-पामना करती थी महाभारत में भी विभिन्न जानियों द्वारा दुर्गा पूजा का वर्णन है, हेमाद्रि में भी ऐसा ही उल्लेख है । दुर्गा के द्वार सब के लिए खुले हुए हैं तभी तो व्यापक स्तर में फैलने में सफल हुई । उनके व्यापक विस्तार के सारे राष्ट्र की एक सूचना में बाध दिया । अन्य अनेकों विषयों में मतभेद हो सकते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में सारा राष्ट्र एक मत था । दुर्गा महानतम की यह सहायक सफलता कही जा सकती है ।

दुर्गा-पूजन विधि

मंत्र—

इसका मन्त्रोद्धार इस तरह से है—

मायाद्रिकणत्रिन्दादयो भूयोऽनो रागवान भवेत् ।

पञ्चान्तक प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासन ।

तारादि हृदयान्ताऽय मन्त्रा वस्वक्षरात्मक ॥

माया (ह्री) + ग्रहि (द) + कण (उ) — त्रिन्दु (पनुस्वाः) = दु, पुन यह वर्ण त्रिमर्ग युक्त (द) पञ्चान्तक (ग), प्रतिष्ठा (आ), मारुत (य), भौतिक (ए) = दुर्गायै ओम् इनके आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में हृदय (नमः) अर्थात् 'ॐ ह्री दु दुर्गायै नमः' यह आठ अक्षरों वाला दुर्गा का मन्त्र है ।

पद्धति—

ॐ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि पद्धतिं गद्यरूपिणीम् ।

यस्या श्रवणमात्रेण कोटियज्ञफल लभेत् ॥

ॐ ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय ब्रह्मन्नासन स्वशिरस्यसहस्राधो मुखरुमलकणिक्तान्तर्गा निजगुह्य श्वेतवर्ण श्वेतालंकारलङ्घन द्विभुज स्वशक या श्वेताम्बरभूषितया वामेऽङ्ग संहित ध्यात्वा मान संरूपचारं सम्पूज्य दण्डवत् प्रणमेत् ।

अखण्डमण्डनाकर व्याप्त येन चराचरम् ।

तत्पद दर्शित येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

इति ध्यात्वा तदाज्ञा गृहीत्वा बहिरागत्य मलमूत्रादि सन्त्यज्य वर्णोक्त शौचमादाय नद्यादौ गत्वा स्वकूर्चं द्वादशाङ्गुलम् ॐ क्ली कामदेवाय सर्वजनमनोहरोय नमः ॥ इति दन्तान् विशोध्य चाक्रिकबीजेन गण्डूषषट्क विधाय प्रणावेन मुखं त्रिं प्रोक्ष्य । ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि शिखापरिसरे रक्ष २ हूँ षट् स्वाहेति शिखां बद्ध्वा तत्त्वत्रयेणाचम्य मूलेन प्राणायामं विधाय मलाप-
कर्षणं स्नानं कुर्यात् । ततो मूलेन मृदमानीय जलं प्रोक्षयेत् ।
मन्त्रमृदा सूर्यमण्डलं विचिन्त्य ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥

इति तीर्थान्यावाह्यः ॥ जले यत्र त्रिभाव्यं सनीलकण्ठां दुर्गमावाहयेत् । तत्र षडङ्गं विधाय देवीं सशिवां ध्यात्वा मूलं यथाशक्ति जप्त्वा उन्मज्जेत् ॥ तत्र कुम्भमुद्रां बद्ध्वा स्वमूर्ध्नि देवदेव्यौ जलेन स्नापयित्वा ॥

ॐ ह्रीं स मातङ्गभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एष तेऽर्घो नमः इति सूर्ययार्घ्यत्रयं दत्त्वा वासं परिधाय तत्त्वत्रयेणाचम्य त्रिं प्राणायामं विधाय पूर्वसन्ध्यां कृत्वा षडङ्गं कृत्वा चुलुकेन जलमादाय तत्त्वमुद्रायाञ्छाद्य । ह य व र ल इति त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरस्तद्गलितोदकबिन्दुभिः सप्तधा स्वशिरस्यभ्युक्ष्य । मण्यहस्ते शेषमुदकं धृत्वा इडयान्तर्नीत्वा देहान्तःपापं प्रक्षाल्य पिङ्गलया विरेच्य । पुरं कल्पितवज्रशिलायां वामे फडिति निक्षिपेत् । इत्यघमर्षणं विधाय पूर्ववदाचम्य जले यन्त्रं ध्यात्वा मूलं यथाशक्ति जप्त्वा । मूलविद्यान्ते सायुधे सवाहने सपरिच्छदे श्रीनीलकण्ठसहिते मातदुर्गे तृप्यताम् इत्यष्टवारं सन्तर्प्य । नीलकण्ठं त्रिं सन्तर्प्य ।

एकैकाञ्जलिना परिवारदेवता सन्तर्प्य ॥ देवदेव्यौ हृदि ध्या-
त्वा जले चतुरस्र विधाय । तत्रेशानादिकमेण गुरुपत्तिं सन्तर्प्य
देवी गायत्री जपेत् ॥ ॐ ह्रीं दुर्गायै त्रिद्विहो अष्टाक्षरायै वीमहि
तन्नो चण्डि प्रचोदयात् । इति यथाशक्ति प्रजप्य गायत्र्यानया
देवदेव्योरर्घ्यं दत्त्वा । जप समर्प्य यागमण्डामागच्छेत् । इति
विधिः ।

नतो गृहमागत्य पादौ प्रक्षाल्य द्वारदेव्यौ, । ॐ गाँ गुँ गणेशाय
नमः पूव । ॐ क्षा क्षौ ह्रीं वटुकाय नमः दक्षिणे । ॐ क्षा क्षौ
क्षेत्रपालाय नमः पश्चिमे । ओ या यू योगिनाभ्यो नमः उत्तरे गण्डायाय
नमो देहल्याम् । य यमुनायै नमः अघ । स सरस्वत्यै नमः मध्ये
इति सम्पूज्य । गृहान्तं प्रविश्य । यथोपचितमासनं शोधयेत् ॐ
आ आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठं ऋषि सुनल छन्दः, कूर्मो देवता आसन-
शोधने विनियोगः ॐ पृ पृथिव्यै नमः ।

महि ! त्वया धृता लोका देवि । त्वं विष्णुना धृता ।

त्वं च वारय मा देवि । पवित्रं कुरु चासनम् ।

ॐ आ शक्तये नमः मूलप्रकृत्यै नमः । अ अनन्ताय नमः ।

पद्माय नमः पद्मनाभाय नमः । तत्रोपविश्य तालत्रयं कुर्यात् ।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि सस्थिता ।

ये भूता विघ्नकर्तारिस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

इति तालत्रयं दत्त्वा वामगार्हिण्यातत्रयेण विघ्नानुत्सार्य

नाराचमुद्रां प्रदर्श्य गुरुं प्रणमेत् ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ॐ स्वगुरुभ्यो नमः । परमगुरुभ्यो नमः परापरगुरुभ्यो नमः ।
परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । इति गन्वाक्षत्रैरभ्यर्च्य न्यासपूर्वं सङ्कल्पं
कुर्यात् ।

अस्य श्रीदुर्गामन्त्रस्य महेश्वर ऋषि. अनुष्टुप्छन्द श्रीदुर्गा
देवता दु बीज ह्री शक्ति ओ कीलक नम इति दिग्बन्ध धर्मार्थ -
काममोक्षार्थे दुर्गापूजाया विनियोग. ।

न्यास

अथान्तरमातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्माऋषि -
गायत्रीछन्द, मातृकासरसरस्वतीदेवता ह्रलो बीजानि -
स्वरा शक्तय क्ष कीलक अखिलाप्तये न्यासे विनियोग ।
इति जल भूमौ निक्षिप्य प्राणायाम कुर्यात् । तथा च इत्या ॥
अ इ उ ऋ ए ऐ ओ औ अ अ एभि स्वरै पूरयेत् ।
पुन कु चु टु तु पु इति पचवर्गकेन कु भयेत् ॥
पुन य र ल व श ष स ह एभिरष्टवर्णै रेचयेत् ।
इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादि न्यास कुर्यात् । तथा च ॥
ॐ अ ब्रह्मणोऋषये नम आशिरसि ।
ॐ इ गायत्री छन्दसे नम ईं मुखे ॥
ॐ उँ सरस्वती देवतायै नम ऊ हृदये ॥
ॐ ए हलम्यो बीजेभ्यो नम ऐ गुह्ये ।
ॐ ओ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम औ पादयो ॥
ॐ अ क्ष कीलकाय नम अ सर्वाङ्गे ।
इति ऋष्यादि न्यास, , ॐ अ क ख ग घ ङ आँ अ गुष्ठाभ्या
नम ॥

ओ इ च छ ज झ ञ ई तजनीभ्या नम ।
ओ उ ट ठ ड ढ ण मध्याभ्या नम ॥
ओ ए त थ द ध न एँ अनामिकाभ्या ।
ओ ओ प फ व भ म औँ लनिष्ठकाभ्या नम ॥

ओ अ य र ल व श प स ह क्ष अ करतल कर पृष्ठाम्या
नम ।

इति करन्यास एव हृदयादि,, ओ अ क ५ आ हृदयाय
नम, ॥

ओ इ च ५ ई शिरसे म्वाहा ।

ओ उ ट ५ ऊ शिखायैवपट् ॥

ओ ए त ५ ऐ कवचाय हूँ ॥

ओ ओ प ५ औ नेत्रत्रयायवौपट् ॥

ओ अं यँ रँ लँ वँ शँ पँ मँ हँ लेँ क्षँ अ अस्त्रायफट् ॥
इति हृदयादि न्यास ॥ तत कण्ठस्थ पोडप दल पद्मे (ओ अ
नम एव क्रमेण सर्वत्र) ओ आ ईं ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लृँ ऐँ ऐँ
ओ औ अ अ इति पोडपम्बरान्यसेत् ॥ पुन हृदिस्थ द्वादशदले
ओ कँ नम, एव ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ नम । इतिद्वादश
वर्णान् विन्यसेत् ॥ तथा नाभौ दशदले-ओ ड नम इति एव ढ ण
त थ द ध न प फ नम इति दशवर्णान् न्यसेत् तद्वोलिगे पङ्क्ति-
ओ व नम एव ओ भ म य र ल इति पङ्क्तिवर्णान् ॥ आधारे
चतुर्दले—ओ व नम एव श प स इति चतुर्वर्णान्य- सेत् ॥
पुन, ललाटे द्विदले ओ ह नम, ओ क्ष नम । द्वौवर्णौ न्यसेत् ॥
इति न्यास कृत्वा ध्यायेत् ॥ आधारेत् । लिङ्गनाभौ प्रकटित
ताचुम्लेललाटे द्वेपत्रे पोडगारे द्विदश दले द्वादशाक्षं चतुष्के ॥
वामन्तेवाल-मध्ये डफकर सहिते कठदेशेम्बरारणां हसतत्वर्थ युक्त
मकल दलगत वणरूप नमामि ॥ इत्यतर्मातृका न्यास ॥

अथ बहिर्मातृका न्यास ॥

जयार्थं सर्वदेवानां विन्यासे च लिपेर्विना ।

कृतेतद्विफलं विद्यात्तदादौ नु निर्विन्सेत् ॥

ओ अस्यश्री बहिर्मातृकान्यास मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि गायत्री
छन्द मातृका सरस्वती देवीदेवता हलोबीजानि स्वरा शक्तय
क्ष कीलक अखिलाप्तये न्यासे विनियोग । प्राणायाम कुर्याद् ॥
तथा च इडया अ इ उ ऋ लृ ए ओ अ अ एभि स्वरै पूरयेत् ॥

पुन. कु चु टु तु पु एभि पचवर्गान् कुम्भयेत् ॥

पुन अष्टभि । य र ल व श ष स ह प्रादिना रेचयेत् ।

इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादिन्यास कुर्यात् ॥

तथा च ओ अ ब्रह्मणे ऋषये नम आ शिरसि ॥

ओ इ गायत्री छन्दसे नम ई मुखे ॥

ओ उ सरस्वती देवतायै नम ऊ हृदि ॥

ओ ए हल्भ्यो बीजेभ्यो नम. ऐ गुह्यो ॥

ओ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम ओ पादयो . ॥

ओ अ क्ष कीलकाय नम अ सर्वांगे ॥

इति ऋष्यादि न्यास ॥

ओ अ क ५ आ अगुष्ठाभ्या नम हृदयाय ।

ओ इ च ५ ई तर्जनीभ्या शिरसे स्वाहा ॥

ओ उ ट ५ ऊ मध्यमाभ्या शिखायै वषट् ॥

ओ ए त ५ ऐ अनामिका कवचाय हुँ ॥

ओ प ५ श्री कनिष्ठिकाभ्या नेत्रत्रयाय वीषट् ॥

ओ अ य र ल व श ष स ह लं क्ष अ. करतल कर पृष्ठाभ्या

अस्त्राय फट् ॥

मृगवाल वर विद्यामक्ष सूत्र दधात् करै ॥

माला-विद्या लमद्ध स्ता वहन् ध्येय शिवो गिर ॥

तत — बहिर्मातृकान्यास कुर्यात् ॥ अ नम. शिरसि ॥

ओ आ नम. मुखे । ओ इ नम. दक्षिण नेत्रे ॥

ओ ई नम वामनेत्रे । ओ उ नम दक्षिण कर्णे ॥
 ओ नम वामकर्णे । ओ ऋ नम दक्षिणनासा पुटे ॥
 ओ ॠ नम वाम नासा पुटे । ओ लृ नम दक्षिण कपोले ॥
 ओ लृ नम वामकपोले ओ ए नम । ओ ऐ नम अवरोष्ठे ॥
 ओ नम ऊर्ध्वदन्त पक्वौ । ओ नम अधोदन्त पक्वौ ॥
 ओ अ नम मूर्द्धनि । ओ ओ नम मुखवृत्ते ॥
 ओ क नम दक्षिण बाहुमूले । ओ ख नम द० कूर्परे ॥
 ओ ओ ग नम द० मणिवधे । ओ घ नम, द० हस्तागुलिमूले ।
 ओ ङ नम द० हस्तागुल्यग्रे ओ च नम वाम बाहु मूले ।
 ओ छ नम बा० कूर्परे । ओ ज नम बा० मणिवधे ॥
 ओ झ नम बा० हस्तागुलिभूले ।
 ओ ञ नम वाम हस्तागुल्यग्रे । ओ ट नम दक्षिणपाद मूले ।
 ओ ठ नम, द० जानुनि । ओ ड नम द० गुल्फे ॥
 ओ ण नम द० पादागुल्यग्रे ॥
 ओ त नम वाम पाद मूले । ओ थ नम, वाम जानुनि ॥
 ओ द नम, वाम गुल्फे । ओ ध नम बा० पादागुलिमूले ॥
 ओ न बा० पादागुल्यग्रे । ओ प नम दक्षिण पार्श्वे ॥
 ओ फ नम वाम पार्श्वे । ओ व नम पृष्ठे ॥
 ओ भ नम नाभौ । ओ म नम उदरे ॥
 ओ य त्वगात्मने नम हृदि । ओ र असृगात्मने नम दक्षामे ।
 ओ ल मामात्मने नम ककुदि । ओ व मेदात्मने नम वामासे
 ओ श अस्थ्यात्मने नम, हृदयादि दक्ष हस्तातम् ॥
 ओ ष मज्जात्मने नम हृदयादि वाम हस्तातम् ॥
 ओ स शुक्रात्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ॥
 ओ त आत्जने नम, हृदयादि वाम पादात्मम् ॥
 ओ ल परमात्मने नम जठरे ॥

श्री क्ष प्राणात्मने नम मुखे, इति विनयस्य ॥

अथ पृष्ठिण्याम क्रम

तत्र तु विमर्गान्त्रिन प्रणवपुटितो वा माया लक्ष्मी
बीजपुटितो वा वाम्भवाद्योवा न्यस्तव्य ध्यानम् ॥
पञ्चाशदक्षरं विताङ्ग भागा धृतेन्दु खण्डा कुमुदावदाताम् ॥
वराभये पुस्तकमक्षसूत्र भजेगिर सदधती त्रिनेत्राम् । १।

तत्र वाम्भवाद्यो यथा ऐ अ नम ललाटे ।

ऐ आ नम मुखवृत्ते ऐ इ नम दक्ष नेत्रे ।

ऐ ई नम. वाम नेत्रे ॥ ऐ उ नम दक्ष कर्णे ॥

ऐ ऊ नम वाम कर्णे । ऐ ऋ नम-दक्ष नासाया ॥

ऐ ॠ नम वाम नासाया ॥

ऐ लृ नम दक्ष गडे ॥ ऐ लृ नम वाम गडे ॥

ऐ ए नम ऊर्ध्वोष्ठे ॥ ऐ ऐ नम अग्रोष्ठे ॥

ऐ ओ नम ऊर्ध्वदन्तपत्तो ॥

ऐ औ नम अग्रोदन्त पत्तो ॥

ऐ अ नम मूर्द्धनि ॥ ऐ अ नम मुखे ॥

ऐ क नम द० बा० मूले ॥ ऐ ख नम द० कूर्परे ॥

ऐ ग नम द० मणिवन्धे ॥ ऐ घ नम द० हस्तागुनि मूले ॥

ऐ ङ नम द० हस्ता गुल्यग्रे ॥ ऐ च नम वाम बाहु मूले ॥

ऐ झ नम वाम कूर्परे ॥ ऐ ज नम वाम मणिवन्धे ॥

ऐ ऐ छ नम वाम कूर्परे ॥ ऐ ज नम वाम मणिवन्धे ॥

ऐ झ नम वाम हस्ता गुलि मूले ॥

ऐ ञ नम वाम हस्तागुल्यग्रे ॥

ऐ ट नम दक्षिणपाद मूले ॥ ऐ ठ नम दक्षिण जानुनि ॥

ऐ ड नम दक्षिण गुल्फे ॥ ऐ ढ नम द० पा० गुलि मूले ॥

ऐं ए नम. द० पा० गुल्फग्रे ॥ ऐं त नम वाम पाद मूले ॥
 ऐं थ वाम जानुनि । ऐं द नम वाम गुल्फे ।
 ऐं थै नम. वाम पा० गु० मूले । ऐं न वाम पादागुल्फग्रे ।
 ए प नम दक्षिण पार्श्वे । ऐं फ नम वाम पार्श्वे ।
 ऐं व नम पृष्ठे । ऐं भ नम नाभौ ।
 ऐं म नम उदरे । ऐं य त्दगात्मने नम हृदि ।
 ऐं र असृगात्मने नम दक्षा से ।
 ऐं ल मासात्मने नम ककुदि ।
 ऐं व मेदात्मने नम वामासे ।
 ऐं ग अस्थ्यात्मने नम हृदयादि दक्ष भुजान्तम् ।
 ऐं प मज्जात्मने नम हृदयादि वाम भुजान्तम् ।
 ऐं स शुक्रात्मने नम हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
 ऐं ह आत्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 ऐं आत्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 ऐं ल परमात्मने नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

इति सृष्टिक्रम न्यासः ।

अथ स्थिति न्यासः । ऋषिश्छन्द पूर्ववत् ।

ध्यानम् । सिद्धर कान्ति मसिताभगणा त्रिनेत्रा विद्याक्षमूत्र
 मृगारोचनवरश्वानां । पार्श्वस्थिरा रागवतोमहि कविशरण । ध्याये
 कराब्जवृत्त पुस्तक वर्णमालाम् ।

ओ ट ट ड नम ललाटे ।

ओ ठ ठ ड नम मुख वृत्ते ।

ओ ट ठ ड नम दक्ष नेत्रे ।

आ ट ठ ड नम वाम नेत्रे ।

- ओ ट ठ ड नम, दक्षिण कर्णौ ।
 ओ ट ठ ड नम वाम कर्णौ ।
 ओ ट ठ ड नम दक्षनासाया ।
 ओ ट ठ ड वाम नासाया नम ।
 ओ ट ठ ड नम दक्षिणगण्डे ।
 ओ ट ठ ड नम वाम गण्डे ।
 ओ ट ठ ड नम ऊर्ध्वोष्ठे ।
 ओ ट ठ ड नम अधरोष्ठे ।
 ओ ट ठ ड नम ऊर्ध्व दन्त पक्तौ ।
 ओ ट ठ ड नम अधो दन्त पक्तौ ।
 ओ ट ठ ड नम शिरसि ।
 ओ ट ठ ड नम मुखे ।
 ओ ट ठ ड नम जिह्वाग्रे ।
 ओ ट ठ ड कण्ठ देशे ।
 ओ ट ठ ड नम दक्ष बाहु मूले ।
 ओ ट ठ ड नम दक्ष कूर्परे ।
 ओ ट ठ ड नम दक्षिण मणिवन्धे ।
 ओ ट ठ ड नम दक्षिण हस्तेगुल्य मूले ।
 ओ ट ठ ड नम दक्षिण हस्तेगुल्यग्रे ।
 ओ ट ठ ड नम बाहु मूले ।
 ओ ट ठ ड नम कूर्परे ।
 ओ ट ठ ड नम, वाम मणि बन्धे ।
 ओ ट ठ ड नम वाम हस्ता गुल्यग्रे ।
 ओ ट ठ ड नम दक्ष पाद मूले ।
 ओ ट ठ ड नम, दक्ष जानुनि ।

ओ ट ठ ड नम दक्ष गुल्फे ।
 ओ ट ठ ड नम दक्ष पादागुलि मूले ।
 ओ ट ठ ड नम पादागुल्फे ।
 ओ ट ठ ड नम वाम पाद मूले ।
 ओ ट ठ ड नम वाम जानुनि ।
 ओ ट ठ ड नम वाम गुल्फे ।
 ओ ट ठ ड नम वाम पादागुलि मूले ।
 ओ ट ठ ड नम वाम पा० गुल्फे ।
 ओ ट ठ ड नम दक्ष पार्श्वे ।
 ओ ट ठ ड नम पृष्ठे ।
 ओ ट ठ ड नम हृदये ।
 ओ ट ठ ड नम, दक्षासे ।
 ओ ट ठ ड नम, ककुदि ।
 ओ ट ठ ड नम, वामासे ।
 ओ ट ठ ड नम, हृदयादि दक्षहस्तानम् ।
 ओ ट ठ ड नम हृदयादि वाम हस्तानम् ।
 ओ ट ठ ड नम ॐ हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
 ओ ट ठ ड नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 ओ ट ठ ड नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

इति स्थिति क्रम

अथ संहार क्रम न्यासः ।

ध्यानम् । अक्षस्रज हरिणपोतमुदग्रटक विद्याकरै-
 रविरतघटी त्रिनेत्रा ।
 अर्द्धेन्दुमौलिभरणामरविन्दवासा वर्णेश्वरी च
 प्रणम्य स्तनभारखिन्ताम् ।

पूर्वोक्त स्थानेषु विलोम मातृकान्यसेत् ।

ओ क्ष नम, ललाटे ।

ओ ह नम, मुखवृत्ते । स नम दक्ष नेत्रे ।

ओ ष नम वाम नेत्रे ।

ओ श नम दक्ष कर्णे ।

ओ व नम वाम कर्णे ।

ओ ल नम दक्ष नासाया ।

ओ र नम वाम नासाया ।

ओ य नम, दक्ष गडे ।

ओ म नम वाम गडे ।

ओ भ नम ऊर्ध्वोष्ठे ।

ओ ब नम अधरोष्ठे ।

ओ फ नम ऊर्ध्व दन्त पक्ती ।

ओ प नम, अधो दन्त पक्ती ।

ओ न नम, मूर्द्धिन ।

ओ ध नम मुखवृत्ते ।

ओ द नम दक्ष बाहु मूले ।

ओ य नम दक्ष कूर्परे ।

ओ त नम दक्ष मणिवन्धे ।

ओ ण नम, दक्ष हस्तागुलि मूले ।

ओ ढ नम दक्ष हस्तागुल्यग्रे ।

ओ ड नम वाम बाहु मूले ।

ओ ठ नम, वाम कूर्परे ।

ओ ट नम, वाम मणिवन्धे ।

ओ ञ नम वाम हस्तागुलि मूले ।

ओ झ नम वाम हस्तागुल्यग्रे ।

ओ ज नम दक्ष पाद मूले ।

- ओ छ नम दक्ष जानुनि ।
 ओ च नम दक्ष गुल्फे ।
 ओ ड नम, दक्ष पादागुलि मूले ।
 ओ घ नम दक्ष पादागुल्यग्रे ।
 ओ ग नम, वाम पाद मूले ।
 ओ ख नम वाम जानुनि ।
 ओ क नम वाम गुल्फे ।
 ओ अ नम वाम पादागुलि मूले ।
 ओ अ नम वाम पादागुल्यग्रे ।,
 ओ औ नम दक्षिण पार्श्वे ।
 ॐ ओ नम वाम पार्श्वे ।
 ॐ ऐ नम पृष्ठे ।
 ॐ ए नम नाभौ ।
 ॐ लृ नम, उदरे ।
 ॐ लृ त्वगात्मने नम हृदि ।
 ॐ ऋ असृगात्मने नम दक्षासे ।
 ॐ ऋ मासात्मने नम ककुदि ।
 ॐ ऊ मेदात्मने नम वामासे ।
 ॐ उ अस्थ्यात्मने नम हृदयादि दक्ष हस्तान्तम् ।
 ॐ ई मज्जात्मने नम हृदयादि वाम हस्तान्तम् ॥
 ॐ इ शुक्लात्मने नम हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
 ॐ आ आत्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 ॐ अ परमान्मने नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति संहार क्रम न्यास कृत्वा ॥

अथ शक्ति कला न्यासः ।

अस्य श्री शक्तिकला मातृका न्यासस्य प्रजापति ऋषि
गायत्री छन्दः श्री मातृका शारदा देवता हलोबीजानिस्वरा
शक्तयः सप्तशती पाठाङ्ग त्वेन मातृका न्यसे विनियोगः ।

ओ प्रजापति ऋषये नमः शिरसि,
ओ गायत्री छन्दसे नमः मुखे ।
ओ श्री मातृका शारदा देवतायै नमः हृदि,
ओ हल्भ्योबीजभ्यो नमः गुह्ये ।
ओ स्वरेभ्योशक्तिभ्यो नमः पादयोः ।
ओ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

॥ कर न्यासः ॥

ओ अ ओ आ अगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः)
ओ इ ओ ई तर्जनीभ्यां नमः (शिरसे स्वाहा)
ओ उ ओ ऊ मध्यमाभ्यां नमः, (शिखायै वषट्)
ओ ए ओ ऐ अनामिकाभ्यां नमः (कवचाय हुँ)
ओ ओ ओ औ कनिष्ठिकाभ्यां नमः (नेत्रत्रयाय वीषट्)
ओ अ ओ अ करतल करपृष्ठाभ्यां नमः (अस्त्राय फट्)

॥ अथ हृदयादि न्यासः ॥

ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । हृदयाय नमः ।
ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः, । शिरसे स्वाहा ।
ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः । शिखायै वषट् ।
ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः, । कवचाय हुम् ।
ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, । त्रयाय वीषट् ।
ॐ ह्रं करतल करपृष्ठाभ्यां नमः, । अस्त्राय फट् ॥

षोढान्यास प्रकारः

तत्र प्रथम शुद्ध मातृका न्यास

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ नमो हृदि ।
 ए ऐ ओ औ अ अ. क ख ग घ नमो दक्ष भुजे ।
 ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नमो वाम भुजे ।
 ण त थ द ध न प फ ब भ नमो दक्ष पादे ।
 म य र ल व श ष स ह ल क्ष नमो वाम पादे ।
 इति शुद्ध मातृका न्यास प्रथम ।

अथ द्वितीय न्यासः

श्री अ श्री अ श्री अ नमो ललाटे ।
 श्री आ श्री आ श्री आ नमो मुख वृत्ते ।
 श्री इ श्री इ श्री इ नमो दक्ष नेत्रे ।
 श्री ई श्री ई श्री ई नमो वाम नेत्रे ।
 श्री उ श्री उ श्री उ नमो दक्ष कर्णे ।
 श्री ऊ श्री ऊ श्री ऊ नमो वाम कर्णे ।
 श्री ऋ श्री ऋ श्री ऋ दक्ष नासायां ।
 श्री ॠ श्री ॠ श्री ॠ नमो वाम नासायां ॥
 श्री लृ श्री लृ श्री लृ नमो दक्ष कपोले ।
 श्री लृ श्री लृ श्री लृ नमो वाम कपोले ।
 श्री ए श्री ए श्री ए नमो उर्ध्वोष्ठे ।
 श्री ऐ श्री ऐ श्री ऐ नमो अधरोष्ठे ।
 श्री ओ श्री ओ श्री ओ नमो ऊर्ध्वं दन्त पत्तौ ।
 श्री औ श्री औ श्री औ नमो अध दन्त पत्तौ ।
 श्री अ श्री अ श्री अ नमो मूर्द्धनि ।
 श्री अ श्री अ श्री अ नम. मुखे ।

श्री क श्री क श्री क नमो दक्षिण बाहु मूले ।
 श्री ख श्री ख श्री ख नमो दक्षिण कूर्परे ।
 श्री ग श्री ग श्री ग नमो दक्षिण मणि बन्धे ।
 श्री घ श्री घ श्री घ नमो दक्षिण हस्तागुलि मूले ।
 श्री ङ श्री ङ श्री ङ नमो दक्षिण हस्तागुल्यग्रे ।
 श्री च श्री च श्री च नमो वाम बाहु मूले ।
 श्री छ श्री छ श्री छ नमो वाम कूर्परे ।
 श्री ज श्री ज श्री ज नमो वाम मणि बन्धे ।
 श्री झ श्री झ श्री झ नमो वाम हस्तागुलि मूले ।
 श्री ञ श्री ञ श्री ञ नमो वाम हस्तागुल्यग्रे ।
 श्री ट श्री ट श्री ट नमो दक्षिण पाद मूले ।
 श्री ठ श्री ठ श्री ठ नमो दक्ष जानुनि ।
 श्री ड श्री ड श्री ड नमो दक्ष गुल्फे ।
 श्री ढ श्री ढ श्री ढ नमो दक्ष पादाङ्गुलि मूले ।
 श्री ण श्री ण श्री ण नमो दक्ष पादाङ्गुल्यग्रे ।
 श्री न श्री त श्री तं नमो वाम पाद मूले ।
 श्री थ श्री थ श्री थ नमो वाम जानुनि ।
 श्री द श्री द श्री द नमो वाम गुच्छे ।
 श्री ध श्री ध श्री ध नमो वाम पादागुलि मूले ।
 श्री न श्री न श्री न नमो वाम पादागुल्यग्रे ।
 श्री प श्री प श्री प नमो दक्ष पार्श्वे ।
 श्री फ श्री फ श्री फ नमो वाम पार्श्वे ।
 श्री व श्री व श्री व नमो पृष्ठे ।
 श्री भ श्री भ श्री भ नमो नाभौ ।
 श्री म श्री म श्री म नमो उदरे ।
 श्री य श्री य श्री य त्वगात्मने नमः हृदि ।
 श्री र श्री र श्री र अमृगात्मने नमः दक्षासे ।

श्री ल श्री ल श्री ल मासात्मने नमः ककुदि ।

श्री ब श्री ब श्री ब मेदात्मने नमः वामासे ।

श्री श श्री श श्री श अस्थात्मने नमः हृदयादि दक्ष हस्तान्तम् ।

श्री ष श्री ष श्री ष मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम हस्तान्तम् ।

श्री स श्री स श्री स शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।

श्री ह श्री ह श्री ह आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम् ।

श्री ल श्री ल श्री ल परमात्मने नमः जठरे ।

श्री क्ष श्री क्ष श्री क्ष प्राणात्मने नमः हृदयादि मस्तकात् ।

॥ इति द्वितीय न्यासः ॥

॥ अथ तृतीय न्यासः ॥

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो ललाटे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो मुख वृत्ते ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष नेत्रे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम नेत्रे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष कर्णे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम कर्णे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष नासायाम् ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम नासायाम् ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष कपोले ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम कपोले ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो ऊर्ध्वोष्ठे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो अधरोष्ठे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो ऊर्ध्व दन्त पक्वौ ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री अधो दन्त पक्वौ ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो मूर्द्धनि ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो मुखे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्षिण बाहु मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष कूर्परे ॥
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष मणि बन्धे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष हस्तागुलि मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष हस्तागुल्यग्रे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम बाहु मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम कूर्परे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम मणि बन्धे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम हस्तागुलि मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम हस्तागुल्यग्रे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्षिण पाद मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष जानुनि ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री दक्ष गुल्फे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो पादागुलि मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो पादागुल्यग्रे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पाद मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम जानुनि
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम गुल्फे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पादागुलि मूले ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पादागुल्यग्रे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम दक्ष पार्श्वे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पार्श्वे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो पृष्ठे
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो नाभौ ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो उदरे ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री त्वगात्मने नम हृदि

बन्नी श्री क्ली श्री बन्नी श्री अपृगात्मने नम दक्षासे ।
 बर्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री मासात्मने नम ककुदि ।
 क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री मेदात्मने नम वामासे ॥
 बन्नी श्री क्ली श्री क्ली श्री अस्ययात्मने नम, हृदयादि
 दक्ष हस्तान्तम् ।

बन्नी श्री क्ली श्री बन्नी श्री मज्जात्मने नम हृदयादि
 वाम हस्तान्तम् ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री शुक्रात्मने नम हृदयादि
 दक्ष पादान्तम् ॥

क्ली श्री क्ली श्री बन्नी श्री ध्रात्मने नम हृदयादि वाम
 पादान्तम् ।

क्ली श्री क्ली श्री बन्नी श्री परमात्मने नम, जठरे ॥

बन्नी श्री क्ली श्री क्ली श्री हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति तृतीय न्यासः ॥

अथ चतुर्थ न्यास

ह्री श्री ह्री श्री ह्री श्री नम ललाटे ।

सृष्टि न्यास के अनुसार स्थानों पर पंचम न्यास तथा मुद्रा
 भी वही ।

पंचमः

ए ह्री क्ली चामुन्डायै विच्चे ह्रा ह्रा ऋ ऋ लू नम
 ललाटे ।

सृष्टि न्यास के अनुसार तथा मुद्रा भी वही

षष्ठ अनुलोमः

ऐ ह्री क्ली चामुण्डायै विच्चे नम ललाटे ।
उन्ही स्थान तथा मुद्रा से

विलोम न्यासः

ऐ ह्री क्ली चामुण्डायै विच्चे नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।
पूर्व लिखे हुए सहार न्यास के अनुसार होगा मुद्रा सहित ।

तत्त्वन्यासः

ऐ ह्री क्ली आत्म तत्वाय नम पादादि नाभिपर्यन्तम् ।
चामुण्डायै विद्यातत्वाय नम नाभ्यादि हृदय पर्यन्तम् ।
विच्चे शिव तत्वाय नम हृदयादि शिर पर्यन्तम् ।

अक्षर न्यास

ऐ नम ब्रह्मरधे । ह्री नम भ्रुवोर्मध्ये ।
क्ली नम ललाटे चा नम हृदि । मुन्नमोकुक्षौ ।
डा नम नाभौ । यै नम लिङ्गे । विनमो गुह्ये ।
च्चेनमोवक्त्रे । इति

ऐ ह्री क्ली चामुण्डायै विच्चे ॥

ततो नवधा सप्तधा पञ्चधा वा मूल मुच्चरन् व्यत्य
हस्ताभ्या व्यापक न्यास विधाय ।

ततो यथोक्त विधिना बिन्दु त्रिकोण षट् कोण अष्ट दल-
चतुर्विंशति दल भूपरयुत यत्रनिमयि पीठे धृत्वा ।

पीठ न्यास कुर्यात् ।

ओ आधार शक्त्यै नम ।

ओ प्रकृत्यै नम ।

ओ क्लमयै नम ।

- ओ सुधा वुधये नम ।
 ओ मणिद्वीपाय नम ।
 ओ चिन्तामणि गृहाय नम ।
 ओ श्मशानाय नम ।
 ओ पारिजाताय नम ।
 ओ तन्मूले । ओ रत्नवेदिकायै नम
 ओ मणिपीठाय नम । एतावद्वदि न्यसेत् । चतुर्दिक्ष ॥
 ओ नाना मुनिभ्यो नम ।
 ओ नाना देवेभ्यो नम ।
 ओ शवेभ्यो नम ।
 ओ शनमुर डे भ्योनमः
 ओ बहुमासास्थि मोदमान शवेभ्यो नम ।
 ओ घर्माय नम, दक्षासे ।
 ओ ज्ञानाय नम' वामासे ।
 ओ वराग्याय नम वामोरी ।
 ओ ऐश्वर्याय नम दक्षोरी ।
 ओ अज्ञानाय नमो वाम पार्श्वे ।
 ओ अवैराग्याय नम नाभी ।
 ओ अनैश्वर्याय नम दक्षिणपार्श्वे । ततो हृदि ॥
 ओ आनन्द कन्दाय नम.
 ओ सविज्ञालय नम
 ओ सर्वं तत्त्वात्मक पद्माय नम
 ओ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नम ।
 ओ विकार मय केसरेभ्यो नम
 ओ पञ्चाशद्वीजाद्य कर्णिकार्यै नम
 ओ अद्वादश कलात्मने सूर्य मण्डलाय नम

ओ षोडश कलात्मने सोममण्डलाय नम ।

ओ मन्दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नम ।

ओ स सत्वाय नमः ।

ओ र रजसे नमः ।

ओ तम् तमसे नम ।

ओ आ आत्मने नम ।

ओ अ अन्तरात्मने नमः ।

ओ प परमात्मने नम ।

ओ ह्रीं ज्ञानात्मने नम । अष्टदिक्षु ।

ओ इ इच्छायै नम

ओ जा ज्ञानायै नम ।

ओ क्रि क्रियायै नमः ।

ओ का कामिन्यै नम ।

ओ का कामदायिन्यै नम ।

ओ र रत्यै नमः ।

ओ र रति प्रियायै नम ।

ओ आ आनन्दायै नम । मध्ये ।

ओ म मनोन्मन्यै नमः ।

ओ ऐं परायै नमः ।

ओ प परायण्यै नमः ।

ओ ह्रस्वौ, ब्रह्मा विष्णु रुद्र महाप्रेत पद्मासनाय नमः ।

इति पीठ न्यास कत्वा तत्र दुर्गा ध्यायेत् ।

उ। शख चक्र गदा बाणान् चाप परिध शूलके ।

भुशुण्डी च शिरः खड्ग दधती दश वक्त्रकाम ॥१॥

तामसोऽश्यामला नौमि महाकाली दशाघ्रिकाम् ।

मालाञ्च परशु बाणान् गदा कुलिशमेव च ॥२॥

पद्म धनु कुण्डिका च दड शक्तिमसि तथा ।
 खेट कजलज घण्टा सुरापात्र च शूलकम् ॥३॥
 पाश सुदर्शन चैव दधती लोहित प्रभाम् ।
 पद्मे स्थिता महालक्ष्मी भजे महिष मर्दिनीम् ॥४॥
 घटा शूल हल शख मुसलारिघनु शरान् ।
 दधतीमुज्ज्वला नौमि देवी गौरी समुद्भवाम् ॥५॥
 इति ध्यात्वा मानसं रूप चारैरभ्यर्च्य प्रणमेत् ।

ध्यान—सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भजं शख चक्र-
 धनु शराश्च दधती नेत्रैस्त्रिभि शोभिता । आमुक्ताङ्गद-
 हारकङ्कगारगात्काञ्चीकवणान्नूपुरा दुर्गा दुर्गति हारिणी
 भवतु वो रत्नोल्लसत्कण्डला ।

अथ देव्या. कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, चामुण्डा
 देवता, अङ्गन्यामोक्तमातरो बीजम्' दिग्बन्धदेवनास्तत्त्वम्, श्रीजगद्म्बा-
 प्रीत्यर्थं सप्तशती पाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः

ओ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच—ओ यद्गुह्य परम लोके सर्वरक्षाकर नृणाम् ।

यन्न कस्यचिदाख्यात तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

ब्रह्मोवाच—अस्ति गुह्यतम विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।

देव्यास्तु कवच पुण्य तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥

प्रथम शैलपुत्री च द्वितीय ब्रह्मचारिणी ।

तृतीय चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥

पञ्चम स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।

सप्तम कालरात्रीति महागौरीति चाष्टकम् ॥४॥

नवम सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिता ।

उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्माणैव महात्मना ॥५॥

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।

विषमे दुर्गमे चैव भायर्ता शरण गता ॥६॥

न तेषां जायते किञ्चिदशुभ रणसकटे ।
 नापद तस्य पश्यामि शोकदुःखभय न हि । ७।
 यैस्तु भक्त्या स्मृता नून तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
 ये त्वा स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न सशयः । ८।
 प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
 ऐन्द्रो गजसमारूढा वैष्णवी गरुडामना ॥ ९॥
 माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
 लक्ष्मी पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया । १०।
 श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
 ब्राह्मी हंसमारूढा सर्वाभरणभूषिता । ११।
 इत्येता मातरः सर्वा सर्वयोगसमन्विताः ।
 नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोमिताः । १२।
 दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
 शस्त्रं चक्रं गदा शक्तिं हलं च मुसलायुधम् । १३।
 खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
 कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् । १४।
 दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
 धारयन्त्यायुधानीर्त्थं देवानां च हिताय वै ॥ १५॥
 नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाधोरपराक्रमे ।
 महाबले महोत्साहे महाभयबिनाशिनि । १६।
 त्राहि मा देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।
 प्राच्या रक्षतु मामेन्द्रो आग्नेय्यामग्निदेवता । १७।
 दक्षिणेऽवतु वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी ।
 प्रतीच्या वारुणी रक्षेद् वायव्या मृगवाहिनी । १८।
 उदीच्या पातु कौमारी ऐशान्या शूलधारिणी ।
 ऊर्ध्वं ब्रह्माग्नि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा । १९।

एव दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
 जया मे चाग्रत पातु विजया पातु पृष्ठत ॥२०॥
 अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
 शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥
 मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
 त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥
 शङ्खिनी चक्षुषोमध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
 कपोलौ कालिका रक्षेत्कण्ठमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
 नासिकाया मुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चंचिका ।
 अधरे चामृतकला जिह्वाया च सरस्वती ॥२४॥
 दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
 घण्टिका चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
 कामाक्षी चिबुक रक्षेद् वाच मे सर्वमङ्गला ।
 ग्रीवाया भद्रकाली च पृष्ठवशे धनुर्धरी ॥ २६ ॥
 नीलग्रीवा वहि कण्ठे नलिका नलकूबरी ।
 स्कन्धयो खाङ्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
 हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चागुलीषु च ।
 नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥
 स्तनौ रक्षेन्महादेवी मन शोकविनाशिनी ।
 हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥
 नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्य गुह्येश्वरी तथा ।
 पूतना कामिका मेढू गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
 कट्या भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
 जङ्घ महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥
 गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तंजसी ।
 पादागुलीषु श्री रक्षेत्पादाघस्तलवासिनी ॥३२॥

नखान् दण्डाकराली च केशाश्चैवोर्ध्वकेगिनी ।
 रोमकूपेषु कीवेरी त्वच वागीश्वरी तथा ॥३३॥
 रक्तमज्जावसामासान्यस्यमेदासि पावती ।
 अत्र त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४॥
 पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
 ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥३५॥
 शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छाया छत्रेश्वरी तथा ।
 अहंकारमनो बुद्धिं रक्षन्मे घर्मधारिणी ॥३६॥
 प्राणापानौ तथा व्यानमुदान च समानकम् ।
 वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणकल्याणशोभना ॥३७॥
 रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
 सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥३८॥
 आयुं रक्षतु वाराही घर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
 यश कीर्तिं च लक्ष्मीं च घनविद्यां च चक्रिणी ॥३९॥
 गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
 पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्या रक्षतु भैरवी ॥४०॥
 पन्थानं सुपथां रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ।
 राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥४१॥
 रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
 तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥४२॥
 पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।
 कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥४३॥
 तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयसावंकामिका ।
 यं यं चिन्तयते कामं न तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
 परमैश्वर्यमनुलभाप्स्यते भूतले पुमान् ॥४४॥
 निर्भयो जायते मर्त्यं सन्नामेव पराजितम् ।

त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्य कवचेनावृतः पुमान् ॥४५॥
 इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
 यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥४६॥
 देवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
 जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥४७॥
 दृश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
 स्थावरजङ्गमचैव कृत्रिमचापि यद्विषम् ॥४८॥
 अभिचारिणः सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
 भूचराखेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥४९॥
 सहजाकुलजा मालाङ्किनी शाकिनी तथा ।
 अन्तरिक्षचरा घोराङ्किन्यश्च महाबलाः ॥५०॥
 ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
 ब्रह्मराक्षसवेताला कूष्माण्डा भैरवादयः ॥५१॥
 दृश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
 मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्नेजोवृद्धिकरपरम् ॥५२॥
 दृश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
 यशसा वद्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
 जपेत्सप्तशती चण्डीं कृत्वा तु कवचपुरा ॥५३॥
 यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
 तावत्तिष्ठति मेदिन्या सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥५४॥
 देहान्ते परमस्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
 प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥५५॥
 लभते परमरूपं शिवेन सह मोदते ॥ ॐ ॥५६॥

देवी सूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवार्यै सततं नमः ।
 नमः प्रकृत्यै भद्रार्यै नियताप्रणतास्मताम् ॥१॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै घात्र्यै नमोनम ।
 ज्योत्स्नायै चेन्दु रूपिण्यै सुखार्यै सतत नम ॥२॥
 कल्याण्यै प्रणता वृद्धयै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नम ।
 नैऋत्यै भूमृता लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमा ॥३॥
 दुर्गायै दुर्गपारायै सरायै सर्वकारिण्यै ।
 स्वयं त्वं तथैव कृष्णायै धूम्रायै सतत नम ॥४॥
 अति सौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नम ।
 नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नम ॥५॥
 या देवा सर्वभूतेषु त्रिषणुमायेति शब्दिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥६॥
 या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥७॥
 या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥८॥
 या देवी सर्वभूतेषु निद्रा रूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥९॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१०॥
 या देवी सर्वभूतेषु छाया रूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥११॥
 या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१२॥
 या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१३॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१४॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१५॥
 या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१६॥
 या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१७॥
 या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण सस्थिता
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१८॥
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१९॥
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२०॥
 या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२१॥
 या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२२॥
 या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२३॥
 या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२४॥
 या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२५॥
 या देवी सर्वभूतेषु आतिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥२६॥
 इन्द्रियाणामघिष्टात्री भूताना चाखिलेषु या ।
 भूतेषु सतत तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नम ॥२७॥

चित्तिरूपेण या कृत्स्नभेतद्वयाप्य स्थिता जगत् ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टप्रश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण ।

दिनेषु सेविता । करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुमानि

भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥ यो साप्रत चोद्धतदैत्यता-

पितरस्माभिरीशाच सुरैर्नमस्य ते । यच्च स्मृता तत्क्षणमेव

हन्ति न सर्वापदो भक्ति विनम्रमूर्तिभिः ॥३०॥

॥ इति देवीसूक्त ॥

आठ लाख मन्त्र जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है । जप के बाद त्रिमधु युक्त तिल अथवा दूध मिले अन्न से आठ हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए । इसमें दशाश हवन का नियम नहीं है ।



त्रिशक्ति-रहस्य

स्पष्टीकरण

‘शक्ति’ की पूजा अक्षर (निराकार) रूप में नहीं, की जा सकती इसलिए उसके प्रत्यक्ष स्वरूप की कल्पना उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार पर करनी पड़ती है, इन तीनों शक्तियों का नाम क्रम से सरस्वती, लक्ष्मी और काली रख दिया गया है, वस्तुतः ये तीन भिन्न-भिन्न देवियाँ नहीं हैं, वरन् एक ही निराकार देवी की पूजा के लिए तीन स्वरूप हैं । इन शक्तियों के अनुरूप देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इसी प्रकार तीन अलग-अलग देव नहीं हैं, वरन् एक ही निराकार परमात्मा के तीन रूप कल्पित किये गये हैं, नवरात्रि के उद्सव में जगत की इन तीन शक्तियों महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की पूजा ही की जाती है ।

महा सरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी का अन्वयोक्त त्रिखया शक्ति कहते हैं । इनका मूल नियम [स्वेताश्वतरोपनिद् (४।५) के मन्त्र में है ।

अजमेका लोहितशुक्लकृष्ण

वह्नी प्रजा सृजमाना सरूपा ।

अजो ह्येको जप्नुमाणेऽनुशेते

जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्यः ।

अर्थात् अपने समान रूप वाली, असंख्य प्राणियों को रचने

वाली, लाल, श्वेत, काली, एव अजन्मा प्रकृति को ही एक अजन्मा अज्ञानी प्राणी मोहयुक्त होकर भोगता है, परन्तु दूसरा ज्ञानी पुरुष इस भोगी हुई प्रकृति का त्याग कर देता है ।

श्वेत वर्ण प्रतीक महासरस्वती, काले वर्ण का महाकाली और रक्त वर्ण का महालक्ष्मी है । महासरस्वती सत्व गुण प्रधान है, महाकाली तमो गुण प्रधान है, महालक्ष्मी रजोगुण प्रधान है । यूँ भी कह सकते हैं कि महासरस्वती काल है । महाकाली-प्रलय काल है और महालक्ष्मी सृष्टि काल है । यह परम प्रकृति की तीन विकृतियाँ हैं जिनके न्याय-शास्त्र के अनुसार आध्यात्मिक नाम-ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति हैं । सांख्य योग के अनुसार यह सत् रज और तम है । पारमार्थिक वेदान्तोक्त नाम-चित् आनन्द और सत् हैं तान्त्रिका ऐं क्ली ह्रीं (श्री) है ।

ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिमृणा व्यष्टीना महासरस्वतीमहाकाली
महालक्ष्मीरित प्रवृत्तिनिमित्तवलक्षणेन नामरूपान्तरणि
सच्चिदान्दात्मकपरब्रह्मधर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम् ।

महासरस्वति चित्ते महालक्ष्मि सदात्मिको ।

महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्त्वजनसिद्धये ।

अनुसदधमहे चण्डि वय त्वा हृदयाम्बुजे ॥

महालक्ष्मीब्रह्मत्व महाकाली रुद्रात्व

महासरस्वती विष्णुत्व प्रपेदे ।

(सप्तशती की गुप्तवती टीका)

अर्थात् “ज्ञान-इच्छा और क्रियाओं की तीन प्रकृति हैं महा सरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी । प्रवृत्ति और निवृत्ति की विलक्षणता से नाम और रूपों में अंतर होते हैं ।

सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म के धर्म होने से ही शक्ति के भी तीन रूप हैं । महासरस्वती चित्-रूपा है—महालक्ष्मी सत्-रूपा है और

महाकाली आनन्द रूपिणी है । आपके तत्व का ज्ञान की सिद्धि के लिये ही है । हे चण्ड ? हम हृदय कमल में आपका अनुमन्त्रान करते हैं ।

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णु सत्त्वाधिको भवेत् ।

तमोगुणाधिको रुद्र सव कारण रूपधृक् ॥

स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरि, स्मृत !

रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीयस्त्वहमेव हि ॥

(दे० भा० १२-७-७२-७३)

अर्थात् — ब्रह्मा रजोगुण भी अधिकता वाले हैं — विष्णु में सत्त्व गुण की अधिकता है और रुद्र तमोगुण की अधिकता से युक्त हैं और सर्व कारण के रूप को धारण करने वाले हैं । ब्रह्मा स्थूल देह वाले हैं — हरिलिङ्ग देह से युक्त है और रुद्र कारण देह वाले हैं, तुरीय देह तो मैं ही ? ।

याऽस्य प्रथमा रेखा त्या गार्ह पत्यश्चाकारो रज स्वात्मा क्रियाशक्तिः ऋग्वेद प्रात सवन महेश्वरो देवतेति । ६।

याऽस्य द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकार सत्त्वमन्तरात्मा केच्छाशक्तिर्यजुर्वेदो माध्यदिन सवन सदाशिवो देवतेति । ७।

याऽस्य तृतीया रेखा साऽऽहवनीयो मकार स्तम परमात्मा ज्ञानशक्ति सामवेदस्तृतीयसवन महादेवो देवतेति । ८।

(कालाग्नि रुद्रोपनिषद्)

अर्थात् — “तीन रेखाओं में से प्रथम रेखा तो गर्हपत्य, अग्नि-रूप ‘अ’ कार रूप, रजोगुण रूप, भूलोक रूप, स्वात्मक रूप, क्रिया शक्ति रूप, ऋग्वेद रूप, प्रात सवन रूप, और महेश्वर देव के रूप की है । दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि रूप, ‘उ’कार रूप, स्वत्त्व रूप, अन्तरिक्ष रूप, इच्छा शक्ति रूप, यजुर्वेद रूप, माध्यदिन सवन रूप, और सदा-शिव के रूप की है । तीसरी रेखा आहवनीय रूप, तमरूप, धूलोकरूप

परमात्मा रूप, ज्ञान शक्ति रूप, सामवेद रूप, तृतीय सवन रूप और महादेव रूप की है ।

शक्ति स्वभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा ।

एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा ॥

अनन्ता शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादयः ।

इच्छाशक्तिमहेशस्य नित्या कार्यनियामिका ॥

ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं कारणं करणं तथा ।

प्रयोजनं च तत्तत्त्वेन बुद्धिरुपाध्यवस्यति ॥

यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत् ।

कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात् सकल्परूपिणी ॥

! (शिवपुराण, वायुसंहिता, उत्तरखण्ड, अ० ७ अ० ८)

अर्थात्—उसकी शक्ति तो स्वाभाविकी है और विद्या विश्व विलक्षणा है । वह एक ही अनेक स्वरूप से सूर्य की प्रभा की भाँति प्रतीत होती है । उसकी इच्छा-ज्ञान क्रिया आदि अनन्त शक्तियाँ हैं । महेश की इच्छा शक्ति कार्य की नियामिका और नित्य है । ज्ञान शक्ति उसका कार्य है तथा कारण है । तत्त्व से प्रयोजन बुद्धि रूपा होकर अध्यवसित होता है । क्रिया शक्ति ईप्सित के अनुरूप है और जगत् यथाध्यवसित होता है । एक ध्यान मात्र में सकल्प रूप वाली सम्पूर्ण कार्य को सम्पदि कर देती है ।”

शास्त्रकारों का मत है कि परमात्मा अपनी योग माया के सह-योग से सृष्टि की यथादा इच्छा के लिए युग युग में अवतार ग्रहण किया करते हैं । जब पुरुष रूप में अवतरण होते हैं तो ब्रह्मा विष्णु महेश कहे जाते हैं । उनकी तीन शक्तियों के नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली हो जाते हैं । यह परमात्मा की चितिशक्ति के रूप है । जिस प्रकार यह तीन देवता प्रकृति के ३ गुणों के प्रतीक हैं, उसी तरह यह तीन शक्तियाँ भी त्रिगुणा हैं । सत्त्व प्रधान वैष्णव रूप को महालक्ष्मी

रजप्रधान वाली शक्ति को महासरस्वती और तम प्रधान रौद्र-रूप वाली को महाकाली कहते हैं ।

सार यह कि परमात्मा निरञ्जन, निराकार निगुण, निष्क्रिय और निर्लिप्त है। वह अपनी माया शक्तिसे सृष्टि, बालन और सहार करता है । कार्य भेद से उमी के तीन नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो जाते हैं । जिन शक्तियों के सहयोग से यह महान कार्य सम्पन्न हो पाते हैं, उनका नाम करण महामरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली किया गया ।

यौगिक रूप

त्रिशक्ति—महाकाली, महालक्ष्मी और महामरस्वती पिण्ड में तीन बन्धन ग्रन्थियों—रुद्र—ग्रन्थि, विष्णु,—ग्रन्थि और ब्रह्मा—ग्रन्थि की प्रतीक हैं ।

साधक की जब विज्ञानमय कोश में स्थिति होती है तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो उसके भीतर तीन कठोर, गठीली चमकदार हलचल करती हुई, हलकी गाँठें हैं । इनमें से एक गाँठ मूत्राशयके समीप, दूसरी ग्रामाशय के ऊपर्व भाग में और तीसरी मस्तिष्क के मध्य केन्द्र में विदित होती है । इन गाँठों में से मूत्राशय वाली ग्रन्थि को रुद्र-ग्रन्थि, ग्रामाशय वाली को विष्णु ग्रन्थि और शिर वाली को ब्रह्मा-ग्रन्थि कहते हैं ।

इन तीन महाग्रन्थियों की दो-दो सहायक ग्रन्थियाँ भी हैं जो मेरुदण्ड स्थित सुषुम्ना नाडी के मध्य में रहने वाली ब्रह्मा-नाडी के भीतर रहती हैं । इन्हीं ही चक्र भी कहते हैं । रुद्र ग्रन्थि की शाखा ग्रन्थियाँ मूत्राधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र कहलाती हैं । विष्णु ग्रन्थि की दो शाखाएँ मणिपुर चक्र और अनाहत चक्र हैं । मस्तिष्क में निवास करने वाली ब्रह्मा ग्रन्थि के सहायक ग्रन्थि चक्रों को विशुद्ध-चक्र और प्राज्ञा चक्र कहा जाता है । हठ योग की विधि से इन पट् चक्रों का वेधन किया जाता है ।

रुद्र-ग्रन्थि का आकार वेर के समान ऊपर को नुकीला नीचे को भारी, पेंदे में गड़ढा लिए होता है। इसका वर्ण कालापन मिला हुमा लाल होना है। इस ग्रन्थि के दो भाग हैं, दक्षिण भाग को रुद्र और वाम भाग को काली कहते हैं। दक्षिण भाग के अन्तरंग गह्वर में प्रवेश करके जब उसकी भाँकी की जाती है तो ऊर्ध्व भाग में श्वेत रङ्ग की छोटी-सी नाडी हलकासा श्वेत रस प्रवाहित करती है, एक तन्तु तिरछा पीत वर्ण की ज्योति-मा चमकना है। मध्य भाग में एक काले वर्ण की नाडी साँप की तरह मूलाधार से लिपटी हुई है। प्राण वायु का जब उस भाग से सम्पर्क होता है तो डिम-डिम जैसी ध्वनि उसमें से निकलती है। रुद्र ग्रन्थि की आन्तरिक स्थिति की भाँकी करके श्रृंगियों ने रुद्र का सुन्दर चित्र अङ्कित किया है। मस्तक पर गङ्गा की धारा, जटा में चन्द्रमा, गलेमें सप, डमरू की डिम डिम ध्वनि, ऊर्ध्व भाग में नुकीलापन त्रिशूल के रूप में अङ्कित करके भगवान शंकर का एक ध्यान करने लायक सुन्दर चित्र बना दिया। उस चित्र में अलङ्कारिक रूप से रुद्र ग्रन्थि की वास्तविकतायें ही भरी गई हैं। उस ग्रन्थि का वाम भाग जिस स्थिति में है, उसकी वायु शृङ्खलायें, कोण, स्फुल्लितग, तरंगें, नाडियाँ जिस स्थिति में हैं, उन्हीं के अनुरूप काली का सुन्दर चित्र सूक्ष्मदर्शी आध्यात्मिक चित्रकारों ने अङ्कित कर दिया है।

विष्णु ग्रन्थि किस वर्ण की, किस गुण की, किस आकार की, किस आन्तरिक स्थिति की, किम ध्वनि की, किस आकृति की है, यह सब हमें विष्णु के चित्र से सहज ही प्रतीत होता है। नील वर्ण, गोल आकार, शङ्ख ध्वनि, कोस्तुभ भण्ड, वनमाला यह चित्र उस मध्य-ग्रन्थि का सहज प्रतिबिम्ब है।

ब्रह्मग्रन्थि मध्य मस्तिष्क में है। इससे ऊपर सहस्र पतदल कमल है, यह ग्रन्थि ऊपर से चतुष्कोण और नीचे से फली हुई है। इसका नीचे का एक तन्तु ब्रह्म रश्मि से जुड़ा हुआ है। इसी को सहस्र मुख वाले

शेष नाग की शय्या पर लेटे हुए भगवान के नाभि कमल से उत्पन्न चार मुख वाला ब्रह्मा चित्रित किया गया है। वाम भाग में यही ग्रन्थि चतुर्भुजी सरस्वती है। वीणा भङ्गार से ओंकार ध्वनि का यहाँ निरन्तर गुञ्जार होता है।

यह तीनों ग्रन्थियाँ जब तक सुप्त अवस्था में रहती हैं, वैधी हुई रहती हैं, तब तक जीव साधारण दीन-हीन दशा में पड़ा रहता है, अशक्ति, अभाव और अज्ञान उसे नाना प्रकार से दुःख देते हैं। पर जब इनका खुलना प्रारम्भ होता है तो उनका वैभव विखर पड़ता है। मुँह बन्द कली में न जप है, न सौन्दर्य, न गन्ध है, न आकर्षण पर जब वह कली खिल पड़ती है और पुष्प के रूप में प्रकट होती है तो एक सुन्दर दृश्य उपस्थित हो जाता है। जब तक खजाने का ताला लगा हुआ है, धौली का मुँह बन्द है तब तक दग्धता दूर नहीं हो सकती, पर जैसे ही रत्न-गशि का भण्डार खुल जाता है वैसे ही अनुलित वैभव का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है।

अब इन तीनों का अलग-अलग विवेचन किया जाता है।

महासरस्वती

सरस्वती का आशय भौतिक बुद्धि, सवेदना और ज्ञान से हैं। अतः सरस्वती की पूजा आधिभौतिक बुद्धि, विवेक का उदय, विचार शक्ति तथा ज्ञान (आत्म प्रकाश) के लिए है।

महासरस्वती का स्वरूप और ध्वनि इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्र घनु सायक
हस्ताब्जदंघती घनान्तविलसच्छीताशु तुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवा त्रिनयनामाधारभूता महा-
पूर्वामित्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यादिनीम् ॥

अर्थात्—‘जो अपने हस्तकमल में घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, घनुष और बाण धारण करती है, और देह से उत्पन्न, त्रिनेत्रा, मेघा स्थित चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, त्रिजगत की आधार भूता, शुम्भादि दैत्यों का मदन करने वाली, उस महासरस्वती को हम नमस्कार करते हैं ।

महासरस्वती की उत्पत्ति की कथा मार्कण्डेय पुराण में इस प्रकार वर्णित है —

प्राचीन काल में जब शुम्भ और निशुम्भ ने इन्द्र का आसन व समस्त अधिकार छीन लिए तो देवताओं ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए देवी से प्रार्थना की । उन्हें पार्वती के दर्शन हुए जिसके शरीर में ‘शिव’ का आविर्भाव हुआ । सरस्वती देवी का पार्वती के शरीर कोष से प्रकट होने के कारण ‘कौशिकी’ नाम हुआ । कौशिकी के रूप लावण्य की देख कर शुम्भ और निशुम्भ के दूनों—चण्ड और मुण्ड ने उन्हें सूचन किया कि इस परम सुन्दरी कन्या का प्राप्त करना दानवपति के लिए महान गौरव की बात होगी । प्रणय प्रस्ताव लेकर सुग्रीव नामक दूत गया । देवी ने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई कि जो युद्ध क्षेत्र में भुक्त पर विजय प्राप्त कर के मेरे दर्प को दूर करेगा, वही मेरा पति होने का अधिकारी है । शुम्भ निशुम्भ की क्रोध आया और सेना पति धूम्र लोचन की युद्ध के लिए भेजा । वह देवी से मारा गया । चण्ड और मुण्ड भी परलोक पहुँचा दिए गए । तब शुम्भ निशुम्भ अपनी मारी सेना सहित आए और देवी को चारों दिशाओं से घेर लिया । तभी देवी ने घण्टा नाद किया, देवता और उनकी शक्तियाँ उपस्थित हो गई । उस समय देवी के शरीर से चण्डिका का प्राकट्य हुआ । दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया । जब देवी की शक्तियों के भीषण प्रहारों से दैत्यों की सेना कटने लगी तो रक्त वीज मैदान में आया । उसकी विषेपता यह थी कि उसकी जितनी बूँदें रक्त की भूमि पर गिरती थीं, उतने ही दैत्यों की

उत्पत्ति हो जानी थी और वह भी युद्ध करने लगते थे । रक्त बीज के आक्रमणों से देव सेना में भय छा गया । तब चण्डिका ने उसकी इस प्रकार व्यवस्था की कि काली को आदेश दिया कि उसके रक्तकी एक वूँद भी भूमि पर न गिरन पाए । उसका सारा रक्त वह पीती जाए । इस योजना में देव-पक्ष में शक्ति आई और रक्त बीज मारा गया । महा-सरस्वती का यह रूप दैत्य विनाशक है । ज्ञान और विद्या को उज्ज्वल बना देना ही है ।

अज्ञान और अविवेक रूपी अन्धकार को नष्ट करना ही उसका मान उद्देश्य होता है । उसी का प्रतीक यह महासरस्वती है ।

सरस्वती रहस्योपनिषद् में महासरस्वती की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया—

ऋषयो ह वै भगवन्तमाश्वलायन सपूज्यप्रच्छु-

केनोपायेन तज्ज्ञानं तत्पदार्थाविभासकम् ।

यदुपासनया तत्त्वजानासि भगवन् वद ॥

सरस्वतीदशश्लोकया सञ्चत्वा बीजमिश्रया ।

स्तुत्वा जप्त्वा परा सिद्धमलभ मुनिपु गवा ॥

अर्थात् "एक समय की बात है—भगवान् आश्वलायन के निकट ऋषिगण गये और उनकी विधिवत् पूजा कर प्रश्न किया—भगवन् ! जिस ज्ञान के द्वारा 'तत्' पदात्मक परमेश्वर का स्पष्ट बोध होता है, उस ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हो ? आपको जिस देवता की उपासना द्वारा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हुई है, इसके सम्बन्ध में बताने की कृपा करें ।"

भगवान् आश्वलायन ने कहा—'ऋषियो ! मैंने बीज मन्त्र सहित दस ऋषियो वाली सरस्वती दशश्लोकी के द्वारा उपासना करते हुए परामिद्धि को प्राप्त किया है ।

दस श्लोकी सरस्वती का विवरण इस प्रकार है—

प्रथम श्लोक

या वेदातार्थतत्त्वकस्वरूपा परमेश्वरी ।

नामरूपात्मना व्यक्ता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जिसे सरस्वती का स्वरूप वेदान्त का सारभूत ब्रह्मनत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपों में प्रकट है, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हो ।"

द्वितीय श्लोक

या सगोपागवेदेषु चतुष्वकेव गीयते ।

अद्वैता ब्रह्मण शक्ति सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "वेदों और उनके अङ्ग उपाङ्गों में जिन एकदेव की स्तुति की जाती है तथा जो परमब्रह्म की अद्वैत शक्ति है, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हो ।"

तृतीय श्लोक

या वणपदवाक्यार्थस्वरूपेणैव वर्तते ।

अनादिनिधनाऽनन्ता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जो वर्ण, पद, वाक्य में अर्थों सहित सर्वत्र व्याप्त है, जो प्रादि अन्न से परे एवं अनन्त रूप वाली है वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हो ।

चतुर्थ श्लोक

अध्यात्मर्माधिदैव च देवाना सम्यगीश्वर ।

प्रत्यगास्ते वदती या सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जो सरस्वती देवताओं की प्रेरणात्मिका शक्ति, अधि-दैवरूपिणी एवं हमारे भीतर वाणी रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे भगवती मेरी रक्षिका हो ।"

पंचम श्लोक

अन्तर्याम्यात्मना विश्व त्रैलीक्य या नियच्छति ।

रुद्रादित्यादिरूपस्थिता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जो सरस्वती अन्तर्यामी रूप में लोकत्रय का नियन्त्रण करने वाली है तथा जो रुद्र-आदित्य आदि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित हैं, वे हमारी रक्षा हों ।"

षष्ठ श्लोक

या प्रत्यगृह्णिभिर्जीवैर्व्यज्यमानाऽनुभूयते ।

व्याप्तिनो ज्ञप्तिरूपैका सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् ' जो सरस्वती देवी अन्तर्गता वाले जीवों के समक्ष विभिन्न रूपों में प्रकट होती तथा जो ज्ञप्ति रूप से व्याप्त है, वे सरस्वती मेरी रक्षा करें ।"

सप्तम श्लोक

नामजात्यदिभिर्भेदैरवृधा या विकल्पिता ।

निर्विकल्पात्मना-व्यक्ता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जो देवी सरस्वती नाम-रूप के द्वारा अष्टधा बनी हुई तथा निर्विकल्प रूप में भी प्रकट हैं, वे भगवती मेरी रक्षा करने वाली हों ।

अष्टम श्लोक

व्यक्ताव्यक्तगिर सर्वे वेदाद्या व्याहरन्ति याम ।

सर्वकामदुघा धेनु. सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "अव्यक्त अव्यक्त शब्दात्मक वेदादि शास्त्र जिनके स्वरूप का गुणगान करते हैं, जिनके बृहद् रूप का प्रतिपादन करते हैं, वे सर्वकाम दुघा धेनु रूपा सरस्वती हमारा पानन करे ।"

मबम श्लोक

या विदित्वाऽखिल बन्ध निर्मथ्या खिलवर्त्मना ।

योगीयाति पर स्थान सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जिन सरस्वती को ब्रह्म विद्या रूप से जान लेने पर योगीराज सभी बन्धनों को काट डालते हैं, जिससे पूर्ण मार्ग द्वारा उन्हें परमपद की प्राप्ति होती है, वे देवी मेरी रक्षा करने वाली हो ।"

दशम श्लोक

नामरूपात्मक सर्वं यस्यामावेश्यता पुन ।

ध्यायन्ति ब्रह्मरूपं सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् 'हे सरस्वते ! तुम देवियों में, नदियों में और माताओं में भी सर्व श्रेष्ठ हो । हम धन के अभाव से निन्दा को प्राप्त हुए के समान हो रहे हैं - तुम हमें धन रूप में समृद्धि दो ।"

इन दश श्लोकों की सरस्वती-उपासना में दसवाँ श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उसमें सब का सार आ गया है, यही सरस्वती तत्व है । इसमें सरस्वती की विभिन्न सजाओं का दिग्दर्शन कराया गया है । वे सजाएँ हैं—अम्बितमा, नदीतमा और देवीतमा ।

अम्बितमा में शब्द 'अम्बा' का अर्थ माता है । अम्बितमाका अर्थ है—मातृतमा । उसका भाव यह है कि मखिल ब्रह्माण्ड में जितनी मातृ शक्तियाँ काम करती हैं, तुम उन सब का नेतृत्व करती हो उन सबमें यही हो । ज्ञान का महत्व सब से अधिक है ही । जो ज्ञान का मूल स्रोत है, उससे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? अज्ञाना-घकार को दूर करने से श्रेष्ठ और कल्याणकारी कार्य और कौनसा हो सकता है ? जिसे तुम्हारे ऊपर दुग्ध के पगपान करने का सौभाग्य प्राप्त हो वह अपने जीवन को धन्य मानता है, ऐसी हैं हमारी 'अम्बा' सरस्वती ।

‘नदितमे’ का अर्थ है—समस्त नदियों में श्रेष्ठ हों। ‘नद, घातु का अर्थ है—वन्व करना। शब्द के मूल में गति, क्रिया शीतल रहती है। नदी उसे कहते हैं जो पर्वतादि से निकल कर शब्द करती हुई किसी बड़े नद या समुद्र में जा मिलनी है। नदी को तो समुद्र में मिलना ही है, भ्रत जो उसका आश्रय ग्रहण करेगा। वह भी समुद्र ही निश्चय हो जाएगा। नदी का विशेषण—शब्द-गति है। भ्रत जो शब्द ब्रह्म का आश्रय ग्रहण करता है, उसका अन्तिम लय स्थल ईश्वर ही है। यह सरस्वती के आध्यात्मिक भाव से भी लक्षित होता है। बाह्य दृष्टि से तो हम इसके दर्शन प्रयाग में करते हैं जहाँ गंगा, यमुना मिलती है। इन तीनों के मिलन को सङ्गम कहा जाता है। योग की भाषा में यह संगम मूलाधार में इडा पिङ्गला के साथ सुषुम्णा का होने पर होता है। इस त्रिवेणी में जो स्नान करते का सौभाग्य प्राप्त करता है वह निःसन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है। नदीतये का आध्यात्मिक भाव यही है।

‘देवितमे’ में ‘दिव’ घातु का अर्थ है दीप्ति, प्रकाश और ज्योति, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करके ज्ञान की ज्योति और प्रकाश देने वाली जितनी भी शक्तियाँ विश्व में विद्यमान हैं, उन सब से तुम श्रेष्ठ हो।

तभी तो वेद—(ज्ञान) की उत्पत्ति सरस्वती से बताई गई है।

आत्मन आकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति,
वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोकारो भवति, ओकारद्
व्याहृतिर्भवति, व्याहृतितो गायत्री भवति, गायत्र्या
सावित्री भवति, सावित्र्या सरस्वती भवति
सरस्वत्या वेदा भवन्ति, वेदेभ्यो लोकाः

(गायत्री हृदय)

“आत्मा रूपी ब्रह्म से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से

वायु होती है, वायु से अग्नि और अग्नि से ओंकार होता है। ओंकार से व्याहृतियाँ होती हैं। व्याहृतियों से गायत्री, गायत्री, से सावित्री, सावित्री से सरस्वती और सरस्वती से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। वेदों से समस्त लोको का आविर्भाव होता है।”

सरस्वती की श्रेष्ठता का रहस्य तो उसके अर्थ में निहित है। सरस्वति शब्द—‘सृ’ धातु के आगे असुर् प्रत्यय लगाने से ‘सरस्’ पद सिद्ध होता है। सृ धातु का अर्थ है गति, प्रसारण, विज्ञान भी इस तथ्य की स्वीकार करता है और कहता है—‘Ether at rest is darkness ether in motion is light’ गति से ही प्रकाश बना रहता है। जहाँ गति का अवरोध होता है, वही अन्धकार और सङ्कोच आ जाता है, वही ज्ञान और विद्या घन का अभाव हो जाता है। घन की प्रचुरता के लिए आवश्यक है कि गति निरंतर बनी रहे। सरस्वती से घन सम्पत्ति माँगने का अभिप्राय यही है कि हमारी गति में कोई बाधा उपस्थित न हो। गति बनी रही तो आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रसार की सम्पत्तियों का बाहुल्य भी बना रहेगा। गति के अभाव में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देगा।

सरिता के जल में गति रहती है, तभी वह पवित्र व स्वच्छ रह पाती है, गति रुकने पर तो वह सड़ने लगता है। अतः जो प्राणियों के हृदय की ‘सरस’ जल की तरह पवित्र व स्वच्छ बनाती है। वह सरस्वती है। सरस्वती पवित्रता की प्रतीक है।

सरस्वती का वर्ण श्वेत है। श्वेत वर्ण मोक्ष का, सात्विकता का प्रतीक है ज्ञान और प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। श्वेत वर्ण में स्वाभाविकता है। इस पर सभी रंग सुविधापूर्वक चढ़ाए जा सकते हैं, उतारने पर वही शेष रह जाता है। श्वेत रंग ईश्वर की सज्ञा है। यही प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। श्वेत वर्ण अद्वैत के लिए प्रेरित

करता है। श्वेत रंग की उत्पत्ति तब हो पाती है, जब सारे रंग क्रियाशील रहते हैं। जब वह मूर्छित रूप में एक स्थान पर पड़े रहते हैं, तो वह अपने-अपने वास्तविक रूप में ही दिखाई देते हैं। वे एकता से ही श्वेत बनते हैं। जगत का भेद अस्वाभाविक है। अभेद स्वाभाविक है। द्वैत में अज्ञानता है। अद्वैत में ज्ञान और प्रकाश है। यही सरस्वती के श्वेत वर्ण की प्रेरणा और अभिप्राय है।

महासरस्वती पूजन विधि

सरस्वती रहस्योपनिषद् में सरस्वती की दशश्लोकी उपासना का वर्णन है। भगवान् आश्वलायन से ऋषियो ने पूछा तो उन्होंने भगवती सरस्वती की उपासना विधि का वर्णन किया। महर्षि आश्वलायन ने कहा—

इमं श्री सरस्वती दशश्लोकी महामन्त्रं का ऋषि मे ही हूँ। इसका छन्द अनुष्टुप, देवता वागीश्वरी और बीज यद्वाग है। शक्ति 'देवी वाच कीलक 'प्रणो देवी' है। इसका विनियोग श्री वागीश्वरी देवता के प्रीत्यर्थ है। अग्न्यास श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धारणा, वाग्देवता और महासरस्वती इन नाम मन्त्रों से किया जाता है।

जप से पहिले इमं श्लोक के उच्चारण से प्रणाम किया जाता है।

नीहारहारघनसारसुधाकराभा

कल्याणदा कनकचम्पकदामभूपाम् ।

उत्तु गपीनकुचकुम्भमनोहराणी

वाणी नमामि मनसा वचसा विभूत्यै ॥

“कल्याण प्रदायिनी हिम, कपूर मुक्ता अथवा चन्द्रप्रभा के समान शुभ्र काग्विती, सुवर्ण के समान, पीले चम्पक पुष्पों की माला से अलङ्कृत, उन्नत सुष्पष्ट वक्ष सहित सुन्दर अङ्गवाली वागेश्वरी को

मन श्री वाणी द्वारा विद्वान् की सिद्धि के निमित्त नमस्कार करना है ।

‘श्री प्रभो देवो’ मन्त्र के श्रुति मन्त्राज, छन्द गायत्री और देवता सरस्वती की है । श्री मन बीज, शक्ति की है श्री, माय ही कीनक की है । प्रमोद कार्य की सिद्धि के निमित्त इसका विनियोग श्री मन्त्र के द्वारा अङ्गनाम किया जाता है ।

प्रथम मंत्र

श्री प्रसूणा देवी सरस्वती वानेभिर्वाजिनो वती ।

घो नाम विव्यवतु ।

जो शानादि गुण व पुन है जो प्रमोदाक्षी है, जो अपने शरणागन उपासका की रक्षा करने वाली है, वे सरस्वती देवी हमारे लिये वृत्ति प्रदान करें ।

‘श्री तो दिवा’ इस मन्त्र के श्रुति शक्ति, छन्द शिष्टुम् और देवता सरस्वती है । लीं बीज, शक्ति और कीनक है । इच्छित कार्य की सिद्धि के लिए इसका विनियोग तथा इसी मन्त्र द्वारा न्यास किया जाता है ।

द्वितीय मन्त्र

ह्रीं श्रीनो दिवो वृहत् पर्वताश सरस्वती यजता गन्धुरजम् ।

हव देवी जुजुषाणा वृताचो गन्मा नो वाचमुधनो वणोनृ ॥

जगन्माता ब्रह्मरूपिणी, विद्वत्पा सर्वव्यापिनी हैं और हमारे लिए प्रसन्न है । मा की अव्यक्त अवस्थाएँ नो हमारे लिये प्रसन्नमय हैं । मा हमारे ऊपर कृपा करके अपनी अव्यक्त सूक्ष्मावस्था से हमारे यज्ञ (पूजा) की सिद्धि के लिये आविर्भूत होंगे । वही यज्ञ को प्रवर्तिका है । हमारी इस न्युति को वे सादर ग्रहण करें ।

‘पावकान’ इस मन्त्र के श्रुति मन्त्राज, छन्द गायत्री, देवता सरस्वती हैं । बीज, शक्ति और कीनक ‘नो’ है । इसका विनियोग

कामना सिद्धि के निमित्त है तथा इसी मन्त्र द्वारा अग्न्यास करने का विधान है ।

तृतीय मन्त्र

श्री पावकान सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

यज्ञवल्तु धिया वसु ।

सरस्वती देवी हमारे यज्ञ-कामना करें प्रचुर अन्न और धन के लिये । वे अन्न-यज्ञ की आविष्टात्री हैं । उनकी कृपा से हम कर्म करके धन प्राप्त करें ।

‘चोदयित्री०’ इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री देवता सरस्वती हैं । वाज, शक्ति और कीलक ‘वसु’ तथा कार्य पूर्णके लिए इसका विनियोग एव मन्त्र द्वारा ही अग्न्यास किया जाता है ।

चतुर्थ मन्त्र

वसु चोदायित्री मूतृनाना चेतुती मुमती नाम् ।

यज्ञ दधे सरस्वती ।

जो हमें मूतृन वाक्यों का प्रयोग करने प्रवृत्ति देनी हैं, तथा जो मुमति और चेतना प्रदान करती हैं, वही सरस्वती हैं हम । सरस्वती का करेंगे और सरस्वती ही दक्ष करावेंगी ।

‘महोअण’ इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री, और देवता सरस्वती हैं । वाज, शक्ति और कीलक ‘सो’ है । इसमें मन्त्र के द्वारा ही न्यास किया जाता है ।

पंचम मन्त्र

सी महोअणं सरस्वती प्रचेतयति केतुना ।

त्रियो विश्वा विराजति ॥

जो सरस्वती उस महागर्भव रूप मममन्त्र विश्व का संचालन करती है, जो विश्व की जान शक्ति स्वप्नर है, वे हम पर कृपा करें ।

चत्वारि वाक्० ऋषि उच्चय-पुत्र दीर्घतमा, उन्द त्रिष्टुप, देवता सरस्वती, बीज, शक्ति, कीलक 'ऐ' । मन्त्र द्वारा अद्भुत्यान किया जाता है ।

षष्ठ मन्त्र

ऐं चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि
विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण । गुहा त्रीणि निहिता
नेद्व्यन्ति तुरोय वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

वाक् की जो चार अवस्थाएँ परमा, पश्यन्ती मध्यमा और वैश्वरी हैं, इनमें से तीन अवस्थाएँ गुह्यानिहित (अप्रत्यक्ष) ही जान सकते हैं जो मनीषी हैं, योगी हैं वे दिव्य दृष्टि द्वारा उन अवस्थाओं को प्रत्यक्ष करते हैं । मनुष्य जिस वाक् का प्रयोग करते हैं वह त्रुयं (वैश्वरी) अवस्था है । ”

‘युद्धावदन्ति० ऋषि भार्गव, उन्द त्रिष्टुप, देवता सरस्वती है । बीज, शक्ति कीलक ‘वनी’ है । मन्त्र द्वारा ही न्याय होता है ।

सप्तम मन्त्र

क्व यद्वाग्वदन्त्य विचेतनानि
राष्ट्री देवाना निपसाद मन्त्रा ।
चतस्रन्न लज्जं दुदुरे पयासि
क्व त्विदम्या. परम जगाम ॥

“वाक् विश्वव्यापिनी है । और उसके द्वारा मममन्त्र भूत व्याप्त है । जो अल्प चैतन्य है, वे भी वाक् (वीली) का व्यवहार करते हैं । देवताओं की भी वही संचालिका है । मा, तुम्हारे परमावस्था को हम

कब जान सकेंगे और कब तुम्हारे पयोधरो से शक्ति चतुष्टय रूपी दूध को प्राप्त कर सकेंगे ।

‘देवी वाच, ऋषि भार्गव, छन्द त्रिष्टुप् देवता सरस्वती । बीज, शक्ति कीलक ‘सो, है । मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिये ।

अष्टम मन्त्र

सो देवी वाचमजनयन्त देवा -
स्ताविश्वरूपा पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेप मूर्जं दुहाना
धेतुर्वागस्मानुपमुत्तुतु ॥

“देवगण जिस मध्यमा वाक् सब प्राणियों के अन्दर उत्पन्न करते हैं, जो क्रमशः बैखरी अवस्था में परिणति होती है, वह सरस्वती देवी हमें तृप्त करे । मनुष्य जिस प्रकार गौ को दुह कर कृताय हो जाते हैं, उसी प्रकार हे माता हम तुम्हें दुहकर कृताय हो ।

‘उत त्व० ऋषि वृहस्पति, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सरस्वती । बीज शक्ति और कीलक ‘स’ । मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिये ।

स उत त्वं पश्यन्न ददर्शवाचमुनत्त गृवन्न शृणोत्येनाम्
उतो त्वस्मै तन्वा विसर्त्ते जाये पत्यव दशती सुवासा ॥

“माता ! तुम्हारी कृपा से ही सब बातें करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही विचार करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही तुम्हें असत् सिद्ध करते हैं, परन्तु कोई तुम्हें जान नहीं सकता । तुम्हें देखते हुए भी देख नहीं पाता । जिस पर तुम्हारी कृपा होती है वही तुम को देख पाता है ।’

‘अम्बित मे’ ऋषि गृत्तमद, छन्द अनुष्टुप् देवता, सरस्वती, बीज, शक्ति कीलक ए० । मन्त्र द्वारा न्यास करे ।

दशम मन्त्र

ऐमम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥

“मातृगणो मे श्रेष्ठ, नदियो मे श्रेष्ठ, इवियो मे श्रेष्ठ महा सरस्वती । हम अप्रशस्त के नमान अर्थान् उनाभाव मे प्रमृदात् ही रहे हैं । अनएव है माना । हमे प्रशस्ति अर्थान् धन सम्पत्ति—महानता प्रदान करो ।”

महालक्ष्मी

लक्ष्मी का आशय केवल धन-धान्य की वृद्धि ही नहीं है वरन् हर प्रकार की उन्नति, सम्मान, वडप्पन, प्रानन्द, ऐश्वर्य का समावेश लक्ष्मी के स्वरूप में ही हो जाता है । अप्यय दोक्षिन ने तो अन्तिम मुक्ति को भी ‘मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी’ कहा है । इसलिए लक्ष्मी पूजा का अर्थ है जगत की स्थिति की केन्द्र रूपी देवी-शक्ति की पूजा ।

शास्त्रो का विश्व स है कि शक्ति ही सब कुछ है, वे ही महान् शक्तिशालिनी हैं, इनके बिना ब्रह्म भी कुछ कार्य नहीं कर सकने, निष्क्रिय रहते हैं । इस महान् शक्ति की सज्ञा ‘महालक्ष्मी’ है । देवी-माहात्म्य मे महालक्ष्मी से ही समस्त देवी-देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन उल्लेख होता है । क्रम इस प्रकार से है—महालक्ष्मी से सरस्वती, लक्ष्मी और महाकाली । सरस्वती से गौरी और विष्णु, लक्ष्मी से लिङ्गी और हिरण्यगर्भ, महाकाली से सरस्वती और रुद्र आदि ।

महालक्ष्मी का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

ओ अक्षसक्पपरशु गदेषुकुलिष पदम घनुष्कुण्डिका
दण्ड शक्तिमसि च चर्म जलज घण्टा सुराभाजनम् ।

शूल पशुसुदर्शने च दधनी हस्तै प्रत्त तां

त्रे सैरिभमदिनीमिह महालक्ष्मी ॥

मदिनी महालक्ष्मी का ध्यान करता हूँ जो स्वहस्त में अक्षमाला, परशु, गदा, वाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, दड, शक्ति, खड्ग, चर्म, ढाल, शङ्ख, घटा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शन चक्र वागण करती हैं ।”

महालक्ष्मी की उत्पत्ति शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित की गई है —

देव और दानवों में सौ वर्ष तक युद्ध होने पर देवता पराजित हुए । दानवों का नेता महिषामुर इन्द्र बना । देवताओं का प्रतिनिधिमण्डल ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् विष्णु और शिव के पास गया । इनके शरीर से एक तेजपुञ्ज निकला जिसने नारी का शरीर धारण कर लिया । सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र शस्त्र इसे समर्पित किए । देवी का महिषामुर से युद्ध हुआ और वह अन्त में मारा गया । इस देवी को महालक्ष्मी नाम दिया गया ।

महालक्ष्मी की महिमा शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है—

मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां ससारे पततामथ ।

लक्ष्मी पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ।

ममापि च मत त्वेतेन्नान्यथा लक्षणा भवेत् ॥

(पाँचरात्रागण)

“भगवान् कहते हैं कि ससार में जो प्राणी मेरा कृपा पात्र बनना चाहते हैं, महर्षियों ने सिद्ध किया है कि उनके लिए लक्ष्मी (शक्ति) ही पुरुषकारभूता है । मेरा भी ऐसा ही मत है ।”

अहं मत्प्राप्स्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपति स्वरयम् ।

लक्ष्मी पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्ति योगिनी ।

एतस्याच्च विशेषोऽयं निगमार्तेषु क्षव्यते ॥

(पाँचरात्रागण)

“मैं स्वयम् लक्ष्मीपति ही सत्य हूँ । मेरी पत्नी पुरुषाकार देवी है । मैं उपाय हूँ वह पुण्याकार है ।”

मिद्विबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
 मन्त्रमूर्ते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥
 आद्यन्तरहिते देवि आदिशक्ते महेश्वरि ।
 योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥

अर्थात् 'हे देवि । आप मिद्धि और बुद्धि दोनों के प्रदान करने वाली हैं तथा सामारिक मुखों के उपभोग और आवागमन रहित परमार्थ मोक्ष उन दोनों को देने वाली हैं । हे देवि । आप मन्त्र की मूर्ति वाली हैं । हे महालक्ष्मी । आपके लिए नमस्कार है । हे देवि । आप आदि और अन्त इन दोनों से रहित हैं । आप आदि शक्ति और महेश्वरी हैं । योग से समुत्पन्न योग को ज म देने वाली हैं । हे महालक्ष्मी । आपको मेरा नमस्कार है ।"

या श्री स्वय सुकृतिना भवनेऽवलक्ष्मी
 पापात्मना कृतधिया हृदयेषु बुद्धि ।
 श्रद्धा सता कुलजनप्रभवस्य लज्जा
 ता त्वा नता स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

अर्थात् "जो श्री अर्थात् महालक्ष्मी स्वयं पुण्यात्माओं के यहाँ अवलक्ष्मी बन कर रहती है, पापियों के हृदय में बुद्धि रूप में, सत्पुरुषों के हृदय में श्रद्धा, और कुलीनों के हृदय में लज्जा (पुण्यापुण्य विवेक) रूप से रहती है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ । हे देवी ! तू विश्व का पालन कर ।"

लक्ष्मी तन्त्र (अ-१२) में महालक्ष्मी के पाँच कार्यों का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है —

शक्तिर्नारायणस्याह नित्या देवी सदीदिता ।
 तस्या मे पञ्च कर्माणि नित्यानि त्रिदशेश्वर ॥
 तिरोभावस्तथा सृष्टिस्स्थितिस्सहतिरेव च ।

अनुग्रह इति प्रोक्त मदीय कर्मपञ्चकम् ॥

अर्थात् 'हे त्रिदशेश्वर ! मैं नारायण की शक्ति हूँ । मैं नित्य और मदा ही उद्दिन रहती हूँ । उसमें मेरे नित्य पाँच कर्म होते हैं । निगे-भाव—मृजन—स्थिति—महार और अनुग्रह—ये ही मेरे पाँच कर्म कहे गये हैं ।

इसी तन्त्र के (अ ३-१) में उनके वास्तविक स्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है—

नित्यनिर्दोषनिष्कामीकल्याणगुणशालिनी ।

अहं नारायणी नाम सासत्ता वज्रणी परा ॥

यहाँ महालक्ष्मी स्वयम् कहती हैं कि मैं नित्य, निर्दोष, अमीम, कल्याण गुणशालिनी नारायणी नाम की परा सत्ता हूँ ।

इस तन्त्र के (अ २।११-१२) में महालक्ष्मी को विष्णु की अहंता नाम की शक्ति कहा गया है—

तस्य वा परमा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीविते ।

सर्वावस्था गता देवी स्वात्मभूतानपायिनी ।

अहन्ता ब्रह्माण्तस्य माहमस्मि सनातनी ॥

यहाँ महालक्ष्मी इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि उस परब्रह्म की जो चन्द्र की चाँदनी के समान समस्त अवस्थाओं में भाव रहने वाली देवी स्वात्मभूता अनपायिनी अहंता नाम की पराशक्ति है, वह सनातनी शक्ति मैं ही हूँ ।

लक्ष्म्या सहहृषीकेशो देव्या कारुण्यरया ।

रक्षकस्सवमिद्वान्ते वेदान्तेषु च गीयते ।

अर्थात् 'भगवान् हृषीकेश करुणा के स्वरूप वाली देवी लक्ष्मी के साथ ही रक्षक होते हैं—ऐसा यह भवका मिद्वान्त है और वेदान्त में भी यही गाया जाता है ।

अणिमादिक सिद्धीश्च पाताल गुटिकाञ्जना ।

चतुष्क दिव्य वेताल प्राप्नुयात् कमलार्चनात् ॥

अर्थात् “केवल लक्ष्मी जी की आराधना से ही अणिमादि सिद्धि, पाताल सिद्धि, गुटिका सिद्धि, वेताल सिद्धि और अजनादि सिद्धि उपलब्ध होती हैं ।

ठीक भी है ज्ञान, प्रेम, वैराग्य, भक्ति उसी की शक्तियाँ हैं । देवी सम्पत्ति, पद सम्पत्ति, अर्थ सम्पत्ति सब उन्हीं के चमत्कार हैं । लेखन, वक्त्रत्व, प्रजापालन और राजशक्ति की नींव में वे ही निहित हैं, वीरता, सदाश्रिता, प्रेम, वात्सल्य, साधुता, चतुरता, त्याग, समय, तप, ब्रह्मतेज में वही विद्यमान हैं, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु जल की शक्तियाँ उसी में उद्भूत होती हैं । श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा, शान्ति, कान्ति उसी के विशेषण हैं । राधा, सीता, सती, दुर्गा, गायत्री, सरस्वती, सावित्री, वाणी आदि उसी के नाम हैं ।

महालक्ष्मी का ध्यान रक्त वण से किया जाना है । रक्त वर्ण रजोगुण का सूचक है । इसीलिए साधारणतः महालक्ष्मी को वैभव और सम्पत्ति की अघिष्ठात्री देवी के नाम से सम्बोधित किया जाता है । लक्ष्मी का वाहन उलूक है जो शोक का प्रतीक माना जाता है । कहा भी है ‘उद्योगिन पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मीं’ अर्थात् परिश्रमी व्यक्ति को ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, भालसी को नहीं । इसलिए महालक्ष्मी अपने उपासकों को कर्मयोगी और व्यवहार कुशल देखना चाहती हैं ।

महालक्ष्मी कमल के आसन पर स्थित रहती हैं । कमल की विशेषता यह है कि वह कीचड़ में उत्पन्न होता है, उसके चारों ओर कीचड़ और गन्दा पानी रहता है परन्तु फिर भी वह निर्मल और पवित्र बना रहता है । चारों ओर के गन्दे वातावरण में रह कर भी हम गन्दे न हो, गृहस्थ और जगत् में रह कर हम उसमें आश्रित और लिप्त न हो, यही कमलासना महालक्ष्मी की प्रेरणा है ।

महालक्ष्मी पूजन विधि

‘सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्’ में श्री सूक्त की ऋचाओं द्वारा उपासना का इस प्रकार निर्देश दिया गया है—

उन पन्द्रह ऋचाओं के ऋषि इन्दिरा, आनन्द, कदम और चिवलीत हैं। प्रथम मन्त्र की ऋषि इन्द्रा, शेष मन्त्रों के ऋषि पुत्र हैं। प्रथम तीन ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् चौथी का वृहती, पाँचवीं-छठवीं का त्रिष्टुप्, सातवीं से चौदहवीं तक का अनुष्टुप् और प्रस्तार पवित हैं। देवता श्री और अग्नि, बीज ‘हिरण्यवर्णम्’ शक्ति ‘का सोस्मि’ है। हिरण्यमयी, चन्द्रा, रजतस्रजा, हिरण्यस्रजा हिरण्या, हिरण्यवर्ण इन नामों को चतुर्थी विभक्ति में रख कर ओंकार से आरम्भ कर अन्त में तम उच्चारण करता हुआ न्यास करे।

फिर श्री सूक्त के मन्त्रों से अङ्ग न्यास करे। मन्त्र इस प्रकार हैं—

ओ हिरण्यवर्णा सुवर्णरजतस्रजाम् ।

चन्द्रा हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो मग्नावह ।१।

ओ ताम्रम आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।

यस्या हिरण्यं विन्देय गामश्व पुरुषानहम् ।२।

ओ अश्वपूर्वा रथमध्या हरितनादप्रमोदनीम् ।

श्रिय देवी मुपह्वये श्री मदिवो जुं पताम् ।३।

ओ कासोस्मिता हिरण्यप्रकारा

माद्रा ज्वलन्ती तृप्ता तर्पयन्तीम् ॥

पद्मे स्थिता पद्मवर्णा तामिहोपह्वये श्रियम् ।४।

ओ चन्द्रा प्रभासा यशसा ज्वलन्ती

श्रिय लोके देव जुष्टा मुदाराम् ॥

ता पद्मनेमि शरणमह प्रपद्ये
 अलक्ष्मी मे नश्यता त्वा वृणोमि ।१।
 ॐ आदित्यवर्णो तपसोधिजातो
 वनस्पति स्तववृक्षोय वित्त्व ॥
 तस्य फलानि तपसा नुदतु
 मायातरा याश्च बाह्या अलक्ष्मी ।६।
 ओ उपैतु मा देवसख कीर्तिश्च मणिना सह ॥
 प्रादु भूतोस्मि राष्ट्रेस्मि कीर्तिवृद्धि ददाते मे ।७।
 ओ क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा मलक्ष्मी नाशयाम्यहम् ॥
 अभूतिमसमृद्धि च सर्वां निर्गुद मे गृहात ।८।
 गन्धद्वारा दुराघर्षा नित्यपुष्टां करीषिणीम् ॥
 ईश्वरी सर्वभूताना तामिहोपह्वये श्रियम् ।९।
 मनस काममाकूति वाच सत्यमशीमहि ॥
 पशुना रूपमन्नस्य मयि श्री, श्रयताग्रश ।१०।
 ओ कदमेन प्रजाभूता मयी सम्भ्रमकदम् ॥
 श्रिय वासय मे कुले मातर पद्ममालिनीम् ।११।
 ओ आपः जन्तु स्निग्धानि चिल्कीत वश मे गृहे ॥
 नीचदेवी मातर श्रिय वासय मे कुले ।१२।
 आर्द्रा पुष्करिणी पुष्टि पिङ्गला पद्ममालिनीम् ।
 चद्रा हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो मश्रावह ।१३।
 ॐ आर्द्रा पुष्करिणी पुष्टि सुवार्णा हेममालिनीम् ।
 मूर्ध्ना हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो मश्रावह ।१४।
 ॐ ताम्म श्रावह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ॥
 यस्या हिरण्य प्रभूत गावो दास्यो ।
 ऽश्वान् विदेयपुरुषानहम् ।१५।

ओ य शुचिं प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ॥

श्रिय पञ्चदर्शच च श्रीकाम सतत जपेत् ॥१६॥

इसके पश्चात् निम्न मंत्र से ध्यान करे—

अमलकमलसस्था तद्रजः पुञ्जवर्णं

करकमल घृधतेष्वा भोतियुग्माम्बुजा च ।

मणिकटक विचित्रालकृताकल्पजालं

सकल भुवनमाता सतत श्री श्रियं न ॥

“अरुण वर्ण के कमलदल पर विराजमान, कमल-पराग की राशि के समान पीले रंग वाली, वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो हाथों में कमल-पुष्प-धारिणी, मणिमय कङ्कणों से अलंकृत, सब लोको की माता श्रीमहालक्ष्मी हमें निरन्तर श्री से सम्पन्न बनावें ।

इसके बाद 'सोभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्' में विवि का निर्देश इस प्रकार है—

तत्पीठम् । कणिकाया ससाध्य श्रीबीजम् ।

वस्वादित्यकलापद्मेषु श्रीसूक्तगतार्घार्धर्वा तद्वह्नियः
शुचिरिति मातृकया च श्रिय यन्त्राङ्गदशश च विलिख्य
श्रियमावाहयेत् ॥१॥

अङ्गं प्रथमाऽऽवृत्तिः । पद्मादिभिर्द्वितीया । लोकेष्वैस्तृतीया ।
तदायुर्ध्वस्तुरीयाऽऽवृत्तिर्भवति । श्रीसूक्तेरावाहनादि । षोऽश
सहस्रज प ॥६॥

सोभाग्यरमकाक्षर्या भृगुनृचद्गायत्रीश्रिय ऋष्यादयः ।

शमिति बीजशक्तिः श्रामित्यादि षडङ्गम् ॥७॥

यथादमयो द्विपद्मा भयवरदकरा तप्तकार्तस्वरा भा

शुभाभ्राभ्रामेभयुग्मद्वयकरधृतकुम्भाद्भिरासिच्यमाना ।

रत्नोवाबद्धमोलिविमलतरदुकूनावानलेनानाढ्या

पद्माक्षो पद्मनाभोरसि कृतवसति पद्मगा श्री श्रियं न ।

“पीठ कारिका के भीतर साध्य कार्य श्रीबीज लिखे फिर अष्ट-दल, द्वादशदल और पोटशदल वाले पद्मों पर भूवृत्तों के मध्य में श्रीसूक्त की आधी-आधी ऋचा लिखे । फिर निभूवृत्त में फलश्रुतिरूप ऋचा लिख कर पोटशार के बीच में और ऊपर ‘अ’ से ‘स’ कार तक मातृका वर्णों का लेखन करे । सबसे ऊपर निभूवृत्त में वषट् मन्त्र त्वरिता बीज के सहित श्रीबीज का लेखन करे । इस प्रकार दश अंगों वाला श्रीचक्र बनावे । अंग मन्त्रों के द्वारा प्रथम आवरण पूजा की जाती है । पद्म निवियों के द्वारा दूसरी बार आवरण पूजा की जाती है । लोकपालों के द्वारा तृतीय आवरण-पूजा होती है । यज्जादि आयुधों के द्वारा चतुर्थ आवरण पूजा का क्रम है । श्रीसूक्त की ऋचाओं से आवाहनादि कार्य किये जाते हैं । इतना करने के पश्चात् पुरश्चरण के लिये सोलह हजार मन्त्र-जप का विधान है ।”

‘एकाक्षर सौभाग्यलक्ष्मी मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द नीतृद् गायत्री और देवता श्री है । बीज ‘श्री’ और अग्न्यास ‘आ’ इत्यादि के द्वारा होता है ।’

“जिन श्रीदेवी ने अपने दो हाथों में कमल तथा दो में वर मुद्रा और अभय मुद्रा ग्रहण की हुई हैं, जिनके देह की कान्ति स्वर्ण के समान है, जो शुभ मेघ के समान आभा वाले दो हाथियों की सूँडों में धारण किये कलशों के जल से अभिषिक्त हो रही हैं, जिन के सिर पर लाल वर्ण के रत्नों का मुकुट सुशोभित है, जिनके अंग राग लिपे हुए हैं, जो स्वच्छ वस्त्र वाली हैं, कमल के समान नेत्र वाली, पद्मनाभ निवासिनी, कमलासना, श्रीदेवी हमारे निमित्त परम ऐश्वर्य प्रदान करावे ।” ५-८।

तत्पीठम् । अष्टपत्र वृत्तवय द्वादशराशिखण्ड चतुरश्र रमापीठ भवति । कारिकाया ससाध्य श्रीबीजम् । विभक्तिरुन्नति

कान्ति सृष्टि कीर्ति सन्नतिर्व्यरिष्टकृष्टि ऋद्विरिति
प्रणवादिनमोऽन्तश्चतुर्थ्यन्तैर्नैवशक्ति यजेत् । १६।

अङ्ग प्रथमाऽऽवृत्ति । वासुदेवादिद्वितीया । बालक्यादि-
स्तृतीय । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी भवति । द्वादशलक्षजप । १०।
श्रीलक्ष्मीर्वरदा विष्णुपति वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्ण-
मालिनी रजतस्रजा स्वर्णप्रभा स्वर्ण प्रकारा पद्मवसिनी
पद्महस्ता पद्मप्रिया मुक्तालङ्कारा चन्द्रा सूर्या विल्वप्रिया
ईश्वरी भुक्तिर्मुक्तिर्विभूतिर्ऋद्धि समृद्धि कृष्टि पुष्टिर्नदा
धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा घात्री विवात्रोत्यादिप्रणवा-
दिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ता मन्त्र । एकाक्षरवदङ्गादिषोडशम् ।
लक्षजप । दशाश तपणम् । शताश हवनम् । सहस्राश
द्विजतृप्ति । ११। निष्कामानामेव श्रीविद्यामिद्धि । नम
न कदाऽपि सकामानामिति । १२।

“तीन वृत्तों से युक्त रमणीय यन्त्र प्रद्वित करने । प्रष्टदल कर्णिका
में साध्य रहित श्रीबीज लिखे । प्रारम्भ से ओंकार और अन्त में नम के
योग सहित प्रत्येक नाम के साथ चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग द्वारा ती
शक्तियों की पूजा करे । विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि, कीर्ति, सन्नति,
ष्पुष्टि, सत्कृष्टि एवं ऋद्धि यही ती शक्तियाँ हैं । प्र ग-न्यास द्वारा प्रथम
आवरण की पूजा करें । वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का
क्रमशः पूजन करे । इस प्रकार द्वितीय आवरण पूजा होती है । फिर
बालकी आदि की पूजा द्वारा तृतीय आवरण को पूजे । फिर इन्द्रादि देवों
और उनके आयुर्वीर्यों के द्वारा चतुर्थ आवरण की पूजा करे । पुरुषचरण
के निमित्त द्वादश लक्ष मन्त्र जप का विधान है ।”

अक्षरी विद्या के पूजन में आदि में ओंकार और अन्त में नम
लगा कर प्रत्येक नाम का चतुर्थी विभक्ति सहित प्रयोग होना है । श्रीलक्ष्मी
वरदा, विष्णुप्रिया, हिरण्यरूपा, वसुप्रदा, रजतस्रजा, स्वर्णमालिनी,

स्वर्णप्रभा, स्वर्णप्रकाश, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया, वित्त्वप्रिया, चन्द्रसूर्या, मुक्तालङ्कार, ईश्वरी भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, कृष्टि, पुष्टि, घनदा, घनेश्वरी, श्रद्धा, सावित्री, भोगिनी, भोगदा, धात्री, विधात्री, प्रभृति नामों के द्वारा शक्ति-पूजन करे। एकाक्षर मन्त्र के समान ही पीठ-पूजा की जाती है पुरश्चरण के निमित्त एक लक्ष मन्त्र-जप करना चाहिये। जप का दसवाँ भाग तर्पण, तर्पण का दसवाँ भाग हवन और हवन का दसवाँ भाग ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। इस श्रीविद्या की प्राप्ति उन्हीं को होती है जो कामना रहित भाव से उपासना करते हैं। कामना सहित उपासना करने वालों को इसकी सिद्धि नहीं होती।' १६-१२।

लक्ष्मी का दूसरा मन्त्र है—'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं' इसकी विधि एकाक्षर मन्त्र की तरह है। केवल ध्यान में अन्तर है। इस मन्त्र का ध्यान इस प्रकार है—

माणिक्वयप्रतिप्रभा-हिमनिभैस्तुङ्गैश्चभिर्गजै
हंस्तग्राहितरत्नकुम्भसलिलैर्णसच्यमाना मुदा ।
हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुजयुगा भीतीर्दधाना हरे
काताकाक्षितपारिजातलतिका वदे सरोजासनाम् ॥

इसका पुरश्चरण १२ लाख जप का है। दशाश हवन करना होता है जो लाल कमलों से सम्पन्न होता है।

निबन्ध ग्रन्थ के अनुसार लक्ष्मी का दशाक्षर मन्त्र है—

“नम कमलवासिन्य स्वाहा”

इसकी पूजन-विधि में पहिले पीठ न्यास और फिर ऋष्यादि न्यास करे।

शिरसि दक्षऋषये नम । मुखे विराट्छन्दसे नम ।
हृदि श्रियं देवतायै नम ।

कगङ्गन्यास—

ओ देव्यं नमोऽङ्गुष्ठाभ्यां नम ।
 ओ पद्मिन्यै नमस्तजनीभ्या स्वाहा ।
 ओ विष्णुपत्न्यै नमो मध्यमाभ्या वषट् ।
 ओ वरदा नमोऽनमिकाभ्या हुँ ।
 ओ कमलरूपायै नम कनिष्ठाभ्या फट् ।

इसके बाद निम्न ध्यान करे—

आमीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजविभ्रती,
 दान पद्मयूगाभये च वपुषा सौदामिनीसन्निभा ।
 मुक्ताहारविराजमानपृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी
 पायाद्व कमला कटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ॥

किर मानमोपचारो द्वारा पूजन गौर शङ्ख स्थापन होना है ।

किर पीठ पूजा करके निम्न प्रकार पूजा करे—

अणिमादिक सिद्धदीश्च पाताल गुटिकाञ्जना
 चातुष्क दिव्य वेताल प्राप्नुयात् कमलार्चनात्
 कमला च भवेद्देवी कमला सर्व देवता ।
 कमला पार्वती साक्षात् कमला सर्व कारणम् ॥
 यस्या पूजनमात्रेण त्रिलोक्य पूजन भवेत् ।
 कमला च महादेवी त्रिधामूनि व्यस्थिता ।
 परा चैवापराचैव तृतीया च परापरा ॥
 कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजफल लभेत् ।
 हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा शत्रु महोत्कटम् ।
 व्याघ्रय, सर्वारिष्टानि फलायन्ते न शशय ।

आवाहनं

महालक्ष्मि समागच्छ पद्मनाभ पदादिह ।

पूजामि मा गृहाण त्वा त्व देवि सभृता ॥

(स्थिर प्रतिमा मे आवाहन तथा विनर्जन नही होता है)

आसनं

आलयस्तेहिकथित कमल कमलालये ।
कमलेकमलेह्यस्मिन् स्थितिं मत्कृपयाकुरु ॥

पाद्यं

गंगादि सलिलाधार तीर्थ मन्नाभिमन्त्रितम् ।
दूरयात्राश्रमहर पाद्य मे प्रतिग्रह्यता ॥

अर्घ्यम्

तीर्थोदकैर्महापुण्यै कल्पित पापहारकै ।
गृहाणार्घ्यं महालक्ष्मि भक्तानामुपकारिणि ॥

आचमनं

कर्पूरागुरु समिश्र शीतल जलमुत्तम ।
लोकमातृगृहाणेद दत्तमाचमन मया ॥

स्नान

स्नानायते महालक्ष्मि कर्पूरागुरुवासित ।
आहूत सर्व तीर्थेभ्यः सलिल प्रतिगृह्यता ॥

पञ्चाभृत स्नानम्

पयो दधि घृत देवि मधु शर्करया युतम् ।
पञ्चाभृत मया दत्त स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

शुद्धोदक स्नानम्

ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि ।
शुद्धस्नान गृहाणोद नारायणि नमोस्तुते ।

वस्त्रम्

तन्तुसन्तानसयुक्त कलाकौशल कल्पित ।
सर्वांगाभरण श्रेष्ठ वसन परिधीयता ॥
(अघोवस्त्रम्, कचुक उपवस्त्रञ्च समर्पयामि)

चन्दनम्

मलयाचलसम्पन्न नानापन्नगरक्षित ।
शीतल बहुलामोद चन्दन प्रतिगृह्यता ॥

अक्षतान्

अक्षताश्चसुर श्रेष्ठे कु कमाक्तान् सुशोभनान् ।
मया निवेदितान् भक्त्या गृह्यापरमेश्वरि ॥

सौभाग्य द्रव्यम्

तालपत्र मयानीत हरिद्रा कु कमाञ्जन ।
सिन्दूरालक्तक दास्ये सौभाग्य द्रव्यमीश्वरि ।

अलङ्कारान्

रत्नकङ्कणकेयूरकाचिकुण्डलनूपुर ।
मुक्ताहारं किरीटञ्च गृहाणाभरणानि मे ॥

पुष्पाणि

मिलित्परिमलामोद मत्तालि कुलसकुल ।
गृहाण नन्दनोत्पन्न पद्मे कृसुम सञ्चय ॥

धूपं

गन्धसभारसन्तद्ध नाना द्रुमरसोद्भव ।
सुरासुरनरानन्द धूप देवि गृहाण मे ॥

दूर्वा

विष्ण्वादि सर्वं देवाना प्रिया सर्वं सुशोभना ।
क्षीर सागर सम्भूते दूर्वा स्वीकुरु सर्वदा ॥

दीपं

मार्त्तण्ड मण्डला खण्ड चन्द्र विंशान्नि तेजसा ।
निदान देवि दीपोऽयं कल्पितस्तवभक्तितः ॥

नैवेद्यं

देवतालयपाताल श्रूतलाघारघान्यज ।
षोडशाकार सभार नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

फलं

इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि ॥

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूतं वदनाभोजभूषण ।
नानागुणं समायुक्तं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥

दक्षिणां

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीजं विभावसो ।
अनन्तं पुण्यफलदमतं शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

महानीराजनं

चक्षुर्द सर्वलोकामा तिमिरस्य निवारण ।
आर्तिवय कल्पित भक्त या गृहाण परमेश्वरि ॥

नमस्कारं

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः ।
नम प्रकृत्यै भद्रायै निवृत्ता प्रणता, स्मताम् ॥

प्रदक्षिणा

द्यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैश्च देशकालोद्भवंयुतम् ।
पुष्पांजलि मया दत्त गृहाण हृन्निवृत्तये ॥

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीशलाभूतिर्हरिप्रिया
पद्मा पद्मालया सपदुर्च्च श्री. पद्मधारिणी
नमस्ते स १० देवाना वरदासि हरिप्रिये
या गतिरवत्व प्रपन्नाना सामे भूयात्त्वदर्चनात्
या देवी सर्व भूनेषु लक्ष्मी रूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

फिर आवरण-पूजन करे । चारों दिशाओं, मध्य में और चारों
कोणों में इन मन्त्रों से पूजन करना चाहिये—

‘ओ’ देव्यै नमो हृदयाय नम । ओ पद्मिण्यै नम शिरसे

धूपं

गन्धमभारसन्नद्धं नाना द्रुमरसोद्भवम् ।
सुरासुरनरानन्दं धूपं देवि गृहाण मे ॥

दूर्वा

विष्ण्वादि सर्वं देवानां प्रिया सर्वं सुशोभना ।
क्षीरसागरसम्भूते दूर्वा स्वीकुरु सर्वदा ॥

दीपं

मार्त्तण्डमण्डलाखण्डचन्द्रवित्राग्नितेजसा ।
निदानं देवि दीपोऽयं कल्पितस्तवभक्तितः ॥

नैवेद्यं

देवतालयपातालभूतलाधारधान्यजम् ।
षोडशाकारसभारनैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

फलं

इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि ॥

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूतं वदनाभोजभूषणम् ।
नानागुणसमायुक्तं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥

दक्षिणां

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीजविभावसो ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

महानोराजनं

चक्षुर्द सर्वलोकामा तिमिरस्य निवारण ।
आतिवय कल्पित भक्त या गृहाण परमेश्वरि ॥

नमस्कारं

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः ।
नम प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता, स्मताम् ॥

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे ॥

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैश्च देशकालोद्भवंयुतम् ।
पुष्पांजलि मया दत्त गृहाण हृद्वत्त्रये ॥

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीशलाभूतिर्हरिप्रिया
पद्मा पद्मालया सपदुच्चै श्री. पद्मघाग्निणी
नमस्ते स १ देवाना वरदासि हरिप्रिये
या गतिस्वत्व प्रपन्नाना सामे भूयात्त्वदर्चनात्
या देवी सर्व भूनेषु लक्ष्मी रूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

फिर आवरण-पूजन करे । चारों दिशाओं, मध्य में और चारों
कोणों में इन मन्त्रों से पूजन करना चाहिये—

‘ओ’ देव्यै नमो हृदयाय नम । ओ पद्मिन्यै नम, शिरसे

स्वाहा । ओ महालक्ष्मै नमः शिखायै वषट् । ओ वरदायै नमः कवचाय हुँ । ओ कमलारूपायै नमोऽस्त्राय फट् ।

इसका पुरश्चरण दस लाख मन्त्र जप का है । पद्मों में धी, शहद और शक्कर मिला कर १० हजार आहुतियों का हवन करना चाहिये ।

४- महालक्ष्मी का द्वादशाक्षर मन्त्र है—“ओ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौं जगत्प्रसूत्यै नमः ।”

पीठ-न्यास तक पूर्व विधि है । ऋष्यादिन्यास इस प्रकार है—

शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः
मुखे गायत्री छन्दसे नमः
हृदि महालक्ष्म्यै देवतायै नमः ।

‘च बीजो का न्यास—

अगुष्ठे ॐ ऐं नमः,
तर्जन्या ओ ह्रीं नमः
मध्यमाया ओ श्रीं नमः
अनामिका या ओ क्लीं नमः
कनिष्ठाया ओ हसौं नमः
करतले ओ जगत्प्रसूत्यै नमः

मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके फिर मन्त्रन्यासादि न्यास करना चाहिये—

मस्तके ओ नमः, मुखे ह्रीं नमः, हृदये श्रीं नमः, गुह्ये क्लीं नमः, पदे हसौं नमः, त्वाक्मासरक्तमेदास्थिमज्जाशुक्रादिसप्तधातुषु जगत्प्रसूत्यै नमः ।

कराङ्गन्यास

ऐं ज्ञानाय अगुष्ठाम्या नमः । ह्रीं ऐश्वर्याय तर्जनीभ्यां

स्वाहा । श्रीशक्तये मन्त्रमाम्ना वजट् । क्ली बलाय अनामिकाभ्या
हृ । हसौ वीर्याय कनिष्ठाभ्या वीषट् । जगत्प्रसूत्यं नमस्तेजमे
करतलपृष्ठाभ्या फट् ।

हृदयादि षडङ्गान्यास करके निम्न ध्यान करे—

वालार्कच्युतिमिन्दुरखण्डविलसत्कोटीरहारोज्ज्वला
रत्नाकल्पविभूषिता कुचनता गाले करैर्मञ्जरीम् ।
पद्म कौस्तुभरत्नमप्यविरत सविभ्रती सस्मिता
फुल्लां भोज विलोचनत्रययुताध्यायेन् परामम्बिका

ध्यान के बाध की पूजन पद्धति पूर्वोक्त है । फिर आवरण-पूजा
इस प्रकार है—

श्री शङ्करनन्दनाम नम (दक्षिण भाग मे)
श्री पुरुषवन्वने नम (वाम भाग मे)
एँ ज्ञानाय नम
ह्री ऐश्वर्याय नम.
श्री शक्तये नम.
क्ली बलाय नम
हसौ वीर्याय नम
श्री जगत्प्रसूत्यं नम.
श्री तेजसे नम.

इसका पुरुषचरण १२ लाख है । दशांश हवन श्रीफन या पद्म
द्वारा और २० हजार तर्पण करना चाहिए ।

५—महालक्ष्मी का आदि मन्त्र है— ओ श्री ह्री कमले कमला-
लये प्रसीद प्रसीद श्री ह्री श्री महालक्ष्मी नम ”

श्रृङ्गादि न्यास तक की विधि पूर्वोक्त है । कराङ्गन्यास इस
प्रकार है—

श्री ह्री श्री कमले श्री ह्री श्री अगुष्ठाभ्या नमः । श्री ह्री
 श्री कमतालये श्री ह्री श्री तर्जनीभ्या स्वाहा । श्री ह्री श्री प्रसीद
 श्री ह्री श्री मध्यमाभ्या वषट् श्री ह्री श्री प्रसीद श्री ह्री अनामिका
 भ्या हु । श्री ह्री महालक्ष्मि श्री ह्री श्री कनिष्ठाभ्या वौषट् ।
 श्री ह्री श्री नम महालक्ष्मि श्री ह्री श्री अस्वाय फट् ।

हृदयादि पङ्क्त्यास के बाद ध्यान करना चाहिए—

सिन्दूरारुणकान्तिमञ्जवसति सौन्दर्यवारा निधि,
 कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम् ।
 हस्तवर्जैर्दसुपात्रमञ्जयुगलादशौ वहन्ती परा
 मावीता परिचारिकाभिरनिशध्यायेत् प्रिया शाङ्गिण

आवरण पूजा से पहिले की विधि पूर्वोक्त हैं । आवरण पूजन
 इस प्रकार करे—

अग्न्यादि कोणो, मध्य और चारो दिशाओ मे इस प्रकार अङ्ग
 पूजन करना चाहिए—

श्री ह्री श्री कमले श्री ह्री श्री हृदयाय नमः । श्री ह्री
 श्री कमलायये श्री ह्री श्री शिरसे स्वाहा । श्री ह्री श्री प्रसीद श्री
 ह्री श्री शिखाय वषट् । श्री ह्री श्री प्रसीद श्री कवचाय हुँ । श्री
 ह्री श्री महालक्ष्मि श्री ह्री श्री नेत्रत्रायाय वौषट् । श्री ह्री श्री
 महालक्ष्मि श्री ह्री श्री अस्त्राय फट् ।

इसका पुरस्चरण एक लाख जप का है । वित्त्वफल में धी,
 शक्कर, और शहद मिलाकर हवन करना चाहिये ।

लक्ष्मी-कवच

लक्ष्मीर्मे चाग्रता पातु कमला पातु पृष्ठतः
 नारायणी शीर्षदे शेषर्वाङ्ग श्री स्वरूपिणी

लक्ष्मी मेरे अग्रभाग की, कमला मेरे पृष्ठ भाग की, नारायणी मेरे शिर की और श्रीस्वरूपा भगवती मेरे सर्वांग की रक्षा करे । १।

रामपत्नी प्रत्यगे तु सदावतु रमेश्वरी ।
विशालाक्षी योगमाया कौमारी चक्रिणी तथा ॥
जयदात्री धनदात्री पाशाक्षमालिनी शुभा ।
हरिप्रिया हरिरामा जयंकरी महोदरी ॥
कृष्णपरायणा देवी श्रीकृष्णामनोमोहिनी ।
जय करी महारोद्री सिद्धिदात्री शुभकरी ॥
सुखदा मोक्षदा देवी चित्रकूटनिवासिनी ।
भय हेरत्सदा पायाद् भववन्धाद्विमोचयेत् ॥

“भगवान् राम की धर्मपत्नी, विशाल नयन वाली योगमाया कुमारी और चक्रधारिणी लक्ष्मी मेरे सर्वांग की रक्षा करें । वही विजय प्राप्त कराने वाली, धन देने वाली, पाशाक्ष मालिनी, कल्याणी, हरिप्रिया, महारोद्री, सिद्धिदात्री, शुभदायिनी, सुखदायिनी, मोक्षदायिनी, चित्रकूट-वासिनी लक्ष्मी मेरे भय को दूर करती हुई सदा रक्षा करे और ससार सागर की पाश को काट डाले । २।

कवचन्तु महापुण्यं य पठेत् भक्तिसयुतः ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यम्वा [मुच्यते सर्वसंकटात् ॥

तीनों समय अथवा एक समय ही जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस महापुण्यमय कवच का पाठ करते हैं, वे सभी संकटों से मुक्त होते हैं । ३

पठन कवचस्यास्य पुत्रघनविवर्द्धनम् ।
भीतिविनाशनञ्चैव त्रिषु लोकेषु कीर्तितम् ॥

इस कवच का पाठ करने से पुत्र और धन आदि की वृद्धि होती है तथा भय दूर हो जाता है । तीनों लोकों में इस कवच की महिमा गाई जाती है । ४।

भूजर्जपत्रे समालिख्य रोचनाकु कुमेन तु ।
धारणाद् गलदेशे च सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥

रोचन और कु कुम से इसे भोजपत्र पर लिख कर कण्ठ में धारण करे तो सर्व सिद्धियों की प्राप्ति होती है । १५।

अपुत्रा लभते पुत्र घनार्थी लभते घनम् ।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति कवचस्य प्रसादत ॥

इस कवच के प्रभाव से पुत्रहीन को पुत्र, घनहीन को घन और मोक्ष की कामना करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है । १६।

गर्भिणी लभते पुत्र बन्ध्या च गर्भिणी भवेत् ।
धारयेद्यदि कण्ठे च अथवा वामबाहुके ॥

कण्ठ अथवा बाँए हाथ में इस कवच को गर्भिणी स्त्री धारण करे तो श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है और बन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है । १७।

य पठेन्नित्यतो भक्तया स एव विष्णुवद्भवेत् ।
मृत्युव्याधिभय तस्य नास्ति किञ्चिन्महीतले ॥

भक्तिपूर्वक इस कवच का पाठ करने वाले मनुष्य विष्णु के समान, समर्थ होते हैं, मृत्यु और रोग आदि उनको व्याप्त नहीं होते । १८।

पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि ।
सर्वपापविमुक्तस्तु लभते परमा गतिम् ॥

इस कवच को पढ़ने, पढ़ाने और सुनने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर परमगति लाभ करते हैं । १९।

विपदि सकटे घोरे तथा च गहने वने ।
राजद्वारे च नौकाया तथा च रणमध्यतः ॥
पठनाद्वारणादस्य जयमाप्नोति निश्चितम् ॥

विपत्ति काल में, घोर सकट के समय, भीषण जंगल में, राजद्वार

या नोकारोहण में, युद्धक्षेत्र में अथवा अन्य कही भी इस कवच को धारण करने वाले मनुष्य निश्चय ही विजयी होते हैं । १०।

अपुत्रा च तथा बन्ध्या त्रिपक्ष शृणुयादपि ।

सुपुत्र लभेत सा तु दीर्घायुष्क यशस्विनम् ॥

बन्ध्या या पुत्रहीन नारी देह मास तक यदि इस कवच को धारण करे तो वह महादेवकी और दीर्घायुष्य पुत्र प्राप्त करती है । ११।

शृणुयाद्य शुद्धबुद्ध्या द्वौ मासौ विप्रवक्त ।

सर्व्वान्कामानवाप्नोति सर्व्वबन्धाद्विमुच्यते ॥

पवित्र मन से दो मास पर्यन्त जो मनुष्य विद्वान् ब्राह्मण से इस कवच को सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और वह सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है । १२।

मृतवत्सा जीववत्मा त्रिमास शृणुयाद्यदि ।

रोगी रोगाद्विमुच्येत पठनान्मासमध्यतः ॥

जिस नारी के मरा हुआ बालक होता हो अथवा जिसके हो हो कर मर जाय, वह तीन महीने तक इस कवच को धारण करे अथवा जो रोगी पुरुष इसका पाठ करे वह सभी रोगों से छूट जाते हैं । १३।

लिखित्वा भूर्जपत्रे च ह्यथवा ताडपत्रके ।

स्यापयेन्नियतं गेहे नाग्निचौरभय क्वचित् ॥

भोजपत्र या ताडपत्र पर इस कवच को लिख कर जो अपने घर स्थापित करे, उसके लिए अग्नि या चोर आदि का भय नहीं रहता । १४।

शृणुयाद्धारयेद्वापि पठेद्वा पाठयेदपि ।

य पुमान्सतत तस्मिन्प्रसन्ना सर्व्वदेवत ।

नित्यप्रति जो इस कवच को सुनता, पढ़ता, दूमरे को पढ़ाता अथवा इसे धारण करता है, उस पर देवता प्रसन्न रहते हैं । १५।

बहुता किनिहोक्तेन सर्व्वजीवेश्वरेश्वरी ।
 आद्या शक्तिः सदा लक्ष्मीर्भक्तानु गृहकारिणी ।
 धारके पाठके चैव निश्चला निवसेद् ध्रुवम् ॥

इस कवच का पाठ करने और धारण करने वाले पुरुषों पर, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली आद्या शक्ति लक्ष्मी कृपा करती और उनके घर में निवास करती हैं । १६।

महाकाली

महाकाली का आशय है देवी स्वरूपास्तर शक्ति जो कि अपने को एक लय में कर देती है ।

महाकाली का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्ग चक्रगद्गेषुचापपरिधाञ्छुन भुशुण्डी शिरः
 शङ्ख सदधती करैस्त्रिनयना सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
 नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशका सेवे महाकालिकां
 यामस्तौत्स्वपिते हरो कमला हन्तु मधु कंटभम् ॥

अर्थात् "अपने दस हाथों में खंभ, चक्र, गदा घनुष, बाण, परिवि, बूल, भुशुण्डी, कपाल और शख की धारण करने वाली, समस्त अर्गों में दिव्य आभूषणों से सुसज्जित, नीलमणि के समान शरीर कान्ति वाली, दस मुख और दस पैर वाली महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ, जिसका स्तवन भगवान् विष्णु के सो जाने पर मधु और कंटभ की मारने के लिए ब्रह्माजी ने किया था ।

शास्त्रों में महाकाली की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित की गई है—

प्रलय काल में भगवान् विष्णु योग-निद्रा में लीन थे कि उनके

कानो से मधु और कैटभ नाम के दो राक्षस उत्पन्न हुए जो ब्रह्मा को मारने के लिए दौड़े । ब्रह्मा ने भगवान् की योग-निद्रा भा करने के लिए भगवान् के नेत्र कमल स्थित योग निद्रा का स्तवन किया । भगवान् विष्णु के नेत्र, मुख, नाभिका, बाहु और हृदय से बाहर निकल कर भगवती उपस्थित हो गई । भगवान् की योग निद्रा भी समाप्त हुई । ब्रह्मा की बचाने के लिए भगवान् राक्षसों से युद्ध करने लगे । यह युद्ध पाँच हजार वर्ष तक चलता रहा परन्तु राक्षस न मारे गए । अन्त में भगवती ने उन राक्षसों की वृद्धि में मोह उत्पन्न किया, जिससे अभिमान का उदय हुआ और वे भगवान् ने वर माँगने की शेखी बघारने लगे । भगवान् ने अवसर का लाभ उठाया और अपने हाथों उनके मारे जाने का वरदान माँगा जो दे दिया गया । भगवान् ने चक्र से उनका सर काट डाला । इस प्रकार ब्रह्मा की रक्षा के लिए भगवती ने काली का रूप धारण किया ।

देवी का कालिका नाम क्यों पड़ा ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि पार्वती के शरीर-कोष में से एक शिवा निकली जिसके कारण देवी कृष्ण वर्ण हो गई और कालिका नाम पड़ा ।

तस्या विनिर्गताया तु कृष्णाभूत सापि पार्वती ।

कालिकेति समाख्याता हिमालयकृताश्रया ॥

काली के आविर्भाव के उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि देवी नित्य हैं परन्तु देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए विशेष रूप ग्रहण करके इस लोक में भवती हैं ।

देवाना कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥

(सप्तशती १।६६)

इसका साक्षात्कृत महामाया के नाम से गुण-गान किया जाता

है । दश महाविद्याओं में सबसे पहला नाम काली का ही आता है । शिव की तरह काली की मूर्तियों के भी आठ भेद हैं परन्तु 'दक्षिणा' अत्रिक प्रसिद्ध है ।

काली का रूप अत्यन्त भयङ्कर है । उसके हाथों में खड्ग और त्रिशूल हैं । रक्त धारा का प्रवाह, श्मशान में निवास, जलनी चिता, श्वाशना—यह सभी काली के भयङ्कर रूपों की प्रदर्शित करते हैं । उसकी बाह्याकृति में ध्वस और द्रव्य के दर्शन होते हैं । यह उनके 'श्मशानाज्य-वासिनी, श्वाशना, श्वरूप आदि नामों से ही विदित होता है । मुण्डकोपनिषद् (१।२।४) में भी लिखा है—

काली कराली च मनोजवा च

सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।

स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी

लेलायमाना इति सप्त जिह्वा ॥

अर्थात् "काली अत्यन्त उग्र मन के समान चञ्चल, लाली युक्त, धूम्र वर्ण, चिगारियों से युक्त, देदीप्यमान विश्वरुचि—यह लपलपाती सप्त जिह्वाएँ अग्नि की हैं ।

काली का सत्त्वज्ञान जानने के लिए यह रूप आवश्यक है क्योंकि काली का सम्बन्ध काल से है । काली वह है जो काल पर प्रतिष्ठित है । काल उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की क्षमता नहीं रखता बल्कि उसका सहारा ग्रहण करता है । शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हुए कहता है—

कालो हि जगदाधार ।

"वह काल जगत का आधार है"

काल का दूसरा नाम रुद्र प्रथवा सदाशिव है । रुद्र उग्रता के प्रतीक और ध्वस के देवता हैं ।

भगवान् शङ्कर का निवास स्थान श्मशान है । वे गले में मुण्ड-माला धारण करते हैं । मृत्यु के काल-पाग— महामर्ष उनके कण्ठ में भुजाग्रों में, यज्ञोपवीत में लिपटे हुए हैं । तीक्ष्ण त्रिशूल उनका शस्त्र है । जब वे तीसरा नेत्र खोलते हैं तब चारों ओर आग बरसती है । कुपित होकर वे तीसरे नेत्र से जिसे भी देखते हैं वह जल-बल कर भस्म हो जाता है । कामदेव की मृग मगीचिका को एक बार उन्होने पलक मारते-मारते जलाकर भस्म कर दिया था । उनके वीरभद्र, भैरव एवं नन्दीगण कितने विकराल हैं इसकी कल्पना करने मात्र से रोमांच हो उठते हैं । जब प्रलय की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है तब वे ताण्डव नृत्य करने लगे जाते हैं । उनके चरणों की धिरकन जैमे-जैमे गतिशील होती चलती है, वैसे ही जरार्जर्ण कूड़ा करकट प्रभून दावानल में जल-जल कर अनन्त अन्तरिक्ष में विलय होता चला जाता है । पाप-पुरुष उनके चरणों में भा गिरता है । गिव-ताण्डव-नृत्य के चित्रों में एक उकड़ उलटे मुह पड़ा हुआ भयभीत जीव दिखाई पड़ता है । उस की पीठ पर नटराज के चरणों की धिरकन गतिशील होती है । यह पाप-पुरुष मानव अन्न करण में निवास करने वाले पशु ही हैं, इसी की समय-समय पर अमुर शब्द से भर्त्सना की जाती रहती है । ताण्डव नृत्य का प्रयोजन इस पाप पुरुष को परास्त करना, उसकी माया मरीचिका को निरस्त करना ही है ।

रुद्र का आभूषण सर्प सहारक शक्ति है । वह काच का प्रतीक है । काल क्रिमी को नहीं छोड़ता । इस जगत में उत्पन्न हर वस्तु उसके गले के नीचे उतर जाती है । सर्प क्रोध का भी प्रतीक है । कबीर ने क्रोध को भी काल की सजा दी है ।

रुद्र को वेदों में अग्नि का प्रतीक माना गया है । अग्नि का कार्य भस्म करना है और जलाना है । इसलिए भस्म को गिव का चिन्ह माना गया है । मूर्तियों और चित्रों में वह भस्म विभूषित दिखाए गए हैं ।

श्रीर शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है । महाकाल भी छाती पर गटे होकर महाकाली का मट्टहास करना इसी तथ्य का अनकारिक चित्रण है ।

शिव के हाथों में त्रिशूल अवश्य है, वे उसका प्रतिवार्य परिस्थितियों में प्रयोग भी करते हैं पर हृदय में उनके सृजन की असीम वाछण ही भरी रहती है । सृजन की दबी काली उनकी हृदयेश्वरी है । उसे वे सदा अपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं आवश्यकतानुसार वह मूर्तिमान गतिशील और प्रखर हो उठती है । ध्वस के भवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो उठती है । आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू केची, भारी, सुई आदि तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों की भी जरूरत पड़ती है, पर उसमें भी अधिक सामग्री मरहमपट्टी की जुटाती पड़ती है । आपरेशन के समय किये गये घाव को भरा कैसे जाय ? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं अतएव वे रुई, गोज, मरहम पट्टी दवायें आदि भी बड़ी मात्रा में पास रख लेते हैं । ध्वम प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम पट्टी । भगवान् को ध्वस करना पड़ता है पर मूल में अभिनव सृजन की आकांक्षा ही रहती है । क्रूर कर्म में भी अनंत करुणा ही छिपी रहती है । महाकाल की आन्तरिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकांक्षा है । अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो ।

इस चित्रण का एक और भी उद्देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुनर्निर्माण में मातृ शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है । बाप द्वारा प्रताड़ना दिये जाने पर बच्चा मा के पास ही दौड़ता है और तब वही उसे अपने अञ्चल में छिपाती, छाती से लगाती, पुचकारती और दुलारती है । मातृ-शक्ति करुणा की स्रोत है । अस्पतालों में नर्स का काम महिलायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं, छोटे बालको

भस्म नाश और सहार का चिन्ह है क्योंकि जलने के बाद का यह अन्तिम रूप है। रुद्र को इमशान प्रिय है, वे प्रलय का साकार रूप हैं। इसलिए शास्त्रो ने काल की परिभाषा करते हुए कहा है—

कलनात्सर्वभूतानाम् ।

जो सर्वभूतों का नाश करता है, वह काल कहलाता है। यह काल ही नहीं महाकाल कहलाता है। काली तत्व का विवेचन करते हुए बताया गया है कि वह काल तत्व पर प्रनिष्ठित रहती है।

महाकाली को पुराणों में इस प्रकार चित्रित किया गया है कि महाकाल भूमि पर लेटे हुए हैं और वे उनकी छाती पर खड़ी अट्टहास कर रही हैं। यो पति की छाती पर पत्नी का खड़ा होना अटपटा-सा लगता है। पर पहेलियों में यह अटपटापन जहाँ कौतूहल वर्धक एवं मनोरंजक होता है वहाँ ज्ञान वधक भी। कबीर की उल्टावाँसी और खुसरो की 'मुकरनी', पहेलियों के रूप में सामने आती हैं और अपना रहस्य जानने के लिए बुद्धिमत्ता को चुनौती देती हैं। भूमि पर लेटे हुए शिव की छाती पर काली का खड़े होकर अट्टहास करना, घटना के रूप में घटित हुआ था या नहीं इस भ्रम में पड़ने की अपेक्षा हमें उसमें सन्निहित मर्म और तथ्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

ध्वस एक आपत्ति घम है—सृजन सनातन प्रक्रिया। इसलिए ध्वस को रुकना पड़ता है, थक कर लेट जाना और सो जाना पड़ता है। तब सृजन को दुहरा काम करना पड़ता है। एक तो स्वाभाविक सृष्टि संचालन की रचनात्मक प्रक्रिया का संचालन—दूसरे ध्वस के कारण हुई विशेष क्षति की विशेष पूर्ति का आयोजन। इस दुहरी उपयोगिता के कारण ध्वस के देवता महाकाल की अपेक्षा स्वभावतः सृजन की देवी महाकाली का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। शिव जब पड़े होते हैं। तब शक्ति खड़ी है। शिव पीछे पड़ जाते हैं शक्ति आगे आती है। शिव सोये होते हैं और शक्ति जागृत रहती है। शिव का महत्व घट जाता है

और शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है । महाकाल की छाती पर खड़े होकर महाकाली का मृदुहाम करना इसी तथ्य का भ्रूलकारिक चित्रण है ।

शिव के हाथों में त्रिशूल अवश्य है, वे उसका अनिवार्य परिस्थितियों में प्रयोग भी करते हैं पर हृदय में उनके सृजन की असीम कारण ही भरी रहती है । सृजन की दवी काली उनकी हृदयेश्वरी है । उसे वे सदा अपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं । आवश्यकतानुसार वह मूर्तिमान गतिशील और प्रखर हो उठती है । ध्वस के भवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो उठती है । आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू केची, भारी, सुई आदि तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों की भी जरूरत पड़ती है, पर उसमें भी अधिक सामग्रियों मरहमपट्टी की जुटानी पड़नी है । आपरेशन के समय किये गये घाव को भरा कैसे जाय ? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं अतएव वे रुई, गोज, मरहम पट्टी दवायें आदि भी बड़ी मात्रा में पास रख लेते हैं । ध्वम प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम पट्टी । भगवान् को ध्वस करना पड़ता है पर मूल में अभिनव सृजन की आकांक्षा ही रहती है । क्रूर कर्म में भी मन त करुणा ही छिपी रहती है । महाकाल की आन्तर्गिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकांक्षा है । अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो ।

इस चित्रण का एक और भी उद्देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुनर्निर्माण में मातृ शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है । बाप द्वारा प्रताड़ना दिये जाने पर बच्चा मा के पास ही दौड़ता है और तब वही उसे अपने अञ्चल में छिपाती, छाती से लगाती, पुचकारती और दुलारती है । मातृ-शक्ति करुणा की स्रोत है । अस्पतालों में नर्सका काम यहिलायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुष्प नहीं, छोटे बालको

की शिक्षा देने वाले बाल मन्दिर—शिशु सदनों में महिलाओं द्वारा जैसी अच्छी तरह शिक्षण दिया जा सकता है, उतना पुरुषों द्वारा नहीं। कारण कि उनके अन्दर स्वभावतः जिस करुणा, दया, ममता, सेवा, सौजन्य एवं सहृदयताका बाहुल्य रहना है, उतना पुरुषों में नहीं पाया जाता पुरुष प्रकृतित कठोर है और नारी कोमल है। दोनों का सम्मिश्रण होने से एक सतुलित स्थिति बनती है अन्यथा एकाकी रहने वाले पुरुष सेना जैसे कठोर कार्यों के लिये ही उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं।

यदि वर्तमान अवाछनीय परिस्थितियों की जिम्मेदारी नर-नारी में से किसकी कितनी है इसका विश्लेषण किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि ६० प्रतिशत उद्धनता पुरुषों द्वारा बरती गई है, क्रूर कर्मों और दुर्भावनाओं के अभिवर्धन में उन्हीं का प्रमुख हाथ है। अपराधी, दुष्ट, दुरात्मा और दहभोक्ता व्यक्तियों में पुरुषों की ही संख्या ६० प्रतिशत होती है। वर्तमान उद्धनता की जिम्मेदारी प्रधानतया पुरुषों की होने के कारण दह भाग की उन्हीं के हिस्से में आयेगा। भावी विनाश में प्रताड़ना उन्हीं के हिस्से में अधिक आने वाली है। नारी क्रूर कर्मों से बची रहती है उनमें उसका योगदान नगण्य होता है इसलिये वह अपनी आध्यात्मिक गरिमा के कारण पुरुष का अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र, उज्ज्वल, मौम्य, रहने के कारण दुर्देव की कोपभाजन नहीं बनती, शिव की छाती पर शक्ति के खड़े होने का तात्पर्य यह भी है कि आत्मिक श्रेष्ठता की कमीटी पर कैसे जाने पर नारी की गरिमा ही अधिक भारी बैठती है। वही ऊपर रहती है। पुरुष इस दृष्टि से जब कि गिरा हुआ सिद्ध होता है तब नारी अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हुई गर्वोन्नत प्रसन्न वदन खड़ी होती है।

भावी नव निर्माण में, इमारतों, मंडकों, कल कारखानों सेना अथवा शास्त्रों का अभिवर्धन प्रधान नहीं, वरन् भावनान्मक निर्माण की प्रधानता रहेगी। इस क्षेत्र में नारी का ज्ञान, अनुभव तथा अधिकार

असद्विग्न है । इस लिये स्वभावतः जो जिसका अधिकारी है वही इस उत्तरदायित्व को वहन करेगा । भावी पुनरुत्थान में प्रधान भूमिका नर की नहीं नारी की होगी । विनाश की भूमिका का सरजाम जटाने में पुरुष आगे रहेगा, क्रूर कर्मों में उसी की बुद्धि आगे चलती है । सामान्य जीवन आनन्द की हत्या उसी ने की है । विघ्न-शान्ति पर आक्रमण उसी ने किया है । अब अपनी दुष्टता की पूर्णाहुति में भी अपनी कलाक दो-दो हाथ दिखावे तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । लेकिन भावनात्मक नवनिर्माण की, इससे तुल्य वाद ही जिस पुनरुत्थान की आवश्यकता पड़ेगी उसे वह पूरा न कर सकेगा । यह कार्य नारीको करना है । इसी सत्य को प्रतिपादित करती हुई महाकाल के थक जाने पर उसकी छाती पर महाकाली का हामविलास होना चित्रित किया गया है ।

पुरुष में अन्य विशेषणों से कितनी ही वयो न हो, भावनात्मक क्षेत्र में, आध्यात्मिक क्षेत्र में—नारी से वह बहुत पीछे है । यही कारण है कि साधना क्षेत्र में नारी ने जब भी प्रवेश किया है । वह पुरुष की तुलना में सौ गुनी तीव्र गति से आगे बढ़ी है । उसे इस दिशा में अधिक शीघ्र और अधिक महत्वपूर्ण सफलताएँ मिलती हैं । माता को कन्या अधिक प्रिय होती है, उन्हें वे दुलार भी अधिक करती हैं और अनुग्रह भी । अध्यात्म की अधिष्ठात्री महाशक्ति का अवतरण अनुग्रह यदि नारी साधको पर अधिक सरलता से, अधिक मात्रा में होता है तो यह उचित ही है । भावी नव निर्माण में जिस स्तर की क्षमता, योग्यता, पूँजी एवं तत्परता की आवश्यकता होगी वह स्वभावतः नारीमें ही प्रचुरतापूर्वक मिलेगी । इसलिये मर्महित पुरुष को कमक कराह के साथ विश्राम करने देकर नारी ही आगे बढ़ेगी और वही पुनरुत्थान की परिस्थितियों का सृजन करेगी । समय-समय पर ऐसा होता भी आया है । पुरुष अध्यात्मवादियों की सफलताओं में प्रधान भूमिका नारी की रही है । वह सहयोग, स्याति प्राप्त भले ही न कर सकी हो, पर सत्य की दृष्टि से यही सुनिश्चित है कि आत्म बल के उपाजर्जन में किसी भी पुरुष का अद्भुत, आसाधारण सहयोग किन्हीं नारियों का ही रहा है ।

राम की महिमा का श्रेय सीता और कौशल्या को कम नहीं है। कौशल्या के प्रशिक्षण तथा सीता के सहयोग को यदि हटा दिया जाय तो राम का वर्चस्व फिर कहाँ रह जायगा ? सीता के बिना राम का चरित्र ही क्या रह जाता है। उनकी सारी गतिविवियों के पीछे सीता ही आच्छादिन है। कृष्ण की आसुगी में राधा ही रहनी थी। देवकी और यशोदा का वात्सल्य, कुन्तीका प्रोत्साहन और आशीर्वाद, द्रोपदीकी श्रद्धा, गोपियों का स्नेह इन सब तत्वों ने मिल कर कृष्ण के कृष्णत्व की पूर्ति की थी। इन उपलब्धियों के अभाव में बेचारे कृष्ण कुछ कर पाते या नहीं इसमें सन्देह ही रहता।

बुद्ध का आध्यात्मिक प्रशिक्षण उनकी मौसी द्वारा सम्पन्न हुआ था। तपस्या के बाद लौटे तो उनकी पत्नी यशोधरा भी अनुगामिनी होकर आई। अम्बपाली के आत्म-समर्पण के उपरान्त तो भगवान् का प्रयोजन हजार गुनी गति से तीव्र हुआ। प्रतिभाशाली व्यक्ति जहाँ माने हैं वहाँ किसी भी दिशा में अभिवृद्धि होती है पण्डितों की महान् भूमिका में द्रोपदी का 'रोल' अत्यन्त प्रभावी है। एक नारी द्वारा पाँच नर-रत्नों को प्रचुर बल प्रदान किया गया, यह नारी-शक्ति भाण्डावार का चिन्ह है। मदालसा ने अपने सभी पुत्रों को अमीष्ट शिष्या से सुसम्पन्न किया था। एक नारी अमख्य मानव प्रणियों को नर से नारायण बनाने में समर्थ हो सकती है। उसकी भावनात्मक सृष्टि इतनी परिपूर्ण है कि कृष्ण का सामयिक अस्तित्व न होने पर भी मीरा ने उहे पति रूप में साथ रहने और नाचने के लिए मूर्तिमान कर लिया था।

प्राचीन काल के तपस्वी तत्त्वदर्शी एवं महामनीषी ऋषियों में से प्रत्येक सपत्नीक था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवताओं की पत्नियाँ, मरुस्वनी लक्ष्मी काली उनके वर्चस्व को स्थिर रखनेमें आधार-स्तम्भ की तरह हैं। नारी के रमणी रूप की ही अर्त्तना की गई है अन्धध्या उमकी ममग्र पत्ता, गङ्गा की तरह पवित्र, और अग्नि की तरह

प्रखर है । पिछले दिनों भारतीय राजनैतिक क्रांति का नेतृत्व करने में ऐनी बेसेन्ट की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । लक्ष्मीबाई सगजिनी नायडू आदि कितनी ही महिलाएँ इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम कर चुकी हैं । इस क्रांति युग की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में जिन महामानवों ने गुप्त किन्तु अद्भुत पुरुषार्थ किया है उनमें रामकृष्ण परमहंस और योगी अरविन्द मूर्धन्य हैं । दोनों को नारी का शक्ति-मान्निध्य प्राप्त था । परमहंस के साथ महा योगिनी—भैरवी तथा पत्नी शारदामणि और अरविन्द के साथ मानाजी का जो अनुपम सहयोग हुआ उसी के बल-बूते पर वे लोग अपनी महान् भूमिका सम्पादित कर सके । ऐसे प्रमुख उदाहरण भारत व विदेशोंमें विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में, भावनात्मक उपलब्धियों में नारी का वर्चस्व प्रधान है और इसी के सहयोग से नर का इस दिशा में महान् सफलता मिली है । शिव की छानी पर शक्ति का खड़े होना इसी तथ्य का उद्घाटन करता है कि अन्य क्षेत्रों में न सही कम से कम आत्मबल की दृष्टि में तो नारी की गरिमा अमदिग्ध है ही ।

भावी नव निर्माण निकट है । उसकी भूमिका में नारी का योगदान प्रधान रहेगा । अगले ही दिनों कितनी ही तेजवान् नारियाँ अपनी महान् महिमा के साथ वर्तमान कैदुल को उतार कर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करनी और उनके द्वारा नव निर्माण अभियान का सफल संचालन सम्भव होगा । भावी समार में, नये युग में, हर क्षेत्र का नेतृत्व नारी करेगी । पुरुष में सहस्राब्दियों तक विश्व नेतृत्व अपने हाथ में रख कर अपनी अयोग्यता प्रमाणित कर दी । उसकी क्षमता विकासोन्मुख नहीं विनाशोन्मुख ही सिद्ध हुई । अब वह नेतृत्व उसके हाथ में छिन कर नारी के हाथ जा रहा है । हमें उसमें बाधक नहीं सहायक बनना चाहिए । खिन्न नहीं प्रसन्न होना चाहिए । विरोध नहीं स्वागत करना चाहिये । भावी परिस्थितियों के अनुकूल हमें टलना चाहिये । इसी का

सकेत उस चित्रण में सन्निहित है जिसमें महाकाल की छाती पर महाकाली को प्रतिष्ठापना प्रदर्शित की गई है ।

काली का श्याम वर्ण क्यों ? श्याम वर्ण तमोगुण का प्रतीक है । ध्वस के सभी चिन्ह उसमें दिखाई देते हैं । मृत्यु का रङ्ग भी काला दिखाया जाना है । मृत्यु के देवता यमराज का शरीर भी श्याम वर्ण से चित्रित किया जाता है । काले रंग की यह विशेषता है कि उस पर कोई भी दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता और जब काला रंग किसी वस्तु पर चढ़ जाता है तो वह उतरता भी नहीं । इसमें सभी तरह के रंग समा जाते हैं और यह सभी पर अपना प्रभुत्व रखता है । प्रलय की स्थिति में सारा जगत उसमें समा जाता है परन्तु उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता ।

ऋग्वेद १।१६४।४७ में सूर्य को कृष्ण कहा गया है । ऋग्वेद १।३५।२ में पृथ्वी को भी कृष्ण कहा है । वेदों में आकषण शक्ति से मुक्त वस्तु को भी कृष्ण कहा गया है । ससार में सबसे अधिक आकर्षक शक्ति सूर्य में होती है । इस लिए उसे कृष्ण कहा गया है ।

जिन ग्रहों को सूर्य सञ्चलित करते हैं, उनको भी कृष्ण कहा गया है, क्योंकि उनमें भी आकर्षण शक्ति होती है । यदि उनमें यह शक्ति न होती तो वह नियमबद्ध रूप से सूर्य के चारों ओर न घूमते रहते । सूर्य उन्हें अपनी ओर खींच लेता और भस्म कर देता । इसीलिए पृथ्वी को भी कृष्ण कहा गया है ।

बाह्य जगत में पृथ्वी सूर्य और उनके ग्रहादि विश्व की महान् शक्तियों के द्योतक हैं । अतः काली का यह कृष्ण वर्ण शक्ति प्रतिष्ठा को चित्रित करता है । कहते हैं—सृष्टि में पहले चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था । यह स्थिति भी काली की ही है ।

यह काली का रहस्यात्मक चित्रण है ।

काली पूजन विधि

तत्र कालोत्तरे । कामत्रय वह्निसस्थ रतिविन्दुविभूषितम् ।

कर्म युरम तथा लज्जायुगल तदनन्तरम् । ।
 दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबोजानि चोच्चरेत्
 अन्ते वह्नि वधू दद्याद्विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ॥
 मन्वर्य माहया मले । ककारोज्ज्वलरूपत्वात्केवल मोक्ष-
 दायिनी । ज्वलनार्थं समायोगात्सर्व तेजोमयी शुभा ॥
 मायात्रयेण देवेशि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
 बिन्दुना निष्कलत्वाच्च कैवल्यफल दायिनी ॥
 वाजत्रया शाम्भवी सा केवल ज्ञानचित्कला ।
 शब्दबीजद्वयेनैव शब्द राशिप्रबोधिनी ॥
 लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
 सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकाणी ।
 स्वाहया जगता माता सर्व पाप प्रणाशिनी ॥

काली तन्त्र के अनुसार कानि का मन्त्र यह है—“क्री क्री क्री
 हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कानिके क्री क्री क्रो हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।” यह
 मन्त्र मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र है । इसके वर्णों का अभिप्राय इस प्रकार
 है—जल रूपी ककार मुक्ति का देने वाला है, अग्नि रूपी रेक सर्वतेजो-
 मयी है । क्री क्रो क्रो—यह सृजन, स्थिरता और प्रलय के द्योतक
 हैं । बिन्दु निष्कल ब्रह्म रूप है, अतः यह कैवल्य प्रदान करता है ।
 हूं हूं—शब्द ज्ञान प्रदान करते हैं । ह्रीं ह्रीं यह दोनों बीज मृजन,
 स्थिरता और प्रलय का प्रतिनिधित्व करते हैं । जब दक्षिण
 कालिके को सम्बोधन किया जाता है तो इसमें देवी की समीपता अभि-
 प्रेत है । स्वाहा से विश्व के मातृ रूप का बोध होता है । यह सर्व पापों
 को हरने वाला है ।

दक्षिण कानिका के अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—क्री एकाक्षर
 मन्त्र है । यह महामन्त्र सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है । ह्रीं
 हमरा एकाक्षर मन्त्र है । इस मन्त्र से उपासना करने पर उपासक सब

शास्त्रो का ज्ञाता हो जाता है इन दोनों एकाक्षर मन्त्रों का पुरश्चरण एक लाख मन्त्र जप का है और दशाश हवन का विधान है । कुल चूडामणि मन्त्र के अनुसार दिन में एक लाख मन्त्र और रात में एक लाख मन्त्र जप का विधान है । रात्रिजप में दक्षिण कालिका की सिद्धि होती है ।

काली तन्त्र में काली के अन्य मन्त्र भी लिखे हैं—

ओ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं ।

इसका एक लाख का पुरश्चरण होता है और दशाश हवन । विश्वसार तन्त्र के अनुसार उपरोक्त मन्त्र में 'स्वाहा' मिलाने पर यह २३ अक्षर का मन्त्र हो जाता है । इस २३ अक्षर वाले मन्त्र में से जब प्रणव को अलग कर दिया जाता है तो यह २२ अक्षर का बन जाता है, यथा—

ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

'प्रणव' और स्वाहा हटा देने पर २० अक्षर का मन्त्र बन जाता है ।

'ओ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा' यह मन्त्रों का राजा विख्यात है । इसका नाम काली हृदय है ।

विश्वसार तन्त्र में कुछ और मन्त्रों का निर्देश है—

'क्रीं ह्रीं ह्रीं' यह महाकाली का महामन्त्र है जिसको स्वयं महाकाली ने कहा है ।

क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा ।

क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा ।

ऐं नमः क्रीं ऐं नमः क्रीं कलिकायै स्वाहा ।

क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हू ही दक्षिण कालिके फट् ।

क्री क्री हू ह ही ही दक्षिण कालिके क्री क्री हू ह ही हों
स्वाहा ।

क्री क्री क्री हू हू ही ही स्वाहा ।

क्री दक्षिण कालिके स्वाहा ।

क्री हूँ हूँ ही क्री हूँ हूँ हो स्वाहा ।

क्री क्री हूँ हूँ ही ही क्री क्री हूँ हूँ हो स्वाहा ।

क्री क्री क्री ही ही हूँ हूँ क्री क्री क्री ही ही हूँ हूँ स्वाहा ।

नम एं क्री क्री कलिकायै स्वाहा ।

नम आं आं क्री क्री फट् स्वाहा कलिके हू ।

क्री क्री क्री स्वाहा ।

क्री क्री क्री फट् स्वाहा ।

क्री क्री क्री क्री क्री स्वाहा ।

ए नम क्री क्री कलिकायै स्वाहा ।

क्री ही ही दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हू ही दक्षिणे कालिके फट्

क्री क्री हूँ हूँ ही ही दक्षिणे कलिके क्री क्री हूँ हूँ

ही ही स्वाहा ।

क्री स्वाहा ।

क्री हूँ ही स्वाहा ।

क्री क्री क्री हू हू ही ही स्वाहा ।

क्री दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हू ही क्री हूँ ही स्वाहा ।

क्री क्री हूँ हूँ ही ही क्री क्री हूँ हूँ ही ही स्वाहा ।

क्री क्री क्री हूँ हूँ ही ही क्री क्री क्री हूँ हूँ क्री क्री स्वाहा ।

मायातन्त्र मे यह मन्त्र लिखा है —

नम ए की की कलिकायै स्वाहा ।

तन्त्रान्तर मे यह मन्त्र है —

नम आँ काँ आ को फट् स्वाहा कालि कालिकेँ हू ।

न्यास

ऋष्यादि न्यास—

गिरसि महाकाल भैरव ऋषये नम (दाँये अ गूठे से)
मुखे उष्णिक् छन्दसे नम (मध्यमा अनामिका से)
हृदये श्री दक्षिणकालिकादेवताय (नम त० म० अनामिका
कनिष्ठा से) ।

गुह्ये क बीजाय नम (तत्त्वमुद्रा से)
सर्वङ्गैर कीलकाय नम (करतलद्वय से)

करन्यास—

क्रा अ गुष्ठाभ्या नम , की तर्जनीभ्या स्वाहा,
क्र मध्यमाभ्या वपट् , क्र अनामिका भ्या हूँ ।
क्रौ कनिष्ठाभ्या वीषट् , क्र. करतलकरप्रष्ठाभ्या फट् ।

षडङ्गान्यास-

क्रा हृदयाय नम. (अनामिका मध्यमा तर्जनी से)
की गिरसे स्वाहा ,, ,, ,,
क्रू शिखाय वपट् (मूठी वायकर अगूठे से)
क्रौ कवचाय हूँ (दोनों करतलो से)
क्रौ नेत्रत्रयाय वीषट् (तर्जनी मध्यमा, अनामिका से)।
क्र अस्त्राय फट् (दक्ष तर्जनी मध्यमा से बायी हथेलीमे फट्-
कार कर) ।

व्यापक न्यास

इस मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए ३, ५, ७ बार शिर में पैर तक और फिर पैर में शिर तक करे ।

अतिमातृका न्यास

धूम्राक्ष विष्णु चक्र के १६ दलों में १६ स्वरों के आदि में 'ओ' और अन्त में नम मिलाकर हर दल में न्यास करना चाहिये । यथा 'ओ आ नम' आदि मूँगे की तरह लाल रङ्ग के अनाहत चक्र के १२ दलों में 'क' से लेकर 'ख' तक के १२ व्यञ्जनो को उसी तरह एक व्यञ्जन का एक एक दल में न्यास करना चाहिए । नील जीमूत वर्ण के मणिपूर चक्र के १० दलों में 'ड' से 'फ' तक के १० अक्षरों का पहले की तरह न्यास करना चाहिए । वियत् की तरह रंग वाले स्वाधिष्ठान चक्र के ६ दलों में 'द' से 'ल' तक ६ वर्णों का पहले की तरह न्यास करे । सोने की तरह लाल रंग के मूलाधार चक्र का पहले की तरह न्यास करे । चंद्रमा की तरह रंग वाले आज्ञाचक्र के दोनों दलों में 'ह' और 'स' वर्णों का पहले की तरह न्यास करना चाहिए ।

अहिमातृका न्यास

सृष्टि, स्थिति और संहार इसके तीन भेद हैं । यामल में लिखा है कि गृहस्थों के लिए स्थिरता, ब्रह्मचारियों के लिए स्थित्यन्ता और यती व वाणप्रस्थों के लिए संहारान्ता है ।

सृष्टि मातृका न्यास

मानसिक रूप से पुष्पो द्वारा तत्त्वमुद्रा और नीचे लिखी मातृका मुद्राओं से न्यास करना चाहिए ।

ओ आ नम - ललाट-अनामा ।

ओ आ नम, - मुखमण्डल-मध्यमा ।

ओ इ नम, ओ ई नम - दोनो नेत्र - तजनी - मध्यमा-
 अनामा - वृद्धा, ओ उ नम ओ ऊ नम - दोनो कर्ण -
 अगुष्ठ, ओ ऋ नम, ओ ॠ नम, - दोनो नासापुट - कनि-
 ष्ठागुष्ठ, ओ लृ नम, ओ ॡ नम - दोनो गाल - दोनो
 मध्यागुलिया, ओ ए नम, ओ ऐ नम, । दोनो होठ मध्यमा
 अनामा से ओ ओ नम, ओ औ नम - दोनो दन्तपत्तियाँ,
 ओ अ नम, ओ अ नम - जिह्वा और तालुमूल - (ब्रह्मरन्ध्र)
 ओ क नम - दक्षिण बाहुमूल, ओ र नम - कूर्पर (कुहनी),
 ओ ग नम - मणिवन्ध (कलाई) ओ घ नम, - अगुलि - मूल,
 ओ ङ नम - अगुलि अग्र - मध्यमा । इसी प्रकार मध्यमा
 से ओ च नम, ओ छ नम, ओ ज नम, ओ झ नम, ओ ञ
 नम - वामबाहुमूल, कूर्पर, मणिवन्ध, अगुलिमूल और
 अगुल्यग्र मे, ओ ट नम, ओ ठ नम, ओ ड नम, ओ ढ नम,
 ओ ण नम - दक्षिण पादमूल, जानु, गुल्फ और अगुलियो
 के मूल और अग्रभाग मे, ओ न नम - वामपाद मूले, जानु,
 गुल्फ और - अगुलियो अग्रभाग मे, दक्षपाश्वर् मे ओ पं नम
 वामपाश्वर् मे ओ फ नम । ओ ब नम - पृष्ठ मे - मध्यमा
 अनामा और कनिष्ठा तीनों से, ओ भ नम - नभि तर्जनी
 छोड चारो अगुलिया से, ओ म नम - पेट पांचो अगुलियो
 हस्ततल से ओ यं नम - हृदय ओ र नम - दक्षबाहुमूल,
 ओ ल नम - ककुत - स्थल, ओ व नम - वाम बाहुमूल,
 ओ श नम - हृदय से लेकर दाहिने हाथ तक, ओ ष नम -
 हृदय से वाम कर पर्यन्त, ओ स नम । हृदय से दक्ष पाद
 पर्यन्त ओ ह नम - हृदय से वाम पादपर्यन्त, ओ ल नम -
 हृदय से नाभिपर्यन्त, ओ क्ष नम, - हृदय से मुख - पर्यन्त ।

२- स्थिति मातृका न्यास—

पहले की तरह ऋष्यादि कराङ्गन्यास कर स्थिति-मातृका सरस्वती का इस तरह ध्यान करना चाहिए—

सिन्दूर कान्ति ममिताभरण त्रिनेत्रा ।
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवर दधानाम् ॥
पादवस्थिता भगवतीमपि काञ्चनाङ्गी ।
ध्यायेत् कराब्जधृत पुस्तक वर्णमालाम् ॥

‘इ’ से ‘क्ष’ तक ओर फिर ‘अ’ से ‘ठ’ तक न्यास करे ।

३, संहार-मातृका न्यास—

पूर्व वर्णित ऋष्यादि कराङ्गन्यास करके संहार मातृका सरस्वती का इस तरह ध्यान करना चाहिए—

अक्षम्रज हृग्गणपोतमुदग्रटक ।
विद्या करेग्विरत दधती त्रिनेत्राम् ॥
अद्भुतमौलिमरुणामरविन्दुवासा ।
वर्णेग्वरी प्रणमतरन्तनभारतमाम् ॥

‘क्ष’ में न्यास शुरू करके ‘अ’ तक विलोम क्रम से जब न्यास किया जाता है तो वह संहार मातृका न्यास कहलाता है ।

कला-मातृका न्यास—

ॐ अस्य श्री कलामातृकान्यासस्य प्रजापतिर्ऋषि गायत्री
छन्द श्री शारदा देवता जपाङ्गत्वे (पूजाङ्गत्वे) विनियोग
गिरसि प्रजापतिर्ऋपये नमः ।

मुखे गायत्री छन्दसे नमः ।

हृदि श्री शारदा देवतायै नमः ।

अ ओ आ अगुष्ठाभ्यां नमः ऋ ओ ऋ अनामिकाभ्यां नमः ।

इ ओ ई तर्जनीभ्या नम लृ ओ लृ कनिष्ठाभ्या नम
उ ओ ऊ मध्यमाभ्या नम अ ओ अ करतलपृष्ठाभ्या नम.

इसी तरह षडङ्ग न्यास कर ध्यान करना चाहिए । यथा—

हस्ते पद्म रथाङ्ग गुणमय हरिण पुस्तक वर्ण माला टङ्क
शुभ्र कपाल दरममृतलसद्मेमकुम्भ वहन्तीम् ॥
मुक्ता विद्युत्पयोदस्फटिकनवजवावन्धुरैः पञ्चवक्त्रैस्पर्श-
क्षोजनम्रा सकलशशिनिभा शारदा ता नमामि ॥

ओ अ निवृत्यै नम ।

ओ आ प्रतिष्ठायै नम ।

ओ ई विद्यायै नम ।

ओ ई शान्त्यै नम ।

ओ उ इन्धिकायै नम ।

ओ ऊ दीपिकायै नम ।

ओं ऋ रेचिकायै नम ।

ओ ॠ मोचिकायै नम ।

ओ लृ परायै नम ।

ओ लृ सूक्ष्मायै नम ।

ओ ए सूक्ष्मामृतायै नम ।

ओ ऐ ज्ञानमृतायै नम ।

ओ ओ आप्यायिन्यै नम ।

ओ औ व्यापिन्यै नम ।

ओ अ व्योमरूपायै नम ।

ओ अनन्तायै नम ।

ओ क सृष्ट्यै नम ।

ओं ख ऋद्धयै नम ।

ओ ग स्मृत्यै नम ।

- ओ घ मेघायै नमः ।
 ओ ङ कान्त्यै नमः ।
 ओ च लक्ष्म्यै नमः ।
 ओ छ द्युत्यै नमः ।
 ओ ज स्थिरायै नमः ।
 ओ झ स्थित्यै नमः ।
 ओ ञ सिद्ध्यै नमः ।
 ओ ट जरायै नमः ।
 ओ ठ पालिन्यै नमः ।
 ओ ड शान्त्यै नमः ।
 ओ ढ ऐश्वर्यै नमः ।
 ओ ण रत्यै नमः ।
 ओ त कामिकायै नमः ।
 ओ थ वरदायै नमः ।
 ओ द ह्लादिन्यै नमः ।
 ओ ध प्रीत्यै नमः ।
 ओ न दीर्घायै नमः ।
 ओ प तीक्ष्णायै नमः ।
 ओ फ रोद्व्यै नमः ।
 ओ व भयार्थै नमः ।
 ओ भ निद्रायै नमः ।
 ओ म तन्द्रायै नमः ।
 ओ य क्षुधायै नमः ।
 ओ र क्रोधिन्यै नमः ।
 ओ ल क्रियायै नमः ।
 ओ व उत्कार्यै नमः ।

ओ श मृत्यवे नम ।
 ओ ष पीतार्य नम ।
 ओ स श्वेतार्य नम ।
 ओ ह श्ररुणार्य नम ।
 ओ ल असितार्य नम ।
 ओ क्ष अनन्तार्य नम ।

श्रीकण्ठादिमातृकान्यास—

ओ अस्य श्री कण्ठादिमातृकान्तासस्य दक्षिणामूर्ति-
 ऋपि गायत्री छन्द, श्रीअर्धनारीश्वरो देवता हलो-
 वीजानि स्वरा शक्तय अव्यक्तय कीलकानि पूजाङ्गत्वे
 (जपाङ्गत्वे) विनियोग ।
 दक्षिणा मूर्ति ऋपये नम शिरमि ।
 गायत्री छन्द से नम, मुखे ।
 अर्धनारीश्वरदेवतार्य नम, हृदये ।
 हलो वीजेभ्यो नम गुह्यो ।
 स्वरेभ्य शक्तिभ्यो नम, पादयो ।
 अव्यक्तेभ्य कीलकेभ्यो नम सर्वाङ्गे ।
 अ क ख ग घ ङ आ हसा अगुष्ठाभ्या नम ।
 इ च छ ज झ ञ ई हसी तर्जनोभ्या नम ।
 उ ट ठ ड ढ ण ओ हस मध्यमाभ्या नम ।
 ए त थ द ध न ऐ हस अनामिकाभ्या नम ।
 ओ प फ ब भ म हसौ कनिष्ठाभ्या नम ।
 अ य र ल व श्र हस करतलपृष्ठाभ्या नम ।

इसी तरह हृदयादि ६ अंगो मे न्यास कर ध्यान करना चाहिए—
 बन्धूककाञ्चननिभ रुचिराक्षमाला

पागा कुशौ च वरद निजबाहुदण्डे ।
विभ्राणमिन्दुशकलाभरण त्रिनेत्र
मर्धाम्बिकेशमनिग वपुराश्रयाम ॥

अब नीचे लिखे मन्त्रों से श्रीकण्ठादि न्यास करे । हर मन्त्र के आरम्भ में ह्रीं और अन्त में नम जोड़ना चाहिए । यथा —

हसौ, अ कण्ठेगूर्णोदरीभ्या नम । आश्री अनन्तेशविर-
जाभ्या नम । इ सूक्ष्मेश गालीभ्या ।

ई त्रिमूर्तीगलोलाक्षीभ्या । उ अमरेगवतुलाक्षीभ्या ।

ऊ अर्घ्यगदीघघोणाभ्या । ऋ भारभूतीगदीर्घमुखीभ्या ।

ॠ अतिथिशगोमुखीभ्या । लृ स्थाएवीशदीघजिह्वाभ्या,

लृ हरेशकुण्डोदरीभ्या । ए क्षिण्ठीगऊध्वकेगीभ्या ए

भौतिकेशविकृतमुखीभ्या । ओ सद्योजातेश ज्वालामुखीभ्य

श्री अनुग्रहेशउल्कामुखीभ्या । अ अक्रूडेश श्री मुखीभ्या ।

अ महासेनेश विद्यामुखीभ्या । क कपीशमहाकालीभ्या ।

ख चण्डेश सरस्वतीभ्या ।

ग पञ्चान्तकेश गौरीभ्या ।

घ शिवेश त्रैलोक्य विद्याभ्या ।

ङ एक रुद्रेश मन्त्रशक्तिभ्या ।

च क्रमेश अष्ट शक्तिभ्या ।

छ एक नेत्रेशभूत मातृभ्या ।

ज चतुराननैशलम्बोदरीभ्या ।

झ अजेशद्राविणीभ्या ।

ञ सर्वेशनागरीभ्या ।

ट सोमेखेवरीभ्या ।

ठ लाङ्गलीशमञ्जरीभ्या ।

ड दम् केग कपिलीम्या ।
 ढ अर्धनारीश्वोरिणीम्या ।
 ण उमा कान्तेश का कोदरीम्या ।
 त आषाढीश पूतनाम्या ।
 थ दण्डीश भद्रकालीम्या ।
 द अत्रीशयोगिनीम्या ।
 ध मीनेश गखिनीम्या ।
 न मेषेश तर्जनीम्या ।
 प लोहितेश कालिरात्रिम्या ।
 फ शिखीश कुब्जिकाम्या ।
 ब छगलण्ड कपर्दिनीम्या ।
 म महाकालेश जयाम्या ।
 य वाणीश सुमुखीश्वरीम्या ।
 र भुजगेशरेवतीम्या ।
 ल पिनाकीश माघवीम्या ।
 व खड्गीश वारुणीम्या ।
 श वकेश वायवीम्या ।
 ष श्वेतेशर क्षोविघरिणीम्या ।
 स भृग्वीगसह जाम्या ।
 ह नकुलीश लक्ष्मीम्या ।
 ल शिवे शब्द्यापिनीम्या ।
 क्ष सम्बर्तकेश महामाम्या नमः ।

वर्ण न्यास

निम्न न्यास नव मुद्रा से यथोक्त स्थानों में करें—

ओ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ नमः

हृदय

ओ ए ऐ ओ औं अ अ क ख ग घ नम.	दक्ष भुजा
ओ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नम	वाम भुजा
ओ ए त थ द ध न प फ ब भ नम	दक्ष जङ्घा
ओ म य र ल व श ष स ह क्ष नम	वाम जङ्घा

घोटा न्यास

- १ ओ से पुटित मातृका और मातृका-पुटित प्रण मातृका
- २ लक्ष्मी बीज-पुटित मातृका और मातृका-पुटित लक्ष्मीबीज
- ६ कामबीज-पुटित मातृका और मातृका-पुटित कामबीज ।
- ४ माया बीज पुटित मातृका और मातृका-पुटित मायाबीज
- ५ काली बीज द्वय (क्री क्री) पुटित 'ऋ ऋ लृ लृ और ऋ ऋ लृ लृ' पुटित कालीबीजद्वय ।

- ६ मूल-पुटित मातृका और मातृका-पुटित मूलबीज (क्री)

इनसे अनुलोम और विलोम क्रम से तत्त्व मुद्रा मातृका न्यास के सब स्थानों में न्यास कर लेने पर मूख से १०८ बार व्यापक न्यास करना चाहिए ।

तत्त्व न्यास

मूल मन्त्र 'क्री' होने पर उसके ३ भाग करने चाहिए—क, र, ई । विद्याराज्ञी होने पर आरम्भ के ७ बीजों का पतला भाग (क्री क्री हूं ह्रीं ह्रीं) मध्य खण्ड के ६ भक्षरों (दक्षिण कालिके) का और तीसरे खण्ड (क्री क्री क्री हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा) नौ वर्णों का करना चाहिए । इन विभागों से सिर से नाभि तक, नाभि से हृदय तक और हृदय से सिर तक न्यास करना चाहिए ।

बीज न्यास

क्री नम ब्रह्मरथ मे ।

क्री नम भ्रू युगल मे ।
 क्री नम ललाट मे ।
 ह्रीं नम गुह्य मे ।
 ह्रू नम. नाभि मे ।
 ह्रूं नमः मुख मे ।
 ह्री नम. सर्वाङ्ग मे ।

विद्यान्यास

सिर—क्री नम ,
 मूलाधार—क्री नम ,
 हृदय—क्री नम ,
 तीनो नेत्र—क्री नम ,
 दोनो कान—क्री नम ,
 मुख—क्री नम
 दोनो भुजा—क्री नम ,
 पीठ—क्री नम ,
 दोनो जानु—क्री नम ,
 और नाभि—क्री नम ,

लघुषोढा न्यास

मस्तक—ओ नम ,
 मूलाधार—स्त्री नम ,
 लिङ—ए नम ,
 नाभि—क्री नम ,
 हृदय—ऐ नम ,
 कण्ठ—क्री नम .

भूमध्य—हृसी नम ,
 दाहिनी बाहु—श्री नम ,
 वाम बाहु—श्री नम ,
 दक्ष पाद—ह्री नम ,
 वाम पाद—क्री नम ,
 पीठ—क्री नम ,

पीठ न्यास

हृदय मे तत्त्व मुद्रा से—श्री ह्रीं आघार शक्तये नम ।
 प प्रकृत्यै नम ,
 क कूर्माय नम ,
 व वेपाय नम ,
 त प्रथिव्यै नम ,
 श्री सुषाम्बुद्वये नमः,
 श्री मणिह्री पाय नमः,
 श्री चिन्ता मणिगृहाय नमः,,
 श्री श्मशानाय नम ,
 श्री पारिजाताय नमः,,
 श्री रत्नवेदिकायै नम ,
 श्री नाना मुनिभ्यो नम ,
 श्री नाना देवेभ्यो नमः,
 श्री घर्माय नम - दायी कन्धा,
 श्री ज्ञानाय नम - बाया कन्धा,
 श्री वराग्याय नम - दाहिनी कमर-
 श्री ऐश्वर्याय नम - बाई कमर,
 श्री अवर्माय नम - सुख,

ओ अज्ञानाय नमः — बाँया भाग,
 ओ अवैराग्याय नमः — नाभि,
 ओ अनैश्वर्याय नमः — दाहिना भाग ।
 इसके बाद षोडश दल के कमल की कर्णिका से -
 ओ आनन्दकन्दाय नमः ।
 ओ अनन्ताय नमः ।
 ओ पद्माय नमः ।
 ओ अर्कमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः ।
 ओ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः ।
 ओ म वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः ।
 ओ त तमसे नमः ।
 ओ आ आत्मने नमः ।
 ओ अन्तरात्मने नमः ।
 ओ प परमात्मने नमः ।
 ओ ह्री ज्ञानात्मने नमः ।
 इसके बाद अष्टदलो पर पृष्ठ से - इ इच्छाशक्त्यै नमः,
 ज्ञा ज्ञानशक्त्यै नमः,
 क क्रियाशक्त्यै नमः,
 क कामिन्यै नमः,
 का कामदायै नमः,
 र रत्यै नमः,
 र रतिप्रियायै नमः,
 आ आनन्दायै नमः ।
 कर्णिका पर - म मनोन्मन्यै नमः ।
 उसके बाद ऐ परायै नमः ।

हर्षी अपरायै नम ।

सदाशिव - महाप्रेतपद्मासनाय नमः ।

पूजा मन्त्र

आदौ त्रिकोणमालिख्य त्रिकोण तद्बहिर्लिखेत् ।

ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥

ततो वृत्त समालिख्य लिखेदष्टदल तत

वृत्त विलिख्य विधिवत् लिखेद्भूपूरमेककम् ।

मध्ये तु बन्दव चक्र बीज मामा विभूषितम् ॥

“प्रथम बिन्दु, फिर निज बीज क्री फिर भुवनेश्वरी बीज ‘ह्री’ लिखे और इसके बाहर त्रिकोण और उसके भी बाहर तीन त्रिकोण बना कर फिर अष्टदल पद्म और फिर वृत्त बनावे । उसके बाहर चतुर्द्वार बनावे । यही काली पूजा का मन्त्र कहा गया है’ ।

जप

लक्षमेक जपेद्विद्या हविष्याशी दिवा शुचि ।

ततस्तु तदृशशेन होमयेद्विषा प्रिये ॥

पूजन के मन्त्र में मूल मन्त्र का एक लाख बार जाप करे और जप के दशाश घृत की आहुति दे ।

ध्यान

करालवदना घोरा मुक्तकेशी चतुर्भुजाम् ।

कालिका दक्षिणा दिव्या मुण्डमालाविभूषिताम् ।

सद्यश्छिन्नशिर खड्गवामाघोर्द्धकराम्बुजाम् ।

अभय वरदञ्चैव दक्षिणाघोर्द्धयाणिकाम् ॥

महामेघप्रभा श्यामा तथा चैव दिगम्बरीम् ।

कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचच्चिताम् ॥
 कणावितसतानीतशत्रुयुग्मभयानकाम् ।
 घोरदष्टाकरालास्यां पीनोन्ततपयोधराम् ॥
 शवाना करसघाते कृतकाञ्ची हसन्मुखीम् ।
 मृक्कच्छगटागलद्रक्तधाराविस्फूरिताननाम् ।
 घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
 बालाकमण्डलाकारलोचनत्रितयान्वाताम् ॥
 दन्तुरा दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
 शवरूपमहादेवहृदयोपरि सस्थिताम् ॥
 शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्दिताम् ।
 महाकालेन च सम विपरीतरतातुराम् ॥
 सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
 एव सचिन्तयेत् काली सर्वकामसमृद्धिदाम् ॥

“भगवती काली देवी करानवदना, घोरा, मुक्तकेशी, चार भुजा-
 वाली एव मु डोंकी माला से सुशोभित हैं । उनके बाएँ श्रग के दोनों हाथों
 में तत्काल छेदित मृतक का शीश और खड्ग हैं तथा दाएँ श्रग के दोनों
 हाथों में अभय और वरमुद्रा स्थित हैं कण्ठ में मुण्डो की माला से युक्त
 वह देवी महामेघ के समान श्याम वर्ण, दिगम्बरा काली टपकते हुए
 रुधिर से चर्चित, घोर दष्टा, पीन पयोधरा, दोनों कानों से लटके दो
 मृतक-मुण्ड अन्न कार रूप से सुशोभित, कटि में मृतक-हाथों की कोधनी
 वाली, हास्यमुखी हैं । उनके ओष्ठ द्वय से रुधिर धारा टपकने के कारण
 कम्पित मुख वाली घोर शब्द वाली, महारौद्री एव श्मशान में निवास
 करने वाली हैं । तरण श्ररुण के समान उनके तीनों नेत्र, बड़े-बड़े दात
 और लम्बे-लम्बे त्राण हैं । वह मृतक तुल्य महाशिव के हृदय पर स्थित
 है । घोर रव वाली गीदडी उनके चारों ओर घूमती हैं । महाकालके साथ

विपरीत व्यापार मे निमग्न वह देवी प्रमत्तमुखी एव सकल कार्यो के करने वाली है। ऐसा चिन्तन करे'

काली कवच

काली पूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविध प्रभो ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवच पूर्व्वसूचितम् ॥

त्वमेव शरण नाथ त्राहि मा दुःखसङ्कटात् ।

त्वमेव स्रष्टा पाता च सहर्ता च त्वमेव हि ॥

भैरवी बोली- "प्रभो । काली-पूजन और उसके विविध भाव तो मेने सुने, अब उनके कवच को सुनना चाहती हूँ । माप उमका वर्णन कर मेरे दुःख दूर कीजिए । हे नाथ । तुम ही मेरे आश्रय हो । तुम ही रक्षा और महार करते हो" ।१।

रहस्य शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवत्लभे ।

श्रीजगन्मगल नाम कवच मन्त्रविग्रहम् ।

पठित्व धरयित्वा च त्रैलोक्य मोक्षयेत् क्षणात् ।२।

भैरव बोले- "हे प्रिये । मैं तुम्हारे प्रति श्री जगन्मगल नामक कवच को कहता हूँ । इसका पाठ करने अथवा इसे धारण करने से नाथक तीनों लोको को शीघ्र ही मोहित कर सकता है" ।२।

नारायणऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वामहेश्वरम् ।

योगेश क्षोभमनयद्यद्धत्वा च रघूद्वह ।

वरदृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान् ॥

"भगवान् नारायण ने इसे धारण किया और नारी रूपसे योगेश्वर शंकर को मोहित कर लिया तथा श्रीराम ने जब इसे धारण किया तो इसकी शक्ति से रावण आदि घोर राक्षसों को नष्ट कर डाला" ।३।

यस्य प्रसादादीशोऽह त्रैलोक्यविजयी प्रभु ।

घनाधिप कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छ चीपति ।

एव सकला देवा सर्वसिद्धीश्वरा, प्रिये । ४।

“मैं भी इसी से त्रैलोक्य विजयी हुआ हूँ । इसी की कृपा से कुबेर घन के अधिपति हुए और शचिपति देवेन्द्र तथा सभी देवताओं ने इसी कवच के प्रसाद से सर्व सिद्धियों को प्राप्त किया” । ४।

श्रीजगन्मङ्गलास्यास्य कवचस्य ऋषि शिव ।

छन्दोऽष्टुब्देवता च कालिका दक्षिणेरिता ।

जगता मोहने दुष्टानिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु ।

योषिदाकषणे चैव विनियोग प्रकीर्तित, । ५।

“इस कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता दक्षिण कालिका, मोहन, दुष्ट-निग्रह, भुक्ति मुक्ति तथा योषिदाकषण में इसका विनियोग है ” । ५।

शिरो मे कालिका पातु क्रीङ्कारैकाक्षरी परा ।

क्री क्री क्री मे ललाटञ्च कालिका खड्ग धारिणी ॥

ह ह पातु नेत्रयुग्म ह्री ह्री पातु श्रुती मम ।

दक्षिणा कालिका पातु घ्राणयुग्म महेश्वरी ॥

क्री क्री क्री रसना पातु ह ह पातु कपोलकम् ।

वदना सकल पातु हरी हरी स्वरूपिणी । ६।

“कालिका और क्रीकारा मेरे शिर की, क्री क्री और खड्ग धारिणी कालिका मेरे ललाट की, हू हू दोनों नेत्र की, हरी हरी कानों की, दक्षिण कालिका दोनों घ्राण की क्री क्री क्री रसना की, हू हू कपोल की और हरी हरी स्वाहा स्वरूपिणी मेरे सम्पूर्ण वदन की रक्षा करें ” । ६।

द्वाविंशत्यक्षरी म्कन्वी महाविद्या सुखप्रदा ।

खड्गमुण्डवरा काली सर्वार्ज्जमभितोऽवतु ॥

क्रीहु ह्री अक्षरी पातु चामुण्डा हृदय मम ।

ऐहु ओए स्तद्वन्द्वन ह्री फट् स्वाहा ककुत्स्थलम् ॥

अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकृत्तका ।

क्रीक्रीहु हृ ह्रीही करौ पातु षडक्षरी मम ।७।

“बाईस अक्षरी विद्या रूपिणी महा विद्या दोनो कवो की, खड्ग मुण्ड वारण करने वाली काली सर्वांग की, हु हरी चामुण्डा हृदय की, ऐ हु ओ ए दोनो स्तन की, ही फट् स्वाहा कन्वो की’ अष्टाक्षरी महाविद्या दोनो भुजाओ की तथा क्री आदि षडक्षरी विद्या मेरे दोनो हाथो की रक्षा करे’ ।७।

क्री नाभि मध्यदेशञ्च दक्षिणा कालिकाऽवतु ।

क्री स्वाहा पातु पृष्ठन्तु कालिका सा दशाक्षरी ॥

ह्री क्री दक्षिणे कलिके हुँ ह्री पातु कटीद्वयम् ।

काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूर्युग्मकाभ् ॥

ओ ह्रीं क्री मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम ।८।

कालो हृन्नाम विद्य य चतुर्वर्ग फलप्रदा ।८।

“क्री नाभि देश की, दक्षिण कालिका मध्य देश की, की स्वाहा और दशाक्षरी मन्त्र पीठ की, ह्री क्री दक्षिण कलिके हु ही कटि की, दशाक्षरी विद्या ऊस की तथा ओ ही की स्वाहा मेरे जानु प्रदेश की रक्षा करें । यह विद्या चारो वर्गों को फल देने वाली है ।” ।८।

क्री ही ही पातु गुल्फ दक्षिणे कालिकेऽवतु ।

क्री ही ही स्वाहा पद पातु चतुर्दशाक्षरी मम ॥

“क्री ही ही गुल्फ क्री, क्री ह ही स्वाहा पाँव की एव चतुर्दशाक्षरी विद्या मेरी रक्षा करे , ।९।

खड्गमुण्डधरा काली वरदा भय वारिणी ।

विद्याभि सकलाभि सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।।

“खड्ग मुण्ड धारण करने वाली, वरवायिनी, भय हारिणी भगवती काली अपनी सम्पूर्ण विद्याओं सहित मेरे सर्व शरीर की रक्षा करें” । १०।

काली कपालिनी कुल्वा कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रभा दीप्ता घनत्विष ॥
नीला घना वालिका च माता मुद्रामिता च माम् ॥
एता सर्वा खड्गधरा मुण्डमालाविभूषिता ॥
रक्षन्तु मा दिक्षु देवी ब्राह्मी नारायणी तथा ।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ॥
वाराही नारसिंही च सन्वक्षिचामितभूषणा ।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु मा विदिक्षु तथा तथा । ११।

“काली, कपालिनी, विप्रचित्ता, उग्रप्रभावाली, नीला, घना, वालिका, माता, खड्ग धारिणी, मुण्डमाला विभूषिनी यह सब रूप वाली देवी, ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कुमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही यह सब अमित आभूषणों के धारण करने वाली भगवती मेरे दिक्षु, विदिक्षु की सर्वत्र रक्षा करें” । ११।

इत्येव कथित दिध्य कवच परमाद्भुतम् ।
श्रीजगन्मगल नाम महामन्त्रौघविग्रहम् ॥
त्रैलोक्याकर्षण ब्रह्मकवच मन्मुखोदितम् ।
गुरुपूजा विधयाथ गृह्णीयात् कवच तत ।
कवच त्रि सकृद्वापि यावज्जीवञ्च वा पुन । १२।

“यह जगन्मल महा मन्त्र वाला कवच अद्भुत और परम दिव्य कहा गया है । इसके द्वारा तीनो भुवन आकर्षित हो सकते हैं । गुरु-पूजा के पश्चात् कवच को ग्रहण करे । इस कवच का एक बार, तीन बार अथवा जीवन पर्यंत पाठ करे” । १२।

एतच्छाताद्र्मावृत्य त्रैलोक्य विजयी भवेत् ।

त्रैलोक्य क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादत ।

महाकविभवेन्मासात् सवसिद्धीश्वरो भवेत् । १३।

“इसके पचास बार पाठ करने से तीन लोक वश में हो सकते हैं । इसके प्रसाद से त्रिभुवन क्षोभित हो सकता है और इसी कवचके पाठ प्रताप में सात्रक एक महीने में ही सर्व सिद्धियों का अधीश्वर होने में समर्थ होता है ” । १३।

पुष्पाञ्जलीन् कालिकायै मूले नैव पठेत् सकृत् ।

गतवर्षमहन्नागा पूजाया फलमप्नुयात् । १४।

“मन्त्र जप के द्वारा काली को पुष्पाञ्जलि भेंट करे और यदि केवल एक बार इस कवच का पाठ करे तो सौ हजार वर्षों पूजा के समान ही माघक को फल की प्राप्ति होती है ” । १४।

भूर्जं विलिखितञ्चैव स्वर्गस्य धारयेद्यदि ।

शिखाया दक्षिणे बाहा कण्ठे वा धारयेद्यदि ।

त्रैलोक्य मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्य चूर्णयेत्क्षणात् ।

वह्मपत्या जीववत्सा भवत्येव न सशय । १५।

“इस कवच को भोज पत्र या मोने के पत्र पर लिख कर शीश पर, दाहिनी भुजा पर या कण्ठ में धारण कर तो तीनो भुवनो को मोहित कर ले अथवा क्रोधावेश में उसे चूर्ण करने में भी समर्थ हो सकता है । स्त्री यदि इस कवच का पाठ करे तो वह मन्तानवती तथा जीवित चन्म हो सकती हैं, इसमें सशय नहीं है ” । १५।

दस महाविद्याएँ

विद्या की परिभाषा

श्रुति में कहा है—

‘सा विद्या या विमुच्येय’

‘विद्या उसे कहते हैं जिससे मोक्ष की उपलब्धि हो ।’

‘अमृत तु विद्या’

‘विद्या अमृत है ।’

‘विद्या शक्ति समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।’

‘विद्या समस्तों की शक्ति होती है अतएव उसे शक्ति—इस नाम से कहा जाता है ।’

विद्यते देशकालानवच्छिन्नत्वेन वर्तते या सा विद्या ।

“देश और काल के अविच्छिन्न होने से जो मदा और सर्वत्र विद्यमान रहती है उसे ही विद्या कहते हैं । देश-काल उमका बाधक नहीं है ।

आचार्य शान्तनु के अनुसार—

वेदान्तोद्भावनीय परब्रह्मतत्वावगतिरूप साक्षात्कार-
लक्षण विद्या ।

“वेदान्त के द्वारा उद्भव न करने योग्य परब्रह्म त-व का ज्ञान रूप जो माक्षात्कार के लक्षण वाली है, वही विद्या है।”

पराशक्ति स्वयं ब्रह्म का प्रकाश है। इसे ही महाविद्या करते हैं—
देवी भागवत (१२।७।३२) में कहा है—

चेतनस्य न दृश्यत्व दृश्यत्वे जडमेव तत् ।

स्वप्रग्राशञ्च चैतन्य न परेण प्रकाशितम् ॥

अर्थात् “चैतन्य का कभी नेत्रों में प्रत्यक्ष नहीं होता है और दृश्य है वह जड ही होना है, चैतन्य कभी नहीं होता। चैतन्य स्वयं ही प्रकाश होने वाला है, परके द्वारा कभी प्रकाशित नहीं होना है।”

सतोगुण जब रजोगुण और तमोगुण को दबा कर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है तो दैवी सम्पत्ति का विकास होता है। इसी ज्ञान को विद्या कहते हैं। इस विद्या के गुण हैं—मत्य, प्रेम, न्याय, अहिंसा, अभय, बुद्धि, तप, उदारता, इन्द्रिय निग्रह, श्रद्धा, सेवा, तुष्टि, पुष्टि, ज्ञानि, लज्जा, धृति, स्मृति, ब्रह्म शक्ति, स्त्री मात्र में भगवती के दर्शन करना आदि।

विद्या का वाच्य इम प्रकार है—

‘विद् सत्तामाप्नु घातु से विद् ज्ञान—विद्यते, ज्ञायेत्’ व्युत्पत्ति से और ‘विदन् लभे’ घातु से अर्थ है वह परमा शक्तिविद्या सच्चिदानन्द-रूपा है।

ब्रह्म और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसे अग्नि और उसके जलाने की शक्ति अथवा उसकी गर्मी से होना है। तभी अक्षमालिकोपनिषद् में कहा है—

‘यत् सूत्र तद् ब्रह्म’

‘जो सूत्र है वह ब्रह्म है।’

‘यत् सुषिर सा विद्या’

‘जो सुषिर है वही विद्या है ।’

सा विद्या परम मुक्तेहेतुर्भूता सनातनी ।

ससारबन्ध हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

(उपनिषद्)

“वह विद्या ही परमाराध्या शक्ति और भक्ति का साधन है, पर आज्ञानियों के लिये ममार बन्धन का हेतु भी बन जाती है” ।

परा यथा दक्षरमफिगम्यते ।

(मुण्डकी १-१-५)

“जिसके द्वारा अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है, उसे परा-विद्या कहते हैं ।’

सर्वज्ञताम्य शक्ति परिमिततनुरत्यवेधमात्रपरा ।

ज्ञान मुदयादयन्ती विद्येति निगग्रने बुवराद्र्य ॥

(तत्त्व सन्दोह)

“इसकी सर्वज्ञता शक्ति परिमित होकर अन्य ज्ञान रखती हुई ज्ञान का उत्पादन करती है, उसे वृद्ध सुगी-जन विद्या कहते हैं ।”

ओ सव चैतन्य स्या तामाद्या विद्या च ।

धीमहि । बुद्धर्योग प्रचोदयात् ।

(देवी भागवत्)

‘जो आदि अन्त रहित सर्व चैतन्य स्वरूप, ब्रह्मविद्या सगी आदि शक्ति है, उसका हम ध्यान करते हैं, वे हमारी बुद्धि को सम्मान पर प्रेरित करे’

विद्याशक्ति, समन्ताना शक्तिरित्यभिधीयते ।

गुणत्रयाक्षया विद्या सा विद्या च तदाश्रया ॥

(वृहज्जावालोपनिषद्)

“सर्वत्र विद्या को ही शक्ति कहा गया है, वह विद्या तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार की है। समस्त प्राणी इन्हीं तीनों रूपों के आश्रित रहते हैं।’

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नत्वेन या विद्यते सा विद्या ॥

“जिमकी स्थिति प्रत्येक स्थान प्रत्येक काल में हो उसीको विद्या कहते हैं।’

निगम—आगम दोनों शास्त्रों में सृष्टि का प्रतिपादन है। अतः दोनों को ‘विद्या’ नाम से प्रभिहित किया जाता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पशु-पक्षी, कीट पतंग, घातु, रम, विष वनस्पति, औषधि, मनुष्य ये सभी पदार्थ विद्या के अन्तर्गत आते हैं। इन्हें क्षुद्र विद्याएँ कहा जाता है। सम्पूर्ण विश्व विद्या तो महाविद्या है। मनीषियों ने इसके दस भाग किए हैं। इन्हीं में विश्व के स्वरूप, उत्पत्ति, विकास आदि सभी समस्याओं का समाधान किया गया है।

कुछ तान्त्रिक विद्वान् दश महाविद्याओं को माघना की भिन्न-भिन्न अवस्था स्वीकार करते हैं। वे लक्ष्मी में कमला तक जीव की दस अवस्थाएँ मानते हैं। इन्हें भोग-वासना की एक प्रतिमा मानना चाहिए। इनका चयन क्रमशः इस प्रकार किया गया है कि साधक धीरे-धीरे एक-एक विकार ग्रन्थि को काटता हुआ ऊपर उठ जाता है और अन्त में काली-नन्व तक जा पहुँचता है, जिसे माघना का चमत्कार अथवा शेवा-वस्था कहा जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर भौतिक बन्धन सब टोले पड़ जाते हैं। जीवकी जीवत्व समाप्त हो जाना है और वह इश्वरत्व में प्रवेश करता है। अतः दस महाविद्याओं की उपासना जीव को क्षुद्र भूमि में रठाकर माघना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचाना है। सभी

विद्या को परम् पद, परम् तत्त्व व अमृत-तत्त्व की सजा दी जाती है, क्योंकि विद्या से ही जीवन-मुक्ति प्राप्त होती है । बिना विद्या के मनुष्य पशु कोटि में आते हैं । वे जीवित मृत कहे जाते हैं । विद्या ही जीवन है, स्फूर्ति है, शक्ति है, सब कुछ है ।

देवी को महाविद्या के गौरवान्वित नाम से सम्बोधित करने के कारण पर प्रकाश डालते हुए सप्तशती में कहा गया है—

विद्या समस्तास्तव देवि । मेदा

स्त्रिय, समस्ता सकला जगत्सु ।

त्वयैकया

पूरितमम्बयैतत्

काते स्तुति स्तव्यपरापरोक्ति

अर्थात् 'हे देवि । सारी विद्याएँ तुम्हारे ही भेद हैं और जगत् में जो समस्त स्त्रियाँ हैं वे भी आपके ही विभिन्न स्वरूप हैं । हे अम्ब ! आप एक में ही यह सम्पूर्ण विश्व पूरित कर रक्खा है । आपकी क्या स्तुति की जावे ? आप तो शक्तियों द्वारा जो स्वरूप दिया जाता है उससे परतरा हैं ।

विद्या के तीन भेद हैं—आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदेविक । इनका क्षेत्र इनके नामों से ही स्पष्ट है । विद्या के दो रूप हैं—परा और अपरा । इनका स्पष्टीकरण 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में इस प्रकार दिया गया है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते ।

तत्रापरा तु विद्यैषा ऋजुवेदो यनुरेव च ॥

सामवेदस्तथाऽथर्ववेद शिक्षा मुनीश्वर ।

कल्पो व्याकरण चैव निस्तुत छन्द एव च ॥

ज्योतिष च तथाऽनात्मविषया अपि बुद्धयः ।

अथैषा परमा विद्या ययऽन्मा परमाक्षरम् ॥

यत्तद्रेश्यमग्राह्यमगोत्र रूपवर्जितम् ।

अचक्षु थोत्रमत्यर्थ तदपाणिपद तथा ॥

नित्य विभु सर्वगत समूह्यम् च तदव्ययम् ।

तदभूतयोनि पश्यन्ति धीरा नात्मानमात्मनि ॥

“परा और अपरा नाम की दो विद्याये हैं, वे सावक के लिये ज्ञातव्य हैं । ऋक, यजु, साम, अथर्व, यह चारो वेद, शिक्षा, कल्प, छन्द, निरुक्त, व्याकरण और ज्योतिष—यह अपरा है । इसमें आत्म-विषय के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार का बौद्धिक ज्ञान भरा हुआ है । परन्तु त्रिमूर्ति के द्वारा आत्म-ज्ञान होता है वह परा विद्या है । वही परम अविनाशी आत्मतत्त्व है । वह दिखाई नहीं पड़ना, न ग्रहण किया जा सकता है । उसका नाम, रूप, व गोत्रादि कुछ नहीं है । उसके न नेत्र हैं, हाथ पाँव भी नहीं है । वह विषयो में परे, नित्य, विभु, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हानि से सर्वगत और निर्विकार है । वह सब भूतो का आश्रय स्थान है । जानी पुरुष उस परमात्मा का अपने ही आत्मा में दर्शन करते हैं” ।

दस महाविद्याओं के नाम इस प्रकार हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।

भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥

मातङ्गी सिद्धविद्या च कथिता वगलामुखी ।

एता दश महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥

१. काली २. तारा ३. षोडशी (त्रिपुर सुन्दरी ४. भुवनेश्वरी (राज-राजेश्वरी, श्रीविद्या, ललिता) ५. भैरवी (त्रिपुरभैरवी) ६. छिन्नमस्ता, धूमावती (प्रलक्ष्मी) ७. मातङ्गी ८. वगलामुखी ९. कमला (लक्ष्मी) ।

इनमें काली के शिव हैं महाकाल, तारा के अक्षोभ्य, षोडशी के पञ्चवक्त्र, भुवनेश्वरी के व्यम्बक, भैरवी के दक्षिणमूर्ति, छिन्नमस्ता के

कवच, मातंगी के मतंग, वगलामुखा के एक मुख महारुद्र, कमला के सदाशिव श्रीविष्णु । धूमावती विधवा हैं ।

इन दस महाविद्मों का दस अवतारों में भी सम्बन्ध स्थापित किया गया है—

कृष्णमूर्ति काली अरु तारा राममूर्ति जान,
छिन्ना नरसिंहमूर्ति वेदन बखानी है ।
वामन भुवनेशो औ वगलाकौ कूर्म रूप,
मत्स्यमूर्ति जान धूमा शास्त्रन में गानी है ॥
जामदग्न्य सुन्दरो औ भैरवी हनी को जान,
बौद्ध-रूप लच्छिमी प्रसिद्ध बात मानी है ।
दुर्गा शान्तिरूप हो सो दश अवतार भए,
ताप त्रय दूर करे आदि महारानी है ॥

काली की कृष्ण मूर्ति है और तारा की राम मूर्ति जाननी चाहिए । छिन्न नरसिंह मूर्ति वेदों में बखलाई है । भुवनेशो वामन और वगला का कूर्म रूप होना है । धूमा मत्स्य मूर्ति होती हैं जो शास्त्रों में गाई गई है । मुदगी जमदग्न्य और भैरवी हनी का स्वरूप है । लक्ष्मी बौद्धरूप है जो परम प्रसिद्ध है । दुर्गा शान्ति मन्त्ररूपा है । इस तरह ये दसो अवतार हैं जो तीनों तापों को भगाते हैं और ये आदि महारानी हैं ।

दस संख्या का महत्त्व

दस संख्या की महत्ता निगम-अनुगम श्रुतियों में इस प्रकार वर्णित की गई है—

दशाक्षरा वै विराट् (शत १।१।१)

‘दस अक्षर वाला विराट् है ।’

यज्ञो वै दश होता (तै ब्रा २।२।१।६)

‘यज्ञ वह होता है जिसमें दम हवन करने वाले हुआ करते हैं ।’

विराट् वै यज्ञ (शत १।१।१)

‘विराट् ही यज्ञ होता है ।’

यज्ञ उ वै प्रजापति (कौ ब्रा १०।१)

‘यज्ञ ही प्रजापति है ।’

प्रतिष्ठा दश मह (कौ ब्रा २७।२)

‘जिसमें दम की प्रतिष्ठा है ।’

प्रजापतिर्वै दश हेता (तै ब्रा २।२।१।३)

‘प्रजापति दम होता वाला होता है ।’

अन्तो वा एश यज्ञस्य यदृणममह तै ब्रा २।२।६।१)

‘अथवा यज्ञ का अन्न जिस दम वाला माना गया है ।’

शास्त्र का कहना है कि दशाक्षर पूर्ण विराट् से सृष्टि की रचना नहीं होती । न्यून विराट् से यह कार्य सम्पन्न होता है । कहा भी है—
‘न्यूनाद्धा इमा. प्रजा प्रजायन्ते ।’ केवल पुरुष और पुरुष मिलकर सृष्टि नहीं कर सकते और नहीं स्त्री और स्त्री यह कार्य कर सकते हैं ।
भोग्य—स्त्री और भोग्या—पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है । स्त्री सौम्या है, पुरुष आग्नेय है । अतः पुरुष प्रबल है, स्त्री उसमें न्यून है । इस न्यून सम्बन्ध से ही, पुरुष स्त्री के संयोग से ही उत्पत्ति होती है । इस शास्त्रीय भाषा में यह कहा जाता है कि दशाक्षर पूर्ण से प्रजोत्पत्ति नहीं होती, ९ अक्षर में न्यून विराट् से ही यह निर्माण कार्य होता है । विराट् सूक्ष्म है । उसमें से एक अक्षर कम कर दिया जाए तो उसके विराट्पने में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता । शास्त्र भी इसका अनुमोदन करता है—

न वै एकेनाक्षरेण छन्दासि वियन्ति न द्वान्याम् ।

९ वा अक्षर भी महत्वपूर्ण है । रामायण में परशुराम की

श्रेष्ठता की चर्चा करते हुए कहा गया है कि — “नवगुण परम पुनीत तुम्हारे “ब्राह्मणों के, ब्रह्मपरायण व्यक्तियों के, परम पुनीत नौ गुण होते हैं। यह नौ गुण यत्र हैं — (१) मृत्यु (२) अहिमा (३) चोरी न करना (४) इन्द्रिय निग्रह (५) अधिक सब्ज का लोभ न करना (६) पवित्रता (७) कष्ट सहिष्णुता (८) विद्या (९) ईश्वर और धर्म पर आस्था। इन्हीं नौ परम पुनीत गुणों को थोड़े हेर-फेर के साथ धर्म के दश लक्षणों में गिनाया है। योग शास्त्र में इन्हें पाच यम और पाच नियम के नाम से कहा गया है। उन्हें मनुष्य का — इन्सानियत का चिन्ह भी कह सकते हैं।

इस भूलोक में नौ सिद्धियाँ हैं जिन्हें प्राप्त करने से आनन्द की वृद्धि होती है। जिसके पास यह नौ सिद्धियाँ जितनी अधिक सख्या में होगी या जितनी अधिक मात्रा में सिद्धि होगी वह उतना ही सुखी रह सकेगा। नौ सिद्धियाँ इस प्रकार हैं— (१) विवेक, (२) पवित्रता (३) शान्ति (४) साहस (५) स्थिरता (६) कतव्य निष्ठा (७) स्वास्थ्य (८) समृद्धि (९) सहयोग।

९ का अङ्क इतना महत्वपूर्ण है कि इसकी महिमा कहते-कहते थक जाना पड़ता है। नीचे कुछ विवरण देखिये।

(१) रम्यो राम इमि जगत मे, नही द्वत विस्तार।

जैसे घटत न अङ्ग नव, नव के लिखत पहार ॥

नौ का पहाड़ा चाहे जितनी बार पढ़ा जाय पर उनके जोड़ का परिणाम ९ ही होता है (जैसे $९ \times २ = १८$, $१ + ८ = ९$, $९ \times ३ = २७$, $२ + ७ = ९$) इसी प्रकार चाहे जितनी बार नौ का पहाड़ा गिना जाय, उन अक्षरों का योग ९ ही होगा। जैसे नौ के पहाड़े की सब सख्याओं में नौका अक्षर मिला हुआ है, उसी प्रकार समार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर छिपा हुआ है।

(२) जगते रङ्ग छत्तीस (३६) ह्वै, राम चग्न छैतीन (६३) ।
तुलसी देखि विचार हिय, है यह मतो प्रबोन ।

छत्तीस की सख्या मे तीन और छै के अङ्को का मुख एक दूसरे मे विपरीत दिशा मे है, इसी प्रकार सामागिक माया बन्धनो से हमे विमुख रहना चाहिए और भावान क चाणो की और इस प्रकार अभिमुख रहना चाहिये, जैसे ६३ की सख्या मे यह दोनो अक्षर आमन-सामने मुख किये रहने है । इन उपदश देने वाली दो मन्त्राओ — ३६ का तथा ६३ के अङ्को का भी जाह नो होता है ।

(३) अशोहिणी सेना की की सख्या मे १० का ही प्रतिफल है । अशो हिणी की सख्या २१८७०० होती है इनका योग देखिये ।

$$२+१+८+७=१८, १+८=९$$

(४) युगो की सख्याओ का परिणाम ९ होता है । देखिये कलियुग का वर्ष ४३२००, $४+३+२=९$, द्वापर वर्ष ८६४००० ।

$८+६+४=१८$, मे $१+८=९$ अर्थात् वर्ष १२६६००० में $१+२+६+६=१८$ मे $१+८=९$, मन्वन्तर वर्ष १७२८०००, $१+७+२+८=१८$ मे $१+८=९$ ।

(५) चारो युगो के वर्षों का योग (दिव्य युग) ४३२०००० ।
 $४+३+२=९$ ।

(६) मन्वन्तर (७१ दिव्य युग) ३१२३२०००० $३+१+२+३+२=१८$ मे $१+८=९$ ।

(७) कल्प (१४ मन्वन्तर) वर्ष ४२६४००००००, $४+२+६+४+०=२७$ मे $२+७=९$ ।

(८) स्वरो मे ९ गुण है । आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, ञ ।

(९) वागे वेगे की मन्त्र मन्त्रा १६४०५ है $१+६+४+०+५=१६$, $१+६=९$ ।

(१०) श्रीरामचन्द्रजी का जन्म नवमी को—“नवमी तिथि हरि मास पुनीता” ।

(११) रामयण की रचना नवमी को ।

(१२) तुलसीकृत रामायण में छन्द मख्या ६६६० है, $६+६६=२७$ में $२+७=९$ ।

(१३) विप्र के गुण ९ ऋजु (सरलता) तपस्या, सन्तोष, क्षमा, अतृष्णा, जितेन्द्रियता, सत्य, अहिंसा, स्वाध्याय ।

(१४) पुराण १८, $१+८=९$ ।

(१५) नक्षत्र २७, $२+७=९$ ।

(१६) माला में बीज १०८, $१+८=९$ ।

(१७) पूज्यो के लिये लिखी जाने वाली श्रीम ख्या—१०८ में $१+८=९$ ।

(१८) राग ६, गिनी ३०=तीनों का योग ३६, $३+६=९$

(१९) गिनती के अङ्ग १ से ९ तक=९ ।

(२०) शक्ति पूजा की नव रात्रि, पृथ्वी के नौ खण्ड, नौ, ग्रह, शरीर के नौ छेद, नौ रत्न, नौ रस, नवधा भक्ति, नौ नाडी, नौ द्रव्य, नौ दुर्गा ।

इस प्रकार नौ का अङ्क अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से इसे 'ब्रह्म अङ्क' कहा गया है ।

सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र में नौ देवताओं का वर्णन आया है, ये नौ देवता यह हैं—(१) ओं कार, (२) अग्नि, (३) अनन्त, (४) चन्द्र, (५) पितृ (६) प्रजापति (७) वायु, (८) सूर्य (९) सर्व देवता । यह नौ देवता असल में नौ शक्तियों के नाम हैं, जो विक्रमित मनुष्यों में निवास किया करती हैं । इनका अर्थ इस प्रकार है—

१- ओंकार—ब्रह्म, परमात्मा, सर्वव्यापी, न्यायकारी मत्ता को सर्वत्र व्यापक देखकर बुरे कामों से बचना ।

२- अग्नि—तेज, वीरता, पराक्रम, पुरुषार्थ ।

३- अनन्त—वैयं प्रतीक्षा, आशा, दृढता ।

४- चन्द्र—शीतलता, शान्ति, मधुरता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता ।

५- पितृ—स्नेह, आत्मभाव, उपकार, वात्मल्य, क्षमा ।

६- प्रजापति—कुटुम्ब पालन, समाज की सुरक्षा ।

७- वायु—स्वच्छता, सफाई ।

८- सूर्य—प्रतिभा, शक्ति, वन, दमन ।

सर्व देवता—मङ्गलन, महयोग, एकता, समाजसेवा सब लोगों के लिए आदर-भाव, समदर्शन ।

इस तरह से दस और नौ दोनों अङ्क महत्वपूर्ण हैं । दस विराट् का प्रतीक है परन्तु एक अङ्क कम होने से भी कोई अन्तर नहीं पड़ता । विद्या, ज्ञान, ज्योति और अमृतत्व का मूर्त रूप है । विद्या इस प्रकार की है । उनके रहस्य का विवेचन यहाँ किया जाता है—

१- काली

काली का ध्यान इस प्रकार से किया जाता है—

ॐ ध्यायेत्काली महामाया त्रिनेत्रा बहुरूपिणी ।

चतुर्भुजा ललज्जिह्वा पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥

नीलोत्पलदलप्ररूपा शत्रूसघविदारिणीम् ।

नरमुण्ड तथा खड्ग कमल वरद तथा ॥

विभ्राणा रक्तवदना दध्राली घोररूपिणीम् ।

अट्टाट्टशमनिरत सर्वदा च दिगम्बराम् ॥

शवासनस्थिता देवी मुण्डमालाविभूषिताम् ।

‘जो महामाया, त्रिनेत्रा, बहुरूपिणी, चतुर्भुज, लपलपाती जिह्वा व ली, पूर्ण चन्द्र की तरह शोभायुक्त, नील कमल की पखुडियों की तरह सुन्दर, शत्रु समूह की नाशकर्ता हैं जो नरमुण्ड, खड्ग, कमल और वरमुद्रा धारण करती हैं । रक्त मुखमण्डन, दृष्टाओं की पक्ति में मयुक्त और धार रूपावली, अट्टहास करने में मलग्न दिग्म्बरा, शवामन पर स्थित, मुण्डों की माना में विभूषित है, उन काली देवी का ध्यान करे ।’

भक्त कहता है—

ओ-काली कालहरा देवी कङ्कालबीजरूपिणीम् ।

कालरूपा कलातीता कालिका दक्षिणा भजे ॥

‘मैं दक्षिण कालिका का भजन करता हूँ जो काल की नाशकर्ता काली है । जो कङ्काल बीज रूपिणी, कालरूपा और कलाओं से परे है ।’

काली की स्तुति करते हुए माधक कहता है—

घरित्री कीलाल शचिरपि समीरोऽपि गगन,
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।

स्तुति, का ते मातस्तव कुरुया मामगतिक,

प्रमन्ता त्व भूया भवमनु न भूयान्मम जनु, ॥

‘हे काली ! पृथ्वी, जन, तेज, वायु और आकाश, यह सब कुछ तुम ही हो । तुम्हीं कल्याणी, गिरिश रमणी हो, हे मातेश्वरी ! तुम्हारी ओर स्तुति क्या करूँ ? मैं गति रहित हूँ, आन मुझ पर प्रसन्न रहे ताकि मुझे और जन्म न लेना पड़े ।’

काली के स्वरूप और उसकी माधना की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए शास्त्र का वचन है—

ओ अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वै-

कर्मूति । गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधकगम्या, त्वमेका परब्रह्मरूपेण-
सिद्धा ॥

हे माना । तुम्हारे आकार और शक्ति को नापने में कोई भी
समर्थ नहीं (अर्थात् तुम्हारा आकार और शक्ति कल्पनातीत है), चिन्ता
द्वारा भी उसे नहीं पाया जा सकता है। तुम्हारा कोई एक स्थान नहीं,
तुम तो हर मनुष्य में सम्बसन्ति में प्रतिष्ठित हो । केवल त्रिगुणातीत अद्वैत
ज्ञान में ही तुम्हारी प्राप्ति सम्भव है । तुम तो केवल परब्रह्म रूप में ही
अधिष्ठित रहती हो ।'

अगोत्राकृतिन्वादनेकान्तिकत्वादलक्ष्यागमत्वादशेषाकर्त्वात् ।
प्रपञ्चालसत्वादनागम्भकत्वात् त्वमेकापरब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

‘तुम अगोत्र हो, आकार रहित हो, तुम स्थिर पदार्थ नहीं हो,
तुम्हारी गति को लक्ष्य करना सम्भव नहीं, अखिल वस्तु की तुम आकार
हो, इस विश्व-प्रपञ्च में तुम विद्यमान नहीं होती, तुम किसी की आर-
म्भिक नहीं हो, तुम तो केवल परब्रह्म सिद्ध हो ।’

असाधारणत्वादसम्बन्धकत्वादभिन्नाश्रयत्वादनाकारकत्वात् ।
अविद्यात्मकत्वादनाद्यन्तकत्वात् त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

‘तुम अनामान्य हो, जगत् के बाह्य प्रपञ्चों में अलग हो, परन्तु
हर पदार्थ में मयुक्त हो, तुम निराकार हो, अविद्यारूप वाली हो,
अनादि और अतन्त रूपिणी हो, तुम परब्रह्म रूप में ही सिद्ध हो ।’

कालो मवकी कारणभूता है --

यदा नैव छाता न दिग् न स्रो न कालो न वा पञ्च
भूतानि नाशा । तदा कारणीभूत सत्त्वं कर्मूतिसत्त्वमेका
परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

‘जब - ह्या, दिग्गु ओ - न्द्र नहीं थे, काल, पञ्चभूत और

दिक् कुछ भी नहीं था तब तुम इन सबकी कारणभूता एक मात्र सत्व-मूर्ति से अधिष्ठित थी, तुम्ही एक परब्रह्मरूप से सिद्ध हो ।’

न बाला न च त्व व्ययस्था न वृद्धा न च स्त्री न षण्ड, पुमानैव च त्वम् । न च त्व सुरो नासुरो नो नरो वा त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

‘न तो तुम बाला हो, न वयस्का हो, न वृद्धा हो, न स्त्री हो, न नपुंसक हो, न पुरुष हो, न देव हो न असुर और न ही मनुष्य हो, तुम तो केवल परब्रह्म रूपिणी सिद्धा हो ।’

विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशामृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च । तवेदृग्विद्या या निजाकारमूर्ति किमस्माभिरन्तर्हृदि ध्यायितव्या ॥

‘हे माता तुम विशुद्ध, चिन्मय, स्वप्रकाश, अमृत व आनन्दरूपा, जगद्व्यापिका हो, तुम्हारे इस प्रकार के स्वरूप का हम किस प्रकार से ध्यान करें ?’

काली के गुणों पर प्रकाश डालने वाला काली अष्टोत्तर कालनाम स्तोत्र है जिसमें काली के १०८ नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं—

काली कपालिनी कान्ता कामदा कामसुन्दरी ।
 कालरात्रि कालिका च काल भैरव पूजिता ।१।
 कुरुकुल्ला कामिनी च कमनीयस्वभाविनी ।
 कुलीना कुलकर्त्री च कुलवर्त्म प्रकाशिनी ।२।
 कस्तूरिरसनीला च काम्या कामस्वरूपिणी ।
 ककारवर्णनिलया कामधेनु करालिका ।३।
 कुलकान्ता करालास्या कामार्ता च कलावती ।
 कृशोदरी च कामाख्या कौमारी कुलपालिनी ।४।
 कुलजा कुलमन्या च कलहा कुलपूजिता ।

कामेश्वरी कामकान्ता कुञ्जरेश्वरगामिनो । १५।
 कामदात्री कामहर्त्री कृष्ण चैव कपर्दिनी ।
 कुमुदा कृष्णदेह च कालिन्दी कुलपूजिता । १६।
 काश्यपी कृष्णामाता च कुलिशाङ्गी कला तथा ।
 क्रीरूपा कुलगम्या च कमला कृष्णपूजिता । १७।
 कृशाङ्गी किन्नरी कर्त्री कलकण्ठी च कार्तिकी ।
 कम्बुकण्ठी कौलिनी च कुमुदा कामजीविनी । १८।
 कलस्त्री कीर्तिका कृत्या कीर्तिश्च कुलपालिका ।
 कामदेवकला कल्पलता कामागवर्द्धिनी । १९।
 कुन्ता च कुमुदप्रीता कदम्बकुसुमोत्सुका ।
 कादम्बिनी कमलिनी कृष्णानन्दप्रदायिनी । २०।
 कुमारीपूजनरता कुमारीगणशोभिता ।
 कुमारीरञ्जनरता कुमारीव्रतधारिणी । २१।
 कङ्काली कमनीया च कामशास्त्रविशारदा ।
 कपालखटवागधरा कालभैरव रूपिणी । २२।
 कोटररी कोटराक्षी च काशीकैलासवासिनी ।
 कात्यायनी कार्य्यकरी काव्यशास्त्रप्रमोदिनी । २३।
 कामाकर्षणरूपा च कामपीठनिवासिनी ।
 कङ्किनी काकिनी क्रीडा कुत्सिता कहलप्रिया । २४।
 कुण्डगोलोद्भवप्राणा कौशिकी कीर्तिवर्द्धिनी ।
 कुम्भस्तनी कलाक्षा च काव्या कोकनदप्रिया । २५।
 कान्तारवासि कान्ति कठिना कृष्णावल्लभा ।
 इति ते कथितम् देवि गुह्याद्गुह्यतरम् परम् । २६।

अर्थात्, 'काली कपाल धारण करने वाली—कान्ता अर्थात्

सुन्दरी—कामनाओं के दान करने वाली - काम के समान सुन्दरी -
 काबरायि - कालिका - काल भैरव के द्वारा पूजित - कुरुकुल्ला - कामिनी
 सुन्दर स्वभाव वाली - कुलीना - कुल के करने वाली - कुल के मार्ग
 प्रकाशित करने वाली - कस्तूरी रस के समान नीताकामना के योग्य -
 काम स्वरूप वाली - ककार वर्ण के विलय वाली - कामधेनु - करालिका -
 कुलकान्ता - कराल मुख वाली - काम से आर्त - कला से पूर्ण - कुश
 उदर वाली - कुलजा - कुलमन्या - कलहर - कुलरात्रिता - कामेश्वरी
 कामकान्ता - छुञ्जेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली - कामनाओं
 की देने वाली - कामदेव का हरण करने वाली - कृष्णा - कर्पादिनी -
 कुमुदा - कृष्ण देह वाली - कालिन्दी - कुल के द्वारा पूजित - कश्यपी -
 कृष्ण माता - वज्र के समान अङ्गों वाली - कला-क्री रूप वाली - कुल-
 गम्या - कमला - कृष्ण के द्वारा पूजित - कुश अङ्गो वाली - किन्नरी -
 कर्ती - कल (मधुर) कण्ठ वाली - कार्तिकी - कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली
 कोलिनी - कुमुदा - काम जीविनी - कलस्त्री - कीर्तिका - कृत्या कीर्ति-
 कुल पालिका - कामदेव की कला - मनोरथों को पूरा करने वाली -
 कल्पलता - कामाङ्ग के बढ़ाने वाली - कुतार - कुमुद प्रीता - कदम्ब
 के कुसुम के लिए उत्सुक - कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द
 प्रदान करने वाली - कुमारियों के गुणों में शोभायुक्त - कुमारियों के
 रञ्जन रत - कुमारी व्रतको धारण करने वाली - कङ्काली - कमनीया-
 कामशास्त्र की परिदृष्ट - कपान और खाट का पाया धारण करने वाली -
 काल भैरव के रूप वाली - कोटरी - कोटर के तुल्य नेत्रों वाली - काशी
 और कैलाश पर निवास करने वाली - काम के आकर्षण करने वाले
 रूप से युक्त - काम के पीठ(सिंहामन)पर निवास करने वाली - ककिनी -
 काकिली - क्रीडा कुत्सिता - कलह को प्यार करने वाली - कुण्ड गोल
 से उद्भव प्राणों वाली - कौशिकी - कीर्ति को बढ़ाने वाली - कुम्भ के
 समान स्तनो वाली - इलाक्षा - काव्या - कोकनद को प्रिय मानने वाली -

जगल में वाम करने वाली - कान्ति - कठिना - कृष्णा की वल्लभा—
हे देवि । यह आपका अष्टोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीय से
भी अति गोपनीय है, जो इस समय कहा गया है ।”

काली तत्त्व को जानने के लिए निम्न श्लोको का विश्लेषण
आवश्यक है—

शवारूढा महाभीमा घोरदष्टा हसन्मुखीम् ।

चतुर्भुजा खड्गमुण्डवराभयकरा शिवाम् ॥

मुण्डमालाधरा देवी ललज्जिह्वा दिगम्बराम्
एव सञ्चिन्तयेत काली श्मशानालयवासिनीम् ।

(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

‘वह काली शवारूढा, भयाकृति वाली, बड़ी तीक्ष्ण व भयावह
दष्टा वाली, हसमुखी, चतुर्भुज है । एक हाथ में खड्ग, एक में नरमुण्ड,
एक में अभय मुद्रा और एक में वर है । उसके गले में मुण्डमाला, जिह्वा
बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है । उसका निवास श्मशान है ।’

काली का यह ध्यान अलङ्कारिक शैली में वर्णित है । इसका
स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

काली शवारूढा है । शव का अभिप्राय किसी प्राणी के मुर्दे से
नहीं है वरन् शक्तिहीन विश्व से है । जब विश्व शक्तिमान् होता है तो
उसकी सज्ञा—शिव है । जब उससे शक्ति निकल जाती है तो वह शव
बन जाता है । विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की
है । काली का सम्बन्ध प्रलय-रात्रि के मध्य काल से है । इसीलिए वह
कृष्ण वर्णा कहलाती है । वह विश्व का नाश करने वाली कालरात्रि है ।
जब रूग्ण विश्व ही उसका भावार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है । इसीलिए
काली का शव पर खड़ी दिखाया जाता है ।

काली भयानक आकृति वाली है । महार उसका धर्म है । महार

सुन्दरी—कामनाओं के दान करने वाली - काम के समान सुन्दरी -
 काबरायि - कालिका - काल भैरव के द्वारा पूजित - कुरुकुल्ला - कामिनी
 सुन्दर स्वभाव वाली - कुलीना - कुल के करने वाली - कुल के मार्ग
 प्रकाशित करने वाली - कस्तूरी रस के समान नीताकामना के योग्य -
 काम स्वरूप वाली - ककार वर्ण के विलय वाली - कामधेनु - करालिका -
 कुलकान्ता - कराल मुख वाली - काम से भर्त - कला से पूर्ण - कृश
 उदर वाली - कुलजा - कुलमन्या - कलहर - कुलरात्रिता - कामेश्वरी
 कामकान्ता - छुञ्जरेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली - कामनाओं
 की देने वाली - कामदेव का हरण करने वाली - कृष्णा - कर्पादनी -
 कुमुदा - कृष्ण देह वाली - कालिन्दी - कुल के द्वारा पूजित - कश्यपी -
 कृष्ण माता - वज्र के समान भङ्गो वाली - कला-क्री रूप वाली - कुल-
 गम्या - कमला - कृष्ण के द्वारा पूजित - कृश भङ्गो वाली - किन्नरी -
 कर्त्ती - कल (मधुर) कण्ठ वाली - कार्तिकी - कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली
 कौलिनी - कुमुदा - काम जीविनी - कलस्त्री - कीर्तिका - कृत्या कीर्ति-
 कुल पालिका - कामदेव की कला - मनोरथों को पूरा करने वाली -
 कल्पलता - कामाङ्ग के बढ़ाने वाली - कुतार - कुमुद प्रीता - कदम्ब
 के कुसुम के लिए उत्सुक - कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द
 प्रदान करने वाली - कुमारियों के गुणों से शोभायुक्त - कुमारियों के
 रञ्जन रत - कुमारी व्रतको धारण करने वाली - कङ्काली - कमनीया-
 कामशास्त्र की परिदृष्ट - कपान और खाट का पाया धारण करने वाली -
 काल भैरव के रूप वाली - कोटरी - कोटर के तुल्य नेत्रों वाली - काशी
 और कैलाश पर निवास करने वाली - काम के आकर्षण करने वाले
 रूप से युक्त - काम के पीठ(सिंहासन)पर निवास करने वाली - ककिनी -
 काकिली - क्रीडा कुत्सिता - कलह को प्यार करने वाली - कुण्ड गोल
 से उद्भव प्राणों वाली - कौशिकी - कीर्ति को बढ़ाने वाली - कुम्भ के
 समान स्तनों वाली - कलाक्षा - काव्या - कोकनद को प्रिय मानने वाली -

जगल में वाम करने वाली - कान्ति - कठिना - कृष्णा की वल्लभा—
हे देवि ! यह आपका अष्टोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीय से
भी अति गोपनीय है, जो इस समय कहा गया है ।”

काली तत्व को जानने के लिए निम्न श्लोको का विश्लेषण
आवश्यक है—

शिवारूढा महाभीमा घोरदष्टा हमन्मुखीम् ।

चतुर्भुजा खड्गमुण्डवराभयकरा शिवाम् ॥

मुण्डमालाधरा देवी ललज्जिह्वा दिगम्बराम्

एव सञ्चिन्तयेत काली श्मशानालयवासिनीम् ।

(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

‘वह काली शिवारूढा, भयाकृति वाली, बड़ी तीक्ष्ण व भयावह
दष्टा वाली, हममुखी, चतुर्भुज है । एक हाथ में खड्ग, एक में नरमुण्ड,
एक में अभय मुद्रा और एक में वर है । उसके गले में मुण्डमाल, जिह्वा
बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है । उसका निवास श्मशान है ।’

काली का यह ध्यान अलङ्कारिक शैली में वर्णित है । इसका
स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

काली शिवारूढा है । शिव का अभिप्राय किसी प्राणी के मुर्दे से
नहीं है वरन् शक्तिहीन विश्व से है । जब विश्व शक्तिमान् होता है तो
उसकी मज्ञा—शिव है । जब उससे शक्ति निकल जाती है तो वह शिव
बन जाता है । विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की
है । काली का सम्बन्ध प्रलय-रात्रि के मध्य काल से है । इसीलिए वह
कृष्ण वर्णा कहलाती है । वह विश्व का नाश करने वाली कालरात्रि है ।
शिव रूपी विश्व ही उसका आवार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है । इसलिए
काली का शिव पर खड़ी दिखाया जाता है ।

काली भयानक आकृति वाली है । सहार उसका धर्म है । सहार

करने वाले योद्धा का रूप भयानक होना स्वाभाविक है। इसीलिए काली को प्रलयरात्रि रूपा सहारकारिणी शक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

युद्ध के दो पक्षों में से एक की विजय निश्चित होती है। विजेता को अपनी शक्ति पर गर्व होने लगता है और वह अपने शत्रु की निर्वलता पर हँसता है। काली तो शक्ति पुञ्ज है, जब वह आमुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करती हैं, तो वह भी शत्रु पक्ष की निर्वलता पर अट्टहास करती है। इसलिए उसे 'हसन्मुखीय' कहा गया है।

काली की चार भुजाएँ हैं। यह चार भुजाएँ पूर्णत्व की द्योतक है क्योंकि पूर्ण वस्तु को चतुरस्र कहा जाना है। उसके एक हाथ में खड्ग है जो नाश शक्ति का चिह्न है। नरमुण्ड विनष्ट प्राणियों का प्रतीक है। वह स्वयं निर्भय रहती हैं। जो भी उसका आश्रय ग्रहण करता है, वह भी निर्भय रहता है। इस आश्वासन के रूप में वह एक हाथ में अभय मुद्रा धारण करती है और एक में वर। इसीलिए वह 'वराभयकरा' कहलाती है। ऐसी बात नहीं कि वह केवल विनाश ही विनाश करती है, उसमें अपने भक्तों के प्रति अपार दया और करुणा भी है। अपनी शक्ति का जितना भाग सहार में व्यय करती है, उतना ही वह कारुण्य में करती है क्योंकि उसके दो हाथ एक कार्य करते हैं और शेष दो हाथ दूसरा काम।

जीवित प्राणियों के अतिरिक्त मृत प्राणियों का आश्रय भी काली ही है। इसलिए मुण्डमाला पहनती हैं। निरुत्तर तन्त्र और काम-धेनु तन्त्र में एक और भाव भी दिया गया है—

पञ्चाशद्वर्णमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।

(निरुत्तर तन्त्र)

‘पचास वर्ण वाले मुण्डों से टपकते हुए रुधिर से आप चर्चित होती हैं।’

ममकण्ठे स्थित बीज उज्ज्वलशङ्खमद्भुतम् ।

(कामधेनु तन्त्र)

‘मेरे कण्ठ में स्थित बीज भी पचास वर्णों वाला अतीव अद्भुत है ।’

विश्व ही ब्रह्मास्पा कालीका आवरण-वस्त्र है । काली का सम्बन्ध तो प्रलय रात्रि में है जब सारा विश्व नष्ट और लीन हो जाता है । विश्व के अभाव में वह ‘अवस्था’ नग्न रह जाती है । केवल दिशाएँ ही उसके वस्त्र रह जाते हैं । इसी स्थिति को ‘नग्न’ सजा दी गई है ।

जब जगत् का लय हो जाता है, जब सारा जगत् श्मशान बन जाता है, तभी काली का विकास माना जाता है । उसका पूरा विकास-काल विश्व का प्रलय काल है ।

साधना में इसका एक और भाव भी है । भगवतो की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अपने हृदय को श्मशान बनाया जाय । राग, कामादि का नाश किया जाए । इस जगत् की आसक्ति, मोह, लगाव और लिप्तता को दूर किया जाए । जगत् भाव को बनाए रखने वाले जितने भी आसुरी तत्व हैं, उनसे अलिप्त रहा जाए तभी विश्व में रहते हुए विश्व का विनाश सम्भवा जायेगा और जगत् श्मशान तुल्य लगेगा । जब तक इस भावना का जागरण नहीं होता भगवतो का वर व अभय मुद्रा वाले हाथ आशीर्वाद के लिए नहीं उठते ।

२- तारा

परिभाषा

तारा के नाम से ही विदित होना है कि इसका सम्बन्ध ‘तारण’ अथवा ‘तरण’ से है । वास्तव में तारण करने वाली शक्ति को ‘तारा’

कहते हैं । इसका शब्दार्थ भी यही है—‘तरत्यनया मा तारा’ अर्थात् इस भवसागर से जो तारती है, वह तारा है । तारा ने स्वप्न भी कहा है—

तारयिष्याम्यह नाथ। नाना भवमहाराणवात् ।

तेन तारोति मा लोके गायन्ति मुनिपुङ्गवा. ॥

अर्थात् ‘हे नाथ । मैं अनेक प्रकार के समार रूपी महासागर से तार दूँगी । इसी कारण से लोक में मुझको मुनियों में श्रेष्ठ लोग ‘तारा’ नाम से गान किया करते हैं ।’

त्रितापो—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक से तारने वाली को तारा कहते हैं । सासारिक बन्धनों, विपत्तियों और कठिनाइयों से मुक्ति दिलाती है । समार सागर से तारती है, उबारती है, तभी तारा कहलाती है ।

वैदिक साहित्य में जगत् की सृष्टि सूर्य से मानी गई । वही इसका आधार है । सूर्य अग्नि का महापिण्ड है । अग्नि हिरण्यरेता कहलाती है और सौरमण्डल हिरण्यमय । इस हिरण्यमय मंडल के मध्य में सारे ब्रह्मतत्त्व अवस्थित है ‘इसलिए सौरब्रह्म—हिरण्यगर्भ’ कहलाता है । इसी हिरण्यगर्भ की शक्ति को तारा कहते हैं । जिस तरह महाकाली महाप्रलय की अधिष्ठात्री हैं, उसी तरह ‘उग्रतारा’ सूर्य प्रलय की अधिष्ठात्री है । दोनों समानधर्मा हैं ।

सूर्य का नाम रुद्र भी है । इसके दो रूप हैं—शान्त और घोर । हिरण्यगर्भ की उग्रता सूर्य के कारण थी । अन्न की प्राप्ति से उसकी शान्ति रहती है । उसी उग्र—हिरण्यगर्भ की शक्ति को ‘उग्रतारा’ कहते हैं ।

तारा के विविध नाम हैं । तारा, तरणि, तरना, तारिणी, प्रभ,

त्रिरूपा, तत्त्वज्ञानप्रदा, अनघा, सत्त्वरूप, रजोरूपा तमोरूपा, परानन्दा साक्षात् चैतन्य शक्ति स्वरूपा आदि ।

तारा को द्वितीय महाविद्या अथवा सिद्ध विद्या कहते हैं । तारा की तीन शक्तियाँ हैं । वह सरलता से ज्ञान देती है इसलिए नील सरस्वती कहलाती है । वह कैवल्य दायिनी है इसलिए एक जटा है । वह उपामको की उग्र प्रापत्तियों का निवारण करती है इसलिए 'उग्रतारा' नाम पडा । विद्वानों का यह भी विश्वास है कि योग दशन में जिस 'श्रुतम्भरा प्रजा' की चर्चा है, वह इसी विद्या का स्पष्टीकरण किया गया है ।

तारा परमशक्तिरूपा है । यह परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न है । कथा आती है कि जब देवामुर संग्राम हुआ तो देवों के नेता इन्द्र ने असुरों पर विजय पाने के लिए भगवती तारा की उपामना की थी, जिससे उन्हें अभीष्ट मिद्धि मिली थी ।

महिमा

शास्त्रों में तारा की महिमा इस प्रकार वर्णित है—

ब्रह्मतरी जय तारिणि मुक्ते

ब्रह्मविष्णुशिवशाखयुक्ते ।

मोक्षफल फलममृतमरस

नित्यानन्दमये कुरु कुरु शम् ॥

अर्थात् 'आप ब्रह्म के तरु के स्वरूप वाली हैं तथा मुक्त और तारण करने वाली हैं । आपकी जय हो । ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी ब्रह्म तरु की शाखाएँ हैं । मोक्ष रूपी इसका फल है जो अतीत अद्भुत और सरस है । आप नित्य ही आनन्द से परिपूर्ण रहती हैं—कल्याण करो—मङ्गल करो ।

किमन्यन्महेशि ! प्रियत्वेन देवा

भवत्पादधूलौलवैकेन देवा

त्वया यन्न सूत्रीयपुत्रीस्वरूपो
 निरीहो नरीनत्यंशौ विश्वरूप ।
 त्वयैवोज्जिहीते परेशोऽपि शक्त्या
 नमामीश्वरि । त्वामह देविभक्त्या ॥
 मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्या, प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
 षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष ॥

अर्थात् 'हे महेशि । अन्य क्या कहा जावे । ये देवगण आपके ही प्रियपात्र होने वाले हैं । समस्त देवगण आपके चरण की धूलि के एक कण के समान हैं । जिसको सूत्रीय पुत्र स्वरूप नहीं किया है, वह निरीह विश्वरूप नृत्य किया करता है । परेश को भी आपने ही अपनी शक्ति के द्वारा प्रभावशाली बना दिया है । हे ईश्वरि । हे देवि । मैं भक्ति-भाव से आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित करता हूँ । प्रकृति मूलस्वरूपा है और महत्तत्वादि सातों उसी की विकृतियाँ हैं । इस प्रकार से सोलह विकृतियाँ हैं । प्रकृति में कोई भी विकार नहीं है और पुरुष भी विकृत नहीं होता ।'

नील तन्त्र के अनुसार—

ज्वलत्पावकज्वालजाभिभास्व-
 च्छितामध्यसस्था सुषुप्ता सुखवाम् ।
 शव वामपादेन कण्ठे निपीड्य
 स्थिता दक्षिणेनाङ्घ्रिणाङ्घ्रि निपीड्य ॥

अर्थात् 'जलती हुई अग्नि की ज्वालाओं के जाल के कारण अभि-
 भास्वमाण चिता के मध्य में स्थित—सुषुप्त और सुखवाँ आप हैं ।
 बाँये पाद से शय को कण्ठ में निपीडित करके सम्यक्त है तथा दाहिने
 पाद से चरण को निपीडित करने वाली हैं ।'

और भी कहा है—

विना ध्यान विना जाप्य विना पूजादिभिः प्रिये ।

विना वलि विनाभ्यास भूतशुद्ध्यादिभिर्विना ॥

विना वलगादिभिर्देवि देहदुःखादिभिर्विना ।

सिद्धिर्गाशु भवेद्यस्मात्तस्मात्सर्वोत्तमा मता ॥

अर्थात् 'विना' ध्यान, जप, पूजा, वलि, अभ्यास, भूतशुद्धि, वलेग, देह दुःख से ही इसकी सिद्धि प्राप्त होती है । इसीलिए सभी प्रकार की सिद्धियों ने इसे सर्वोत्तम माना जाता है ।

अन्य धर्मों व देशों में तारा-भक्ति का प्रसार

तारा इतनी लोकप्रिय देवी है कि इसकी पूजा केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं, अन्य धर्मों और सम्प्रदायों में भी होती है । इस देश में ही नहीं, विदेशों में भी इसका उच्च सम्मान था ।

जैन धर्म में 'सुतारा' व 'सुतारका' नाम से देवी की उपासना होती है । श्वेताम्बर शाखा इसे सुविधि नग्ध की शामन देवी या यक्षिणी मानती है ।

तारा बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय की एक प्रसिद्ध देवी है । हिन्दू धर्म में जो प्रतिष्ठा तारा अथवा दुर्गा की है, वही महायान में तारा की है । जैसे शिव की शक्ति को 'दुर्गा' नाम दिया गया है, वैसे बौद्ध धर्म में तारा अवलोकितेश्वर की शक्ति है । तारा को वहाँ देवमाना के सम्माननीय पद में विभूषित किया गया है ।

तारा की उपासना तिब्बत में भी प्रचलित थी । मंगोलिया में भी तारा की उपासना होती थी । वहाँ इसका नाम 'दर-एके (Dara-ke) था ।

तारा तत्व को जानने के लिए उसके विभिन्न प्रकार के ध्यानो का अवलोकन करना होगा । मन्त्र-शास्त्र में तारा का ध्यान इस प्रकार है—

विश्वव्यापकदारिमध्यविलसच्छेवेताम्बुजन्मस्थिता
 कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनै राजत्करा नीलभाम् ।
 काञ्चीकुण्डलहारकङ्कणलसत्केयूरमञ्जीरता-
 माप्तनगिवरेविभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ॥
 पिङ्गोग्रैकजटा ललत्सुरशना दष्टाकरालानना
 चर्म द्वैपि वर कटी विदधती श्वेतास्थिपट्टलिकाम् ।
 अक्षोभ्येण विराजमानशिरस स्मेराननाम्भोरुहा
 तारा शावहृदासना दृढकुचामम्बा त्रिलोक्या स्मरेत् ॥

अर्थात् 'विश्वव्यापी' जल से निकले हुए एक सफेद कमल पर
 अविष्टित, कैची, खड्ग, कपाल, और नीलोत्पल को हाथों में धारण
 किए हुए, सर्पों से बने काञ्ची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर, मञ्जीर,
 (तू पुर) से विभूषित, तीन रक्त नेत्रों वाली, एक पीली जटा वाली,
 सुन्दर रशना से मण्डित, विकराल दष्टा से युक्त, कटि प्रदेश में चीते के
 चर्म को लपेटे हुए, श्वेत हड्डियों की पट्टालिका धारण किए हुए, शव-
 हृदयासना, जिसके सर पर 'अक्षोभ्य' प्रतिष्ठित है, ऐसी स्मितवदना,
 त्रैलोक्य-जननी भगवती तारा का स्मरण करे ।'

'नील तन्त्र' में इस प्रकार व्यान करने का आदेश दिया गया है—

प्रत्यालीढपदा घोरा मु डमालाविभूषिताम् ।
 खर्वी लम्बोदरी भीमा व्याघ्रचर्मवृता कटी ।
 नवयौवनसम्पन्ना पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
 चतुर्भुजा ललज्जिह्वा महभीमा वग्प्रदाम् ॥
 खड्गकर्त्रीधरा सव्ये यामे मुण्डोत्पलन्विताम् ।
 पिङ्गोग्रैकजटा ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ॥
 वालार्कमण्डलाकारलोचनत्रय भूषिताम् ।
 प्रज्वलत्पितृ भूमव्यगता दष्टाकरालिनीम् ॥

सावेगस्मेरवदनामस्थप्रालकार भूपिनाम् ।
विश्वव्यापकतोयान्त श्वेनपद्मोरिस्थितम् ॥

अर्थात् 'पद को प्रत्यालीढ करने वाली—घोर और मुण्डो की माला से विभूषित हैं । खर्व (छोटे कद वाली)—लम्बे उदर से युक्त—भयानक कटिभाग में व्याघ्र के चम को धारण करने वाली हैं । नूतन यौवन से युक्त तथा पाँच भुजाओं से समलङ्कृत हैं । चार भुजाओं वाली तथा जीभ को बाहर निकाले हुए महान् भीम स्वरूप वाली एवं वरदान प्रदान करने वाली है । बाये हाथ में खड्ग और कर्त्री धारण करने वाली तथा नरमुण्डो के कपालों से युक्त हैं । पिण्ड एवं उग्र आगे की जटा वाली मस्तक में अक्षिमाला से विभूषित का ध्यान करना चाहिए । बाल सूर्य-मण्डल के आकार वाले तीन लोचनों से अलङ्कृत हैं । प्रज्वलित पितृभूमि (दमशान) के मध्य में रहने वाली, बड़ी बड़ी दाढ़ी से कराल स्वरूप में युक्त, आवेश से युक्त, मुस्कान पूर्ण मुख वाली, अस्थियों के भूषणों से भूषित एवं विश्व में व्यापक जल के अन्दर श्वेन पद्म पर स्थित हैं ।'

मन्त्र चूडामणि में तारा का ध्यान इस प्रकार दिया गया है—

तम्योपरिगृहे देवी खर्वी नीलमणिप्रभाम् ।
लम्बोदरी व्याघ्रचमसमावृतनितम्बिनीम् ॥
पीनोन्नतपयोभारा रक्तवत्तुललोचनाम् ।
ललज्जिह्वा महाभीमा दष्ट्राकोटिममुज्ज्वलाम् ॥
नीलोत्पललम्बमाला बद्धजूटा भयकरीम् ।
श्वेनास्थिपटिकायुक्तकपालयञ्चशोभिताम् ॥
ललाटे रक्तनागेन कृतकर्णवितसकाम् ।
अतिशुभ्रमहानागनहारमहोज्ज्वलाम् ॥
हूर्वादिलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
चतुर्भुजा रक्तमामखण्डमण्डितमुष्टिना ।

जटाजूटाक्षगूत्रेण शोभिना तीक्ष्णवाग्द्या ।
मण्डेन दक्षिणम्याध्वं शोभिता वीरनादिनीम् ॥
तदध, स्याद्वीजवृन्तकर्तृकालकृता पराम् ।
वामाध्व रक्तनालेन दिगम्बरमनोहराम् ॥
दधती नालपद्मञ्च तदध स्थानु कथानकम् ।
जगता जाउयययुक्त दधती कुन्दगन्निभाम् ॥
धूम्राभनागसन्दोहकृतकेयूरसत्वराम् ।
सुवर्णवर्णनागेन ककणोज्ज्वलपाणिकाम् ॥
शुभ्रभ्रमणमहादेवकृतसद्विमलासनाम् ।
नियन्त्रणशियातद्वत् सकुचत् प्रपदात्मिकाम् ॥
शत्रुपादद्रयारूवामपादा हम्नमुनीम् ।
कुन्दाभनागमणोभिकटिसूत्रा त्रिलाचनाम् ॥
अमृगुक्तीन नागेन कृतनूपूरपल्लवाम् ।
सधश्छिन्नगलद्रक्त मुण्डेरक्तविभूषणम् ॥
अन्योन्यकेशग्रथित पादपद्मविलम्बितम् ।
पञ्चाशद्भिमहामालाशोभिता परेमद्वरीम् ॥
ज्वलन्निचितामध्यसस्था स्त्रीपिचर्मोत्तराशुकाम् ।
अक्षोभ्यनागसम्बद्धजटाजूटा वरप्रदाम् ॥
एवभूता महादेवीमात्मान यागवस्तु च ।
विज्ञापयेन्महादेव पण्डितान्हे महाकवि ॥

अर्थात् 'उमक' ऊपर गृह में खर्न और नीलमणि की प्रभा के समान प्रभा वाली है । लम्बे उदर से युक्त तथा बाध के चर्म से ढके हुए नितम्बो वाली है । पीत एव उन्नत स्तनो से समन्वित तथा रघत और और वस्तुल लोचनो वाली है । जीभ को बाहर निकाले हुए—अति

भयानक तथा कगोडो दाटो मे समुज्ज्वल हैं । तीन कमलों की माला मे शोभित और अपने जूटे को बाधे हुए मयङ्कर रूप वाली है । श्वेत अस्थियों के पट्टिका से युक्त पाँच कपालो मे शोभा वाली हैं । जलाट मे रक्त नाग मे कणावतम बनाये हुए तथा अत्यन्त शुभ्र महानाग का हार धारण करके महान् उज्ज्वल स्वरूप वाली है । दूर्वा के दल और श्याम नाग का यज्ञोपवीत धारण करने वाली है । चार भुजाओं से युक्त तथा रुविर और साम के टुकड़ो मे मण्डित मुष्टि वाली हैं । जटाजूट और अक्षो के मूत्र मे शोभित—नीदण धार करने खग से दक्षिण भाग के ऊपर जाने भाग मे शोभा मे पूर्ण हैं तथा वीर-नाद करने वाली हैं । उसके नीचे रहने वाले भाग मे बीज वृत्त की करने वाली से भूषित परा तथा वाम ऊर्ध्व भाग में रक्त नाग मे युक्त और दिगम्बर एवं मनोहर रूप वाली हैं । नील पद्म और उसके नीचे कपान कोधारण करने वाली हैं । जगतो की जटता मे संयुक्त को धारण किये हुए कुन्द के तुल्य हैं । धूम्र की आभा वाले नागो के समूह मे केयूरो वाली—सत्वर हैं । सोने के वर्ण वाले नागो से हाथो मे उज्ज्वल कङ्कण धारण करने वाली हैं । शुभ्र वर्ण वाले महादेव के साथ मत् और विमल आसन वाली हैं । नियन्त्रण के मय से आपके साथ मकोच वाले प्रपदो से युक्त हैं । शव के दोनो पादो पर अपना बाँया पाद समालम्ब करने वाली हैं । हास्ययुक्त मुख वाली हैं । कुन्द के पुष्प की आभा वाले भाग मे शोभित कटिमूख वाली एवं नील लोचनो से युक्त हैं । रुविर के समान रक्त नाग से तूपुर पल्लवो की रचना करने वाली हैं । तुरन्त ही भेदन करने से जिनमे रुविर वह रहा है ऐसे रक्त मे भूषित मुण्डो से जिनके केश एक दूसरे मे ग्रथित हो रहे हैं और चरण कमल तक लटके हुए हैं ऐसे पचाम मुण्डो की महामाला मे शोभा वाली परमेश्वरी है । जलती हुई चिता के मध्य में स्थित हाथी के चर्म से उत्तरीय वस्त्र धारण करने वाली हैं । अक्षोभ्य नाग मे जटाजूट को बाँधने वाली तथा वर देने वाली हैं । ऐसी महादेवी

को अपने आप ही समर्पित करना है । महादेव को महाकवि परियुक्त के द्वारा विज्ञापित करना चाहिए ।'

उपरोक्त ध्यानों में जो विषय आए हैं, उनका स्पष्टीकरण यहाँ किया जाता है—

✧ जगन्ध्यापी जल में कमल पर स्थित

भगवती तारा दिश्वध्यापी [जन से निकले एक श्वेत कमल पर खड़ी हैं । इसमें सूचित होता है कि वह जल-प्लावन के भय का निवारण करती है । यह लघुभट्टारक रचित 'लघु स्तव' के निम्न पद में स्पष्ट हो जायगा ।

लक्ष्मी राजकुले जया रण भुवि क्षेमङ्करोम व्वनि
कव्यादद्विपनर्प भाजि शबरी कान्तारदुर्गे गिरौ ।

भूतप्रेतपिशाचराक्षसभये स्मृत्वा महाभैरवी
व्यामोहे त्रिपुरा तरन्ति विपदस्तारा च तोयलवे ॥

अर्थात् 'राज-कुल में लक्ष्मी - रणभूमि में जया - माग में क्षेम करने वाली - कव्याद - हाथी - सप वाले कान्तार दुर्ग तथा गिरि में - भूत-प्रेत पिशाच और राक्षसों के द्वारा होने वाले भय में महा भैरवी का स्मरण करे । व्यामोह होने पर त्रिपुरा को और नोय प्लव में तारा का स्मरण करने पर विपत्तियों में उद्धार हो जाता है ।'

ब्रह्माण्ड पुराण में ललितोपाख्यान में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है—

मनो नाम महाशाल

तन्मध्यकक्ष्या भागस्तु सर्वाप्यमृतवापिका ।

न तत्र गन्तु मार्गोऽस्ति नौकावाहनमन्तरा ॥

तारा नाम महाशक्तिर्वर्तते तोरणेश्वरी ।

बह्वयरतत्रोत्पलश्यामास्ताराया परिचारिका ॥

रत्ननौकासहस्रेण खेलन्त्यस्सरसीजले ।

अपर पारमायान्ति पुनर्यान्ति पर तटम् ॥

कोटिशस्तत्र ताराया नाविकयो नवयौवना, ।

भुहुर्गायन्ति नृत्यन्ति देव्या पुण्यतम यश ।

अरित्रपाणय काश्चित्काश्चिच्छृगाम्बुपाणय ।

पिबन्त्यस्तत्मुधातोय सञ्चरन्त्यस्तरीशतं ॥

तासा नौकावाहिकाना शक्तीना श्यामलत्विपाम् ।

प्रधानभूता ताराम्बा जलोघशमनक्षमा ॥

आज्ञा बिना तयोस्तारा मन्त्रिणीदण्डनाथयो ।

त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकाम्भरि सान्तरम् ॥

तारातरणिशक्तीना समवायोऽतिसुन्दर ।

इत्थ विचित्ररूपाभिर्नौकाभि परिवेष्टिता ॥

ताराम्बा महती नौकामधिगम्य विराजते ॥

अर्थात् 'मनो नाम वाली एक महाशाला है, उसके मध्य वाले कक्ष में एक ऐसा भाग है जहाँ पर अमृत की बावड़ी है । वहाँ पर नौका वाहन के बिना जाने का कोई मार्ग नहीं है । वहाँ तारा नाम वाली महा-शक्ति तोरणेश्वरी विद्यमान है वहाँ बहुत-सी उत्पल के समान श्याम वर्ण वाली तारा की परिचारिकाएँ भी विद्यमान रहती हैं । सहस्रो रत्नों की नौकाओं से वे सरसी के जल में बिहार किया करती हैं । दूसरे तट पर आ जाती हैं और फिर इस तट पर आ जाती हैं । वहाँ पर करोड़ों नवीन यौवन वाली तारा की नाविनाएँ हैं । वे बारम्बार देवी के पुण्यतम यश का गायन किया करती हैं और नृत्य किया करती हैं । कुछ के हाथों में अश्रु हैं तो कुछ के हाथों में शृगाम्बु हैं । वे उस अमृत जल का पान किया करती हैं और सैकड़ों नौकाओं में सञ्चरण किया

करती है। श्यामल कान्ति वाली उन नौका वाहिनी शक्तियों में प्रधान-भूत ताराम्बा है जो बलवान् पापों के शमन करने में समर्थ है। दण्डनाथ उन दोनों की आज्ञा के बिना ही मन्त्रिणी तारा पूर्ण समर्थ हैं। उस वापिका के जन में वह त्रिनेत्र को भी अन्तर नहीं देती है। तारा तरणी की शक्तियों का अत्यन्त सुन्दर समवाय है। इस प्रकार से विचित्र रूप वाली नौकाओं से वह परिदेष्टित है। ताराम्बा एक बड़ी नौका में बैठ कर विराजमान होती है।'

इनका एक और भाव भी है। जगत् में जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इस स्थिति को श्रुति में 'निरति शमानन्दामृतसागर' की सजा दी है। इस आनन्दामृत सागर में भगवती श्वेत कमल पर स्थित हैं। श्वेत वर्ण विशुद्ध सत्त्व का प्रतीक है। अर्थात् यही कमल उनका आसन है।

❖ चतुर्भुजा

चार भुजाओं में खड्ग, कैची, कपाल और कमल है। विष्णु-पुराण १।५२।७४ के अनुसार खड्ग अविद्यामय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान का प्रतीक है। भगवती तारा आध्यात्मिक ताप के निवारण के लिए, कर्म बन्धन को ज्ञान रूपी खड्ग में काटती है। जीव के आत्म विकास के लिए इस अस्त्र का रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि हमारे चारों ओर का वातावरण तामसिक व राजसिक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है। आमुरी शक्ति घान लगाए बैठी रहती है, थोड़ी-सी आसवधानी से वह आक्रमण करके अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं। कैची से भगवती आधिभौतिक या आधिदैविक तापों को दूर करती है। खड्ग और कैची दोनों का भाव एक ही है, अन्नर केवल बड़े और लुट अन्न का है। सकुचित म्यानों पर जहाँ खड्ग से प्रहार नहीं किया जा सकता, वहाँ कैची से काम लिया जाता है।

कपाल से रक्तपान का आशय होता है। रक्त वर्णं रजोगुण का

द्योतक है। भगवती रजोगुण अथवा मोह का पान या निवारण करती है। जीव को भी मोह रूपी रक्त को पान करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

कमल अलिप्तता का प्रतीक है। भगवती अज्ञानान्वकार, अविद्या, त्रितापो और मोहादि से सघर्ष करती है, उन पर विजय ही प्राप्त करती है, जिससे प्रभावित नहीं होती, रजोगुण रूपी रक्त का पान करती हैं परन्तु एक भो छोटा उन पर पड़ नहीं पाता। साधक को भी ऐसी ही स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि जगत् में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहे।

अष्टनाग विभूषिता

भगवती अष्टनागो में बने विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करती है। इसका अभिप्राय आठ प्रकार की प्रकृतियों में है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। वह अष्टवा सिद्धियों से विभूषित है। यह सिद्धियाँ प्रदान करने की भी सामर्थ्य रखती है, परन्तु आत्मविकास के मार्ग में वह बाधक का काम करती है, इसलिए नाग रूप में उन्हे प्रदग्नि किया गया है जो भौतिक शरीर की इहलीला समाप्त करने की शक्ति रखते हैं अर्थात् जीव की यात्रा में बाधक सिद्ध होते हैं। एक भाव यह भी है कि पूरुषा की प्राप्ति के लिए यम, नियमादि योग के आठ अङ्गों का पालन आवश्यक है। भगवती के साधक को इस मार्ग पर चलना ही चाहिए।

त्रिनयना

भगवती तारा के तीन नेत्र हैं जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि के प्रतीक हैं। इसमें वह सर्वमाक्षी और अन्तर्यामी सिद्ध होती है। वह ज्ञान, इच्छा और क्रिया—त्रिशक्ति की द्योतक है। किसी भी सिद्धि के लिए सर्व प्रथम उसका ज्ञान अर्जित करना आवश्यक होता है। फिर उसे

व्यवहारिक रूप देने के लिए इच्छा जाग्रत होती है। इच्छा बलवती होने पर क्रिया रूप धारण करती है।

भगवती त्रिकालदर्शी है। वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान में जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होने वाला है, सबको जानती है। इन तीनों की गतिविधि का ध्यान रखते हुए कार्य करने वाले को ही त्रिकाल-दर्शी कहते हैं। अतः भगवती का आदेश है कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को देखो, त्रिकालदर्शी बनो और विवेक, अनुभव, स्थिति तथा दूरदर्शिता के आधार पर अपने कार्यक्रम बनाओ। ससार में जितने भी दुःख हैं, उनके तीन कारण हैं—अज्ञान, अशक्ति और अभाव। भगवती का इन तीनों पर नियन्त्रण है और उन्हें दूर करने की क्षमता रखती है।

भगवती तीन नेत्रों से भुवनत्रय, भू, भुव स्व पृथ्वी, अन्तरिक्ष और ब्रह्मलोक को देखती है। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी है, उससे कुछ छिपा नहीं है। अतः छिप कर पाप करना, मानसिक पाप करना व्यर्थ है। इन सबको वह क्षण भर में जान जाती है और चित्रगुप्त को लिखने के लिए सूचित कर देती है।

वह अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—इष्ट त्रिदर्शन की अतिशायी है सभी पराविद्या सिद्ध होती है।

तारा त्रिदेवो—ब्रह्मा, विष्णु और इमहेश की उत्पत्ति, पालन और सहार का सभी प्रकार का कार्य करती है क्योंकि सूर्य, चंद्र और अग्नि इन तीन स्थितियों के प्रतीक हैं।

भगवती का गुणत्रय—मत्स्य, प्रेम और न्याय को और निरन्तर ध्यान रहता है। मत्स्य की प्राप्ति के लिए विवेक का आध्यात्म लेना आवश्यक होना है। दूसरे के प्रति निस्वार्थ आत्मीयता का होना ही मत्स्य

प्रेम है । न्याय का अर्थ है—सन्तुजन । न अपना अधिकार हरण करने देना और न किसी का करना । भगवती की व्यवहार-नीतियाँ इन्ही गुणों पर आधारीत हैं । भगवती को प्राप्त करने के लिए इन गुणों का विकास आवश्यक है ।

❖ पिंगकजटा

भगवती तारा की एक जटा पिंग गण की है । एक जटा का अभिप्राय केशों की वेणी के रूप में बनाना है । केश का आध्यात्मिक अर्थ त्रिदवता—ब्रह्मा, विष्णु और महेश है जिसमें 'क' का प्रतीक ब्रह्मा, 'अ' का प्रतीक विष्णु और 'ईश' का महेश है । ब्रह्मा सत्गुण का, विष्णु रजोगुण का और महेश तमोगुण का द्योतक है । एक जटा में तीनों गुण मिश्रित हैं । उनको अलग करना असम्भव है । वह तो साथ-साथ ही रहते हैं । सात्विकता की वृद्धि चाहने वाले को रज और तम से घृणा नहीं करनी चाहिए, वह भी इस जीवन की स्थिरता के लिए आवश्यक है । केवल आवश्यकता इस बात की है कि उनके प्रभाव से अनासक्त व अलिप्त रहा जाए । एक जटा से अभिप्राय तीनों गुणों की एकता से है । मत्, रज और तम के प्रतीक वर्णों को यदि मिलाया जाए तो परिणाम पिंग वर्ण ही होगा । भगवती को तीनों की एकता ही अभीष्ट है, तभी वह जटा में पिंग वर्ण धारण करती है और यह भी संकेत करती है कि इस अभीष्ट मिद्धि के लिए घोर परिश्रम, तप की अपेक्षा है (पिंग वर्ण तप का द्योतक है) । सात्विकता के विकास के लिये आवश्यक है कि रज और तम को कम किया जाए, दबाया जाए, इसके लिये तप करना होगा ।

❖ दष्टाकोटिममुज्ज्वला

इसका तात्पर्य ममुज्ज्वल दशन पक्ति में है जिससे लपलपाती सिंहा को दबा कर रखनी है । उज्ज्वलता का प्रतीक सत्गुण है ।

लाल जिह्वा रजोगुण की द्योतक है। यहां मनोगुण ने रजोगुण को दबा रखा है। भगवती ने उपामको को भी यही प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें रजोगुण को नियन्त्रण में रखना चाहिये।

❖ चीते के चर्म को ओढ़ने वाली

तारा चीते के चर्म को ओढ़ती है। चीता महान क्रूर स्वभाव का है। प्रन, तमोगुण का प्रतीक है। किसी पशु का चर्म ओढ़ने के लिए उसका वध आवश्यक है। वध करने वाला उसमें शक्तिशाली होता है तभी वह साहस कर सकता है। चीते के चर्म को ओढ़ने का अभिप्राय तम को नियंत्रण में रखना है। मनोगुण के विकास के लिए तम को दबाना ही पड़ेगा।

❖ श्वेतास्थिपट्टिकायुक्त

तारा श्वेत ग्रन्थियों के आभूषणों में विभूषित है। अस्थि मांस मज्जा से तभी अलग होती है जब मृत्यु होनी है। सारे जगत के प्राणियों की मृत्यु का अभिप्राय प्रलय से है। इस समय की तारा श्वेत आभूषण धारण किए हुए है। श्वेत वर्ण सतोगुण का प्रतीक है। चाहे अपने पर किसी भी आपत्ति बंधों न आ जाए, किसी भी गिरी हुई परिस्थितियों से बंधों न गुजरना पड़ रहा हो, अपनी आत्मा के स्वाभाविक गुण—मत् की ही अपनी शोभा समझना चाहिए।

❖ अवसाना

प्राणी जय रूप में तभी आता है जब उसमें आत्मशक्ति का अभाव हो जाता है। जय प्रलयावस्था का सूचक करता है। प्रलय में सभी कुछ निर्जीव हो जाता है तब भगवती ही अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहती है। प्रलय विनाश का चिह्न है। भगवती इस व्यापक विनाश में अप्रभावित रहती है बल्कि उग प्र प्र नियंत्रण रखती है।

शत्रु में यह भी लक्षित होता है कि यह भौतिक जगत अनित्य है । जो अनित्य जगत के मोह में फँस जाता है, वह मदैव दुखी रहना है क्योंकि नष्ट होने वाली वस्तु का स्वभाव ही नाश है । यदि उसमें आसक्ति रही तो शोक होगा ही । भगवती ने इस अनित्यता की भावना को अपने पैरों के नीचे दबा रखा है और उस पर म्वय खड़ी है ताकि वह उठ न सके । आत्मा नित्य है । जिनमें आत्म प्रकाश होता है, यह इसी प्रकार अनित्यता रूपी शत्रु पर खड़े दृष्टिगोचर होते हैं ।

✧ अक्षोभ्यनाम मम्बद्ध जटाजूटाम्

तन्त्र-ग्रन्थों से अक्षोभ्य शिव का ही नाम है । तारा तन्त्र अथवा तोडल तन्त्र में कहा है--

ममुद्रमथने देवि । कालकूट समुत्थितम् ।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च महाक्षोभमवाप्नुयु ॥
क्षोभादिरहित यस्मान् पीत हालाहल विषम् ।
अतएव महेगानि । अक्षोभ्य परिकीर्तित ॥
तेन साद्धं महामाया तारिणी रमते मदा ।

अक्षोभ्य नाम का मम्बद्ध पुगणो की ममुद्र मन्थन की कथा में है । ममुद्र मन्थन करते हुए जब हालाहल विष निकला तो चारा ओर का वातावरण विषाक्त होने लगा, मारे विश्व में खलबली मच गई तो देवताओं ने भगवान् शङ्कर से प्रार्थना की कि वे इस सङ्कट में उबारें । शङ्कर ने इस विष का पान कर लिया और विश्व में शान्ति स्थापना हुई । सभी को यह विश्वास था कि शङ्कर को इसमें क्षोभ होगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ । वे क्षोभरहित रहे, इसलिए उनका 'अक्षोभ्य' का आध्यात्मिक अर्थ 'अशङ्कार शून्य' है । 'अशङ्कार' महान विष है, उसे जो पीना है और अप्रभावित रहता है, वही अक्षोभ्यावस्था से प्राप्त होता है । यह शान्ति की उच्चतम अवस्था है । तारा को कैसी भी

आसुरी शक्तियों से जूझना पड़ा हो, विपरीत बातावरण के सम्पर्क में आना पड़ा हो, वह अक्षोभ्य ही रहती है । उसके मग्निष्क में स्थायी शक्ति स्थिर रहती है । नाग 'क्षोभ' का प्रतीक है, उसके रहते हुए भी वह क्षुब्ध नहीं होती, यही इसकी विशेषता है । तभी इसी अवस्था के चोतक अक्षोभ्य को उन्होंने अपने मस्तक पर धारण कर रखा है, प्रतीति उच्च सम्मान प्रदान किया है ।

❖ प्रत्यलीढा

प्रत्यलीढा का अर्थ है बाँधा और आगे और दाँया पीछे । स्त्री वा शक्ति जब क्रियाशील होने लगती है तो बाँधा पग ही पहिले उठता है । यह सक्रियता का द्योतक है । तारा सतोगुण के विकास की प्रतीक है और सदैव रजोगुण और तमोगुण को नियंत्रण में रखने को तत्पर रहती है, यह उनकी इस विशेष मुद्रा में ही लक्षित होता है ।

❖ मुण्डमाला धारिणी

मुण्डमाला प्रलयावस्था की सूचक है । तारा उसे अपने नियन्त्रण में रखती है ।

पञ्चम मुण्ड वर्णों के भी प्रतीक हैं । इससे तारा का बाल रूप शब्द ब्रह्म प्रतीत होता है ।

❖ स्वप्नर युक्त

तारा प्रलयावस्था से सम्बन्ध रखती है । जिस तरह महाकाली को महाप्रलय की अविष्टानी माना जाता है, उसी तरह 'उग्रतारा' को सूर्य-प्रलय की अविष्टानी स्वीकार किया गया है । सौर प्रलय के समय सूर्य सभी प्राणियों का रस सुखा देता है और उग्रतारा उसे पी जाती है । रस विशेष रूप से शिर के कपाल में रहता है । इसीलिए स्वप्नर से सम्बन्ध है ।

◆ स्थूल उदर वाली

स्थूल उदर से ब्रह्म के विराट् विश्व रूप की ओर सकेव है । जैसे वह कूटस्थ व सूक्ष्म होता है, वैसे वह स्थूल होता है । इससे प्रणव के आकार का भी बोध होता है क्योंकि उकार का अभिप्राय हिरण्यगर्भ का तैजस् रूपी सूक्ष्म शरीर और मकार से अन्याकृत प्रज्ञा-रूप कारण शरीर है । भगवती का स्थूल शरीर प्रणव का विराट् विश्व शरीर है ।

◆ कराल वदना

भगवती तारा कराला है, उसे देख कर भय जगता है । ब्रह्म के परम उग्र रूप को ही उग्रतारा कहते हैं । तारा ब्रह्म की मूल सत्ता व पराशक्ति है, वह नित्य विराट् सत्ता है जिसके आदेश पर सभी अपरा शक्तियाँ कायरत रहती हैं । सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अन्य नक्षत्र, वायु आदि सभी प्राकृतिक शक्तियों का सञ्चालन भगवती करती है । उसके भीषण रूप को देख कर सभी अपने-अपने कार्य में रत रहते हैं । इस उग्रता से विराट् ब्रह्म का तेजस्वी रूप ही सूचित होता है ।

◆ खर्वा

तारा को खर्वा इसलिए कहते हैं कि वह एक क्षण मात्र में दिगोघ्नियों के ग्रहङ्गार को चक्रना-चूर कर देती है, गन्ध को खव कर देती है । इसीलिये इसका भोजन भी ग्रहङ्गार मात्र बताया जाता है । वह इसी पर जीवित रहती है ।

एक भाव और है । खर्वा का अर्थ नाटी भी होता है । तारा स्थूल उदर वाली है, उसका विराट् विश्व रूप है, जितनी वह विराट है, उतनी सूक्ष्म भी है । ब्रह्म के यह दोनों रूप हैं, विराट् भी और अणु से अणु भी । इन दोनों में सादृश्यता है । विराट् और ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ एक ही हैं । विष्णु विराट् हैं, विश्वव्यापी देव हैं, वही वामन—

बोने रूप में अवतरित हुए । वह पहले छटा था, अल्प था, फिर वह बड़ा और विराट हो गया । अणिमा ही भूमा बनता है । अणु ही विस्तार पाकर महत् बनता है, वामन ही विस्तृत हो कर विष्णु बनता है, विराट बनता है । तारा के भी यह दोनों रूप हैं, वह विराट भी है और अणु भी है ।

❖ व्याघ्र चर्ममृता

तारा ने बाघ के चर्म का अधोवात्र धारण कर रखा है । बाघ वन का राजा कहलाता है, वह शक्ति सम्राट है परन्तु वह शक्ति स्थूल है, अनित्य है । पशुत्व उसका वास्तविक रूप है, अज्ञानता ने उसे घेर रखा है । वह रजोगुण का प्रतिरूप २ । इसे मार कर भगवती ने उसके चर्म को ओढ़ रखा है, अर्थात् उसे अपने नियन्त्रण में कर रखा है क्योंकि उसका बाघ किए बिना चर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता । इससे विदित होता है कि तारा का रजोगुण पर अधिकार है ।

❖ नवयौवनावस्था

साधारण जीवों का यौवन अस्थायी रहता है क्योंकि उत्पत्ति, स्थिति और लय उनका धर्म होता है । इस जगत की हर वस्तु उत्पन्न होकर बढ़ती है, एक सीमा तक बढ़ कर विनष्ट होने लगती है । किसी के लिये किसी भी अवस्था में स्थिर रहना सम्भव नहीं है । वह तो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हो जायेगा । परन्तु तारा की स्थिति असा-मान्य है । वह नित्य यौवनावस्था में ही रहती है, उसका विनाश नहीं होता, परिवर्तन नहीं होता, काल का उस पर कोई प्रभाव नहीं । इसलिये वह 'नवयौवनावस्था' कहलाती है ।

❖ पञ्चमुद्रा विभूषित

मुद्रा आनन्द की बोधक है । पञ्च मुद्राएँ पाँच क्लेशों का

का निवारण करती है। योग दर्शन मायना पाद के तीवरे सूत्र के अनु-
सार क्लेश पाँच प्रकार के हैं—१- अविद्या २ अस्मिता ३- राग
४- द्वेष ५- अभिनिवेश। इन क्लेशों को मिथ्या ज्ञान, विषयय ज्ञान,
आन्ति ज्ञान, अज्ञान भी कहते हैं। मांख परिभाषा में अविद्या को तम,
अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामिस्र अभिनिवेश को
अव्यक्तमिच्छा कहते हैं। भगवती का इन पर अधिकार है, वह
इन्हे दूर करने की क्षमता रखती है।

तारा के आभूषण पाँच महभूत हैं। इनकी गतिविधियाँ भगवती
को इच्छा पर मञ्चालित होती हैं। यह मानव देह इन्हीं भूतों से बना
है। इसमें स्पष्ट है कि सभी प्राणचारियों में क्रियाशीलता का मूल कारण
भगवती हैं।

मानव शरीर में पाँच कोश हैं—प्र तमय, प्राणमय, मनोमय,
विज्ञानमय और आनन्दमय। योगिक भाषा में यह जीवात्मा के पाँच
वस्त्र हैं। इनका खोलना मानव का परम लक्ष्य है। भगवती के पास
इसकी चाबी है। वह इन्हे खोल सकती है अथवा सहयोग दे सकती है।
आत्मिक उन्नति के इन पाँच द्वागों तक पहुँचना भगवती की कृपा से ही
सम्भव है।

पाँच मुद्राओं का अभिप्राय पञ्च रश्मि में भी है जिसका प्रणव
की ओर मङ्गल है। भगवती का आभूषण प्रणव है।

❖ पीनोन्नत पयोधरा

तारा के स्तन दूध से भरे हैं। माता अपने दूध से शिशु का
पालन करती है। तारा मारे ब्रह्माण्ड के पालन पोषण की क्षमता
रखती है। उसके पास आहार की कमी नहीं रहती। उसके स्तन सर्व-
द्वय से भरे रहते हैं। तारा का रूप केवल उग्र ही नहीं, वह नाश हो-

नाश नहीं करती रहती, पालन भी करती है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिशक्तियों का काय करती है। 'पीनोन्नतपयोधरा' से पालन शक्ति का बोध होता है।

❖ नीलवर्णा

तारा का वर्ण नीला है। जब आकाश में मेघ नहीं होते तो वह नीला होता है। आकाश व्यापकत्व का प्रतीक है। भगवती का भी यही गुण है।

जैसे श्याम वर्ण तमोगुण का प्रतीक माना जाता है, वैसे नील वर्ण सत्तोगुण का प्रतीक स्वीकार किया गया है। भगवती सात्विकता, पवित्रता, निमलता, शुद्धता की साक्षान् प्रतिमूर्ति है।

❖ अट्टहास की मुद्रा

बड़ी जोर की हँसी को अट्टहास कहते हैं। हँसी प्रसन्नता का परिणाम है। भौतिक सफलताओं के कारण जब मानव को अतीव प्रसन्नता प्राप्त होती है तो गम्भीर मुद्रा के सकोच को छोड़ कर वह मुक्त रूप से हँसता है। इससे उसकी हार्दिक प्रसन्नता का बोध होता है। आनन्दमय स्थिति का भी यह द्योतक है। भगवती तो आनन्द ब्रह्म है। उसे भौतिक त्रितापो से क्या सम्बन्ध है? वही सदैव आनन्दमयी रहती है। अट्टहास इसी अवस्था का प्रतीक है।

❖ ज्वलन्चितामध्यसस्था

भगवती जलती हुई चिता के मध्य में निवास करती है। मानव देह के नाश के बाद चिता जलाई जाती है। भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता, वह तो अपनी नित्य की स्थिति में रहती है। तारा का भी यही रूप है। उसके चारों ओर अग्नि की

लपटे रहती हैं जो भौतिक वस्तुओं को धारण करने की क्षमता रखती है, परन्तु तारा का निवास ही वही है ।

मृत्यु इस जीवन का सबसे बड़ा कष्ट है, बिना उनका रूप है । इस जीवन की महानतम विपत्तियों के आने पर भी तारा की स्थिति सदैव की तरह एक जैसी रहती है, यही अन्तिम प्रगति का चिह्न है । तारा अपने भक्तों को इसी मार्ग की ओर ले जाती है ।

❖ चन्द्रार्थकृतखर

तारा मस्तक पर चन्द्रकला को धारण किए रहती है । इस स्थान विशेष का सम्बन्ध सोम मण्डल से है, जो ब्रह्मरन्ध्र में नीचे श्री आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित है । इस सोममण्डल से अमृत की धारा का अखण्ड प्रवाह चलता है । इस स्थान पर चन्द्रकला को धारण करने का तात्पर्य यही है कि तारा अमृत रूपा है, अमृत की सरिता का मूल प्रवाह उमी से होता है ।

उपरोक्त स्पष्टीकरण में तारा के तत्त्व-ज्ञान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

तारा-पूजन-विधान

भगवती तारा देवी का मंत्र चार प्रकार में वर्णित किया गया है । इन चारों में से किसी भी एक मंत्र के द्वारा उपासना की जा सकती है -

- (१) ह्रीं स्त्री हू फट्
- (२) ओम् ह्रीं स्त्री हू फट्
- (३) श्री ह्रीं हू फट्
- (४) ओ एं ह्रीं की हू फट्

दिक्पालन्यासः

१—ह्रीं त्रीं ह्रूं अ उ ऋ लृ ए ओ अ ललाटपूर्वे इन्द्राय-
नमः । २—ह्रीं त्रीं ह्रूं आ इं ऋ लृ एं औं अ ललाटा-
ग्नेय्या दिशि प्रग्नये नमः । ३—ह्रीं त्रीं ह्रूं क ख ग घ ङ
ललाट दक्षिणे वमाय नमः । ४—ह्रीं त्रीं ह्रूं च छ ज झ
ञ ललाट नैऋत्या दिशि निऋतये नमः । ५—ह्रीं त्रीं ह्रूं
ट ठ ड ढ ण ललाट परिश्चमाया दिशि वरुणाय नमः ।
६—ह्रीं त्रीं ह्रूं त थ द ध न ललाट वायव्यादिशि वायवे-
नमः । ७—ह्रीं त्रीं ह्रूं प फ ब भ म ललाटोत्तरस्था दिशि
सोमाय नमः । ८—ह्रीं त्रीं ह्रूं य र ल व ललाटेशान्या
दिशि ईशानाय नमः । ९—ह्रीं त्रीं ह्रूं श ष स ह ललाटो-
र्ध्व्यादिशि ब्रह्मणे नमः । १०—ह्रीं त्रीं ह्रूं ल क्ष ललाट-
धोदिशि अनन्ताय नमः ।

षट्चक्र न्यासः

१—ह्रीं त्रीं ह्रूं व श प स डाकिनीयुत ब्रह्माणा चतुदलस-
मन्वितमूलाधारे न्यसेत् । २—ह्रीं त्रीं ह्रूं व भ म य र ल
राकिनीयुत श्री विष्णुलिङ्गस्थ पङ्कदले त्वाविष्टानकक्रे न्यसेत्
३—ह्रीं त्रीं ह्रूं ड ढ त थ द ध न प फ लाकिनीयुतरुद्र
दशदलचक्रनामिस्थे मणिपूरके न्यसेत् । ४—ह्रीं त्रीं ह्रूं
क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ काकिनीयुतमोक्षर
अनाहते द्वादशदले चक्रे हृदि न्यसेत् । ५—ह्रीं त्रीं ह्रूं अ आ
इं उ ऊ ऋ ऋ लृ लृ ए एं ओ औं अ अ शाकिनी-
युत सदाशिव विशुद्धरूप षोडशदले कण्ठस्थे विन्यसेत् । ६—
ह्रीं त्रीं ह्रूं ह क्ष हाकिनी युत पर शिवमाज्ञाचक्रे मनोहरे अ
मध्यस्थे प्रविन्यसेत् ॥

तारादिन्यासः

१—ह्रीं त्रीं हूं अ आ क ख ग घ ङ तारायै नमो ब्रह्मरन्ध्रे ।
ह्रीं त्रीं हूं इ ईं च छ ज झ उग्रायै नमोललाटे । ह्रीं त्रीं
हूं उ ऊ ङ ठ ड ढ ण महोग्रायै नमो भ्रूमध्ये । ह्रीं त्रीं हूं
ऋ ॠ त थ द ध न वज्रायै नम कठदेशे । ह्रीं त्रीं हूं लृ
लृ प फ ब भ म महाकार्यै नमो हृदि । ह्रीं त्रीं हूं ए ऐ य
र ल व श सरस्वत्यै नमो नाभौ ह्रीं त्रीं हूं ओ औ श ष स
ह कामेश्वर्यै नमो लिङ्गमूले । ह्रीं त्रीं हूं अ अ. ल क्ष चामु
ण्डायै नमो यिङ्गमूले ।

पीठ न्यासः

ह्रीं ३ अ इ उ ऋ ॠ ए ओ अ कामरूप पीठाय नम आधरे ।
ह्रीं ३ आ ईं ॠ लृ औं अ जालवरपीठाय नमो हृदि ।
ह्रीं ३ क ख ग घ ङ पूर्णगिपीठाय नमोललाटे । ह्रीं ३ च
छ ज झ ञ उद्धियात पीठाय नम केशरन्ध्रे । ह्रीं ३ ट
ठ ड ढ ण वाराणासी पीठाय नमो भ्रुवो । ह्रीं ३ त थ द
ध न अवन्ति पीठाय नमो नयनद्वये । ह्रीं ३ प फ ब भ म
मायापुरी पीठाय नमो मुखे । ह्रीं ३ य र ल व मथुरापीठा
य नमो कण्ठे । ह्रीं ३ श ष स ह अयोध्या पीठाय नमो नाभौ ।
ह्रीं ल क्ष काञ्चीपुरी पीठाय नम कट्यो ॥ इति पीठ-
न्यासः ॥

१—हा त्रा हा एकजटायै हृदयातनम । हा त्रा हा तारिण्यै
शिरसे स्वाहा । हा त्रा हा वज्रोदाक्यै शिखायै वपट् । हा
त्रा हा उग्रतारिण्यै कवचायै । हा त्रा हा महापरिसरायै
नेत्रत्रयाय वीपट् ।

हा त्रा एक जटायै अगुष्ठाभ्यां नमः । हा त्रा हा तारिण्यै

तर्जनीभ्या स्वाहा । हा त्रा हा वज्रोदकायै मध्यमाभ्या
वषट् । हां त्रां हा उग्रतारायै अनामिकाभ्या हु । हा त्रां हा
महापरिसरायै कनिष्ठिकाभ्यां वोपट् ।

ध्यानम्—विश्वव्यापक वारिमध्य विलसच्छ्रुवेताबुजन्मस्थिता ।

कर्त्री खड्गकपाल नीलनलिनै राजतूकरा नीलभा ।

काञ्चीकुण्डलहार ककणलसत्केयूर मञ्जीरताम् ।

आप्तं नागवरं विभूषिततनूमारक्तनेत्रयाम् । १।

पिण्गोयै कजटा लसत्सुरसनां दष्टाकरालाननाम् ।

चर्मद्वैपिवर कटौ विदधनी श्वेनास्थि पट्टालिकाम् ॥

अक्षोभ्येण विराजमानशिरस स्मेराननाम्भोरुहां ।

तारा शावहुदासना दृढकुचामम्बा त्रिलोक्योः स्मरेत् । २।

एक मन्त्र है—

ओ ह्रीं त्रीं फट् ।

यह पञ्च अक्षर का मन्त्र है । जब इस मन्त्र में ओकार न
लगाया जाए तो इसे 'एकजटा' कहते हैं और 'ओ फट्' को निकाल देने
पर 'नील सरस्वती' कहलाती है ।

आसन देने का मन्त्र—'सा ह्रीं सरस्वती योगपीठात्मने नमः' ;

जल देने का मन्त्र—“ओ वज्रोदके हुँ फट्” ।

आचमन मन्त्र—“ह्रीं सुविशुद्धधर्मं सर्वं पापानि शामभ्या
शेषविकल्पानपनय स्वाहा”

शिखा बन्धन मन्त्र—ओ मणिधरिवज्ररिय सर्वं वशकरणि
क ह फट् स्वाहा”

भूमि शोधनका मन्त्र—ओ रक्ष २ हु फट् स्वाहा ।

विघ्न निवारण मन्त्र—'ओ सर्वविघ्नानुसारय हुँ फट् स्वाहा

तारोपनिषत् मे ताग वे कुछ ध्यान इस प्रकार दिये गए हैं—

विरुद्धवाक्यायंगरीरमण्डले नवाम्बुदाभा गुरुमुन्नतोदरीम् ।
अतिवस्त्रवा नवयौवनस्यामव - स्थगादूर्लककृत्तिमूधजाम् ॥

अनैक्यमाहृत्य शवोपरिस्थिता शवावमालोढ-परीतमध्यमाम् ।
विशोण्वर्णा नृगिर स्वजोदवा त्रयोविवर्त्तारुणलोचनत्रयाम्
अभेदपिङ्गे कजटाविरजिता विभूषणाच्छिन्न सितास्थि भीष-
णाम् । महाष्टसिद्धि प्रकाशहिभूषणामट्ट दृहासैजगताम-
भीतिदाम् ॥

जटाम्बुनन्त श्रवसोऽव तक्षको महाहिपद्मो हृदिहार भूष-
णम् । तथैव कर्कोटकृतोपवीतिका सुमेखलायामथ देव-
चामुकि ॥

सखपाल किल ककरो मत पदेषु पद्म किल नूपुरश्रियम् ।
भुजेषु नाग कुलिकोज्ञ दोमतो भुजाञ्चमालामहतास्थिति
स्थिता ॥

मितश्च रक्तो धवलश्च मेचकस्तथैव नागोऽथ मितश्च ॥
पाण्डर । भुजगमानामिह वर्णजातयो भवन्ति सर्वे मुनि-
भिर्ज्वलन्विताम् ॥

कपालकर्त्तुं ग्रथितोग्रमूधजा सनालमिन्दीवरकान्तिमालाम् ।
चकोपखड्ग सतत च दक्षिणे स्वपौरुषात्यर्द्रवती भृजं सदा ॥
पदार्थदष्टाद्वय पञ्चमुद्रया विराजमानाममि तोत्पलत्रजम् ।
विचिन्तयेत्ता च कवित्वकारिणीमन्यागतार्थं प्रजपेच्च तारि-
णीम् ॥

तारा के जप का पुरश्चरण चार लाख मन्य का है । रक्त-कमल
के द्वय और धी मिनाकर दशाश ग्रन्थान् ४० हजार ग्राहवियों का हवन

— ॥ ॥ ॥

तारा मन्त्र

सुवर्णादि पीठे गोरोचनाकु कुमादिलिप्ते 'ओ अ सुरेखे वजुरेखे ओ फट् स्वाह, इति मन्त्रेणाधोमुख त्रिकोणगर्भाष्टि दलपद्म वृत्त चतुरस्र चतुद्वरियुक्त मन्त्रमुद्धरेत् ।

“स्वर्ण आदि से बनी चौकी पर गोरोचन, कु कुम आदि से लेप करके 'ओ आ सुरेखे, इत्यादि मन्त्र से अधोमुखी त्रिकोण में, अष्टदल कमल बनावे और उसके बाहर गोलाकार चौकोर और चतुर्द्वार युक्त यन्त्र का लेखन करे” । ३।

लक्षद्वय जपेद्विद्या हविष्याशी जितेन्द्रिय ।

पलाश कुसुमैर्देवी जुहुयात्तद्दशाशत ॥

“हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहता हुआ साधक दो लाख बार मन्त्र-जप करे और पलाश पुष्प के द्वारा उसका दशाश होम करे” ।

दिव्य हि कवच देवि ताराया. सव्वकामदम् ।

शृणुष्व परम तत्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥

‘भैरव बोले—हे देवि ! भगवती तारा का यह कवच परम श्रेष्ठ और सभी कामनाओं का देने वाला है । तुम्हारे प्रति स्नेह होने से ही उसे प्रकट करता हूँ” । १।

अक्षोभ्य ऋषिरित्यस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।

तारा भगवतो देवी मन्त्रसिद्धौ प्रकीर्तितम् । २।

“इस कवच के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द त्रिष्टुप, देवता भगवती तारा देवी और मन्त्र सिद्धि में इसका विनियोग है” । २।

ओकारो मे शिर पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी ।

ह्रीङ्कार पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी ॥

स्वाङ्क र पातु वदने लज्जारूपा महेश्वरी ।

हुङ्कार पातु हृदये तारिणी शक्तिरूपधृक् । ३।

“घोकार युक्त ब्रह्मरूप महेश्वरी मेरे शिर की रक्षा करें, ह्रींकार वीज रूपा महेश्वरी मेरे ललाट की रक्षा करें, स्त्रीकार लज्जा रूपा महेश्वरी मेरे मुख की रक्षा करें और हुंकार शक्ति रूपा तारिणी देवी मेरे हृदय की रक्षा करें” । ३।

फट्कार पातु सर्वांगे सर्वमिद्धि फलप्रदा ।

खर्वा मा पातु देवेशो गण्डयुग्मे भयापहा ॥

लम्बोदरो सदा स्कन्धयुग्मे पातु तहेश्वरी ।

व्याघ्र चर्मावृता कटि पातु देवा शिवप्रिया । ४।

‘फट् युक्त सर्व मिद्धि से का फल देने वाली देवी मेरे सर्वांग की रक्षा करें, खर्वा देवी मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करें, लम्बोदरी महेश्वरी मेरे दोनों स्कन्धों की सदा रक्षा करें, और व्याघ्र चर्म से आवृत भगवती शिव प्रिया मेरी कटि देश की रक्षा करें’ । ४।

पीनोन्ततस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी ।

रक्तवत्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावनु ॥

ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मा भुवनेश्वरी ।

करालास्या सदा पातु निगे देवा हरप्रिया । ५।

‘पीनेस्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पार्श्वों की रक्षा करें, रक्ता वृणों के गोल नेत्र वाली भगवती मेरे कटि देश की रक्षा करें, लोल जिह्वा भुवनेश्वरी माना मेरी नाभि की रक्षा करें और शकर की प्रियतमा करालास्या देवी मेरे उदर की रक्षा करें’ । ५।

विवादे कलहे चंद्र अग्नौ चरणमध्यत ।

सर्वदा पातु मा देवी क्लिष्टीरूपा वृकोदरी । ६।

“विवाद, कलह, अग्नि के मध्य में और चंद्रमा भूमि में क्लिष्टी रूपा वृकोदरी देवी मेरी सदा ही रक्षा करती रहे” । ६।

सर्वदा पातु मा देवी स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।

सर्वस्त्रभूषिता देवी सर्ववद्वप्रपूजिता ॥

क्री क्रीं हु हु फट् फट् पाहि समन्तत ७।

“स्वर्ग लोक में या मर्त्य लोक में सदा ही भगवती मेरी रक्षिका हो । वह देवी सभी देवताओं द्वारा पूजिता और सभी प्रकार के अस्त्रों से विभूषिता है । ‘क्री क्री हु हु फट् फट्’ यह बीज मेरी सब और से रक्षा करने वाले हो” ७।

कराला घोरदशना भीमनेत्रा वृकोदरी ।

अट्टहासा महाभागा विघूर्णितत्रिलोचना ॥

लम्बोदरी जगद्धात्री डाकिनी योगिनीयुता ।

लज्जारूपा योनिरूपा विकटा देवपूजिता ॥

पातु मा चण्डी मातंगी ह्यग्रचण्डा महेश्वरी ८।

“कराल रूप वाली, घोर दातो वाली, भीषण नेत्र वाली, वृकोदरी, महाभाग, अट्टहास करने वाली, घूर्णित नयनत्रय वाली, लम्बोदरी, जगत के रचने वाली, डाकिनी और योगिनियों को साथ रखने वाली, लज्जा रूपिणी, विकटा, चण्डी, मातंगी, उग्र चण्डा, देव पूजिता महेश्वरी सदैव रक्षा करने वाली हो” ८।

जले स्थले चान्तरिक्षे तथा च शत्रुमध्यत ।

सर्वत पातु मा देवी खड्गहस्ता जयप्रदा ९।

“जल, स्थल एवं शून्य में तथा शत्रुओं के मध्य में भी जय प्रदायिनी भगवती खड्ग हाथ में लिये हुए सर्वत्र ही मेरी रक्षा करे” ९।

कवच प्रपठेद्यस्तु धारयेच्चृणु यादपि ।

न विद्यते भय तस्य त्रिषु लोकेषु पार्वति १०।

“जो मन्त्र इस कवच का पाठ करते, इसे धारण करते प्रथवा

सुनते हैं, उनके लिए तीनों लोको में कहीं भी भय उपस्थित नहीं होता' ११०।

३-षोडशी (त्रिपुरसुन्दरी)

मध्याह्न को जब सूर्य की शक्ति उग्र होती है, तब उसका नाम रुद्र होता है और उसकी शक्ति का नाम तारा । प्रातः कालीन सूर्य शक्ति शिवात्मक है जिसे 'पञ्चवक्त्र शिव' की सजा 'शिव तन्त्र' में दी गई है । इसकी शक्ति 'षोडशी' है । निर्माण का कार्य इसी शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है । यद्वा कहना चाहिए कि प्रशान्त हिरण्य-गर्भ या सूर्य शिव है और इनकी शक्ति का नाम षोडशी ।

चारो दिशाओं और ऊर्ध्व दिशा के अभिमुख होने के कारण ये शिव का नाम 'पञ्चवक्त्र' पड़ा ।

शङ्कर के अधोर तत् पुरुष, वामदेव सद्योजात और ईशान पांच मुख बताए जाते हैं । ईशान का लाल रंग बताया जाता है । यह अग्नि प्रधान है और स्वयम्भू मण्डल का प्रतीक है । यह सबसे ऊपर स्थित रहता है । श्वेत रूप का तत्पुरुष पूर्व की ओर सूर्य मण्डल में स्थित रहता है । सूर्य किरणों में सात रंग होते हैं, उनके मिलने पर सफ़ेद रूप बन जाता है । कृष्ण वर्ण का अधोर रूप दक्षिण की ओर होता है और उप-प्रधान जनलोक का प्रतिनिधि माना जाता है । यह मूर्ति मध्य में रहती है । पीत वर्ण में सद्योजात मूर्ति पश्चिम की ओर होती है जो महर्लोक में स्थित मानी जाती है । श्वेत वर्ण के वामदेव का मुख उत्तर की ओर रहता है । यह तपोलोक का प्रतीक है ।

इसमें स्पष्ट है कि शिव के यह पांच मुख पाँच लोको के प्रतीक हैं ।

शिव पुराण, वायु संहिता (उत्तर भाग) में इन पांच मूर्तियों का विवरण इस प्रकार दिया है -

शिवजी की पंच आत्ममूर्ति सम्पूर्णा विश्वव्याप्त हैं। ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और सद्योजात यह उनकी पंचमूर्ति विश्व-विख्यात हैं। उनकी ईशान नामक प्रथम मूर्ति प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्र में स्थित तत्पुरुष नामक स्थाणु की मूर्ति गुणाश्रय होकर भोगती है, वह अव्यक्त में स्थित है।

अधोर मूर्ति शिव के बुद्धित्व में पूजित है तथा घर्मादि षष्ठाङ्ग से युक्त होकर स्थित है। विघाता या वामदेव नामक शिव-मूर्ति को शास्त्रज्ञ-जन अहङ्कार में स्थित रहने वाली कहते हैं। शिव की सद्योजात मूर्ति को ज्ञानी जन मन में स्थित होने वाली बताते हैं। श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की विभु तथा सब की ईश्वरी मूर्ति को ज्ञानियों ने 'ईशान' कहा है। त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु की अधीश्वरी मूर्ति को पुराणवेत्ता जन पुरुष कहते हैं चक्षु, चरण अग्नि की अधीश्वरी मूर्ति को विद्वानों ने घोर कहा है। रसना, वायु रस और जल के अधीश्वर मूर्ति को उसके ज्ञाताओं ने 'वामदेव' कहा है। घ्राण, उपस्थ, गन्ध और पृथिवी की अधीश्वरी मूर्ति 'सद्योजात' नाम वाली कही गई है।

इसी शिवात्मक शक्ति का नाम 'षोडशी' है। इसमें षोडश कला पुरुष का पूर्ण विकास है। भू, भुव स्व रूपी तीनों ब्रह्मपुत्रों को यही उत्पन्न करती है। अतः तन्त्र में इसका नाम 'त्रिपुर सुन्दरी' पड़ा। श्रीविद्या का नामान्तर ही त्रिपुरा है। तीन पुर मन, बुद्धि और चित्त के प्रतीक हैं, वह इनमें निवास करती है, इसलिए त्रिपुरा कहलाती है। तीन योगिक नदियों—इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना को भी त्रिपुरा कहा जाता है। यह सत्, रज, तम को अपने नियन्त्रण में रखने की क्षमता रखती है। अतः त्रिपुरा है। उसके ज्ञान, क्रिया और इच्छा शक्ति—

तीन रूप हैं। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न करती है, वह ऋक्, यजु और साममयी है। इसलिए त्रिपुरा है।

‘श्रीविद्या’ ही पोटपी, महात्रिपुरा सुन्दरी, गजराजेश्वरी, पञ्च-दशी, ललिता, बाला आदि नामों से प्रसिद्ध है। दस महाविद्याओं में पोटपी विद्या ‘श्री विद्या’ का ही परिणत स्वरूप है। यह श्री विद्या ही ब्रह्मविद्या है। ‘श्री’ शब्द श्रेष्ठता, सम्मान और उच्चता का द्योतक है। इसलिए सम्मानीय व्यक्तियों के साथ यह सम्बन्ध किया जाता है। त्यागमूर्ति मयामी श्रेष्ठता का प्रतीक माना जाता है इसलिए उसे ‘श्री १०८’ के श्रेष्ठता सूचक नाम से विभूषित किया जाता है। ‘श्री’ का अर्थ महालक्ष्मी गौण है। हरितायन सहिता और ब्रह्माण्डपुराणों के अनुसार श्री का मुख्य अर्थ ‘महा त्रिपुर सुन्दरी’ है। श्री विद्या के उपामक को लोक और परलोक दोनों में सिद्धि प्राप्त होती है। शास्त्र का प्रमाण है—

यत्रान्ति भोगो न च तत्र मोक्षो

यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगा ।

श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणा

भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

अर्थात् ‘जहाँ पर भोग है वहाँ मोक्ष नहीं होता जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग का अभाव है। यह साधारण नियम है, किन्तु श्री सुन्दरी के स्तवाराधन में तत्पर रहने वाले पुरुषों को भोग और मोक्ष दोनों ही पदार्थ साथ साथ हाथ में रहा करते हैं।

श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य ने सौन्दर्य लहरी स्तोत्र में कहा है—

त्वदन्य पाणिभ्यामभयवरदो देवतगण-

स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया ।

भयात् प्रातु दातु फलमपि च वाञ्छासमधिक
शरण्ये लोकाना तव हि चरणादेव निपुणौ ॥

अर्थात् 'आपसे अन्य कोई भी देवगण नहीं है जो दोनों हाथों से अभय का वरदान प्रदान कर देवे । प्रभोति के अभिनय वाली और वरदान प्रकट करने वाली आप एक ही हैं अन्य कोई भी नहीं । भय से परित्राण करने को और फल देने के लिए जो कि इच्छा से भी कहीं अधिक होता है आप ही एक हैं । जो आपकी शरणागति में आ जाते हैं उनकी पूर्ण सुरक्षा करने में आपके चरण परम निपुण हैं । आपके चरण की शरण में प्राप्त होने पर फिर अमञ्जल रहता ही नहीं ।'

श्री विद्या आत्म शक्ति हैं, त्रिपुराम्बा आत्म शक्ति है । हरितायन सहिता में श्री दत्तात्रेय गुरु ने परशुराम जी से 'त्रिपुराम्बा' के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि उस शक्ति का वर्णन करना सम्भव नहीं है, वेद-शास्त्र और तन्त्र इस कार्य में असमर्थ रहते हैं, ब्रह्मा विष्णु और महेश भी इस शक्ति के स्वरूप से अनभिज्ञ हैं, इस पराशक्ति की महिमा का गान कौन कर सकता है ? क्योंकि शक्ति-महिमा स्तोत्र में देशिकेन्द्र दुर्वासा ने इनकी उत्पत्ति ही त्रिपुर सुन्दरी से मानी है ।

तृयी तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकारा-
द्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधतीर्णविकृति ।

तुरीय ते धाम ध्वनिभिखरूघानमणुभि ।

समस्त व्यस्त त्वा शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥

(म० स्तो०)

'तृयी' अर्थात् वेदत्रयी है—तीन वृत्तियाँ हैं—भुवन भी तीन हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह देव भी तीन हैं । तीन विकृति भी

अवकारादि वर्णों के द्वारा तीन प्रकार से कही गई है । ध्वनियों में अवरुद्ध आपका घाम तुगीय है । अणुप्रो समस्त और व्यस्त आपको हे शरणद । ओम्—यह पद ग्रहण किया करता है ।

आद्यं रग्निरवोन्दुबिम्बनिलयैरम्बत्रिलिङ्गकात्मभि-

मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत्पदैस्तैस्त्रिभि ॥

स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयै-

रुद्भूतत्रिपुरेति नाम कलयेहास्ते स धन्यो बुध ॥

—क्रोधभट्टारक (श०म० स्तोत्र)

अर्थात् 'हे अम्बा ! आद्य अग्नि--रवि--शशि के बिम्ब में विलय वाले त्रिलिङ्ग स्वरूप से युक्त--मिश्र, आरक्त और सित प्रभा से समन्वित--अनुपम आपके उन तीन पदों से--अपनी आत्मा से उत्पादित काल, लोक--निगमावस्था और अमरादित्रय से सद्भूत त्रिपुरा--इस नाम को जो लेना है वह मनुष्य परम् बुध और इस विश्व में अतीव धन्य है ।

भावनोपनिषद् के अनुसार 'इच्छाशक्ति महात्रिपुर सुन्दरी' इच्छा शक्ति ही महात्रिपुर सुन्दरी नामक आराध्य भगवती है ।

इसका ध्यान इस प्रकार है--

बालार्कं मण्डलाभासा चतुर्बाहा त्रिलोचनाम् ।

पाशाकुशचतुर्बाणान् धारयन्ती शिवा भजे ॥

(शक्ति प्रमोद--षोडशी तन्त्र)

अर्थात् 'उस बालार्क मण्डल की तरह आभा वाली अग्नि, सूर्य और सोम रूपी त्रिनेत्र वाली, चतुर्भुज, पाश अ कुश चाप और शर को धारण करने वाली का ध्यान करना है ।'

सूर्य की उग्रता में जब सोम की आहुति दी जाती है, तब उसकी

उग्रता शान्त हो जाती है । रुद्र—शिव बन जाते हैं । मध्याह्न में उग्रता रहती है और प्रातः शान्ति । प्रातः कालीन सूर्य को ही 'बाल-सूर्य' के नाम से अभिहित किया गया है ।

सूर्य की शक्ति सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक रूप से विद्यमान रहती है । यह ब्रह्म एड चतुर्भुज है । इसलिए षोडशी को 'चतुर्वाही' कहा है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश और यम चारो देवता इसके नियन्त्रण में रहते हैं, 'चतुर्वाही' का एक भाव यह भी है ।

त्रिलोचना का अभिग्राय सूर्य, सोम और अग्नि नामक तीन नेत्रों से है ।

सूर्य में इतनी आकर्षण शक्ति है कि वह पृथ्वी व अन्य ग्रह-नक्षत्रों को एक व्यवस्थित नियमानुसार अपने चारों ओर घुमाने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है । इन पर निवास करने वाले समस्त प्राणी उस पर आश्रित हैं, उनका जीवन सूर्य के कारण ही क्रियाशील रहता है, अतः सभी उनके चारु गुण में, पाश में हैं । पाश का आध्यात्मिक अर्थ राग है 'राग पाश' (भाव सूत्र ३३) । राग को मानेश्वरी ने अपने अधिकार में ले रखा है ।

इसी के भय से अग्नि और सूर्य तपते हैं और इन्द्र, वायु, यमराज आने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य ।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम ॥

(कठ० २।३।३)

इसमें अकुश का भाव विदित होता है । अकुश का आध्यात्मिक भाव है—द्वेष, 'द्वेषोऽङ्कुश' (भाव० २४) । वह द्वेष भाव को वकसित नहीं होने देती ।

यजुर्वेद में वर्षा, पवन, और अन्न को 'इषु' (वाण) कहा है—
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवियेपा वर्षमिषव ।

(१६।६४)

'जो रुद्र स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके वाण वृष्टि रूप हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है ।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येपा वातऽइषवः ।

(१६।६५)

'जो रुद्र अन्तरिक्ष में वाम करते हैं, जिनके वाण पवन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है ।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्या येपामनमिषवः ।

(१६।६६)

'जो रुद्र पृथ्वी पर विद्यमान हैं, जिनके वाण अन्न हैं, जो अन्न के मिथ्या आहार-विहार द्वारा रोगोत्पत्ति कर मारते हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है ।'

पञ्चबाणों का अभिप्राय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूपी पञ्चतन्मात्राएं हैं । शब्दादिनन्मात्रा पञ्च पुण्यबाणा (भाव २१) ।

मन ही इक्षवतु है । 'मन इक्षु धनु,' (भाव ० २२) । उत्तर धनु शती शास्त्र में पाशु, अ कुश, धनुष और वाण का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

इच्छाशक्तिमय पाशम कुश ज्ञानरूपिणम् ।

क्रियाशक्तिमये वाणधनुषो दधुज्जवलम् ॥

अर्थात् 'इच्छा शक्ति—पाश, ज्ञान शक्ति, अ कुश, और क्रिया-शक्ति स्वरूप—यह वाण और धनुष हैं । महात्रिपुर सुन्दरी इनका प्रतिनिधित्व करती हैं ।

षोडशी पूजन विधि-मन्त्र

श्री ह्रीं क्लीं ऐं सौं ओं ह्रीं श्रीं क ए ई
ल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकलह्रीं सो ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ।

कवचम्

श्रीदेव्युवाच —

भगवन् देवदेवेश लोकानुगहकारक ।
यदुक्त मे महादेव कवच सुन्दरीप्रियम् ॥
तन्मे कथय देवेश यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवच मन्त्रविग्रहम् ।
सर्वार्थसाधक देवि सर्वसम्पत्तिपूरकम् ॥

अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमन्त्रवर्णात्मिककवचमहा
मन्त्रस्य दक्षिणां मूर्तिभंगवान् ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्री
महात्रिपुरसुन्दरो देवता । ऐं बीजम् । सौ शक्ति ।
क्लीं कीलकम् । मम शरीररक्षणार्थं जपे विनियोगः ।
ह्यामित्यादि करहृदयन्यासः ॥

छातनम्

वालाकर्मण्डलाभासा चतुर्बर्हि त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशघनुर्बाणान् धारयन्ती शिवा भजे ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा ऐं ह्रीं श्रीं योग्या प्रणम्य—
ककार, पातु मे शीर्ष एकार पातु फालकम् ।
ईकार पातु मे वक्त्र लकार पातु कर्णकम् ॥

लीङ्कार पातु हृदय वाग्भवञ्च सदाऽवतु ।
 हकार पातु जठर सकारो नाभिदेशकम् ॥
 ककारोऽव्याद्वस्तिभाग हकार पातु लिङ्ग तम ।
 लकारो जानुनी पातु लीङ्कारो जङ्घाश्लेषकम् ॥
 कामराजस्मदा पातु जठरादिप्रदेशकम् ।
 सकार पातु मे जङ्घा ककार पातु पृष्ठकम् ॥
 लकारोऽव्यान्तितम्ब मे लीङ्कार, पातु मूलकम् ।
 वक्तिरोजस्सदा पातु मूलावारादिदेशकम् ।
 त्रिपुरा देवता पातु त्रिपुरेशा च सर्वदा ।
 त्रिपुरा सुन्दरी पातु त्रिपुरा शोस्तथाऽवतु ॥
 त्रिपुरा मालिनी पातु त्रिपुरा मित्रिदाऽवतु ।
 त्रिपुरास्वा तथा पातु पातु त्रिपुरभैरवी ॥
 अणिमाद्यान्तथा पान्तु ब्राह्मयाद्या पान्तु मा नदा ॥
 दशमुद्रास्तथा पान्तु कामरूपेणपूर्विका ॥
 पान्तु मा पौडगदले यन्त्रेऽनङ्गकुमारिका,
 पान्तु मा पृष्ठत्रय तु सर्वसक्षोभणादिका ॥
 पान्तु मा ब्राह्मदिकतोणा मध्यदिकतोणके तथा ॥
 सर्वज्ञाद्यास्तथा पान्तु सर्वाभोष्टप्रदायिका ।
 वायव्याद्यास्तथा पान्तु वसुनस्य देवता, ॥
 त्रिकोणस्यान्तराले तु पान्तु मामायुधानि च ।
 कामेश्वर्यादिका पान्तु त्रिकोणे कोणमस्थिना ॥

त्रिन्दुवक्त्रे तथा पातु महात्रिपुरमुन्दरी ।
 पुनर्त्तमादिशोनिमुद्रया प्रणामान् श्री ह्रीं ऐं ओं—

इतीदं कवचं देवि कवचं मन्त्रसूचकम् ।
 यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कथञ्चन ॥
 यस्त्रिसन्ध्यं पठेद्देवि लक्ष्मीस्तस्य प्रजायते ।
 अथम्या च चतुर्दश्या यं पठेत् प्रयतस्सदा ॥
 प्रसन्ना सुन्दरी तस्य सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।

ध्यानम्

अरुणा करुणातरङ्गिताक्षी धृतपाशाङ्क शपुष्पवाणचापाम् ।
 अणिमादिभिरावृता मयूखैरहमित्येव भवानीम् ॥
 ध्यायेत्पद्मासनस्था विकसितवदना पद्मापत्रायताक्षी
 हेमाभा पीतवस्त्रा करकलितलसद्वेमपद्मा वराङ्गीम् ।
 सर्वालङ्कारयुक्ता सततमभयदा भक्तनम्रा भवानी
 श्रीविद्या शान्तमूर्ति सकलसुरनुतां सर्वसम्पत्प्रदात्रीम् ॥
 सकुकु मविलेपनामलिकक्रम्बिकतूरिका
 समन्दहसितेक्षणा सशरचापपाशाकुशाम् ।
 अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषा वरा
 जपाकुसुमभासुरा जपविधौ स्मरेदम्बिकाम् ॥
 —अथ खड्गमालापारायणं कृत्वा—
 —ततः न्यासजालात्मकं कुर्यात्—

मुन्यादिन्यासः

ह्री श्री दक्षिणामूर्तये नमः मूर्ध्नि
 ,, पङ्क्तये नमः मुखे
 ,, त्रिपुरसुन्दर्यै नमः हृदि

„ ऐ बीजाय नम. गुह्ये
 „ सो शक्त्यै नम पादयोः
 „ क्ली कीलकाय नम नाभौ
 इति मुन्यादिन्यासा ॥

अथ बहिर्मातृका

अस्य श्रीबहिर्मातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य
 ब्रह्मणे ऋषये नम (शिरसि) गायत्र्यै छन्दसे नम
 (मुखे) श्रीबहिर्मातृकासरस्वत्यै देवतायै नम (हृदये)
 हल्भ्यौ बीजेभ्यो नम (गुह्ये) स्वरेभ्यश्शक्तिभ्यो नम.
 (पादयोः) बिन्दुभ्य कीलकेभ्यो नम (नाभौ) मम
 श्रीविद्याङ्गत्वेन बहिर्मातृकाप्रसादसिद्धयर्थे न्यासे विनि-
 योगाय नम (करसम्पुटे) सर्वमातृकया त्रिव्यपिक
 सर्वाङ्गे अञ्जलिना ।

ऐ ह्री श्री ऐं ल्की सौ अ क ख ग घ ङ आ अङ्गुष्ठाभ्या नम
 हृदयाय नम
 „ इ च छ भ ञ इं तर्जनीभ्या नम
 शिरसे स्वाहा
 „ उ ट ठ ड ढ ण ऊ मभ्यमाभ्या नम
 शिखायै वषट्
 „ ए त थ द ध न ऐं अनामिकाभ्या नमः
 कवचाय हुं
 , ओं प फ भ म औं कनिष्ठिकाभ्या नमः
 नेत्रत्रयाय वीषट्
 „ म य र ल व श ष स ह क्ष अ कर-
 तलकरपृष्ठाभ्या नम अस्त्रायफट्

ध्यानम्

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदो पादयुग्मकुक्षिवक्षो-
 देशा नास्वत्कपर्दाकलितशशिः लामिन्दुकुन्दावदाताम् ॥
 अक्षस्रक्कुम्भचिह्नमभयवरकरा त्रीक्षणामब्जसस्था-
 मिच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरा भारती ता नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

दक्षोर्ध्वकरमारम्य दक्षाघ करपयन्त प्रादक्षिण्येन आयुधस्थिति

ए	ही	श्री	ए	क्ली	सौ.	अ	नम,	मूर्त्ति
"						आ	"	मुखवृत्त
"						इ	"	दक्षनेत्रे
"						ई	"	वामनेत्रे
"						उ	"	दक्षकर्णे
"						ऊ	"	वामकर्णे
"						ऋ	"	दधनासापुटे
"						ॠ	"	वामनासापुटे
"						लृ	"	दक्षकपोले
"						लू	"	वामकपोले
"						ए	"	ऊर्ध्वोष्ठे
"						ऐ	"	अधरोष्ठ
"						ओ	"	ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ
"						औ	"	अधोदन्तपङ्क्तौ
"						अ	"	जिह्वाग्रे
"						अ.	"	शिरावृत्ते
"						क	"	दक्षिणबाहुमूले
"						ख	"	तद्बाहुमध्ये

॥	ग	॥	दक्षिणमणिबन्धे
॥	घ	॥	दक्षिणकराङ्गुलिमूले
॥	ङ	॥	दक्षिणकरागुल्यग्रे
ऐं ह्री श्री ए	वली	सौ च नम	वामबाहुमूले
॥	ज	॥	तत्कूर्परे
॥	झ	॥	वामकराङ्गुलिमूले
॥	ञ	॥	तदङ्गुल्यग्रे
॥	ट	॥	दक्षिणपादसूले
॥	ठ	॥	तज्जानुनि
॥	ड	॥	तद्रुल्फे
॥	ढ	॥	तदङ्गुलिमूले
॥	ण	॥	तदङ्गुल्यग्रे
॥			मोरुमूले
॥	थ	॥	वामजानुनि
॥	द	॥	वामगुल्फे
॥	ध	॥	वामपादाङ्गुलिमूले
॥	न	॥	वामपादाङ्गुल्यग्रे
॥	प	॥	दक्षपाश्वर्
॥	फ	॥	वामपाश्वर्
॥	ब	॥	पृष्ठे
॥	भ	॥	नाभौ
॥	म	॥	जठरे
॥	य	॥	हृदये
॥	र	॥	नम दक्षकक्षे
॥	ल	॥	वलपृष्ठे
॥	व	॥	वामकक्षे

ऐ ह्री श्री क्ली	श	नम हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्त
"	ष	" हृदयादियामकराङ्गुल्यन्त
"	स	" हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्त
"	ह	" हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्त
"	ल	" पादादिनाभ्यन्तम्
"	क्ष	" नाभ्यादिब्रह्मरन्धान्तम्

ह्रसौ अ + क्ष ह्रसौ नम इति त्रिव्योपकत्वेन
सर्वाङ्गव्याक न्यदत्

इति बहिर्मातृका

अथ अन्तर्मातृका

अस्य श्री अन्तर्मातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य
ब्रह्मणे ऋषये नम (शिरसि) गायत्र्यै छन्दसे नम,
(मुखे) अन्तर्मातृकासरस्वत्यै देवतायै नम (हृदये)
हृत्स्थो बीजेभ्यो नम (गुह्ये) स्वरेभ्यश्शक्तिभ्यो नम.
(पादयो) बिन्दुभ्य कीलकेभ्यो नम (नाभौ) अन्त-
र्मातृकासरस्वतीप्रमादसिद्धयर्थे न्यासे त्रिनियोगाय नम ॥

करहृदयादिन्यास बहिर्मातृकान्यासवत्

ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के ।
वासान्ते बालमध्ये उफकठसहिते कण्ठमूले स्वराणां
ह क्ष तत्त्वार्थयुक्त सकलदलयुत वर्णरूप नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

(हंसस्सोह सोहं ह सः)

विशुद्धचक्रे षोडशारे अ नम + अ नम हसस्सोह ।
 अनाहतचक्रे द्वादशदले क नम + ठ नम हसस्सोह ।
 मणिपूरकचक्रे दशदले ड नम + फ नम हसस्सोह ।
 स्वाधिष्ठानचक्रे षड्दले ब नम + ल नम हसस्सोह ।
 मूलाधारचक्रे चतुर्दले व नम + स नम हसस्सोह ।
 आज्ञाचक्रे द्विदले ह नम क्ष नम हसस्सोह ।

ब्रह्मरन्ध्र सहस्रारे पञ्चाशदङ्गान् अनुलोमप्रतिलोमेन
 अकारादि क्षकारान्त क्षकाराद्यकारान्त विन्यसेत्

इत्यन्तर्मातृकान्यास

करशुद्धिन्यासः

दक्षकरतले अ नम तत्पृष्ठे आ नम तत्पार्श्वे सौ ।
 नम वामकरतले अ नम तत्पृष्ठे आ नम तत्पार्श्वे सौ
 नम मध्यमयो, अ नम अनामिकयो आ नम कनि
 ष्टिकयो सौ नम अगुष्ठयो अ नम तर्जन्यो आ नम,
 करतलकरपृष्ठयो सौ नम ॥

इति करशुद्धिन्यास

आत्मरक्षान्यास

ऐ ह्री श्री एं क्ली सौ महात्रिपुरसुन्दरि, आत्मान
 रक्ष रक्ष इत्यञ्जलि हृदये दद्यात्

इत्यात्मरक्षान्यास

चतुराव्यास

ह्रीं क्लीं सौ श्रीदेव्यात्मासनाय नम पादयो. ४

है ह्रीं हसौ श्रीचक्रासनाय नम जङ्घयो हसे
हस्की हमौ सर्वमन्त्रासनाय नम जान्वो ह्रीं क्लीं ब्लं
साद्वयसिद्धासनाय नम, मूलाधारे ॥

इति चतुरासनन्यासा

वालाडङ्गन्यासः

ऐ हृदयाय नम	सौ कवचाय हु
क्ली शिरसे स्वाह	क्ली नेत्रत्रयाय वौषट्
सौ शिखाय वषट्	ऐं अस्त्राय फट्

इति बालापङ्गन्यास

वाग्देवतान्यास

ओम् अ . अ, १ इव्लू वशिनीवाग्देवतायै नमः
शिरसि-क २ क्ली कामेश्वरीवाग्देवतायै नम ललाटे
च ५ न्वली मोदिनी- वाग्देवतायै नम, भ्रूमध्ये ट ५
त्यू विमलवाग्देवतायै नम कण्ठे ५ उम्नी अरुणावा
ग्देवतायै नम, हृदये प हस्त्व्यू जयिनी वाग्देवतायै
नम नाभौ य ४ भूम्न्यू सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नम गुह्ये
श ३ ६म्नी कौलिनी वाग्देवतायै नम, मूलाधारे ॥

इति वाग्देवतान्यास

मूलविद्यान्यासः

मू धिन क-मूले ऐ हृदये ईं दक्षिणनेत्रे ल-वामनेत्रे
ह्रीं-भ्रूमध्ये ह दक्षिणश्रोत्रे स वामश्रोत्रे क मुखे ह

दक्षिणभुजे न वामभुजे ह्रीं-पृष्ठे म दक्षजानुनि क वाम-
जानुनि न नाभौ ह्री ॥

इति मूलविद्यान्यासः ॥

तत्त्वन्यासः

दक्षरादे आत्मनत्वाय नम वामे क्रियाशक्त्यै
नम दक्षपार्श्वे विद्यानत्वाय नम वामे ज्ञानशक्त्यै नम
दक्षकपोले शिवनत्वाय नम वामे इच्छाशक्त्यै नम
मूर्ध्नि मर्दनत्वाय नम तत्रैव तुर्य शक्त्यै नम ॥

इति तत्त्वन्यासः ॥

अथान्तश्चक्रन्यासः

अथ महन्तारे अ आ मी चतुरश्रत्रयात्मक त्रैलोक्य-
मोहनचक्राधिष्ठाय अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिमहि-
तप्रकटयोगिनीरूपाय त्रिपुरादेव्यै नम, तदुपरि विपु-
सजे पद्मले एँ क्लीं सौ पीडनदलपद्मात्मकमर्वाशापरि-
पूरकचक्राधिष्ठाय कामाकर्पिण्यादिपाडनशक्तिमहिन-
गुप्तायोगिनीरूपाय त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नम, आधारे ह्रीं
क्लीं सौ अष्टदलपद्मात्मकसर्वलोभणचक्राधिष्ठाय
अनङ्गकुमुमाद्यष्टशक्तिसहितगुप्तरयोगिनीरूपाय त्रिपुर-
सुन्दरीदेव्यै नम नम स्वाधिष्ठाने है हक्लीं ह्मो,
चतुर्दशारात्मकमर्वाभायदायकचक्राधिष्ठायै सवम-
क्षाभिण्यादि चतुर्दशशक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपाय
त्रिपुरवामिनीदेव्यै नम मणिपूरे ह्मे हक्लीं ह्मो.
बहिर्दशारात्मकमर्वाध्यायकचक्राधिष्ठायै सर्वसिद्धप्र-
दादिदशशक्तिसहितकुन्तीत्रोणयोगिनीरूपाय त्रिपुराश्री-

देव्यै नम अनाहते ह्री क्ली ब्ले अन्तदंशारात्मकसर्वरा
 क्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै स्वज्ञादिदशशक्तिसहितनिगर्भयो
 गिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नम विशुद्धौ ह्री श्री
 सौ. अष्टात्मकसवरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टश
 क्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नम
 लम्बिकाग्रै हसै हस्क्ली हसौ त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्र
 दचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्य
 योगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नम आज्ञाया क १५
 विन्द्धात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशश
 क्तिसहितपरापररहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्द-
 रोदेव्यै नम पुन, आज्ञाचक्रोपरि एकैकाङ्गूलदेशे
 बिन्दौ अ आ सौ नम अर्धचन्द्र ऐ क्ली सौ नम
 रोघिन्या ह्री क्ली सौ नम नादे हैं हक्ली हसौ नम,
 नादान्ते ह्सै हस्क्ली हसौ नम शक्तौ ह्री ल्की ब्ले नम
 व्यापिकाया ह्री श्री सौ नम समनाया ह्सै हस्क्ली
 ह्सौ नम उन्मनाया क १५ नम ब्रह्मान्ध्रे महाबिन्दौ
 क १५ श्री नम इत्यादिचक्रेश्वरी मन्त्रान् न्यसेत् ॥

इत्यन्तश्चक्रन्यास ॥

अथ बहिश्चक्रन्यास

पादयो अ आ सौः चतुरश्चक्रयात्मकत्रैलोक्यमो-
 हनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तितहितप्रकट
 योगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नम जान्वो ऐं क्ली सौः
 षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै का-
 मार्कषिण्यादिषोडशशक्तिमहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरे
 श्वरीदेव्यै नम. ऊरुमूलयो ह्रीं ल्की सौ अष्टदलपद्मा-

मकमवंमक्षोभरणचक्राधिष्ठात्र्यं अनङ्गकुमुमाद्यष्टशक्ति-
सहितगुप्ततर्गयोगिनीरूपाय त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः
नाभौ है हल्की हम्मी चतुदगारात्मकमवसोभाग्यदायक
चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वमक्षोभिण्यादिचतुर्दशशक्तिसहितस-
म्प्रदाययोगिनीरूपाय त्रिपुरवामिनीदेव्यै नमः, हृदये हमै
हम्स्त्री हपी महितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपाय त्रिपुराश्री-
देव्यै नमः कण्ठे ह्री लकी व्वे अन्तर्दगारात्मकशक्र-
चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वजादिदशशक्तिसहितनिगर्भयोगिनी
रूपाय त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः, मुखे ह्री श्री सौ अष्टद-
लपद्यात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिण्याद्यष्टशक्ति-
सहितरहस्ययोगिनोरूपाय त्रिपुरामिद्धादेव्यै यम नेत्रयो,
दृष्टे हम्स्की हम्स्री त्रिकोणात्मकमवमिद्धिप्रदचक्राधि-
ष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनोरू-
पाय त्रिपुराम्बादेव्यै नमः मूर्ध्नि क १५ विन्द्यात्मक
सर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै पङ्कजायुधदशशक्तिसहित
परापररहस्ययोगिनोरूपाय महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः ॥

इति बाह्यचक्रकन्यासः ॥

कामेश्वर्यादिन्यास

मूलेधारे ऐ ५ अग्रिचक्रे कामगिरीपीठे मित्रेश-
नाथात्मिके जाग्रदृशधिष्ठायिके इच्छाशक्तयात्मकरुद्रा-
त्मशक्तिश्रीमहाकामेश्वर्यै नमः, अनाहते लकी ह ३ सूर्य-
चक्रके जालम्बरपीठे पण्ठीशनाथत्मिके स्वप्नदशाधिष्ठायि-
के ज्ञानशक्त्यात्मकविष्णवात्मशक्तिश्रीमहावज्रेश्वर्यै नमः,
आज्ञाया सौ, स ४ शीमचक्रके पूर्णांगिरीपीठे उद्देशनाथ-

त्मिके सुषुप्तिदशाधिष्ठायिके क्षियाशत्यात्मकब्रह्मात्म-
शक्तिश्रीमहाभागमालिन्यै नम ब्रह्मरन्ध्रे ऐं लकी सौ
क १५ परब्रह्मक्षके महोदयाणपीठे चर्यानन्दनाथात्मिके
तुरीयदशाधिष्ठायिके शान्तिशत्यात्मकपरब्रह्मशक्तिश्री-
महाक्षिपुरसुन्दर्यै नम, ॥

इति कामेश्वर्यादिन्यास, ॥

श्रीषोडशाक्षरीन्यास

श्री ऐं ह्री श्री मूलविद्यामुञ्चर्यं नम इति दक्षम
ध्यमानाम्या शिरसि न्यसेत् ।

पुनस्ता दीपाभा स्रवत्सुधारसा महासौभाग्यदा
ध्यात्वा पुनस्तथैव तामुञ्चार्यं महासौभाग्य मे देहि पर-
सौभाग्य दण्डयामि इति सौभाग्यदण्डिन्या मुद्रया वामक-
णसवेष्टनपूर्वकं आमस्तकचरण वामङ्गे न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चा मम शूत्रन् निगृह्णामीति
रिपुजिह्वाग्रया मुद्रया वामपादाधो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चाय त्रैलोक्यस्याह कतेति त्रिख-
ण्डा फाले न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चायं वदने वेष्टनत्वेन न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चायं दक्षकर्णादि वामकर्णान्ति
मुखवेष्टनत्वेन यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चायं गलोध्वमाशिरो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामाद्यन्तप्रणवमुच्चार्यं मस्तकात् पाद-
पयन्त पादादामस्तक च न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं योनिमुद्रया मुखे न्यस्य ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य योनिमुद्रया ललाटे न्यसेत् ॥
इति षोडशाक्षरीन्यासः ॥

सम्मोहनन्यासः

श्रीविद्या स्मृत्वा तत्प्रभया जगदरुण विभावयन्
अनामिका ऊर्ध्वं परिभ्राम्य मूलविद्यां पुन पुनरुच्चर्य
ब्रह्मरन्ध्रे मणिबन्धद्वितये फाले च विन्यसेत् ॥

इति सम्मोहनन्यासः ॥

सहारन्यासः

ओ ऐ ह्री श्री श्री नम पादयो,
" ह्री " जङ्घयो
" वली " जान्वो
" ऐ " कटिभागद्वये
" सौ " पृष्ठे
" ओ " लिङ्गे
" ह्री " नाभौ
" श्री " पार्श्वयो
" क-५ " स्तनयो.
" सौ " मूर्ध्नि
" ऐ " मुखे
" वली " नेत्रयो
" ह्री " कर्णयुगसन्निधौ
" श्री " कण्ठवेष्टनयो,

इति सहारन्यासः ॥

सृष्टिन्यासः

ओ ए ह्रीं श्रीं श्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे

„ ह्रीं „ फाले

„ वली „ नेत्रयो-

„ ऐ „ वर्णयो

„ सौ „ नासापुटयोः

„ ओ „ गण्डयो

„ ह्रीं „ दन्तपङ्क्तौ

„ श्रीं „ ओष्ठयो

„ क-५ „ जिह्वाया

„ ह-६ „ चोरकूपे

„ स ४ „ पृष्ठे

„ सौ „ सर्वाङ्गे

„ ऐ „ हृदि

„ वली „ स्तनयोः

„ ह्रीं „ उदरे

ओ ए ह्रीं श्रीं श्रीं नमः लिङ्गे च त्वस्य मूलेन व्यापकं
कुर्यात्

इति सृष्टिन्यासः

स्थितिन्यासः

ओ ऐ ह्रीं श्रीं श्रीं नमः अङ्गुष्ठयो

„ ह्रीं „ तजग्यो

„ वली „ मध्यमयो-

- „ ऐ „ अनामिकयो.
 „ सी „ कनिष्ठिकयो
 „ ओ „ मूर्ध्नि
 „ हा „ मुखे
 „ श्री „ हृदि
 „ क-५ „ नाभौ
 „ ह-६ „ कण्ठादिनाभिपर्यन्त
 „ स-४ „ मूर्धादिकण्ठान्त
 „ सी „ पादाङ्गुष्ठयो
 „ ऐ „ पादतलजंयो
 „ क्ली „ पादमध्यमयो.
 „ ह्री „ पादानामिकयो
 „ श्री „ पादकनिष्ठिकयो

इति स्थितिन्यास ।

—तत मुनेन पङ्क्त्यास कुर्यात्—

४-भुवनेश्वरी

घृद्धिगत शिव का अविष्कारा 'अम्बक शिव माना जाना है, उसकी महाशक्ति 'भुवनेश्वरी' है ।

अम्बक का अर्थ इस प्रकार है— अम्बक त्रि + अम्बक अम्ब नाप पिना है । 'त्रयणा लोहाना अम्बक पिता अम्बक ।' तीनों लोकों का जो पिता है, वह 'अम्बक' है । यजुर्वेद ३।५८ में कहा है—

‘अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।’

रुद्र पापियो को सन्तप्त करने वाले, तीन नेत्र वाले हैं, उनके नेत्रों से तीनों लोक प्रकाशित होते हैं ।

तीनों भुवनो की सञ्चालक शक्ति भुवनेश्वरी है । संहिता में यहाँ तक लिखा है कि भगवती भुवनेश्वरी चौदह भुवनो पर अपना स्वामित्व रखती है । इसीलिए उसका नाम ‘भुवनेश्वरी’ पड़ा ।

इसका स्वरूप इस प्रकार है—

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटा तुङ्गकुचा नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मरेमुखी वरदाङ्ग शपागाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

अर्थात् ‘प्रातः कालीन सूर्य की आभा की तरह रक्त वर्ण वाली, चन्द्रमा को मुकुट रूप से ग्रहण कर, उन्नत कुच, त्रिनेत्र, मृदु हास करती हुई, पाश, अङ्गुश, वरद और अभय मुद्रा से युक्त हाथों वाली भगवती भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूँ ।’

भगवती के वर्ण की उपमा प्रातः कालीन सूर्य की प्रभा से दी गई है जो वरुण वर्ण की होती है । जब सूर्योदय हो रहा होता है, वह रक्त वर्ण का ही होती है । यह रक्त वर्ण प्रकृति के रजोगुण का प्रतीक है । सृष्टि के कार्य में रजोगुण की ही प्रधानता रहती है । भुवनेश्वरी इससे सम्बन्धित है क्योंकि वह चौथी सृष्टि की धारा है, चौथी सृष्टि विद्या है ।

मुकुट रूप चन्द्रमा सोम का प्रतीक है । सोम जगत का पोषण करता है । इसीलिए सोम को शतपथ ब्राह्मण ३।३।४।२१ में विष्णु कहा गया है । सोम को ऋग्वेद ६।८६।४१, ६।६६।२५ व कोषीतक ब्राह्मण ७।१० में चन्द्रमा कहा है, क्योंकि इसके पान से शीतलता प्राप्त होती है ।

ऋग्वेद ६।५।१२, ६।७।३२ में इसे प्रमृत् की सजा दी गई है क्योंकि इसे ग्रहण करने वाला मदैव निरोगी रहता है, रोग और व्याधि उसके पाम फटकने भी नहीं पाती। शतपथ ५।१।३।७ में इसे प्रजापति कहा है क्योंकि यह नई शक्तियों का सृजन करता है। शतपथ १२।७।३।१३ में इसे दुग्ध कहा गया है क्योंकि उसकी तरह पोषण का गुण रखता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।७।४-५ में मांम को सुवर्ण कहा है इसका गुण स्वास्थ्यकी स्थिरता व सुदृढ़ता है। सोम भी यही करता है।

‘उन्नत कुच’ का अग्निप्राय पालन पोषण की शक्ति-सामर्थ्य रखने की क्षमता में है क्योंकि कुच में विद्यमान दुग्ध का कार्य शिशु का पालन ही है।

‘नयनत्रयमुक्ताम्’ का अथ सूर्य चन्द्रमा और अग्नि नामक तीन तेजो से है। तीन नेत्र इच्छा, ज्ञान और क्रिया के भी प्रतीक है।

‘स्मरमुखी’ का अर्थ नित्यानन्द स्वरूपा है। मृदु हास आनन्द रूपता को ही प्रकट करता है। मन्द हास्य में कृपा दृष्टि का भी निदान बनाया गया है।

भववती के चारो हाथों में पाश, अश्वशुश, वर और अभय मुद्राएँ हैं। इनमें पाश अर्थ की सूचना देता है क्योंकि इसी शक्ति के बन्धन में बंध कर मनुष्य आवागमन के चक्र में घूमता रहता है। इसी लिए पाश को आकर्षण शक्ति कहा जाता है।

अश्वशुश धर्म का रूप है क्योंकि वानावरण से प्रभावित होकर जब मनुष्य बुरे मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है तो धर्म ही उसे अश्वशुश की तरह रोकने की शक्ति रखता है। इसमें स्तम्भन की शक्ति होती है। पाश और अश्वशुश शासन शक्ति के भी सूचक हैं।

पर मुद्रा से भवतो की सांसारिक ऐश्वर्यों का वरदान देती है।

अभय मुद्रा का यह अभिप्राय है कि भगवती सभी प्रकार के भयों से मुक्त करने वाली है। यह मुद्रा मोक्ष की सूचक है।

भुवनेश्वरी पूजन विधि-मन्त्र

'नकुलीशोऽग्निमारुहो वामनेत्रार्धचन्द्रवान्' अर्थात् नकुलीश (ह), अग्नि (२), वामनेत्र (ई , अर्धचन्द्र (°) इन चार वर्णों को मिलाने से 'ह्रीं' बीज बनता है जो भुवनेश्वरी का मन्त्र है।

भुवनेश्वरी का प्रातः-सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

अथ वक्ष्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम् ।

ब्रह्मादयोपि या ज्ञात्वा लेभिरेश्वर्यमूर्जिताम् ॥

नकुलीशोऽग्निमारुहो वामनेत्रार्धचन्द्रवान् ।

बीज तस्या समाख्यानं सेवितं सिद्धिकाक्षिभिः ॥

ऋषि शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री देवता मनो ।

कथिता सुरसङ्घेन सेविता भुवनेश्वरी ।

षडदीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षट्कमात् ।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटा तुङ्गकुचा नयनत्रययुक्ताम् ।

स्मेरमुखी वरदाकुशपाशाभीतिकरा प्रभजेद्भुवनेशीम् ॥

मध्याह्न सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्भव शम्भुवनिता रमाबीजत्रयात्मकम् ।

मन्त्र समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम् ॥

षडदीर्घभाजा मध्येन वाग्भवार्धेन कल्पयेत् ।

षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ॥

श्रीर ध्यान इस प्रकार है—

सिन्दूरारुणविग्रहा त्रिनयना माणिक्यमौलिस्फुरत्

तारानायक शैखरा स्मितमुखीमापीनदक्षोरहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषक रक्तोत्पल विभ्रती,
सौम्या रत्नघटस्थ सव्यचरणा ध्यायेत् परामम्बिकाम्

सायकालीन सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्बीजपुटिता माया विद्येय व्यक्षरो मता ।
मध्येन दीघ युक्तेन वाक्पुटेन प्रवक्ष्येत् ॥
अङ्गानि जातियुक्तानि क्रमेण मनुवित्तमा ।

ध्यान यह है—

ध्यामाङ्गी शशिशेखरा निजकरंदानिञ्च रक्तोत्पल,
रक्ताढ्य चषक परभयहर सविभ्रती शाश्वतीम् ।
भुक्तहारलसत्पयोवरनुता नेत्रत्रयोत्लामिनी,
वन्देऽह सुरपूजिता हरवधू रक्तारविन्दस्थिताम् ॥

अन्तर्मतृका न्यास

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीअन्तर्मतृका महासरस्वती मन्त्रस्य
ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुसामानि छन्दांसि
अन्तर्मतृका महासरस्वती देवता ह्रलो बीजानि स्वरा,
शक्तयः विन्दवः, कीलकानि अन्तर्मतृका महासरस्वती
प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपेविनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास

शिरसि ब्रह्माविष्णुऋषिभ्यो नमः ।
मुखे गायत्री त्रिष्टुव अनुष्टुव छन्दीभ्यो नमः ।
हृदि अन्तर्मतृका महासरस्वतीदेवतायै नमः ।

गुह्ये ॐ व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नम ।
पादयो ओ स्वरेभ्य शक्तिभ्यो नम ।
सर्वाङ्गे बिन्दुभ्य कीलकेभ्यो नम ।

प्राणायाम

ओ ऐ ह्री श्री आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ अ
आ इन स्वरो से पूरक, ओ एँ ह्री श्री क ख ग घ ङ -
च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ व भ म
इन व्यञ्जनो से कुम्भक और ओ ऐ ह्री श्री य र ल व
श स ह —

इनसे रेवक प्राणायाम करना चाहिए ।

कराग और षडङ्ग न्यास

ओ आ ह्री कौ अ क ख ग घ ङ पृथिव्यप्तेजो
वाटवाकाशात्मने आ अङ्गुष्ठाभ्या नम ।

ओ आ ह्री कौ इ च छ ज झ ञ शब्दस्पर्शरूपरस
गन्धात्मने ई तर्जनीभ्या स्वाहा ओ आ ह्री कौ ङ ट ठ
ढ ढ ण वाक् पाणिपादपायुष स्थात्मने, ओ मध्यमाभ्या
वषट् । ओ आ ह्री कौ ए त थ द ध न श्रोत्रम्बक्चक्षु-
जिह्वाप्राणात्मने एँ अनामिकाभ्या हूँ । ओ ह्री कौ प
फ व भ म मनोबुद्धिचिन्तविज्ञानानन्दात्मने औ कनि-
ष्ठिकाभ्या वौषट् । ओ आ ह्री कौ य र ल व श ष स ह
वचनादानगमन विसर्गानन्दात्मने अ करतलकरपृष्ठाभ्या
फट् ।

ओ आ ह्री कौ अ क ख ग घ ङ पृथिव्यप्तेजो-

वखाकाशात्मने आ हृदयाय नम ।

(इसी प्रकार अन्य प्रज्ञो मे न्यास करना चाहिए ।)

ध्यान

आधार तु चतुर्दलारुणरुचि वासान्तवर्णावृत ।
 स्वाधिष्ठानमनेकविद्युत्तनिभ वालान्तपट्पत्रकम् ॥
 रक्ताभ मणिपूरक दशदलंठाद्यै फकारान्तकै,,
 पत्रैर्द्वादशभिस्त्वनाहतपुर हैम ठकारान्तकम्
 मात्राभि स्वरपोऽशच्छदयुन ज्योतिर्विगुह्याम्बुज ।
 ह क्ष द्वयक्षरपद्मपत्रयुगल मुक्ताममाशाम्बुज
 तस्मादूर्ध्वगत्त सदा विकसित पद्म सहस्रच्छद ।
 नित्यानन्दमय सदाशिवमय तत्त्व पद गाश्वतम् ॥
 शरत्पूर्णन्दुशुभ्रा सकललिपीमयी लोलरक्त त्रिनेत्रा ।
 शुक्लालङ्कारभासा शशिमुकुट जटा जूटायुक्ता प्रसन्नाम् ॥
 विद्यास्रक्पूर्णकुम्भान् वरमपि दधती शुल्कपुष्पाम्बराढ्या,
 वाग्देवी पद्मवक्त्रा स्तनभरनमिता चिन्तयेत् साधकेन्द्र ॥

ध्यान के बाद मातृका वर्ण के शुरू में 'ओ ऐ ह्री श्री' और
 अन्त में 'नम' हम सोह' लगाकर चक्रदलो में न्यास करना चाहिए ।

मूलाधार के अरुण आभावाले चतुर्दलकमल में-
 व, श प स ।

स्वाधिष्ठान के विद्युत् प्रकाश वाले पट्दलकमल
 में-- व भ, म, य, र, ल ।

नाभि के मणिपूरक के रक्तवर्ण दश- दलकमल
 में-- ड, ढ ण, त, थ, द, ध न, प, फ ।

हृदय के अनाहत के सुवर्णवर्ण द्वादशदल कमल
मे - क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ।

कण्ठ के विशुद्ध के उज्ज्वल षोडसदलकमल मे--
अ, आ, इ, उ ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लृ ए, ऐ, ओ, औ,
अ, अ ।

भौहो के बीच आज्ञा के मुक्तावर्ण-द्विदलकमल मे
--ह, क्ष ।

अब सहस्र दल कमल मे सारे मातृका मे आने वाले
वर्णों का अनुलोम और विलोम क्रम से न्यास करना चाहिए ।

यथा-- अ, आ, इ, ई, श ष स ह ल क्ष और
विलोम क्ष, ल, ह, स ... ई, इ, आ, अ ।

अथ बहिर्मतृका

ओ अस्य श्रीअन्तर्मतृका महासरस्वती मन्त्रस्य
ब्रह्माविष्णु महेश्वरा ऋषयः ऋग्यजु सामानि छन्दासि
बहिर्मतृका महासरस्वती मन्त्रस्य देवता हलो बीजानि
स्वराः शक्तयः विन्दवः कीलकानि बहिर्मतृका महा-
सरस्वती प्रसाद सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास, प्राणायाम करन्यास एवं पङ्क्त्यन्यास आदि
अन्तर्मतृका न्यास की तरह करना चाहिए ।

ध्यानम्

पञ्चाशत्त्रिभिर्विभिन्न मुखदोषेणमध्यवक्षस्थली ।

भास्वन्मोलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीतुङ्गस्तनीम् ॥

मद्र मक्ष्मण्ण मुवाढ्य कलश निगञ्ज ह्मन्मृज-

विभ्राणा विगदप्रभा त्रिन्प्रना वाग्देवतामाश्रये ॥

बहिर्मातृका न्यास करते समय हं मातृका वर्ण के शुरु मे 'प्रो' और अन्त मे 'नम,' लगाना चाहिए ।

अ ललाटे अनामा से ।

आ मुखमण्डले मध्यमा से ।

इ दक्षनेत्रे अ गूठा और अनामिका से ।

ई वामनेत्रे अ गूठा और अनामिका से ।

उ दक्षकर्णे " "

ऊ वामकर्णे " "

ऋ दक्षनामायाम् अ गूठा और कनिष्ठा से ।

ॠ वामनासायाम् " "

लृ दक्षगण्डे तर्जनी मध्यमा अनामा से ।

लृ वामगण्डे " " "

ए ऊर्ध्व ओष्ठे मध्यमा से ।

ऐ अधरोष्ठे " "

ओ ऊर्ध्व दन्तपक्ती अनामा से ।

प्रो अधो दन्तपक्ती " "

अ जिह्वा मध्यमा से ।

अ. लम्बिकाया " "

क दक्ष बाहुमूले मध्यमा अनामिका कनिष्ठिका से ।

ख दक्षकूपरे " " "

ग दक्षमणिवन्धे " " "

घ दक्षकरतले " " "

ङ दक्ष कराग्रे " " "

च बाहुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 छ कूपरे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ज वाम माण्डवन्धे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 झ वाम करतले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ञा वाम कराग्रे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ट दक्षोर्मूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ठ दक्ष जानुनि कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ड गुल्फे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ढ दक्ष पादतले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ण दक्ष पादाग्रे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 त वामोर्मूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 थ वाम जानुनि कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 द वाम गुल्फे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा

ध वाम पाद तले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 न वाम पादाग्रे " " "
 प दक्ष पार्श्वे " " "
 फ वाम पार्श्वे " " "
 ब पृष्ठे " " "

भ नाभौ अ गुष्ठा कनिष्ठा अनामा मध्यमा
 म जठरे अ गुष्ठ तर्जनी मध्यमा अना० कनि०

य त्वगात्मने हृदि मध्यमा अनामिका

र असृगात्मने दक्षाशे , "

ल मासात्मने ककुदि " "

व मेदात्मने वामाशे " "

श अस्यात्मने हृदादि दक्ष कराङ्गुल्यन्तम् ।

प मज्जात्मने हृदादि वाम कराङ्गुल्यन्तम् ।
 म शुक्रात्मने नाभ्यादि दक्ष पादान्तम् ।
 ह जीवात्मने नाभ्यादिवाम वाम पादातम् ।
 ल परमात्मने हृदादि कुक्षौ ।
 ध ज्ञानात्मने हृदादि मुखे ।

मूल मन्त्र न्यास

विनियोग —

अथ श्रीभुवनेश्वरी मन्त्रम्य शक्ति ऋपि गायत्री
 छन्द श्रीभुवनेश्वरी देवता ही व्रीज श्री शक्ति क्ली कीलक
 श्रीभुवनेश्वरी देवता सिद्धयर्थे विनियोग ।

ऋष्यादिन्यास

शिरसि शक्ति ऋषये नम । मुखे गायत्री छन्दसे
 नम , हृदि श्रीभुवनेश्वरीदेवतार्य नम । गुह्ये ह्री
 बीजाय नम । पादयो श्री शक्तये नम । सर्वाङ्गे क्ली
 कीलकाय नम ।

करन्यास

ओ हा अगुष्ठाभ्या नम । ओ ह्री तर्जनीभ्या
 स्वाहा । ओ ह्रू मध्यमाभ्या वषट् । ओ अनामिका-
 भ्या ह्रै । ओ ह्री कनिष्ठिकाभ्या वीषट् । ओ ह्र कर-
 तलकरपृष्ठाभ्या फट् ।

षडङ्गान्यास

ओ हा हृदयाय नम । ह्री ओ शिरसेस्वाहा ।

ओ हू शिखायै वषट् । ओ हू कवचाय हूँ । हूँ नेत्र-
त्रयाय वीषट् । ओ ह, अस्त्राय फट् ।

द्वीजमन्त्रन्यास

ओ हूलेखायै नम, मस्तके । ओ ऐ गगनगायै नम मुखे । ओ ऊ रक्तायै नम हृदये । ओ ई करालि-
कायै नम गुह्ये । ओ औ महोच्छुष्मायै नम पादयो ।
ओ ऐं ऊ ईं औं हूलेखायै नम सर्वाङ्गे ।

ओ हूलेखायै नम ऊर्ध्वमुखे । ओ ऐं गगनगायै नमः
पूर्वमुखे । ओ ऊ रक्तायै नम दक्षिणमुखे ओ ईं करा-
लिकायै नम उत्तरमुखे । ओ औं महोच्छुष्मायै नम,
पश्चिममुखे ।

व्यापक न्यास

इस तरह से न्यास करके तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिए । यह शिर से पैर तक और पैरों से शिर तक करना चाहिए ।

भुवनेश्वरी कवच

पातक दहन नाम कवच सर्वकामदम् ।

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव स्नेहात्प्रकाशितम् । १।

शकर बोले— हे पार्वती । मैं तुम्हारे प्रति भुवनेश्वरी कवच कहता हूँ । उसका नाम 'पातक दहन' है । इस कवच से सभी काम-नाओं की सिद्धि होती है । तुम्हारे प्रति स्नेह के वश होकर ही इसे प्रकट करता हूँ । १।

पातक दहनस्यास्य सदाशिव ऋपि स्मृतः ।

छन्दोऽनुष्टुप् देवता च भुवनेशो प्रकीर्तिता ।

घर्मपथकाममोक्षेषु विनियोग प्रकीर्तित ।२।

पातक दहन के श्रुति सदाशिव छंद अनुष्टुप् देवता भुवनेश्वरी और विनियोग घर्मार्थ काम मोक्ष आदि में है ।२।

ए वीज मे शिर पातु हने वीज वदन मम ।

श्री वीज कटिदेशन्तु सर्वाङ्ग भुवनेश्वरी ॥

दिक्षु चैव विदिदवीय भुवनेशी सदावतु ।३।

ऐ वीज मेरे मस्तक की, ह्री मुख की, श्री कमर की और भुवनेश्वरी सर्वांग की रक्षा करें । दिशा-विदिशा सभी में भुवनेश्वरी मेरी रक्षा करे ।३।

अस्यापि पठनात्सद्य कुबेरोऽपि घनेश्वर ॥

तस्मात्सदा प्रयत्नेन पठेयुर्मन्त्रवा भुवि ॥

इस कवच के पढ़ने से ही कुबेर तुरन्त घनाधिप हुए इस लिये प्रयत्न पूर्वक इसका सदा पाठ करना उचित है ।४।

स्तव

अथानन्दमयी साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।

ईडे सकल सम्पत्त्यं जगत्कारणमम्बिकाम् ।१।

‘जो भगवती आनन्दमयी साक्षात् शब्द रूप वाली एव ब्रह्मा स्वरूपा हैं, जो जगन्माता और जगत्कारण रूपा हैं उन देवी की संपत्ति लाभ के निमित्त स्तुति करता हूँ ।१।’

आद्यामशेषजननीमरविन्दयोने-

विष्णो शिवस्य च वपु प्रतिपादयित्रीम् ॥

सृष्टिस्थितिक्षयकरी जगता त्रयाणां

स्तुत्वा गिर विमलयाम्यहमम्बिके वाम् ।२।

‘हे माता ! तুম ससार की आद्या हो, ब्रह्माण्ड तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी तुम्हीं से प्रकट हुए हैं । त्रैलोक्य की रचयित्री, स्थित और विनाश करने वाली हो । तुम्हारी स्तुति के द्वारा मैं अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ । २।’

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुताम्बरेण
हात्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाज ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता
हेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि । ३।

हे पार्वती ! जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अग्निहोत्री, सोम, सूर्य के रूप में जो देवी स्थित हैं तथा जिन्होंने कामदेव को भस्म किया था, उन भगवान् शंकर की भी त्रैलोक्य संहारिणी शक्ति तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न होती है । ३।’

त्रिस्तोतस सकललोकसमन्विताया
वैशिष्ट्यकारणमवैम तदेव मात, ।
त्वत्पादपकजपरागपवित्रितासु
शम्भोर्जटासु नियत परिवर्तन यत् । ४।

‘हे माता ! तुम्हारी चरण-रेणु से पवित्र हुई, शहर की जटा में तीन स्रोत वाली भागीरथी सदा प्रवाहित रहती है इस लिए उनका सभी पूजन करते हैं और इसी लिए वह गंगाजी प्रधानता को प्राप्त हुई है । ४।’

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिप कलाना
नान्यामिन कमलिनीमथ नेतरा वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेकभीष्टे
त्वन्तु प्रपञ्चमभिन्दयसि स्वदृष्ट्या । ५।

‘जैसे कलावन्त चन्द्रना कुमुदिनी तो आनन्द देने हैं और किसी

को नहीं अथवा सूर्य भी केवल कमल का ही आनन्द-वर्द्धन करते हैं अन्य किसी का नहीं करते। जिस प्रकार एक एक द्रव्य के आनन्द वर्द्धन को एक एक द्रव्य ही निदृष्ट है, वैसे ही इस सम्पूर्ण विश्व को एक तुम्ही अपनी दृष्टि से आनन्द प्रदान करती हो । ११।'

आद्याप्यशेषजगता नवयौवनासि

गैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि ।

ऋया प्रसूर्गपि तथा न समीक्षितामि

ध्येयापि गौरि मनसौ न पथि रिथितासि । ३।

‘हे माता । सब की आद्या होकर भी तुम नवयुवती ही हो । पर्वतराज की पुत्री होकर भी तुम ऋत्यत कोमलांगी हो । जो वेद तुम में प्रकट हुए हैं वे तुम्हारा तत्त्व निरूपण करने अस भगवती! तुम ध्यानगम्या होते हुए भी मन में अयग्नित नहीं हो पाती ॥’

आसाध्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुराप

तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।

नाभ्यर्च्यन्ति जगता जनयित्री ये त्वा

नि श्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुन पतन्ति । ७।

‘इम अमाध्य मनुज्य जन्म को प्राप्त होकर भी और इन्द्रियो के विभिन्न सामर्थ्य को पाकर भी जो मनुज्य तुम्हारी पूजा नहीं करते, हे माता । वे मुक्ति की सीढ़ियो पर चढ़ भी जाय, तो वहाँ से पुन गिर जाते हैं ’ । ७।

कपूरचूर्णं हिमवारिविलोडितेन

ये चन्दनेन कुमुदैश्च मुजातगन्ध ।

आराध्यन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वा

ते खल्वशेषभुवनादिभवं प्रथन्ते । ८।

‘हे माता ! कर्पूर चूर्ण मिले ठण्डे जल में घिसे हुए चन्दन और श्रेष्ठ सुगन्ध वाले पुष्पों के द्वारा उत्कृष्ट मनोभाव से तुम्हारी आराधना करते हैं, वे मनुष्य सब भुवनो के स्वामी होते हैं’ । ८।

आविश्य मध्यपदवी प्रथमे सरोजे
सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती
पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना । ९।

‘हे माता ! तुम मूलाधार कमल में शयन करते हुए सप रात्रि के समान विराजती हुई जगत की रचना करती हो और वहाँ से विद्युत् रेखाओं के समान क्रमानुसार ऊर्ध्व स्थित पञ्चदल कमल को भेद कर सहस्रदल कमल की कणिका के मध्य में स्थित परम शिव सहित मिलती हो । ९।’

तन्निर्गतामृतरसं रभिषिच्य गात्रं
मार्गेण तेन विलय पुनरप्यवाप्ता ॥
येषा हृदि स्फुरति जातु न ते भवेयु-
र्मातर्महेश्वर कुटुम्बिनि गभभाज । १०।

‘हे माता ! तुम सहस्रदल कमल से निकलते हुए सुधारस से देह को अभिषिक्त करती हुई सुषुम्ना के मार्ग में जाकर लीन हो जाती हो । जिस मनुष्य के हृदय पद्म में तुम्हारा उदय नहीं होता, वह मनुष्य बार बार गर्भ धारण का दुःख उठाता है । १०।’

आलाम्बिकुन्तलभरामभिरामवक्रा-
मापीवरस्तनतटी तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूत्रकलशालिखिताढ्यहस्ता,
मातनमामि मनसा तव गौरि मूर्तिम् । ११।

हे माता ! तुम्हारे केश लम्बे हैं, तुम्हारा मुख अत्यन्त रमणीक है, उन्नत वक्ष, पतली कमर और चार भुजाओं से युक्त हो । उन भुजाओं में ज्ञानमुद्रा, जप माला, कलश और पुस्तक सुशोभित है । हे देवी ! तुम्हारे गौरी स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं । १११'

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिपटक-
मावध्य चेन्द्रियगण मनसि प्रसन्ने ।
पाशाकुशाभयवराढ्यकरा सुवक्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् । ११२।

‘हे भुवनेश्वरी ! योग का अवलम्बन करने वाले योगी कामादि वैरियो को जीत कर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक प्रफुल्लित मन से पाशाकुश, अभय वर युक्त तुम मनोहारिणी का दर्शन करते हैं । ११२।’

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि-
रावर्तितामृतघटरभिपिच्यमाना ।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्तो
पद्मापि साभयकरा भवसि त्वमेव । ११३।

‘हे जननि ! तप्त स्वर्ण के समान वर्ण वाली, हाथों में पद्म और दो हाथों में अभय एव वर मुद्रा धारिणी चार हाथों में जनकाङ्गुल पूर्ण घट में अभिषेक करते हैं, वह देवी रूपिणी लक्ष्मी तुम्हीं हो । ११३।’

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरोभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वादलद्युतिर्मर्त्यविपक्षपक्षान्
न्यक्कुव्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गे । ११४।

‘हे भगवती ! सिंह पर आरोहण कर विभिन्न शस्त्रास्त्र युक्त आठ हाथों से सुशोभित दूर्वादल के समान उज्ज्वल वर्ण वाली, देवताओं को भी जीत लेने वाली दुर्गा तुम्हीं हो । ११४।’

आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्रा
 गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।
 रत्नाशुकामसितकान्तिमलकृतान्त्वा
 माद्या पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मरामि ॥१५॥

श्रम बिन्दुओं के द्वारा जिनका मुख मङ्गल सुशोभित है, जिन्होंने चौटली का हार धारण किया हुआ है पद्मावली जिनके वस्त्र रूप हैं, उन्हीं श्याम वर्ण वाली आद्या पुलिन्द तरुणी वाली का मे ध्यान करता हूँ ॥१५॥

हसंगतिववणितनूपुरदूरकृष्ट-
 मूर्तौ रिवाप्तवचनंरनु म्यमानौ ।
 पद्माविवोर्ध्वमुखरूढसुजातनालौ
 श्रीकण्ठपति शिरसैव दधे तवाध्री ॥१६॥

हे नीलकण्ठ-प्रिये ! तूपुर के शब्द को सुन कर जैसे हस दूर से खिंचे चले आते हैं वैसे ही सब शास्त्र तुम्हारे पद पद्मों का अनुगमन करते हैं । तुम्हारे वे पद पद्म सुन्दर नील कमल के समान सुशोभित हैं, जिन्हें मैं अपने शिर पर सदा धारण करता हूँ ॥१६॥

द्वाभ्या समीक्षितुमवृत्तिपमितेन दृग्भ्या
 मुत्पाद्यता त्रिनयने वृषकेतनेन ।
 सान्द्रानुरागभवनेन निरीक्ष्यमाणे
 जघे उभे अपि भवानि तवानतोऽस्मि ॥१७॥

‘वृषकेतु भगवान् शकर अपने दो नेत्रों से तुम्हारे रूप का अवलोकन करते हुए तृप्ति को न प्राप्त होकर ही मानो तीसरे नेत्र को प्रकट कर तुम्हारा रूप दर्शन करते हैं । अतः, मैं तुम्हारे जानुओं को नमस्कार करता हूँ ॥१७॥’

कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधरा

शोभो भुजौ निजरिपोर्मङ्गध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीघपाशौ
मातृमम स्मृतिपथ न विलघयेताम् ॥१८॥

‘हे माता ! तुम्हारे दोनों हाथ देखने पर अनुमान होता है कि काम देव ने ही अपने शत्रु स्वरूप शंकर का कठ पकड़ने के निमित्त दीर्घ पाश की रचना की हो । मैं तुम्हारे उन दोनों हाथों को कभी भी न भूलूँ ॥१८॥’

नात्यायत रचितकम्बुविलामचौर्यो
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठ मनोहरगुण गिरिराजकन्ये
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ॥१९॥

‘हे पार्वती ! तुम विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो । कठ अत्यन्त मनोहर है । मैं उसका ध्यान करता हुआ कभी भी तृप्त न होऊँ ॥१९॥’

अत्यायताक्षमभिजातललाटपट्ट ,
मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
बिम्बाधर वन्दमुन्नतदीर्घनास
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब म एव जातः ॥२०॥

‘हे जननि ! तुम्हारे मुख मण्डल पर सुन्दर और विस्तृत नयन सुशोभित हैं । तुम्हारा ललाट अत्यन्त रमणीय दृष्टिगत होता है । मृदु हास्य के कारण कपोल भी प्रफुल्लित हैं । बिम्ब के समान अधर और उन्नत तथा लम्बी नासिका शोभा पा रही है । जो तुम्हारे ऐसे मुख मण्डल का ध्यान करते हैं, उनका जन्म धन्य है ॥२०॥’

श्रुतिसुरचितपाक घोमता स्तोत्रमेतत् ।
पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ॥
स भवति पदमुच्चैः सम्पदा पादनम् ।

क्षितिपमुकुटलक्ष्मी लक्षणाना चिराय ।२१।

'जो व्यक्ति मेधावी जनो द्वारा रचित इस सुन्दर स्तोत्र को आर्द्र अन्तरात्मा द्वारा नित्य पढ़ते हैं, सभी सम्पदाएँ उनकी आश्रित होती हैं और राजा भी उनके चरणों में शिर झुकते हैं ।२१।'

५-छिन्नमस्ता

व्याख्या

भगवती छिन्नमस्ता के एकनिष्ठ साधकों में जहाँ योगी, ऋषि रहे हैं वहाँ असुरों की भी वह आराधिका रही है । योगियों में गोरखनाथ और मन्स्येन्द्रनाथ का नाम उल्लेखनीय है । ऋषियों में याज्ञवल्क्य का नाम सबसे ऊपर आता है । इन्होंने जनक की सभा में शाकल्य का मस्तक इसी शक्ति से काटा था । भगवान् परशुराम भी भगवती के उपासक थे । असुरों में हिरण्यकशिपु और वैरोचन का नाम आता है । जिन्होंने भगवती की साधनासे महान् शक्तियाँ उपलब्ध की थीं । भगवान् बुद्ध भी इसके उपासक ब्रताए जाते हैं । देवी भागवत की हयग्रीव विद्या और वृहदारण्यक की मधु विद्या यही है । भगवती धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्रकार के फल प्रदान करती है । उसे जैसे भाव से पूजा जाए, वैसा ही फल प्राप्त होता है । इसीलिए असुरों और ऋषियों दोनों की आराध्य रही है ।

विपरिणामान् विश्व का अधिष्ठाता केतन कबन्ध शिव माना जाता है, उसकी महाशक्ति छिन्नमस्ता है ।

छिन्नमस्ता सृष्टि प्रक्रिया से सम्बन्धित है। सूर्य जगत का मूल कारण है। श्रुति कहती है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुवश्च ।

(यजुर्वेद)

सूर्य जगत का आत्मा है। उससे सृष्टि मञ्चालित होती है। उसके अभाव में यह सब विश्व की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाए। इसीलिए इसे यज्ञ पुरुष कहा गया है। 'सूर्यो वा ज्योतिष्टोम, सूर्यो वा अग्निहोत्रम्।'।

सूर्य की दो शक्तियाँ हैं, एक का उममें घनिष्ठतापूर्वक सम्पर्क रहना है और दूसरी उमसे अलग होकर विश्व का निर्माण व पालन-पोषण करती है। जो सूर्य से अप्रत्यक्ष रहती है, उसे वैदिक भाषा में 'अहोदन' कहते हैं और जो प्रत्यक्ष होकर जगत की सृष्टि करती है, उसे 'प्रवज्य' नाम दिया गया है। सूर्य अग्नि का महापिण्ड है। जो अग्नि सदैव उमका एक अंग बनी रहती है, जो किरण के माध्यम से चारों ओर बरसती है। वनस्पतियों व अन्य प्राणियों में प्रविष्ट होकर उनमें प्राण शक्ति का सञ्चार करती है, वह 'प्रवज्य' कहलाती है। उन दोनों को वैदिक भाषा में सूर्य पुरुष के दो मस्तक कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण ३।७ में सूर्य पुरुष की 'द्वे शीर्षे' कहा गया है।

विश्व-निर्माण के लिए प्रवज्य शक्ति आवश्यक है। यदि वह सञ्कोच करे तो जगत का निर्माण खतरे में पड़ जाय। वह ऐसा नहीं करना। इसलिए उसे यज्ञ रूप कहा गया है। यह प्रवज्य भाग सूर्य से अलग होता रहना है, कटता रहना है, इसलिए कटा मस्तक की सजा दी गई है। इसे ही 'छिन्न शीर्ष' कहते हैं। तभी कहा है 'छिन्नशीर्षो वै यज्ञः।' इस छिन्न शीर्ष को 'कवन्ध' भी कहते हैं। इसकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' है।

महिमा

श्री भैरव तन्त्र में छिन्नमस्ता की उपासना से लौकिक और पारलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है—

प्रचण्डचण्डिका वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।

यस्या स्मरणमात्रेण सदाशिवो भवेन्नर ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान भवेत् ।

कावत्व दीर्घपाण्डित्य लभते नात्र सशय ॥

अर्थात् 'प्रचण्ड चण्डिका श्री छिन्नमस्ता के सम्बन्ध में कहते हैं, जिनकी उपासना से सब काम फलप्रद होते हैं, साधक स्वयं सदाशिव बन जाता है, अपुत्रों को पुत्र और धनहीन को धन प्राप्त होता है। कविता शक्ति और पाण्डित्य शक्ति का विकास होता है, इसने कुछ भी सशय नहीं।'।

'उमा सहस्रम' नामक काव्य में छिन्नमस्ता भगवती की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

तव छिन्ना शीर्षं विदुरखिलघात्र्यागमविदो ।

मनुष्याणामस्ते बहुलतपसा यद्विदलिते ॥

सुपुम्नाया नाड्या तनुकरणसंपर्करहिता वहि ।

शक्त्या युक्ता विगत चिरनिद्रा विलससि ॥

अर्थात् 'आपके छिन्न शीर्ष को हे अखिलवात्रि ! आगम के ज्ञाता मनीषी लोग जानते हैं। मनुष्यों के अत्यधिक तप से जो विदलित होता है उसमें और सुपुम्ना नाडी में तनुकरण के सम्पर्क में बाहर शक्ति में युक्त विगत चिर निद्रा विलसित होती है—चिर निद्रा से रहित होकर आप शोभा को प्राप्त होनी हैं।'।

गोरक्ष सहिता मे योगीराज गोरखनाथ ने भगवती की वन्दना इस प्रकार की है—

नाभौ शुभ्राग्विन्द तदुपरि विमल मण्डल चण्ड-
रश्मे, समारस्यंकरूपा त्रिभुवनजननी घर्मदात्री नरा-
णाम् । तस्मिन् मध्ये त्रिमार्गे त्रितयतनुवरा छिन्नमस्ता
प्रशस्ता, ता वन्दे ज्ञानरूपा मरणभयहरा योगिनी योग-
मुद्राम् ॥

(गो० प० २ ७६)

अर्थात् 'नाभि मे स्फटिक वर्ण कमल पर अधिष्ठित पवित्र मूय मण्डल का चिन्तन करना हुआ, जगत की त्रिभुवन जननी, घर्म दात्री, दयामूर्ति, प्रशस्ता, ज्ञान रूपा, मरण भय का हरण करने वाली योग-मुद्रा, योगिनी छिन्नमस्ता देवी की मैं वन्दना करता हूँ ।'

ध्य

छिन्नमस्ता भगवती का ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालीढपदे सदैव दधती छिन्न शिर, कतृका
दिग्वस्त्रा म्वकवन्धशोणितमुघाधारा पिवन्ती मुदा ।
नागावद्धशिरोमणिं त्रिनयना हृद्युत्पलालङ्कृता
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढा ध्यायेज्जवासन्निभाम् ॥
दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्री तथा खर्पर
हस्ताभ्या दधती रजोगुणभवो नाम्नापि सा वर्णिनी ।
देव्याश्छिन्नकवन्धत पतदसृग्धारा पिवन्ती मुदा
नागावद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरे ॥
प्रत्यालीढपदा कवन्धविगलद्रक्त पिवन्ती मुदा

सैषा या प्रलये समस्त भुवन भोक्तु क्षमा तामसी ।
शक्ति सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी ॥
(शाक्त प्रमोद छिन्नमस्तातन्त्र)

अर्थात् 'प्रत्यालीढ पद वाली, छिन्न शिर और खड्ग धारिणी, दिगम्बरा, छिन्न कण्ठ से निकलते हुए रक्त का पान करती हुई, मस्तक मे सप से बँधी हुई मणि, तीन नेत्र कमल माल से अलंकृत वक्षस्थल, जवाकुसुम के समान वर्ण वाली, दाहिने भाग मे श्वेत वण, मुक्त केशी कैची और खपर धारिणी वणिनी देवी हैं । यह गले से निकलने वाली रक्त धारा को पान करती हुई, मस्तक मे नाग से बँधी मणि वाली, बाँए भाग मे खड्ग और खर्पर धारण किये श्याम वर्ण की दूसरी देवी हैं, यह भी गले से निकले रुधिर को पीती हुई, दाँए पाव को घागे किए और बाँए पाँव को पीछे किए म्रियत हैं । प्रलय काल मे यह सम्पूर्ण विश्व को भक्षण करने मे समर्थ डाकिन' नाम वाली है ।'

उत्पत्ति की अलंकारिक कथा—

एक बार वह अपनी सखियों—जया और विजया के साथ मन्दाकिनी नदी में स्नान के उद्देश्य से गई । स्नान के पश्चात् उनमे कामाग्नि भडक उठी । इसमे उनका वर्ण कृष्ण हो गया । तभी सखियों ने भोजन की माँग की तो उन्हें कुछ समय बाद देने का आश्वासन दिया । वह धुआ मे पीड़ित हो रही थी, अत उन्होंने बार-बार माँगना शुरू किया और प्रार्थना की माता तो भूख लगने पर अपने वच्चो को अवश्य भोजन देती है, अत हमे भी मिलेना ही चाहिए । भगवती ने करारा से अपना शिर काट डाला । उससे रक्त की तीन धाराएँ निकली । दो धाराएँ तो जया और विजया (जिन्हें डाकिन और वपिनी भी कहते हैं) के मुख मे जाने लगीं । तीसरी धारा भगवती अपने कटे हुए

गिर से पीने लगी । तभी मे भगवती छि नमस्ना कहनाती हैं । इस तरह की और भी कथाएँ उपलब्ध होती हैं ।

स्पष्टीकरण

इस अलङ्कारिक कथा का सम्बन्ध योग साधना मे है । योग-शास्त्र मे तीन सूक्ष्म बन्धनो का वर्णन आता है, जिन्हे योगिक भाषा मे ग्रन्थियो के नाम से अभिहित किया गया है । उनके नाम हैं—रुद्र ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, ब्रह्म ग्रन्थि । यह तीन ग्रन्थियाँ जब सुप्तावस्था में रहती हैं, तब तक जीव मात्रारण दीन हीन दशा मे पडा रहता है, उमे अशक्ति, अज्ञान और अभाव के दुःख बने ही रहते हैं, परन्तु जब यह ग्रन्थियाँ खुलने लगती हैं, तो लौकिक व पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ उसके समक्ष नतमस्तक होकर उपस्थित हो जाती हैं, आत्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, क्षुद्रता महानता मे परिवर्तित होने लगती है, द्वैत से अद्वैत की ओर मार्ग खुल जाता है ।

रुद्र ग्रन्थि आज्ञा चक्र में, ब्रह्म ग्रन्थि मूलाधार मे व विष्णु ग्रन्थि मणिपूर मे अवस्थित है । योगियो का मत है कि विष्णु और ब्रह्म ग्रन्थियो के खुलने पर भी यदि अहङ्कार दूर न हो पाया तो रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है, इसलिए इसका खुलना अत्यन्त आवश्यक होता है तभी प्रावागमन के चक्र से छुटकारा सम्भव है । योग शास्त्र के इस मार्ग का सबसे बडा बाधक काम तत्व को माना है तभी भगवती को कामाग्नि से पीडित होकर कृष्ण वर्ण का हाना प्रदर्शित किया गया है । भगवती के ध्यान मे इसका प्राभास मिलता है ।

‘अस्थिलाञ्जरा देवी नागग्रन्थोपवीतिनी ।

रतिकामोपविष्टा च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिण ॥’

विपरीतरतासक्ती ध्यायेद्रतिमनो भुवो ।’

अर्थात् 'हड्डियों की माला को धारण करने वाली—नागों के यज्ञोपवीत वाली—रत्नकाम में उपविष्टा देवी का मन्त्र के ज्ञाता सदा ध्यान किया करते हैं । द्विपरीत रति में समासुक्त रति और कामदेव का ध्यान करना चाहिए ।'

योगियों का विश्वास है कि मणिपूर चक्र के बीच की नाडियों में काम का निवास रहता है । इसी पर छिन्नमस्ता भगवती का अधिष्ठान है । वह काम के निम्नगामी प्रवाह को रोकती है । उसकी दशा को मोड़ती है और ऊर्ध्वगामी बनाती है । जब तक काम का प्रवाह नीचे की ओर होता रहता है, तभी तक रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है । जब वह ऊपर की ओर प्रवाहित होने लगता है, तब उसका मार्ग प्रशस्त होता है और साधक पूणता की ओर पग बढ़ाने की क्षमता वाला हो जाता है ।

भगवती छिन्नमस्ता चाहती हैं कि काम-तत्त्व को नियन्त्रण में करके मुक्ति मार्ग के तीन बंधनों को खोलता हुआ साधक अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचे ।

छिन्नमस्ता-पूजन-विधि-मन्त्र

विश्वसार और रुद्रयामल तन्त्रों में छिन्नमस्ता देवी का षोडश-क्षर इस प्रकार लिखा है—

श्री क्लीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा ।

यह समस्त कार्यों में मंगल कारक माना जाता है ।

पत्नी को अनुकूल में करने का मन्त्र है—

क्लीं श्री ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा ।

पापों के नाश का मन्त्र है—

ह्रीं श्री क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा ।

मुक्ति पथ प्रशस्त करने वाला मन्त्र है—

ऐ श्री क्लीं ह्रीं वज्रवरोचनीये- हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—

ह्रीं क्लीं श्री ऐं हुँ फट् ।

श्री ह्रीं ह्रीं वज्रवरोचनीये हुँ फट् स्वाहा ।

हुँ

हूँ स्वाहा

ऊँ हूँ स्वाहा

ऊँ वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

श्रीं ह्रीं हुँ ऐं वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ह्रीं श्री हुँ ऐं वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

हुँ श्री ह्रीं ऐं वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा

ऐ श्री ह्रीं हुँ वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ह्रीं श्री हूँ ऐं वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा श्री ।

हुँ श्री ह्रीं ऐं वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा हुँ ।

ऐं श्री ह्रीं हुँ वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ऐं ।

ऊँ श्री ह्रीं हुँ ऐं वज्रवरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ऊँ श्री ह्रीं हुँ ऐं वज्रवरोचनीये श्री ह्रीं ऐं फट् स्वाहा ।

अथ बहिर्मातृका

विनियोग —

अस्य श्री बहिर्मातृका मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि गायत्री
छन्द श्री मातृका सरस्वती देवता, हलो बीजानि,
स्वराः शक्तयोऽव्यक्त कीलक, देहशुद्धिसिद्ध्यर्थे विनियोग ।

ऋष्यादि न्यास

ओ ब्रह्मणे नम शिरसि ।
 ओ गायत्री छन्दसे नम मुखे ।
 ओ मातृका सरस्वती देवताय नम हृदि,
 ओ हलभ्यो नम. गुह्ये ।
 ओ स्वरेभ्यो नम पादयो ।
 ओ अव्यक्तकीलकाय नम, सर्वाङ्गे ।

करन्यास

ओ अ क ख ग घ ङ आ अगुष्ठाभ्या नम. ।
 ओ इ च छ ज झ ञ ई तर्जनीभ्या स्वाहा ।
 ओ उ ट ठ ड ढ ण ऊ मध्यमाभ्या वषट् ।
 ओ ए त थ द ध न एँ अनामिकाभ्या हु ।
 ओ ओ प फ ब भ औ कनिष्ठिकाभ्या वौषट् ।
 ओ अ य र ल व श ष स ह ल क्ष अ करतल-करपृष्ठा-
 भ्या फट् ।

क ठे धूम्रवर्णे षोडशदले विशुद्धे—ओ अ नम ।
 ओ आ नम. । ओ इ नम. । ओ ई नम । ओ उ नम ।
 ओ ऊ नम । ओ ऋ नम । ओ ॠ नम । ओ लृ-
 नम. । ओ लृ नम । ओ ए नम ओ ऐ नम ओ ओ-
 नम । ओ औ नम ओ अ नम । ओ अ, नम ।

हृदये रक्तवर्णे द्वादशदले अनाहते—ओ क नम ।
 ओ ख नम. । ओ ग नम । ओ घ नम । ओ ङ नम ।
 ओ च नम । ओ छ नम । ओ ज नम. । ओ झ नम
 ओ ञ नम. । ओ ट नम । ओ ठ नम ।

नाभौ मेघवर्णो दशदले मणिपूरे—ओ ङ नम ।
ओ ढ नम । ओ ण नम । ओ त नम । ओ थ नम,
ओ द नम । ओ ध नम । ओ न नम । ओ प नम
नम ओ फ नम ।

लिङ्गमूले विद्युद्वर्णो षट्दले स्वाधिष्ठाने ओ व
नम । ओ भ नम । ओ म नम । ओ य नम । ओ र
ओ ल नम ।

सुवर्णो चतुर्दले मूलाधारे—ओ व नम । ओ श
नम । ओ ष नम । ओ स नम ।

अूमध्ये श्वेतवर्णो द्विदले आज्ञाके—ओ ह नम ।
ओ क्ष नम ।

अब शरीर के बाहरी अंगों में मातृका वर्णों का न्यास करना चाहिए । पहले बाह्यमातृका सरस्वती का ध्यान किया जाय । यथा—

पञ्चाशल्लिपिविभक्तिमुखदो पद्मध्यवक्षस्थला ।

भास्वन्मौलिनिबद्धशकलानापीनतुङ्गस्तनीम् ॥

मुद्रामक्षगुण सुधाढ्ययकलश विद्या च हस्ताम्बुजं
विभ्राणा विशदप्रभा त्रिनयना वाग्देवतामाश्रये ॥

इस प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

ओ अ नम शिरसि । ओ आ नम मुखं वृत्ते ।
ओ इ नम दक्ष नेत्रे । ओ ई नम वाम नेत्रे । ओ उ
नम दक्ष कर्ण । ओ ऊ नम वाम कर्ण । ओ ऋ
नम, दक्ष नासायाम् । ओ ॠ नम वाम नासायाम् ।
ओ लृ नम दक्ष गण्डे । ओ लृ नम वाम गण्डे । ओ ए
नम ऊर्ध्वं ओष्ठे । ओ ऐ नम अधोओष्ठे ओ ओ नम

ऊर्ध्वं दन्तपत्नी । ओ श्री नम अघो दन्तपत्नी । ओ अ नम ब्रह्मरन्ध्रे । ओ अ. नम मुखे ।

ओ क नम दक्ष बाहुमूले । ओ ख नम दक्ष कूर्परे । ओ ग नम दक्ष मणिवन्धे ओ घ नम, दक्ष अगुलिमूले । ओ ङ नम, दक्ष कराग्रे । ओ च नम वाम बाहुमूले । ओ छ नम वाम कूर्परे । ओ ज नम वाम मणिवन्धे । ओ झ नम वाम अगुलिमूले । ओ ञ नम वाम कराग्रे । ओ ट नम दक्षोरु मूले । ओ ठ नम दक्ष जानुनि । ओ ड नम गुल्फे । ओ ढ नम दक्ष पादतले । ए नम दक्ष पादाग्र । ओ त नम वामोरु मूले । ओ थ नम वाम जानुनि । ओ द नम, वाम गुल्फे । ओ ध नम वाम पादतले । ओ न नम वाम पादाग्रे ओ प नम दक्ष पार्श्वे । ओ फ नम वाम पार्श्वे । ओ ब नम पृष्ठे । ओ भ नम नाभौ । ओ म नम जठरे । ओ य त्वगात्मने नम हृदि । ओ र नम दक्षाशे । ओ ल नम ककुदि । ओ व नम वामाशे । ओ श नम, हृदादि दक्ष करागुल्यन्तम् । ओ ष नम हृदादि वाम करागुल्यन्तम् । ओ स नम नाभ्यादि वाम पादान्तम् । ओ ल नम हृदादि कुक्षौ । ओ क्ष नम हृदादि मुखे ।

बीज न्यास

श्रीं मुखे ह्रीं दक्षनासापुरे हूँ वामनापुरे ऐं दक्ष नेत्रे क्लीं वाम नेत्रे श्रीं ह्रीं क्लीं दक्षकर्णे ऐं वाम कर्णे हूँ नाभौ क्रौं हृदये क्रौं शिरसि ।

ध्यानम्

नाभि मे इस तरह ध्यान करना चाहिए—

स्वानाभौ नीरज ध्यायेदर्धं विकसित मितः ।
 तत्पद्मकोषमध्ये मण्डल-चण्डोचिपः ॥
 जपा कुसुम सङ्काश रक्त बन्धूकसन्निभः ।
 रज सत्त्वतमो रेखायोनिमण्डलमण्डितम् ॥
 मध्ये तु ता महादेवीः सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
 छिन्नमस्ता करे वामे धारयन्ती स्वमस्तकम् ॥
 प्रसारित मुखौ भीमा लेलिहानाग्रजिह्विका ।
 पिवन्ती रौद्री घारा निजकण्ठविनिर्गता ॥
 विकीर्णकेशपाशाश्च नानापुष्पसमन्विताम् ।
 दक्षिणे च करे कर्त्री मुण्डमालविभूषिताम् ॥
 दिगम्बरा महाघोरा प्रत्यालीढपदस्थिताम् ॥
 अस्थिमालाधरां देवि नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
 रत्तिकामोपविष्टा च सदा ध्यायति मन्त्रिणः ।
 सदा षोडशवर्षीया पीनोन्तपयोधराम् ॥

छिन्नमस्ता के दाँये ओर स्थित वर्णिनी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करें ।

वर्णिनी लोहिताः सौम्याम् मुक्तकेशी दिगम्बरा ।
 देवीगलोच्छलद्रक्तधारापान प्रकुर्वन्तीम् ॥
 नागयज्ञोपवीताङ्गी कर्त्रिखर्परहस्तकाम् ॥
 सदा द्वादशवर्षीया मुण्डमालाविभूषिताम् ॥

फिर बाँयी ओर स्थित हाकिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए ।

हाकिनी वामपार्श्वे तु कल्पात्तदहनोपमाम् ।
 विद्युच्छटाभनयना दन्तपक्तिवलाकिनीम् ॥

दष्टा करालप्रदता पीनोन्नतपयोधराम् ।
 महादेवी महाघोरा मुक्तकेशी दिगम्बराम् ॥
 लेलिहानमहाजिह्वा मुण्डमालाविभूषिताम् ।
 कपालकर्त्रिकाहस्ता सदाभीषणत्पिणीम् ॥
 देवोगलोच्छ्रनद्रक्त धारापान प्रकुर्वन्तीम् ॥
 नाभी शुद्धारविन्द तदुपरि कमल मण्डल चण्डरश्मे
 ससारस्यैकसारा त्रिभुवनजननी धर्मकामोदयाढ्या ॥
 तस्मिन् मध्ये त्रिकोणे त्रितयतनुवरा छिन्नमस्ता प्रशस्ता
 ता वन्दे ज्ञानता निखिनभयहृग यागिनी योग मुद्रा

छिन्नमस्ता कवच

हु बीजात्मिका देवी मुण्डकतृधरापरा ।
 हृदय पातु सा देवी वर्णिनी डाकिनीयुता ।१।

‘वर्णिनी डाकिनी युक्त मुण्डकतृ’ को धारण करने वाली, हु
 बीजात्मिका देवी मेरे हृदय की रक्षा करे’ ।१।

श्री ह्रीं हु ऐं चैव देवी पूर्वस्या पातु सर्वदा ।
 सर्वाङ्ग मे सदा पातु छिन्नमस्ता महाबला ।२।

‘श्री, ह्रीं, हुं, ऐं बीजात्मिका देवी पूर्व दिशा में तथा महाबला
 छिन्नमस्ता मेरे देह के सम्पूर्ण अंगों की रक्षा करे ।२।

वज्रवैरोचनीये हु फट् बीजसमन्विता ।
 उत्तरस्या तथाग्नौ च वारुणो नैऋतेऽवतु ।३।

‘वज्र वैरोचनीयै हु फट्’ इस बीज से समन्विता देवी उत्तर,
 आग्नेय, वारुण और नैऋत्य इन दिशाओं में मेरी रक्षा करने वाली
 हों’ ३।

इन्द्राक्षो भैरवी चैवासितागो च सहारिणी ।

सर्वदा पातु मा देवो चान्यान्वामु हि दिशुर्व ॥४॥

‘इन्द्राक्ष, भैरवी, अक्षितांगी और सहारिणी देवी सब दिश ओमें मेरी रक्षा करे ॥४॥’

६-भैरवी

दक्षिणमूर्ति काल भैरव की महाशक्ति भैरवी है । काल भैरव की विशेषता उमके नाम से ही स्पष्ट है । वे विनाश करते हैं । जिस तरह छिन्नमन्ता का सम्बन्ध महाप्रलय में है, उसी तरह काल भैरव नित्य प्रलय का अधिष्ठाना है, यह हर समय वस्तुओं का नाश करता रहता है । अतः ‘यम’ नाम पडा । यम को दक्षिण ‘दिशा का लोकपाल माना जाता है क्योंकि यमाग्नि इसी दिशा में अवस्थित रहती है । इसीलिए इसका नाम दक्षिणामूर्ति पडा । इनकी महाशक्ति त्रिपुर भैरवी है । यह तीनों भुवनो के हर समय विनाश में सलग्न रहती है । त्रिपुर सुन्दरी का कार्य इनकी रक्षा करना है ।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षीमा शिरोमालिका ।

रक्तालिप्तपयोधरा जपपटो विद्यामर्भोर्नि वरम् ।

हस्ताब्जन्देवती त्रिनेत्रविलमद्वक्त्रारविन्दश्रिय

देवो वद्धहिमाशुरत्नमकुटा वन्दे समन्दग्मिताम् ॥ ’

अर्थात् ‘उदय होने वाले हजारों सूर्यों के समान अक्षण कान्ति वाली क्षीमाम्बर को धारण किए भुएडनाला पहने हैं । उनके पयोधर

रक्त में लिस हैं, त्रिनेत्रा हैं, हिमाशुमद्ग मुकुट को धारण किए हुए हैं, हाथ में जपवटी, बिद्या, वर और अभय मुद्रा हैं।'

त्रिपुर भैरवी प्रतिक्षण विनाश ही करती रहती है, मारे विश्वमें यह प्रक्रिया चल रही है। परन्तु साथ ही साथ निर्माण की शक्तियाँ भी अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही हैं। पिएड और ब्रह्माएड दोनों में विनाश और निर्माण के दोनों विरोधी कार्य हर क्षण होते रहते हैं। हमारे शरीर में भी परमाणुओं के विनाश का कार्य निरन्तर चलता रहता है परन्तु निर्माण कार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि विनाश का अनुभव नहीं हो पाता। जब तक निर्माण विनाश पर अपना प्रभुत्व जमाए रहता है, तब तक स्वास्थ्य सुदृढ बना रहता है परन्तु जब विनाश की गति बढ़ जाती है और निर्माण काय शिथिल होता जाता है, उस स्थिति में तो शरीर रोगी, निर्वल और विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। जब निर्माण कार्य बिल्कुल बन्द हो जाता है, तभी मृत्यु हो जाती है। यदि हमें जीवित रहना है तो निर्माण की गति को बनाए रखना होगा, वैसे ही उपायो को अपनाना होगा, स्वास्थ्य को नियमों का पालन करना होगा। विनाश के साधनों को रोकना होगा, सिगरेट, बीड़ी, शराब माँस जैसे तामसिक भोजन विनाश के परमाणुओं के सहायक मित्र होते हैं, मिठाई, चाट-पकौड़ी, तले पदार्थ, रवड़ी आदि राजसिक पदार्थ भी पेट को खराब करते हैं और नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं, अश्लील कहानी, उपन्यास व चलचित्रों से काम तत्व का जागरण होता है, भोग की लिप्सा बढ़ती है, वीर्य का क्षय होता है, यह विनाश के सशक्त साधन हैं। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से मस्तिष्क की नसे जलती हैं। इन पर ही सारे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर रहता है। विकृत विचारों से स्वास्थ्य भी विकृत होता है।

यह तत्व त्रिपुर भैरवी के कार्यों में हाथ बटाते हैं। विनाश से बचने के लिए इनके कुप्रभावों से बचना होगा, अपने निर्माण की

गतिविधियों को तीव्र करना होगा तभी शरीर को स्थिर रखना सम्भव होता है ।

आध्यात्मिक क्षेत्र में साधक को यदि नित्य होने वाले विनाश का ध्यान रहे तो वह पापों, दुर्गाइयों और कुप्रवृत्तियों से बचा रहेगा । आत्मिक उन्नति चाहने वाले के लिए यह ध्यान आवश्यक है ।

भैरवी पूजन-विधि

भैरवी के अनेक भेद हैं जैसे त्रिपुर भैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कीलेश भैरवी, नकल सिद्धदा भैरवी, मय विध्वनिनी भैरवी, चैतन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, पट्कूटा भैरवी, नित्या भैरवी । इनके विधान में कुछ-कुछ अन्तर है ।

त्रिपुर भैरवी का मन्त्र है—‘हूर्वा ह्क्लरं हर्वा’

ध्यान इस प्रकार है—

पद्ममष्टलोपेत नवयोनाद्य कर्णिकम् ।

चतुर्द्वार समायुक्त भूगह विलिखेत ॥

“जब योनि मय कर्णिका अ कित कर उसके बाहर अष्ट दल कमल और उससे भी बाहर चतुर्द्वार और भू-गृह बनावे । यह भैरवी पूजा मंत्र है ।

दीक्षा प्राप्य जपेन्मन्त्र तत्त्व लक्ष जितेन्द्रिय ।

पुष्पैर्भस्त्रि सहस्राणि जुहुयाद् ब्रह्मवृक्ष जै ॥

“जितेन्द्रिय रहता हुआ दीक्षा प्राप्त साधक दस लाख पुष्पों और एक के पुष्पों द्वारा बारह हजार आहुतियाँ दे” ।

भैरवी कवचस्यास्य सदागिव ऋषि स्मृतः ।

छन्दोऽनुष्टुप् देवता च भैरवी भयनाग्निनी ।

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग प्रकीर्तित ॥

“भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, देवता भयनाशिनी भैरवी, और विनियोग धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति में है । १।

हसरै मे शिर, पातु भैरवी भयनाशिनी ।
 हसकलरी नेत्रञ्च हसरोश्च ललाटकम् ।
 कुमारी सव्वंगात्रे च वाराही उत्तरे तथा ॥
 पूर्वे च वैष्णवी दवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।
 दिग्दिक्षु सर्वत्रैव भैरवी सत्त्वंदावतु ॥
 इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद्देविभैरवीम् ।
 कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ॥

“हसरै मेरे मस्तक की, हसकलरी नेत्रे की, हसरो ललाट की और कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करे । उत्तर में वाराही, पूर्व वैष्णवी, दक्षिण में इन्द्राणी तथा सभी दिशा, विदिशा मे भैरवी मेरी रक्षा करे । इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मन्त्र का जप करता है, वह सौ करोड़ कल्प में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते ” । २।

७-धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवर्णं चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बर ।
 विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरला द्विज ॥
 काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा ।
 शूर्पहस्तातिरुक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ॥

प्रवृद्धघोणा तु भृश कुटिला कुटिलेक्षणा ।

क्षुत्पिपासाछिता नित्य भयदा कलाहास्पदा ॥

(शाक्त प्रमोद-धूमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा, दीर्घ तथा मलिन शम्बर वाली विधवा रूप में निवाम करने वाली, काक ध्वज वाले रथ पर आरुढ़, लम्बे पयोवर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली, कांपते हाथ, लम्बी नासिका, कुटिल स्वभाव, कुटिल नेत्र, भूख प्यास से पीड़ित, नित्य भयप्रद और कलह रूपिणी है ।'

धूमावती विधवा है । विधवा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है । दुःख और दरिद्रता उसे हर समय घेरे रहते हैं । वह अपने को निःसहाय समझती है । निराशा उसके अग-अग से टपकती है । वह जीवन को एक बोझ सा समझती है । मंगल पदार्थों का उपयोग उसके लिए वर्जित माना जाता है । यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो सामाजिक आलोचना की बाछार उस पर होने लगती है । वह अमंगल की प्रतिमा ही दृष्टिगोचर होती है । इसलिए विश्व की अपांगला स्थिति की द्योतक धूमावती है जिसे 'अलक्ष्मी' भी कहा जाता है । वह दरिद्रता का रूप है । वह निश्च्युतिरूपा है । निश्च्युति दरिद्रता, कलह, क्लेश और रोगादि की अविष्टात्री है । शास्त्रकारों का मत है कि चतुर्मास में इसका प्रभुत्व रहता है जबकि देव प्राण (आग्नेय और ऐन्द्र) निर्वल हो जाते और आसुर प्राण (आप्य) सबल रहते हैं यह काल अषाढ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता है । यही कारण है कि निश्च्युति के साम्राज्य काल में विवाहादि कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है । निश्च्युति की अन्तिम तिथि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे धार्मिक जगत में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाना है क्योंकि निश्च्युति नारकीय कार्यों की सञ्चालिका है । इसी रोग को

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग प्रकीर्तित ॥

“भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, देवता भयनाशिनी भैरवी, और विनियोग धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति में है । १।

हसरै मे शिर; पातु भैरवी भयनाशिनी ।
 हसकलरी नेत्रञ्च हसरोश्च ललाटकम् ।
 कुमारी सव्वंगात्रे च वाराही उत्तरे तथा ॥
 पूर्व्वे च वैष्णवी दवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।
 दिग्विदिक्षु सर्व्वत्रैव भैरवी सत्त्वदावतु ॥
 इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद्देविभैरवीम् ।
 कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ॥

“हसरै मेरे मस्तक की, हसकलरी नेत्रे की, हसरो ललाट की और कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करे । उत्तर में वाराही, पूर्व्व वैष्णवी, दक्षिण में इन्द्राणी तथा सभी दिशा, विदिशा में भैरवी मेरी रक्षा करे । इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मन्त्र का जप करता है, वह सौ करोड़ कल्प में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते ” । २।

७-धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवर्णं चञ्चला द्रुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बर ।
 विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरला द्विज ॥
 काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा ।
 शूर्पहस्तातिरूक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ॥

प्रवृद्धवोणा तृ भृग कुटिला कुटिलेक्षणा ।

क्षुत्पिपासाद्धिता नित्य भयदा कलाहास्पदा ॥

(शाक्त प्रमोद-वृमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा, दीर्घ तथा मलिन शम्बर वाली विवर्णा रूप में निवाम करने वाली, काक ध्वज वाले रथ पर शान्द, लम्बे पयोधर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली, कांपते हाथ, लम्बी नामिका, कुटिल स्वभाव, कुटिल नेत्र, भूख प्यास से पीड़ित, नित्य भयप्रद और कलह रूपिणी है ।'

धूमावती विधवा है । विधवा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है । दुःख और दरिद्रता उसे हर समय घेरे रहते हैं । वह अपने को नि म्हाय समझती है । निराशा उसके अग-अग से टपकती है । वह जीवन को एक बोझ सा समझती है । मंगल पदार्थों का उपयोग उसके लिए वर्जित माना जाता है । यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो सामाजिक आलोचना की बौछार उस पर होने लगती है । वह अमंगल की प्रतिमा ही दृष्टिगोचर होती है । इसलिए विश्व की अपांगला स्थिति की द्योतक धूमावती हैं जिसे 'अलक्ष्मी' भी कहा जाना है । वह दरिद्रता का रूप है । वह निश्चुति'रूपा है । निश्चुति' दरिद्रता, कलह, वलेश और रोगादि की अधिष्ठात्री है । शास्त्रकारों का मत है कि चतुर्मास में इसका प्रभुत्व रहता है जबकि देव प्राण (आग्नेय और ऐन्द्र) निर्बल हो जाते और आसुर प्राण (आप्य) सबल रहते हैं यह काल अपाढ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता है । यही कारण है कि निश्चुति' के साम्राज्य काल में विवाहादि कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है । निश्चुति' की अन्तिम तिथि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे धार्मिक जगत में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है क्योंकि निश्चुति' नारकीय कार्यों की सञ्चालिका है । इसी रोग को

किञ्चिन्नि-दरिद्रता के जाने में दूसरे दिन लक्ष्मी का अवतरण होता है और दीपावली उत्सव मनाया जाता है ।

विधि

धूमावती देवी का मन्त्र इस प्रकार है—

धू धू धूमावती स्वाहा ।

धूमावती स्तव

भद्रकाली महाकाली डमरूवाद्यकारिणी ।
स्फारितनयना चैव टकट कितहासिनी ॥
धूमावती जगत्कर्त्री शूर्पहस्ता तथैव च ।
अष्टनामात्मक स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः ॥
तस्य सर्वार्थमिच्छि स्यात्सत्यं सत्यं हि पार्वति ॥

“भद्रकाली, महाकाली, डमरू बजाने वाली, विस्फारित नयन वाली, किटकिटा कर हैमने वाली, तसार की रचयित्री धूमावती छाज हाथ में धारण किये हुए हैं, उनका यह आठ नाम वाला स्तोत्र पाठ करने से सर्वार्थ सिद्ध होता है” ।

धूमावती कवच

धूमावती मुख पोतू धू धू स्वाहास्वरूपिणी ।
ललाटे विजया पातु मालिनीं नित्यसुन्दरी । १।

धू धू स्वाहा स्वरूप वाली धूमावती मेरे मुख की तथा नित्य सुन्दरी मालिनी और विजया मेरे ललाट की सदा रक्षा करें ।

कल्याणी हृदय पातु हसरीं नाभिदेशके ।
सच्चरंग पातु देवेसी निष्कला भगवती मालिनी । २।

“बल्याणी मेरे हृदय की, हसरी नामिदेशकी और निष्कला भगमालिनी देवी मेरे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें ।

मुपुष्य कवच दिव्य य पठेद्भक्तियुत ।

सौभाग्यमतुन प्राप्य चाते देवोपुर ययी ।३।

“यह कवच अत्यन्त पुण्यमय एवं दिव्य है । भक्तिपूर्वक इसका पाठ करने पर नाथक इस लोक में सर्व सौभाग्य की प्राप्ति करता हुआ अन्त में भगवती के लोक को प्राप्त होता है” ।

८-वगलामुखी

एक वक्त्र महारुद्र की महाशक्ति ‘वगलामुखी’ है । वैदिक शब्द ‘वल्गा’ है, उसका विकृत आगमोक्त शब्द ‘वगला’ है । अतः वल्गामुखी’ को ‘वगलामुखी’ कहा जाता है । इसका सम्बन्ध प्राणी के ‘अथर्वा सूत्र’ से है जिसके सहयोग से मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के अभिचार प्रयोग किए जा सकते हैं । पुराण कथाओं के अनुसार देवता इसी के द्वारा कृत्या प्रयोग किया करते थे, अपने शत्रु-पक्ष पर वे सूक्ष्म प्रहार करते थे ।

जित्वाग्रमादाय करेण देवी वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।

गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढया द्विभुजा नमाभि

(शाक्तप्रमोद-वगलामुखी तन्त्र)

अर्थात् शत्रु के हृदय पर आरुढ़, बाँधे हाथ से शत्रु की जिह्वा को खींच कर दाँये हाथ से गदा का आक्रमण करने वाली, पीताम्बर धारण किए हुए, द्विभुजा वगला है । उसे नमस्कार करता हूँ ।

“मध्ये सुधाद्वि मणिमण्डपरत्नवेदी सिंहासनोप-
रिगता परिपीतवर्णाम् । पीतम्बराभरणमाल्य विभूषि-
ताङ्गी देवी नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥”

अर्थात् 'सुधा समुद्र के बीच अवस्थित मणि मण्डप पर रत्न-
वेदी है, उस पर रत्न सिंहासन पर पीत वर्ण और पीत वर्ण के अभूषण
माल्य से विभूषित अंगी वाली बल्गा है, उसके एक हस्त में शत्रु जिह्वा
और दूसरे में मुद्गर है, उस बल्गा देवी को नमस्कार करता है ।

कृत्या प्रयोग आदि का माध्यम प्राणी का 'अथर्वा सूत्र' है जिसे
विकसित और सक्रिय करके काम में लाया जा सकता है । स्वाभाविक
रूप से यह काक और कुत्ते में अधिक विकसित मिलता है । हमें विश्वास
नहीं होना है कि हमारे घर में घाने वाले को पूर्व सूचना काक दे देता
है । राजकीय नियन्त्रण में एक विशेष उद्देश्य से पोषित कुत्तों के चम-
स्कार तो प्रायः देखने में आते हैं जब अनेक व्यक्तियों में छिपे चोर को
वह पदचान लेते हैं । जिस मार्ग से चोर जाता है, उसे सूँघते हुए भी
चोर के गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं । यह उनको विकसित अथर्वा
शक्ति का ही परिणाम है । कई बार ऐसा होता है कि सैकड़ों मील दूर
अपने किसी परिजन के दुःख से हम आक्रान्त हो जाते हैं । यह अथर्वा
सूत्र के ही माध्यम से होता है । इसे एक तरह की वायरलेस टेली-
ग्राफी भी कह सकते हैं । यह सूक्ष्म होने के कारण दृष्टि में नहीं आ
सकता । अनुभव ही किया जा सकता है । इसी के सहयोग से मारण
प्रयोग किए जा सकते हैं ।

बगला पूजन-विधि

मन्त्र —

ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाच मुखं पदं स्त-
म्भजिह्वं कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ ।

वगला-गायत्री का मन्त्र एवं विनियोग—

मन्त्र

ॐ ह्रीं ब्रह्मास्त्रायै विद्महे । स्तम्भनवाणायै
धमिहि तन्नो वगला प्रचोदयात् ।

विनियोग

ओ अम्य श्रीवगलागायत्रीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः,
गायत्रीछन्दः, वगलानाम्नो चिन्मयशक्तिरूपिणो गायत्री
देवता, ओ वीज, ह्रीं शक्ति, विद्महे कीलक गायत्रीजपे
विनियोग ।

सन्ध्या विधि

आचमन मन्त्र—

‘ओ आत्मतत्त्वाय स्वाहा । ओ विद्यातत्त्वाय स्वाहा ।
ओ जिवन्तत्त्वाय स्वाहा ।’

शिखरा बधन मन्त्र

‘ओ मणिवारिणी वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हु
फट् स्वाहा ।’

मूल मन्त्र से तिलक करके इसी से तीन बार प्राणायाम करे
फिर निम्न संकल्प करके विनियोग पढ़े—

संकल्प

देशकाली सकीर्त्य ओमच्च श्रीवगलामुखीप्रतिये प्रातः
संध्यामह करिष्ये ।’

विनियोग

‘ओमस्य श्रीवगलामुखीमहामन्त्रस्य नारद ऋषि

बृहती च्छन्द श्रीवगलामुखी देवता हली बीज स्वाहा
शक्ति मम सकलकामनासिद्धयर्थे जपे विनियोग ।'

ऋष्यादिन्यास

नारदशृपये नम , शिरसि । बृहतीच्छन्दसे नम ,
मुखे । वगलामुखीदेवतायै नम , हृदि । ह्ली बीजाय नम ,
गुह्ये ।

स्वाहाशक्तये नम , पादयो ।

करन्यास

ओ ह्ली अङ्गुष्ठाभ्या नम । वगलामुखि तर्जनीभ्या
नम । सर्वदुष्टाना मध्यमाभ्या नम, । वाच मुख स्तम्भय
अनामिकाभ्या नम । जिह्वा कीलय कीलय कनिष्ठका-
भ्या नम । बुद्धि विनाशय ह्ली ओ करतलकरपृष्ठाभ्या
नम ।

अङ्गन्यास

ओ ह्ली हृदयाय नम वगलामुखि शिरसे स्वाहा ।
सर्वदुष्टाना शिखायै वषट् । वाच मुख पद स्तम्भय कव-
चाय हुम् । जिह्वा कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट् ।
बुद्धि विनाशय ह्ली ओ अस्त्राय फट् ।

प्रातः काल ध्यान

उद्यदादित्यसकाश पुस्तकाक्षकरा स्मरेत् ।
कृष्णाजिनधरा ब्राह्मी ध्यायेत्तराङ्किताम्बरे ॥

मध्याह्न का ध्यान

शुक्ला शुक्लाम्बरधरा वृषासनकृताश्रयाम् ।

त्रिनेत्रा वरदा पाश शूल च नृकरोटिकाम् ॥
सूर्यमण्डलमध्यस्था ध्यायेद् देवी समभ्यसेत् ॥

सापंकाल ध्यान

श्यामवर्णां चतुर्बाहु शङ्खचक्रलसत्कराम् ।
गदापद्मधरा देवी सूर्यासनकृताश्रयाम् ।
सयाह्वे वरदा देवी गायत्री सस्मरेद्बुद्धि ॥

मार्जन

मूल मन्त्र के उच्चारण से तीन बार इष्टदेव के मस्तक पर, दो बार भुजाग्रो पर, तीन बार हृदय पर, तीन बार नाभि में और दो बार भुजाग्रो पर, तीन बार हृदय पर, तीन बार नाभि में और दो बार पैरो पर जल छिड़कते हुए मार्जन करे ।

कवच

ओ अस्य श्रीबगलामुखीकवचस्य नारदऋषि अनु-
ष्टुप् छन्द श्रीबगलामुखी देवता ल बीज ईं शक्ति ऐं
कोलकम् पुरुषार्थचतुष्टयप्राप्तये जपे विनियोग ।
शिरो मे बगला पातु हृदयैकाक्षरी परा ।
ओ ह्री ओ मे ललाटे च बगला वैरिनाशिनी ।१।
गदाहस्ता सदा पातु मुख मे मोक्षदायिनी ।
वैरिजिह्वा धरा पातु कण्ठ मे बगलामुखी ।२।
उदर नाभिदेश च पातु नित्य परात्परा ।
परात्परतरा पातु मम गुह्य सुरेश्वरी ।३।
हस्तौ चैव तथा पातु पार्वती परिपातु मे ।
विवादे विषमे घोरे संग्रामे रिपुसङ्घटे ।४।
पीताम्बरधरा पातु सर्वाङ्ग शिवनर्तकी ।

श्रीविद्या समया पातु मातङ्गी पूजिता शिवा ।५।
 पातु पुत्र सुता चैव कलत्र कालिका मम ।
 भ्रातर पातु नित्य मे पितर शूलिनी सदा ।६।
 रन्ध्रे हि वगलादेव्या कवच मन्ममुखोदितम् ।
 नैव देयतमुख्याय सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।७।
 पठनादु धारणादस्य पूजनाद् वाञ्छित लभेत् ।
 इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद् बगलामुखीम् ।८।
 पिबन्ति शोणित तस्य योगिन्य प्राप्य सादरा ।
 वश्ये चाकपरो चैव मारणे मोहने तथा ।९।
 महामये विपत्तौ च पठेद् वा पाठयेत्तु य ।
 तस्य सर्वार्थसिद्धि स्याद् भक्तियुक्तस्य पार्वति ।१०।

अन्तर्मतृका

अस्य अन्तर्मतृकान्यासमन्त्रस्य ब्रह्माऋषि गायत्री
 छन्द मातृका सरस्वती देवता ह्रलो बीजानि स्वरा,
 शक्त अव्यक्त कीलक श्रीबालात्रिपुराङ्गस्वेन मम शरी-
 रशुद्ध्यर्थे अन्तर्मतृकान्यासे विनियोग ।

मातंगी

गुप्त साधना तन्त्र में मातंगी भगवती की महिमा इस प्रकार
 वर्णित की गई है—

अस्यविज्ञानमात्रेणपुनर्जन्मनविद्यते ।
 कामतुल्यश्चनारीणारिपूणाशमनोपम ॥
 कुबेरइववित्ताढ्योधरणीसहस्रक्षम ॥

अर्थात् जिस व्यक्ति ने इस महाविद्या का विज्ञान समझ लिया,
 उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह शत्रुओं के समीप कामदेव के समान

दृष्टि वाला होता है, शत्रुओं के नमस्त यमराज की तरह, कुबेर की तरह धनवान होकर, पृथ्वी की तरह क्षमाशील बन जाता है ।'

उच्चदादित्यमङ्गागानयनत्रयशोभिताम् ।

भक्तानांवरदादेवी मातंगी तान्त्रमशय ॥

अर्थात् 'उन मातंगी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ जिनके शरीर की कान्ति उदय होने वाले सूर्य की तरह उज्ज्वल है, वह भक्तों को वर-दाता है और तीन नेत्रों से शोभित है ।'

सीदामिनीसमाभामानानालकारमयुताम् ।

इन्द्रादिदेवनामेव्यामानङ्गो तान्त्राम्यहम् ॥

अर्थात् 'उन मातंगी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ जो विजली के समान प्रभा वाली, अपने-क्यों प्रकार के भलकारों से समुक्त और इन्द्रादि देवता भी जिनकी सेवा में रत रहने हैं ।'

दिङ्मुखेदशचन्द्राढ्यामुधावर्पणकारिणीम् ।

देववृन्दसमायुक्तामातंगी तान्त्राम्यहम् ॥

'उन मातंगी देवी को नमस्कार करता हूँ दशों दिशाएँ जिनके शरीर के समान हैं, जो अपने चन्द्रवत् मुखों से विश्व में अमृत की वर्षा करती हैं और जो देव वन्दित हैं ।'

पूजन-विधि

मन्त्र—

ओ ह्रीं क्लीं हूँ मातंग्यै फट् स्वाहा ।

विराट्छन्दोमहेशानिमातंगीदेवताममृता ।

धर्मार्थकाममोक्षेषुविनिर्योग प्रकीर्तित ॥

‘हे महेशानि ! इस मन्त्र का छन्द विराट् है और देवता मातंगी है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसका विनियोग है अर्थात् इससे प्राप्त होते हैं ।’

ध्यान

श्यामा शुभाशुभाला त्रिनयनकमला रत्नसिंहासनस्था
नीलाम्भोजाशुकान्ति निशिचरनिकरारण्यदावाग्निरूपा
पाश खड्ग चतुर्भिरवरकमलकरै खेटकञ्चाङ्कुशञ्च ॥
मातङ्गीभावहन्तोमभिमतफलदा मोदिनी चिन्तयामि ।

अर्थात् ‘श्याम वर्ण वाली, मस्तक पर चन्द्र को ग्रहण करने वाली त्रिनेत्रा, रत्न जडित सिंहासन पर स्थित, नील वर्ण के कमल की कान्ति वाली राक्षस रूप वन को जनाने में दावानल रूपा, चार भुजाओं में पाश, खड्ग, खेटक और अकुश वाली, भक्तों की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली और असुरों को मोहित करने वाली मातंगी का ध्यान करता हूँ ।’

मातंगी मतंग शिव की महाशक्ति है ।

मातङ्गी यन्त्र

षट्कोणाष्टदल पद्म लिखेद्यन्त्र मनोहरम् ॥

षट्कोण बना कर उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे और षट्कोण में देवी का मूल मन्त्र लिखे । इस प्रकार मातंगी यन्त्र प्रस्तुत होता है ।

मातङ्गी कवच

त्रैलोक्यरक्षणस्यास्यदक्षिणामूर्तिसंज्ञक ।

ऋषिच्छन्दोविगाडोविमातगीदेवनाम्भृता ॥

धर्मार्थकाममोक्षेपुत्रिनियोग प्रकीर्त्तिन

इम कवच से त्रिलोकी की रक्षा होती है । इम कवच के ऋषि दक्षिणमूर्ति हैं, छन्द विराट् है, मानगी देवी देवता हैं श्रीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसका विनियोग है ।

कवच इस प्रकार है—

ओवीजम्मेगिर पातु ह्री वोजम्मेललाटकम् ।

क्लीवीजवक्षुयो पातुनामात्राम्परिक्षतु ॥

माकार वदनम्पातुनकार कण्ठकेऽवतु ।

ङ्कार म्कन्धदेश चकारम्बाहुयुग्मकम् ॥

टकर हृदयम्पातुम्बकार म्मनयुग्मकम् ।

पृष्ठदेशन्तथानामिञ्जठर लिङ्गदेशकम् ।

पादद्वन्द्व चमर्वाङ्गहाकारम्परिरक्षतु ।

साह्र दशाक्षरीविद्यामर्वाङ्ग परिरक्षतु ॥

इन्द्राम्पातुपूर्वचवह्नि काण्डेऽन्ताऽवतु ।

यमोमादक्षिणेऽतुर्नैऋत्यानिऋतिश्चमाम् ।

पश्चिमेवरुण पातुवायव्यापवनोऽवतु ॥

कृवेगेदिशिकृवेर्यामागईगानकाणके ।

ऊर्ध्वब्रह्मामदापातुअधश्चानन्तएवच ॥

रक्षाहीनन्तुयत्स्थानवर्जितकवचेनतु ।

तत्स वरक्षमेदेविमातगिसर्वमिद्विदे ।

कवच की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

त्रिसन्ध्यय पठेन्नित्यससाक्षाच्छर स्वयम् ॥

पुष्पाजलाष्टकन्दत्वामूले नैवपठेत्सकृत् ।

गतवपमहन्त्राणपूजाया, फनमाप्नुयात् ॥

भूर्जविलङ्घनगुलिकास्वर्णस्थावारायेन्द्राद ।

सर्वसिद्धियुत सोऽपि सर्वसिद्धितपोयुतः ॥

ब्रह्मास्त्रदिनिशस्त्राणिततगात्रप्राण्यपावन्ति ।

माल्यानिकुसुमा येवभवन्त्येवनसशय ॥

‘इस कवच का नित्य तीन सन्ध्याओं में पाठ करने वाला साधक साक्षात् शिव स्वरूप हो जाता है । मूल मन्त्र से आठ बार पुष्पाञ्जलि देकर एक बार कवच का पाठ करने वाला हजार वर्ष की पूजा करने का फल प्राप्त करता है । भोज-पत्र पर लिख कर सोने में मढ़वा कर पहनने वाला साधक तपस्या से सब तरह की सिद्धियों के अनुकूल बन कर सिद्धि सम्पन्न बन जाता है । ब्रह्मास्त्र जैसे अस्त्रों के लगने पर भी वह शरीर पर फूलों की माला जैसे सुकोमल लगते हैं, इसमें कुछ भी शय नहीं ।’

हवन

षट् सहस्र मन्त्र जप करके दशाश हवन करने को कहा गया है—
ब्रह्मवृक्षोद्भव, काष्ठं ह्योमात्सर्वसमृद्धिदम् ।

तर्पणचाभिषेकचदशाशमाचरेत्सुधी ॥

‘ढाक की समिधाओं से हवन करना चाहिए । इससे सर्वसिद्धि को प्राप्त होगा है । हवन का दशवां भाग तर्पण और तर्पण का दशवां भाग अभिषेक करना चाहिए ।’

पूजा विधि

‘मन्त्र महोदधि में ‘मातंगी’ की पूजा विधि इस प्रकार दी है—

श्रीमातगेश्वरिपदसर्वशूलोन्नातशम् । करिवह्नि-
प्रियामत्रोद्वात्रिशद्वर्णवानयम् ॥१॥

मतंगोमुनिरस्योक्तोनुष्टुप्छन्दस्तुदेवता । मातंगी-
सर्वजनतावशीकर्णतत्परा ॥२॥

चतुर्भिःषड्भिरङ्गैश्चषडष्टनयनैरपि । मत्रोस्यवर्ण-
रगानित्यस्यदेवी विचिन्तयेत् ॥३॥

घनश्यामलागीरितारत्नपीठे शुकस्योदितशृङ्खली-
रक्तवस्त्राम् । सुरापानमत्तामरोजस्थिताश्रीभजेवल्लकी
बादय तीमन गीम् । १४।

जपोयुतसहस्र तुहोम पुष्पमधूकजै । मध्वक्तं पूजे-
येत्पीठेवदयमाणविधानत । १५।

त्रिकोणाष्टदलद्व द्व कलास्त्रवतुर्लक्षम् । पीठकृत्वा-
यजेत्तस्मिन्पीठशक्तीर्नवेष्टदा । १६।

विभूतिरुन्नति कान्ति सृष्टि कीर्तिश्चसम्भति ।
व्युष्टिरुत्कृष्टिश्चद्वीचमातृग्यता समीरिता । १७।

सर्वशक्तिरमस्यातेलासनायहृदतिक । तारभाया-
वाग्रमाद्य पीठम त्र कलार्णक । १८।

विश्राण्यासनमेतेनपाद्यादीनिप्रकल्पयेत् । मूलेनपु-
ष्पपूजातेकुर्यादावरणार्चनम् । १९।

त्रिकोणेष्वर्चयेत्त्रिभोररिप्रीतिमनोभव । केसरेपु-
षडगानिमातृश्चदलमध्यगा, । १०।

द्वितीयेष्टदलेपूज्याग्रसितागादिभैरवा । षोडशा-
ख्येतुवामाख्याज्येष्ठागौद्रीप्रशक्तिका । ११।

श्रद्धामाहेश्वरीचापिक्रियाशक्तिश्चसप्तमी । सुल-
क्ष्मी, सृष्टिमोहिन्यौप्रथमथाश्वासिनीतथा । १२।

विद्युल्लनाचचिच्छक्तिमुन्दरीनदयासह । नन्दबुद्धि,
षोडशीतुपूजनीया प्रयत्नत, । १३।

चतुरस्रेचतुर्दिक्षुमातंगीसामहादिका । महालक्ष्मी-
स्तथासिद्धि पुनर्वल्ल्यादिकोणत । १४।

दुर्गाविटुकक्षेत्रेशादिघवास्तत । वज्राद्या स्युरित्थ-
सिद्धिर्मनोभवेत् । १५।

ध्रुवभवानीवाग्बीजरमामादीप्रयोजयेत् । सर्वावर-
णदेवानामातुगीपदमतत । १६।

मल्लिकाकुसुमैर्होमाद्भोगोराज्यचवित्वजं । पत्रै
फलैर्विवश्यास्याज्जनताब्रह्मशेक्षजै ॥७॥

रोगनाशमृताखण्डनिबै श्रीस्तुङ्गुलैरपि । आकृष्टि-
लंबणैर्विद्यात्तगरैर्वेतसंजलम् ॥८॥

लवणैर्निम्बतैलावनै शत्रुनाशोवमाशनम् । निशा-
चूर्णयुतैर्लोणैर्होमात्स्यात्स्तभननृणाम् ॥९॥

रक्तचदनकर्चुरमासीकु कुमरोचना चदनागुरुकपू
रैर्गंधाष्टककुदोरितम् ॥१०॥

एतद्धोमाज्जगद्वश्यजायतेमन्त्रिणोद्भवम् । एतत्त्रि-
ष्टुतजपत्वातिलकेनजगत्प्रिय ॥११॥

कदलीलहोमेनसर्वेष्टसमवाप्नुयात् । किंवहूक्तेन-
मातंगीपूजिताकामदानृणाम् ॥१२॥

“ओम् ह्रीं ऐं नमो भगवती चच्छिष्ट चण्डालि श्रीमातङ्गी-
श्वरी सत्र जन वशकरि स्वाहा” यह बत्तीस वर्णों वाला मन्त्र है। इसका
मतङ्ग ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और समस्त जनो को वश्य करने में तत्पर
मातङ्गी देवता है। इस मन्त्र के चार-छैं, छैं-प्राठ और दो वर्णों का
अङ्ग न्याम करे और देवी का ध्यान करे ॥१-३॥

ध्यान—मेघ के समान श्याम अङ्ग वाली, रत्न निर्मित पीठ
पर विराजमान, शुक्र की कथित वाणी को श्रवण करती हुई, रक्त
वस्त्र धारण करने वाली, मदिरा पान में उन्मत्त, बलनाको का वाहन
करने वाली और कमल पर स्थित श्रीमानङ्गी का भजन करता हूँ ॥१॥
दश हजार इस मन्त्र का जप और सहस्र मधूक के पुष्प मधु में अर्पित
करके होम करे ॥४-५॥

पीठ पर त्रिकोण, दो अष्ट दलादि पर इष्टदा-विभूति आदि
नव शक्तियों का “ओम् ह्रीं ऐं श्रीं सर्वं शक्ति कमलासनाय नमः”
इस पीठ मन्त्र से भजन करे। पाद्या सनादि होकर मूल मन्त्र से आव-
रण का अर्चन करे। त्रिकोण में रति प्रीति और मनोभव की पूजा
करनी चाहिए। केसरो में छैं अङ्ग, दलो में मातृका तथा द्वितीय अष्ट

दलों में अमिताभ्यादि का पूजन करे । पोटश नाम वाले में वामा, ज्येष्ठा आदि का पूजन करे । ६-११।

चतुरस्र में चारों दिशाओं में महामातङ्गी आदि का पूजन करे । अग्नि आदि कोणों में विघ्नेश दुर्गा वटुक आदि का तथा दिगीश और उनके वज्रादि आयुधों के पूजन करने में मन्त्र की मिट्टि हो जाती है । मल्लिका पुष्पों के होम में भोग की प्राप्ति, विल्व दलों से राज्य, विल्व के फलों में भी राज्याप्ति, इन्द्र वृक्ष के पुष्पों में जलवश्यकता, गिलोय के टुकड़ों में रोग का नाश, निम्ब में श्री तण्डुलों में भ्राक्पण, लवण से विद्या, तगर अथवा वेतम जल, दिम्ब तेलोक्त लवण से शत्रु नाश, हरिद्रा चूर्ण में युक्त लोण में नगस्तम्भन और चन्दन गूगल-कपूर आदि गन्वाष्टक के होम में समस्त जगत् वश्य होता है । इस पीम कर तिलक से जगत् का प्रिय होता है । बदली फल का होम करने से सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।

१०-कमला

धूमावती और कमला दो विरोधी शक्तियाँ हैं । धूमावती अलक्ष्मी है, कमला लक्ष्मी है। वह दरिद्रा है, यह समृद्धि और ऐश्वर्य की देवी है । धूमावती का सम्बन्ध ज्येष्ठा नक्षत्र से है जिसमें उत्पन्न व्यक्ति दरिद्रता के च गुण में फँसा रहता है । इसलिए इसे अवरोहिणी भी कहते हैं क्योंकि कमला का रोहिणी नक्षत्र से सम्बन्ध है, जिसमें उत्पन्न व्यक्ति ऐश्वर्यशाली होता है ।

कमला का महात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

कमला च भवेद्देवी कमला सर्वं देवता ।

कमला पार्वती साक्षात् कमला सर्वं कारणम् ॥

यस्या पूजनमात्रेण त्रैलोक्य पूजन भवेत् ।

कमला च महादेवी त्रिधामूर्ति व्यवस्थिता ।

परा चैवापराचैव तृतीया च परापरा ॥

‘केवल कमला की पूजा करने में सब देवताओं की, यहाँ तक कि त्रिभुवन की पूजा हो जाती है। कमला साक्षात् पार्वती है और सब का कारण है। वह परा, अपरा और परापरा इन त्रिमूर्तियों से व्यवस्थित होती है।’

कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजाफल लभेत् ।
हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा शत्रु महोत्कटम् ।
व्याधय सर्वारिष्टानि पलायन्ते न सशय ।

अर्थात् ‘कमला की पूजा से कोटि गुण फल लाभ होता है। सर्व विघ्नों और महातीव्र शत्रुओं का नाश होता है, इसमें कुछ सशय नहीं।’

कमला-पूजन विधि

कमला सदाशिव पुरुष की महाशक्ति है। इसका मन्त्र ‘श्री’ है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

कान्त्या काञ्चनसन्निभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
हंस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्वमाना श्रियम् ।
विभ्राणा वरमब्जयुग्ममभ्य हरते किरीटोज्ज्वला
क्षोमाबद्धनितम्बबिम्बलिता वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

(शक्ति प्रमोद कमला तन्त्र)

अर्थात् ‘सुवर्ण के समान कान्ति वाली, हिमगिरि के समान श्वेत वर्ण वाले चार हस्तियों के द्वारा शुण्ड से ग्रहण किए हुए सुवर्ण कलशों से स्नापित, चार भुजाओं में वर, अभय, और कमल द्वय और किरीट ग्रहण किए हुए, क्षोम वस्त्र से आवृत कमला का स्मरण करता हूँ।’

द्वादश लक्ष मन्त्र जप से पुण्ड्रचरण करे और मधु-शकरा मिश्रित द्वादश सहस्र कमल और तिलो से हवन करे।

॥ तन्त्र विज्ञान का दूसरा खण्ड समाप्त ॥